शहर में घूमता आईना

My novel is a mirror of life and it reflects, while it journeys down the highway, the blue of skies and the mire in the road below.

— Standhal

शहर में घूमता आईना

उपेन्द्र नाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

SHEHAR MEN GHOOMTA AINA

novel by Upendra Nath Ashk

मूल्य : 200.00

प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन
5, ख़ुसरोबाग़ रोड, इलाहाबाद – 1

मुद्रक : सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स
1–सी, बाई का बाग़, इलाहाबाद

ज़िन्दगी की पुर-पेच राहों के नाम

मेरे पैरों के निशाँ अब भी परेशाँ हैं यहाँ
ख़ाक छानी है इन्हीं राहों की बरसों मैंने

आलेख

[पहले संस्करण का आमुख]

'**शहर में घूमता आईना**' के पात्र वर्षों से मेरे दिमाग़ को घेरे थे। कहूँ कि मेरे लिखने के मार्ग की बाधा थे। मैं जब भी कोई नया उपन्यास लिखने की सोचता, ये सदैव मेरा मार्ग अवरुद्ध कर देते। मुझे सन्तोष है कि आज इन्हें काग़ज़ पर उतार कर मैं कुछ हल्का हुआ हूँ।

उपन्यास मैंने १९५७ में लिखना आरम्भ किया था। उस वर्ष मैं इसी आशा से डलहौज़ी गया था कि इसे लिख लाऊँगा। पर वहाँ के सौन्दर्य ने मुझे कुछ ऐसा बाँधा कि मैं कविताएँ लिखता रह गया। तो भी, जब वह मूड चुक गया, तो मैंने इसे हाथ लगा दिया। पाँच परिच्छेद मैंने वहाँ लिखे। लेकिन अगले तीन वर्षों तक मैं इसे, चाहने पर भी, ज़्यादा आगे नहीं बढ़ा सका। हर साल मैंने कोशिश की, पर केवल सात परिच्छेद और लिख पाया।

उपन्यास की इस मन्द गति से मैं इतना परेशान था कि जब मैं १९६१ में 'असम हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का अध्यक्ष हो कर तिनसुकिया (असम) गया तो मैं इसकी पाण्डुलिपि साथ लेता गया। सोचा यह था

कि असम का दौरा ख़त्म करके कैलिम्पांग में रुक जाऊँगा और उपन्यास पूरा करके ही लौटूंगा। लेकिन असम की जलवायु मुझे रास नहीं आयी। शिलांग ही में मैं बीमार पड़ गया और कैलिम्पांग पहुँचते-न-पहुँचते ज्वर-ग्रस्त हो गया। मेरी पत्नी चाहती थी कि मैं वापस लौट चलूं और स्वस्थ हो कर फिर कहीं दूसरी जगह जा कर इसे लिखूं। लेकिन मैं वहीं रह गया और बीमारी के बावजूद मैंने इसे पौने दो महीने में ख़त्म कर डाला। रात को मुझे खाँसी के मारे नींद न आती थी, इसलिए मैं दिन को सो लेता और रात-रात भर लिखता। मूर्खता-भरे अपने उस हठ से यद्यपि मैं और भी बीमार पड़ गया हूँ और मेरी पुरानी यक्ष्मा की बीमारी फिर कुछ सक्रिय हो गयी है, पर मुझे अफ़सोस नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि मैं इसे ख़त्म किये बिना वापस आ जाता, तो फिर वर्षों तक इसे न लिख पाता और लगातार मेरा दिमाग़ परेशान रहता।

लेकिन क्या इस हेय, अकिंचन, मिडियाकर, निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण के लिए इतनी बड़ी जोखिम उठाना ठीक था ? हो सकता है मेरे आलोचक इसे पढ़ कर व्यंग्य और विद्रूप से मुस्कराते हुए यह प्रश्न करें। मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। इसे लिखने के लिए अपनी विवशता का उल्लेख भर कर सकता हूँ।

साथी सुरेन्द्रपाल, वीरेन्द्रनाथ मण्डल तथा कौशल्या का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने प्रेस-कापी तैयार करने में मेरी बड़ी सहायता की है और अमूल्य सुझाव दिये हैं। मुझे खेद है कि अपनी वर्तमान अस्वस्थता के कारण मैं इस पर उतना श्रम नहीं कर सका, जितना मैं प्रायः करता हूँ। निश्चय ही इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं। आशा है, सहृदय पाठक मेरी विवशता को देखते हुए छोटी-मोटी त्रुटियों को खातिर में न लायेंगे। सदा की तरह उनके सुझावों का मैं स्वागत करूँगा।

—उपेन्द्रनाथ अश्क

शहर में घूमता आईना

● जो पाठक हर कलाकृति से यह आशा रखते हैं कि वह कुछ सिखाये भी, उनसे निवेदन है कि अच्छी कलाकृति सीधे कुछ नहीं सिखाती, पर सीखने वाले उससे बहुत कुछ सीख लेते हैं। पंजाबी में कहावत है :

इक्कनाँ नूँ दित्ती रब्ब ने
इक्कनाँ ने सिक्ख लयी
इक्कनाँ नूँ जो न आयी
ज्यूँ पत्थर बूँद पयी

याने एक तरह के लोग भगवान से सब कुछ ले कर पैदा होते है, दूसरे (देख या पढ़ कर) सीख लेते हैं, लेकिन तीसरे ऐसे भी होते हैं, ज्ञान जिनके दिमाग़ पर से पत्थर की बूंद सरीखा फिसल जाता है।

● दूसरे के इम्प्रेशन्ज़ और अनुभूतियों से कुछ पाने के लिए मन का ग्रहणशील होना ज़रूरी है। जो लोग सब कुछ ले कर पैदा हुए है, अथवा कुछ भी नहीं ले सकते, उनके लिए इस उपन्यास में बहुत कुछ नहीं है। यह केवल बीच के लोगों के लिए है (जिनमें कि लेखक अपने आपको भी मानता है) और उसने पाया है कि अधिकांश पाठक उसी कोटि में आते हैं। उन्हीं के हाथों में यह उपन्यास ससंकोच समर्पित है।

सुबह

एक

चेतन रात बहुत देर में सोया था। वातचक्र में लगातार घूमने वाले तृण-पात की तरह बीसियों विचार उसके दिमाग़ में बवण्डर मचाये थे। नीला की शादी में होने वाली बीसियों बातें, दृश्य, प्रकट महत्वहीन, पर वास्तव में मन को झकझोरने वाले नन्हें-नन्हें ब्योरे, बार-बार उसके सामने आते थे....नीला, मीला, शीलो अथवा रणवीर के साथ होने वाले सम्वाद उसके कानों में गूंजते थे और वह दूसरों के साथ अपना स्वर भी सुनने लगता। सिर को झटक कर या करवट बदल कर वह फिर सोने का प्रयास करता, लेकिन फिर वही दृश्य, वही घटनाएँ, वही सम्वाद....

न जाने रात कितनी बीत चुकी थी, जब घिरा आसमान धारासार बरस उठा था। जंगले पर पड़ी हुई टीन की चादरें वर्षा के दुर्वार थपेड़ों से क्रन्दन कर उठीं। चेतन की वृत्तियाँ उस क्रन्दन की एकरसता पर केन्द्रित हो गयीं और मूसलाधार गिरता पानी जैसे उसके दिमाग़ की आँधी को बैठाने लगा। उसकी पलकें भारी हो गयीं और गहरी नींद ने उसे अपने आलिंगन में बाँध लिया।

०

सुबह न जाने वह कब तक सोया रहता, पर उसके कानों में 'हुँ,' 'हुँ' की

आवाज़ आने लगी। पहले यह हुँकार कहीं बहुत दूर से उसकी चेतना के दरवाज़े खटखटाती रही, फिर उसे सपना-सा आने लगा और उसने देखा कि एक अजीब-सा भयानक पशु, जिसका सिर भेड़िए का है, धड़ और चाल रीछ की है, उसके पीछे हुँकारता हुआ आ रहा है। उसकी चेतना के कपाट सहसा खुल गये और वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

न जाने कब पानी थमा, कब बादल छँटे, पर तेज़ वर्षा की बौछारों से निखरी-धुली छत पर ऐसी धूप खिली हुई थी, जो मूसलाधार पानी बरसने के बाद, बरसात के नीले, निरभ्र आकाश में सूरज के सहसा खिल-खिला उठने पर ही फैलती है। रात ज़ोर का पानी पड़ने से हवा में सील और ठण्डक हो गयी थी और चेतन ने खेस से सिर-मुँह—सब ढक लिया था। हड़बड़ा कर उठते ही उसने खेस मुँह पर से हटाया तो धूप से उसकी आँखें चौंधिया गयीं। उसकी गर्दन पर हल्का-सा पसीना आ गया था। गर्दन के आगे-पीछे हाथ फेरते हुए उसने क्षण भर के लिए बरसाती में चारों ओर निगाह दौड़ायी। दायें-बायें दोनों ओर बनी बड़ी-बड़ी महराब-दार झिलमिलियों से हवा झर रही थी और ऊपर छत की ईटों पर पानी रिस आया था। उसकी बगल में उसकी पत्नी चन्दा गहरी नींद सोयी हुई थी।

क्या वह पत्नी के ख़र्राटों की आवाज़ से जग उठा है, उसने सोचा। लेकिन वह तो कभी ख़र्राटे नहीं लेती। तो भी उसने दायीं ओर को झुक कर उसकी नाक के पास कान लगाया—चन्दा की साँस एक-सी गति से चल रही थी। उसमें हल्की-सी खरखराहट भी न थी।

चेतन ने खेस को परे हटा दिया, पर वह बिस्तर से उतरा नहीं। उसकी निगाहें अपनी सोयी हुई पत्नी पर जमी रहीं—चन्दा की बड़ी-बड़ी आँखें मुँदी थीं, रूखे बाल मस्तक पर बिखरे थे, होंटों पर सूखी पपड़ियाँ जमी थीं, गोल गुलगोथने-गाल बासी बन्नों[1]-से मुरझाये थे और होंटों के बाँयें कोने पर हल्की-सी लार जमी थी....चेतन की आँखों में सहसा डोली

१. गोल मीठी डबल रोटी,

चढ़ने से पहले गहनों-कपड़ों से लदी, छम-छम उससे मिलने को आती हुई नीला का दमकता मुख घूम गया। लम्बी साँस को दिल ही में दबाते हुए वह उचक कर उठा और बरसाती से बाहर निकल गया।

उस झटके से चन्दा चौंकी, पर उठी नहीं, करवट बदल कर वह फिर सो गयी।

बाहर दो छतों को मिलाने वाली, किंचित ऊँची उठी मेंड़ पर दो ईंटें पड़ी थीं। (तीसरी मंज़िल उठाने के ख़याल से मेंड़ बनी थी, पर तीसरी मंज़िल बनने की नौबत ही न आयी थी और उस मेंड़ का उपयोग केवल दो छतों को अलग करना ही रह गया था।) चेतन ने देखा, ईंटों पर तेल-सने हाथों के निशान बने हैं और दालान की छत पर कुछ बूंदें पड़ी हैं। चेतन समझ गया, वह कैसे जगा और वह हुँकार क्या थी!-- उसका छोटा भाई परसराम ज़रूर ही वहाँ कसरत कर रहा होगा। वह रोज़ सुबह एक-एक हज़ार डंड-बैठक निकालता था। ये बूंदें शायद उसके माथे पर के पसीने की बूंदें थीं और वह हुँकार शायद उसकी थकी साँस की आवाज़ थी। चेतन भाग कर शहनशीन[1] पर गया और अपने सन्तुलन को ठीक करते हुए उसने झुक कर नीचे मुहल्ले के कुएँ पर निगाह दौड़ायी। उसका अनुमान ठीक था। परसराम अपने सुदृढ़, सुडौल, नंगे, गोरे शरीर पर लँगोट लगाये चर्खी पर पानी भर रहा था। कसरत ख़त्म करते ही वह घड़ा उठा कर कुएँ पर चला जाता था और घर का सारा पानी भर कर तब आराम करता था। कसरत करते समय वह होंट बन्द ही रखता था और डंड पेलते वक्त नीचे को हल्ला मारते हुए अखाड़िए पहलवानों की तरह ज़ोर से हुँकार भरता था। शायद इसी हुँकारे के स्वर से चेतन जाग उठा था।

वह पीछे हटा। शहनशीन गीली नहीं थी, पर बड़ी ठण्डी थी। वह पेट के बल उस पर लेट गया। अपना बायाँ गाल उसने सीमेण्ट की उस

१. छतों के किनारे बैठने और शहर का नज़ारा देखने के लिए सीमेण्ट की पक्की जगह, पंजाबी में रौंस।

ठण्डी शहनशीन पर टिका दिया। एक सुखद सिहरन उसकी रीढ़ की हड्डी में दौड़ती हुई उसके पाँवों तक चली गयी। दायीं बाँह को उसने शहनशीन के साथ नीचे को ढीला छोड़ दिया। उसकी बग़ल शहनशीन के गोल किनारे से सट गयी और फिर एक ठण्डी सरसराहट उसके शरीर में दौड़ गयी। लेकिन चेतन को बड़ा सुख मिला। वह उसी तरह चुपचाप बे-हिले-डुले लेटा रहा। सुख की अनुभूति से उसकी आँखें मुँद गयीं....पर सुख की वह अनुभूति नीला से सम्बन्धित सुख के क्षणों को उसके सामने ले आयी और वहीं लेटे-लेटे आँखें मूँदे-मूँदे वह उनमें खो गया....

०

....बस्ती के अड्डे पर वह अपने मित्र मुल्कराज के साथ खड़ा है। स्कूल से आती अपनी भावी पत्नी को चोरी से देखने आया है। तभी छुट्टी हो जाती है, लड़कियों की टोलियाँ आने लगती हैं....तेरह-चौदह वर्ष की एक लड़की हाथ में किताबें थामे, मानो माप-माप कर कदम रखती हुई, जैसे अपनी सुन्दरता से अभिज्ञ, सहेलियों में घिरी आती है। जाते-जाते वह एक उड़ती-सी चंचल दृष्टि चेतन पर डाल देती है। चेतन का दिल धड़क उठता है....वह अपने मित्र मुल्कराज की ओर आशा-भरी निगाहों से देखता है। मुल्कराज संकेत से बताता है कि वह नहीं....और चेतन का जी चाहता है कि अपनी होने वाली पत्नी को देखे बिना वापस चला जाय।

....अपनी उस मोटी-मुटल्ली भावी पत्नी को देख कर और नापास करके भी वह अपने पिता के आदेश पर औपचारिक रूप से उसे फिर देखने जाता है—समाज-सुधारक मास्टर नन्दलाल के घर! शर्म और संकोच से झुकी अपनी आँखों को वह उठाता है तो उसका हृदय फिर धक् से रह जाता है—उसकी होने वाली पत्नी के निकट वही लड़की बैठी है ....वह माप-माप कर कदम रखने वाली चंचल, चपल लड़की....उस निमिष-मात्र में चेतन को उसके मुख का एक भाग; उस भाग को ज्योतिर्मय-सा करता हुआ मोतियों का कर्णफूल; उन चंचल आँखों की एक रसीली चितवन ही दिखायी देती है।

....वह अपनी बारात के भोज में बैठा है, पर उसका ध्यान खाने मे नहीं (सुधारक मास्टर नन्दलाल ने स्त्रियों को विवाह के गालियों-भरे गीत गाने से मना कर दिया है।) वह सूनी मुँडेरों के रेगिस्तानों में शीतल जल की लकीर सरीखी उसी रसीली चितवन को खोजता है।

....अधिकांश बाराती खाना खा कर उठ जाते हैं। चेतन को कोई लड़का मज़ाक नहीं करता; कोई लड़की उसका कोट दरी से नहीं सीती; कोई उसका नया जूता नहीं छिपाता। वह भी अनमने भाव से उठता है। ज़िन्दगी में पहली बार खरीदा हुआ पेटेण्ट लेदर का पम्प शू पहनने लगता है कि उसे रोक लिया जाता है। सामने बरामदे की चिक उठा कर वही लड़की मुस्कराहटों के फूल बिखेरती निकलती है....और उसके पीछे सहेलियों का झुण्ड....'जीजाजी छन्द सुनाओ!'....'जीजाजी छन्द सुनाओ!'....और उसे मालूम हो जाता है कि छन्द सुनाने का अनुरोध करने वाली वह लड़की उसकी साली है—उसकी पत्नी चन्दा के ताऊ की लड़की—नीला !

....और वह नीला की आँखों में देखता हुआ छन्द सुनाता है :

छन्द परागे आइए-जाइए, छन्द परागे तीला,
छन्द गया मैं भुल्ल सभे, जद सामने आयी नीला ![1]

....इला व्हीलर विलकॉक्स की कविता उसे याद हो आती है :

मैं अगर सागर सुमुखि, तू चाँद है मेरे लिए

....विवाह के बाद वह अपनी ससुराल के चौबारे में लेटा है। नीला आती है, उसकी गोद में एक पत्रिका रख देती है।

"यह पढ़िए....यह !"

वह पृष्ठ की एक पंक्ति पर उँगली रख देती है। चेतन पढ़ता है—किसी कहानी के सम्वाद का एक वाक्य :

"मैं कैसे कहूँ कि मैं तुम से प्रेम नहीं करती।"

वह मन-ही-मन यह वाक्य पढ़ता है। नीला उसकी ओर कुछ विचित्र—हृदय की गहराइयों में डूब जाने वाली—दृष्टि से देखती है और इससे

१. **मैं सभी छन्द भूल गया जब मेरे सामने नीला आ गयी।**

पहले कि चेतन कुछ समझ पाये, पत्रिका को वक्ष से लगाये एक बार मुड़ कर उसकी ओर देखती हुई भाग जाती है ।

....चाँदनी रात और दिन भर बरसने के बाद तीतर के पंखों-सी बदली ! बहती हुई शीतल बयार । अपनी ससुराल में छत पर वह लेटा हुआ है । नीला उसके पास बैठी है और वह उसे मोहित-सा देख रहा है....वह उसके बालों पर धीरे-धीरे उँगलियाँ फेरने लगती है । अपनी कोमल उँगलियों से उन्हें प्यार के साथ सुलझाते हुए, अनायास कहती है, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने कोमल हैं—कितने लम्बे और कितने घुँघराले !"

चेतन कोई उत्तर नहीं देता । नीला का हाथ वह अपने हाथ में ले लेता है और कुछ क्षण आँखें बन्द करके, चुपचाप पड़ा रहता है । फिर वह कहता है—"मैं सोचा करता हूँ नीला, मैं दो बार चन्दा को देखने आया और दोनों बार मैंने तुम्हें देखा ।"

"मैंने भी आपको दोनों बार देखा और मैं यह भी बता सकती हूँ कि पहले दिन जब आप बस्ती के अड्डे पर खड़े थे, आपने कौन-सा सूट पहन रखा था ।"

....लाहौर से प्रकट अपनी पत्नी को, किन्तु परोक्ष में नीला को लिखे गये पत्र....

'....मेरा हृदय चिर दिन के सूखे सागर-सा, अभाव का मारा निरन्तर आकाश की ओर ताका करता था । फिर तुम बदली-सी झाँकीं और यह किनारे तोड़ कर उमड़ पड़ा....'

और :

'....अपने समस्त मौन को तोड़ कर मैं गा उठा । ऐसा उल्लास मेरी नस-नस में समा गया, जो सहसा एक अमूल्य निधि पाने पर किसी भिखारी के मन-प्राण पर छा जाता है । क्या मैंने निधि नहीं पायी ? पर मैं भय से सिहर उठता हूँ—कहीं यह निधि मुझ से छिन न जाय !'

०

चेतन सहसा शहनशीन पर कोहनियों के बल अधलेटा हो उठा ।—उसका

मन ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला उठा—कमबख़्त वह निधि तुझ से छिन गयी, वह निधि तुझ से छिन गयी कमबख़्त ! इसलिए कि तू अपात्र था, कायर था, कमज़र्फ़[1] था। अपनी ही मूर्खता से तूने उसे छिन जाने, दूसरे के हाथ चली जाने दिया। उसके जी में आयी कि ज़ोर से सिर शहनशीन पर दे पटके !....पर कुछ क्षण उसी तरह लेटे रह कर वह सामने शून्य में तकता रहा। फिर लम्बी साँस ले कर उसी तरह लेट गया....उसके सामने इल्लावलपुर में अपनी दूर की साली के विवाह की घटना घूम गयी और उसका छोटे-से-छोटा ब्योरा कई गुणा बड़ा हो कर उसकी आँखों में मूर्तिमान हो उठा।

o

....चेतन चौबारे में बीमार पड़ा है। उसे ज़ोर का बुख़ार है। गला सूज गया है। उसकी पत्नी उसके पास आ नहीं पाती। वह नीला ही को भेज देती है। बच्चे चौबारे में शोर मचाते हैं। चेतन का सिर फटा जा रहा है। 'भगवान के लिए इनको यहाँ से भगाओ !' वह किसी-न-किसी तरह कहता है।

नीला बच्चों को झिड़क-डाँट कर भगा देती है। किवाड़ भेड़, कुण्डी चढ़ा देती है और चेतन के सिरहाने आ बैठती है। चेतन पीड़ा से कराह रहा है। वह धीरे-धीरे उसका सिर दबाने लगती है। चेतन पर कुछ नीम-बेहोशी-सी छा जाती है। नीला का स्वर जैसे कहीं बहुत दूर से आते हुए मीठे-मद-भरे संगीत की शान्तिप्रद तान-सा उसके कानों में रस उँडेलता रहता है।

....उसके लम्बे-लम्बे, घुँघराले बालों में अपनी कोमल उँगलियाँ फेरते हुए नीला कहती है—"जीजा जी आपके बाल कितने सुन्दर हैं, लम्बे, काले, घुंघराले !"

और फिर पूछती है—"क्यों ज़ीजा जी। ये घूँघर आपने कैसे बनाये हैं ? आपने बनाये हैं या स्वयं ही बन गये हैं ? मेरे बाल तो ऐसे नहीं बन पाते। लम्बे तो हैं, पर घुंघराले नहीं।"

---

१. छोटे दिल वाला, क्षुद्र।

और वह अपनी वेणी ले कर अपने जीजा को दिखाती है कि उसके बाल कैसे कोमल हैं, लम्बे हैं, पर घुँघराले नहीं।

चेतन ज्वर के कारण तपते-जलते अपने हाथों में वे कोमल ठण्डे केश ले लेता है, धीरे-धीरे वेणी को खोल डालता है और वे लम्बे, काले, सुकोमल, सुवासित, शान्तिप्रद केश उसके मुख पर बिखर जाते हैं। और नीला कह उठती है—"जीजा जी आपने मेरी वेणी खोल दी !...."

वह बाल खींचती है, पर चेतन उन्हें नहीं छोड़ता। न नीला ही उन्हें मुक्त करने का प्रयास करती है। उन लम्बे, सुकोमल घन-कुन्तलों को चेतन अपने दोनों हाथों में ले लेता है, अपने मुख पर बिखरा लेता है—नीला उस पर झुक आती है....इतनी....इतनी....कि एक बार उसे प्रबल आकांक्षा होती है कि उसके गले में बाँहें डाल कर उसे चूम ले। पर वह बालों को ही चूमता है। वह भी इस तरह कि नीला को आभास तक नहीं होता और वह उसी तरह बातें करती रहती है कि वह शादी नहीं करेगी, कि जब लोग शादी करके पछताते हैं तो क्यों करते हैं शादी ? और वह अपनी बड़ी बहन मीला की शादी की ट्रैजिडी बताती है और सहसा वह उसके चेहरे पर हाथ फेरती है—"जीजा जी, दाढ़ी आपकी बढ़ आयी है। आप हजामत क्यों नहीं बनवा लेते ?" और वह हँसती है—"मैं बना दूँ उस्तरा ले कर ?"

और अपना एक हाथ वह उसके होंटों पर फेरती है—"जीजा जी आपके होंटों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं। इन पर ज़रा-सा मक्खन लगा दूँ ?"

चेतन उसके हाथ पर अपना हाथ रख देता है और उसे अपने होंटों से तनिक-सा दबा देता है।

....किंचित स्वस्थ और ढंग से सोचने योग्य होते ही वह चन्दा को बुलवाता है :

"मैं आज चार-पाँच दिन से बीमार हूँ। इतना ज्वर चढ़ आया है। तुमने पूछा भी आ कर ?" वह कहता है।

"क्यों मैं तो बराबर आपकी ख़बर रखती हूँ। आपको किस बात का कष्ट हुआ ? नीला जो थी...."

"नीला जो थी....नीला जो थी....नीला...." झल्ला कर वह लगभग चीख़ते हुए कहता है, 'तुम मेरे पास बैठो !'

अत्यन्त विनीत और आर्द्र स्वर में चन्दा कहती है, "आप नहीं जानते, मैं आपके पास आ बैठी तो बीस तरह की बातें होंगी। कुटुम्ब की स्त्रियाँ जो मुँह में आया, बकेंगी। नीला...."

"मैं कहता हूँ चन्दा, तुम पागल हो," वह खीझ उठता है, "नीला अब बच्ची नहीं। चौदह-पन्द्रह वर्ष की हो गयी है और मैं—देखती नहीं हो इन्सान हूँ। कमज़ोर इन्सान !"

चन्दा ज़ोर से हँस पड़ती है। "आपने तो मुझे डरा ही दिया था। मुझे इस बात का डर नहीं। वह मेरी छोटी बहन है। ताऊ की लड़की हुई तो क्या ? मैंने उसे बहन ही की तरह माना है। उसकी इज़्ज़त आपके हाथ में है। वह चंचल है, छोटी-मोटी ग़लती कर सकती है, पर आप तो नहीं कर सकते।"

और एक असीम, अपार, उदार विश्वास के साथ वह अपने पति को देखते हुए उसके मस्तक पर हाथ फेरती है।

....और इस विश्वास का यह फल होता है कि जब नीला फिर दूध ले कर उसके पास आती है और फिर लड़कों को भगा कर उसके सिरहाने आ बैठती है और उसकी पीठ से सट कर अपनी बाँह के सहारे दूध पिलाती है और क्षणिक आवेश में वह उसे बाँह मे लेकर चूम लेता है तो वह अपने आपको क्षमा नहीं कर पाता। साँझ को जब नीला के पिता आते हैं तो वह इशारों-इशारों में उन्हें सब कुछ बता देता है।

और जल्दी में नीला की शादी बर्मा के अधेड़ मिलिट्री एकाउण्टेण्ट से हो जाती है और चेतन अपने हाथों प्यार के उस ख़ज़ाने को, जो अयाचित ही उसके पास आ गया था, दूसरे के हाथों में जाते देखता है। देखता है, पर कुछ कर नहीं पाता।

....उसकी आँखों में आँगन की नाली पर अपनी पतली, गोरी बाँह बढ़ाये हुए नीला आ जाती है, जिसकी कलाई पर लगी हुई जोंकों ने उसका रक्त चूस लिया है—पहले से पतली-दुबली, किंचित पीली....लेकिन इस

पर भी पहले से कहीं सुन्दर....कली कैसे उस कीड़े-सी हो जाती है, जो पत्थर में घर करके वहीं बैठ जाता है....उसने अपने जाने नीला को भुला दिया था....पर वह तो उसके अन्तस में कहीं गहरे जा कर बैठ गयी थी ....नीला ने उसे एक रूखी-सी 'नमस्ते' की थी। इलावलपुर की घटना के बाद यही उनका साक्षात्कार था....क्या वह इतनी दूर से—शिमला से—यही सूखी 'नमस्ते' सुनने आया था....पर जब उसने सुना था कि उसका विवाह रंगून के विधुर मिलिट्री एकाउण्टेण्ट से हो रहा है तो जाने कौन-सी चीज़ लगातार उसके मन को कचोटने लगी थी। उसने नीला से बात करने की कोशिश भी की थी, लेकिन दो-एक संक्षिप्त शब्दों से अधिक उत्तर मे उसे कुछ न मिला था।

"नीला कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ !"

"नीला तुम तो कुछ कमज़ोर हो गयी हो !"

"नहीं जीजा जी !"

"नीला अब तो तुम बड़ी दूर चली जाओगी।"

"हां जीजा जी !"

"नीला तुम मुझसे नाराज़ हो ?"

"नहीं जीजा जी !"

वह चाहता था—नीला से जुदा होने से पहले उससे खुल कर बात कर ले; उससे क्षमा माँग कर जी हल्का कर ले....पर वह अवसर उसे नहीं मिला और झल्ला कर वह ऊपर चौबारे मे चला गया। फिर उसने नीला से वात करने का प्रयास नहीं किया।

....विदाई। बाहर बाजे बजने लगे। चन्दा कई बार आयी कि नीला जा रही है, वह उसे शगुन दे आये। पर वह टस-से-मस न हुआ। उसने सोचा कि जब वे ज़रा परे निकल जायँगे तो वह चुपचाप जा कर घूँघट में लिपटी, तांगे में दुल्हन बनी बैठी नीला के हाथ में शगुन दे आयेगा.... कि सहसा उसका दिल धक् से रह गया—गहनों-कपड़ों में लदी छम-छम करती नीला ऊपर आ रही थी।

"जीजा जी नमस्ते ! मेरी भूल-चूक क्षमा कर दीजिएगा !"

"नीला मुझे माफ़ कर दो...." और वह उसके पाँव पर झुक जाता है।

"जीजा जी आप क्या करते है !"—वह उसे उठा लेती है और सिसकी को दबाती भाग जाती है।

o

चेतन ने दो-तीन बार सिर को शहनशीन से धीरे-धीरे पटका—एक छुरा-सा उसके अन्तर में दूर तक उतरता चला गया। करवट बदल कर वह सीधा लेट गया। पर सुबह के सात-साढ़े-सात बजे ही तीखी, चमकती धूप सारी छत पर फैली थी ! उसमें आँखें न टिकती थीं। वह फिर पलट कर वैसे ही लेट गया और उसने अपनी बाँह उसी तरह शहनशीन के साथ ढीली छोड़ दी। फिर वही दृश्य, वही सम्वाद, वही बातें उसके दिमाग़ में चक्कर लगाने लगीं। लेकिन शहनशीन का वह भाग पर्दे के कारण छाया में था। तेज़ बरसाती धूप की सन्निकटता में पर्दे की छाया सीमेण्ट की उस शहनशीन को बड़ा शीतल-सुखद बनाये थी। उसका थका, तना, उनींदा दिमाग़ उस शीतल स्पर्श के सुख से ढीला पड़ गया। वह ऊँघ गया।

लेकिन वह ज़्यादा देर सोया न रह सका। अचानक वह फिर हड़बड़ा कर उठा और क्षण भर को टाँगें लटकाये मखौं की तरह बैठा रह गया। उसने फिर सपना देखा।....

उसने देखा....उसने देखा....शहनशीन नहीं....नीला वहाँ लेटी है—उन्हीं झमझमाते कपड़ों में और चेतन का गाल उसके गोरे गाल पर टिका है....और वह उठ बैठा।

धूप शहनशीन के उस भाग पर भी आ गयी थी और उसका शरीर तपने लगा था।

वह यहाँ नहीं रह सकता....वह यहाँ नहीं रह सकता....वह लाहौर भाग जायगा....वह उठ कर बरसाती में भाग गया और कुछ अजीब-सी खिजलाहट से उसने अपनी सोयी हुई पत्नी को झकझोर कर जगा दिया।

"दिन पहाड़-सा निकल आया है। तुम अभी तक सोयी हुई हो, माँ क्या कहेगी ?"

अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों को सँभालते और बिस्तर से उतरते हुए चन्दा ने कहा, "कई रातों की जगी हूँ, होश ही नहीं रहा।"

और एक हल्की, ग्लानि-भरी, पर लजीली मुस्कान उसके होंटों पर फैल गयी।

उस थके-मुरझाये चेहरे और उन सूखे होंटों पर उस क्षीण-सी शर्मायी हुई खिन्न मुस्कान को देख कर न जाने चेतन को क्या हुआ कि उसने चन्दा का सिर अपनी गोद में ले कर, करुणा की एक दुर्निवार भावना से अभिभूत हो कर, उसके मस्तक को चूम लिया।

दो

चेतन ने अपनी बीवी को चूम लिया और वह उसे सहारा दे कर नीचे भी ले आया और माँ को उसने सफ़ाई भी दे दी कि नीला के विवाह की बेपनाह थकावट के कारण वे लोग देर से उठे हैं और यह कहते हुए वह हँसा भी, लेकिन उसके अन्तर की झुँझलाहट दूर न हुई। घर में पल भर को भी रहना उसे कठिन लगा। जल्दी-जल्दी तैयार हो कर वह बाहर निकल गया।

कुएँ के पास ही चौधरियों का दीसा (जगदीश) बड़ी मूर्खता से मुँह चियारे आता मिल गया। कभी ज़माना था कि चौधरियों का बड़ा दबदबा था। चौरस्ती अटारी में मुरादाबादी बर्तनों की उनकी दुकानें थीं और आय भी ख़ूब थी, पर अब चौधरी बधावा राम और उनके छोटे भाई चौधरी सुलक्खा मल मुहल्ले क्या, शहर के प्रसिद्ध अफ़ीमची थे। सुलक्खा मल के कोई सन्तान न थी और बधावा राम के चार लड़कियाँ और दो लड़के थे। लड़कियों के विवाहों ने उनकी कमर तोड़ दी थी, लड़के कुछ पढ़े-लिखे न थे। दीसा कचहरी में नक्शा-नवीस था और उसका छोटा भाई सरना देबू की अर्दल में आवारा घूमता था और गुण्डई के गुर सीखता था। चेतन दीसे से बच कर निकल जाना चाहता था, पर दीसे ने बढ़ कर

उसके गले में बाँह डाल दी ।...."कब आये भापा जी[1] ?"

चेतन ने अभी उत्तर भी न दिया कि जगदीश ने कहा, "अमीचन्द तो हो गये डिप्टी ! कल अख़बार में कम्पीटीशन का रिज़ल्ट निकला है। मुझे तो कचहरी में पता चला ।"

चेतन ने जैसे उसकी बात नहीं सुनी, "तुम्हारी नक्शा-नवीसी का क्या हाल है ?" उसने पूछा ।

पर जगदीश ने चेतन की बात नहीं सुनी, "चलिए उन्हे बधाई दे आयें ।" उसने कहा और उसके गले में बाँह डाले-डाले उसने चेतन को भुवाड़े[2] की ओर को मोड़ने का प्रयास किया ।

चेतन के सामने शिमले के स्कैण्डल पॉयण्ट पर अमीचन्द से भेंट का दृश्य घूम गया, जब उसके व्यवहार से लगा था कि रिज़ल्ट निकलने से पहले ही वह डिप्टी हो गया है....(चेतन ने उसे देखते ही 'अरे अमीचन्द तुम कहाँ ?' कहते हुए बढ़ कर बड़े तपाक से हाथ बढ़ाया था, पर एक सुदूर-सी मुस्कान के साथ, अनिच्छापूर्वक, अमीचन्द ने हाथ की दो पोरें उसके हाथ से छुला दी थीं ।)....चेतन कोई बड़ी ही कड़वी बात कहना चाहता था कि भुवाड़े की ओर से अमीचन्द सफ़ेद कमीज़-पैंट पहने आता दिखायी दिया । उसकी गर्दन कुछ अकड़ी थी, निगाहे एकदम सामने थीं, पर जैसे वे उन्हे देख कर भी न देख रही थीं । यदि पहला ज़माना होता तो चेतन बढ़ कर उससे हाथ मिलाता, उसे बधाई देता । पर तब उसने एक उड़ती-सी दृष्टि उसकी ओर डाल कर निगाह दूसरी ओर कर ली ।

लेकिन दीसा उसे छोड़ कर अमीचन्द की ओर बढ़ गया । चाहता तो वह यही था कि बढ़ कर उसके भी गले में बाँह डाल दे, पर अमिया से अचानक अमीचन्द हो जाने वाले भावी डिप्टी कलक्टर को न जाने कैसा कवच प्राप्त हो गया था कि उस नक्शा-नवीस को वैसी बेतकल्लुफ़ी का साहस नहीं हुआ । उसने बाँछें खिलाते हुए केवल इतना ही कहा—"भरा जी नमस्ते ! बधाई हो !!"

१. भाई साहब २. एक पतली-सी बन्द गली ।

बिना उसकी ओर देखे, ज़रा-सा होंट हिला कर अमीचन्द ने दीसे की 'नमस्ते' का जवाब दिया और बिना रुके उसके पास से निकल चला। बधाई के उत्तर में कुछ कहना उसने उचित नहीं समझा। लेकिन दीसा उसके पीछे हो लिया। यद्यपि उसके दुम नहीं थी, लेकिन चेतन को लगा कि वह दुम हिला रहा है।

"साला ऐदाँ झोली चुक्क रिहा ऐ, जिवें अमिया ऐस माईया नक्शा-नवीस नूं तहसीलदार बना दयेगा।"[१] कोई उन दोनों के पीछे सव्यंग्य हँसा।

चेतन ने पलट कर देखा—भुवाड़े से झमानों का श्यामा आ रहा था। झमान ब्राह्मण थे। अमीचन्द का भाई अमीरचन्द भुवाड़े में जहाँ रहता था, उससे थोड़ा आगे उस बन्द गली के आख़िरी सिरे पर दो मकान ब्राह्मणों के थे। तिमंज़िले मकान में, जिसका एक दरवाज़ा गली खोसलियाँ में भी खुलता था, झमानों के तीन परिवार रहते थे। दूसरा एक-मंज़िला पण्डित गुरदास राम का था, जिनका लड़का प्यारू और पोता देबू मुहल्ले ही के नहीं, शहर भर के नामी गुण्डे थे। झमान अमीचन्द के पड़ोसी थे (और इसीलिए उससे नफ़रत करते थे।) और यों भी मुहल्ले में खत्रियों-ब्राह्मणों की शुरू से लगती आयी थी।

श्यामा आगे बढ़ आया—

"यह अमिया साला डिप्टी क्या हुआ है, ये लोग आसमान पर जा बैठे हैं।" उसने चेतन को लक्ष्य कर क्रोध से उसी तरह तेज़-तेज़ चलते जैसे अपने आप से कहा, "रात अपने कोठे पर चढ़ कर अमीरचन्द हमें सुना रहा था कि चाचा तेलू मुहल्ले में आयेगा तो उसका सिर पोला कर देगा! मैं भी जा रहा हूँ मण्डी चाचे को लाने! देखें किसका सिर पोला होता है!...."

चेतन बहुत दिन पर जालन्धर आया था। मुहल्ले की तत्कालीन सरगर्मियों से अनभिज्ञ था। वह उसे रोक कर पूछना चाहता था कि उनमें

१. साला इस तरह खुशामद कर रहा है, जैसे अमीचन्द इस साले नक्शा-नवीस को तहसीलदार बना देगा।

और अमीरचन्द में क्या झगड़ा है, पर एक तो श्यामा जल्दी में था, दूसरे अमीचन्द-अमीरचन्द के जिक्र ही से उसे कोफ़्त होती थी। फिर वह सब से पहले अपने पुराने सहपाठी और मित्र अनन्त से मिलना चाहता था, इसलिए उसने श्यामे को नहीं रोका, जब वह हरलाल पंसारी की ओर मुड़ गया तो चेतन अनन्त से मिलने बढ़इयाँ की ओर बढ़ा।

o

अपनी खुली छत पर चारपाई बिछाये अनन्त अभी लेटा हुआ था कि चेतन ने उसे जा जगाया। जाग तो वह चेतन की दस्तक ह से गया था, पर जब तक उसकी माँ जा कर कुण्डी खोले और चेतन ऊपर आये, वह करवट बदल कर फिर ऊँघ गया था। चेतन ने ऊपर पहुँच कर उसे झक-झोरा तो चादर लपेट और तहमद ठीक कर, वह चारपाई ही पर फस-कड़ा मार कर बैठ गया।

"सुना बे, कब आया शिमले से ?"

"आया तो तीन दिन पहले था, पर मेरी साली की शादी थी। आते ही बस्ती चला गया ! कल शाम ही लौटा हूँ।"

"तो दे गयी तुम्हें दाग़े-जुदाई वो भी ?"

चेतन चुप बैठा खुले आकाश मे तकता रहा। ऊपर, बहुत ऊँचे एक चील बार-बार चक्कर लगा रही थी और हर बार चक्कर को छोटा कर रही थी। चेतन की निगाहें जैसे उसी का पीछा करती रहीं।

लेकिन उस विषय को चेतन की दुखती रग समझ कर अनन्त ने बात बदल दी। किंचित हँसते हुए बोला—

"कैसा रहा शिमले में ? अमीचन्द नहीं मिला वहाँ....?"

चेतन की निगाहें अभी चील पर जमी थीं। उसने जैसे उतनी ही दूर से कहा, "ठीक ही रहा !" अमीचन्द वाली बात का उसने जवाब नहीं दिया।

"वो तो आ गया कम्पीटीशन में !"

चेतन ख़ामोश आसमान में तकता रहा।

"क्या हाल है तुम्हारी उस 'महान आत्मा' का ?"

"किस महान आत्मा का ?" चेतन ने सहसा निगाहें आसमान से हटा कर पूछा ।

"अरे उसी कविराज रामदास का, जिससे पहली ही भेंट में तुम्हारा मन श्रद्धा से प्लावित हो गया था और जिसे तुम अपनी पुस्तक भेंट....'

अनन्त ने अपनी बात पूरी भी न की थी कि चेतन ने एक ठहाका लगाया—"उस महान आत्मा की...." चेतन एक बड़ी-सी गाली देने जा रहा था कि सहसा उसकी दृष्टि कमर पर हाथ रखे पास ही खड़ी अनन्त की माँ पर चली गयी । "कहो चाची कैसी हो ?" उसने बात पूरी किये बिना हल्की-सी खिन्न हँसी के साथ उसकी ओर पलट कर कहा ।

और वह तनिक मुस्करा दिया ।

"अरे तू शिमले में तीन महीने लगा आया, पर सेहत तो तेरी पहले से भी चौपट लगती है ।"

चेतन शिमले के हवा-पानी को दो-चार 'मधुर वचन' सुनाना चाहता था, पर कहा उसने केवल इतना ही—

"नहीं चाची, वहाँ का पानी सबको माफ़िक नहीं आता, बहुत भारी होता है, मेरी तो भूख ही मर गयी, पेट सदा ख़राब रहा ।"

"अब यहाँ कुछ दिन आराम कर ! बड़ा पहाड़ हो कर आया है । कल्ले धँस गये हैं ।"

"अच्छा-भला तो है ।" अनन्त ने कहा । और फिर चेतन की ओर मुड़ कर बोला, "हमारी मा-बहनों का ख़याल है, किसी की सेहत को अच्छा कह देंगी तो उसे नज़र लग जायेगी, सो अच्छे-भले भैंसे को कहेंगी कि तिनका-सा लगता है ।"

और उसने ठहाका लगाया ।

लेकिन अनन्त की माँ जैसे अपने कर्तव्य से छुट्टी पा, बिना अनन्त की आलोचना सुने, अन्दर दालान में चली गयी ।

चेतन को लगा, जैसे उसे चाची की वह हमदर्दी चाहिए, अनन्त का व्यंग्य नहीं । उसके सामने शिमले के तीन महीने का जीवन घूम गया.... जब वह बाहर ठण्ड में नहाता था और दिन-दिन और कई बार गयी रात

तक उसी बन्द अँधेरे कमरे में काम करता था। उसकी सैर बस इतनी ही होती थी कि घर से ढाबे, या ढाबे से घर; विशेषकर उन दिनों में जब वह कविराज जी के लिए पुस्तक लिखने में निरत था....और उसका स्वास्थ्य अच्छा न रहा था।

"नहीं मेरी सेहत तो कुछ गिरी ही है," उसने उदासी से कहा, "चाची ठीक कहती हैं।"

और चेतन ने वहीं बैठे-बैठे अपने शिमले के प्रवास की सारी कहानी अनन्त को सुना डाली।

अनन्त ने और भी ज़ोर से ठहाका लगाया, "तुम पुराने चुग़द हो!" वह बोला। फिर पल भर रुक कर उसने पूछा, "तुम्हारे उस कहानी-संग्रह का क्या हुआ, जिसे तुम कविराज की सहायता से छापना और उन्हीं को समर्पित करना चाहते थे।"

"सबसे पहला काम लाहौर जा कर मैं यही करने वाला हूँ कि उस समर्पण को फाड़ डालूंगा।"

"फिर तुम्हारा वह कहानी-संग्रह कैसे छपेगा?"

"कहानी-संग्रह चाहे उम्र भर न छपे, पर न मैं कविराज की सहायता से छपवाने वाला हूँ, न उन्हें भेंट करने वाला।" और वह उठा।

अनन्त भी उठा। "तुम पाँच मिनट बैठो," उसने कहा, "मैं अभी तैयार होता हूँ। मुझे चौक सूदाँ जाना है। अटारी तक साथ रहेगा।"

तभी चाची ने आ कर पूछा, "लस्सी पियोगे या दूध?"

इससे पहले कि चेतन कुछ कहता, अनन्त ने कन्धे पर तौलिया रखे बाथरूम को जाते-जाते रुक कर कहा, "नहीं माँ, लस्सी हम रामदित्ते की दुकान से पी लेंगे। तुम फ़िक्र न करो!"

"इतने दिन पर आये हो, कुछ दिन रहोगे न?" चाची ने उसी तरह कमर पर हाथ रखे, खड़े-खड़े कहा।

"नहीं चाची, मैं तो आज ही चला जाता, पर माँ ने कहा है कि पिता जी शायद आज आयें। सो आज भर तो रहूँगा। पर कल चला जाऊँगा।"

"हाँ भाई तू शिमला लाहौर रहने वाला, तेरा दिल अब जालन्धर में क्या लगेगा ?"

और चाची फिर रसोई घर की ओर चल दी। चेतन के लिए बैठना मुश्किल था। वहीं छत पर वह टहलने लगा, लेकिन एक ही चक्कर लगा कर वह घबरा उठा....उसका दिमाग़ फिर उसी भँवर में जा उलझा —बरबस उस भँवर से निकल, वह रसोई-घर में चला गया। चाची कड़छुल में घी और प्याज़ डाल कर बैठी उनके लाल होने की प्रतीक्षा कर थी। चेतन ने घी में धीरे-धीरे फूलते, फिर किनारों से लाल होते, फिर सूखते और भूरे पड़ते प्याज़ के टुकड़ों पर आँखें जमा दीं, जैसे वह क़ोई ऐसा दृश्य हो, जिसे उसने कभी न देखा हो....चाची अपनी कमर के दर्द की बात कर रही थी, जब अनन्त आ गया और चेतन ने सुख और निष्कृति की लम्बी साँस ली और उठा।

तीन

"कहो भाई चेतन कैसे हो ?"

चेतन ने मुड़ कर देखा—बद्दा था।

वह और अनन्त खोसलों की गली के सामने से निकल कर बाज़ार की ओर जा रहे थे कि बद्दा लपक कर आया था और उसने चेतन के कन्धे पर अपना बड़ा-सा चौड़ा-चौड़ा हाथ मारते हुए उसका हाल-चाल पूछा था। चेतन बद्दे से मिलने के मूड में न था। उसका मन एकदम उखड़ा हुआ था। अनन्त को तो चौक सूदाँ जाना था, चेतन ने सोचा था कि वह अपने पुराने दोस्तों से मिलने चला जायगा और हो सकेगा तो पुरियाँ मुहल्ले और कोट किशनचन्द का भी एक चक्कर लगा आयेगा।

"कब आये शिमले से ?" बद्दे ने फिर पूछा।

चेतन रुक गया, "कहो बद्दे, कैसे हो ?"

बद्दे का असली नाम निहालचन्द था। चेतन के बराबर कद, पर किंचित चौड़ा शरीर, बड़ा-चौड़ा मस्तक, चौड़ी आकृति, जवानी के बावजूद अधपके बाल, तन पर मैली कमीज़ और पैबन्द लगा तहमद ! ज़रा-सा मुस्करा कर उसने कहा, " तुम्हारी मेहरबानी है।"

आगे बढ़ते हुए चेतन ने पूछा, "कहो, इस बार फिर मैट्रिक में बैठे ?"

"बैठे !" अनन्त ने शरारत से हँसते हुए कहा, "इस पट्ठे ने तो कमाल कर दिया। सेकिण्ड डिवीज़न मार लिया।" और उसने बद्दे की पीठ पर ज़ोर का प्रशंसा-भरा हाथ जमाया।

बद्दे ने दाँत निकोस दिये। चेतन उसे बधाई देने ही वाला था कि पीछे से किसी ने कहा—

"इससे पूछो, इसका रोल नम्बर कितना है ?"

तीनों ने पलट कर देखा—झमानों का हन्सा था, जो बद्दे ही की गली में रहता था।

"क्यों, ४२२९ है।" बद्दे ने तपाक से उत्तर दिया।

"और देबू काना कहता है कि पहले तुमने उसे ४२२३ बताया था। जब उसने छान-बीन करके पता लगाया कि वह नम्बर तो किसी दूसरे का है, तब तुमने यह नम्बर बता दिया।"

सहसा बद्दा रुक गया। उसके चौड़े माथे पर तेवर खिंच आये, नथुने कुछ फूल गये, होंट फड़फड़ाने लगे। एक बड़ी-सी गाली देबू काने को देते हुए उसने कहा, "वह माईया....झूठ बकता है।"

वे लोग गली से बाज़ार की ओर को मुड़ आये थे, जहाँ हरलाल पंसारी के सामने ही रामदित्ते हलवाई की दुकान थी। वास्तव में कल्लोवानी मुहल्ले में तीन गलियाँ और दो चौक थे। और एक बड़ी लम्बी गली, जिसके बीचोंबीच छोटी-सी नाली बहती थी। बाजियाँ वाला बाज़ार के ख़त्म होते ही यह गली बायीं ओर को मुड़ती थी। शुरू ही में एक ओर रामदित्ते हलवाई और दूसरी ओर हरलाल पंसारी की दुकान थी। उन दोनों दुकानों के बाद दो और दुकानें थीं, जिनमें हरलाल पंसारी ही का सामान—अनाज की बोरियाँ, घी और तेल के कनस्तर आदि—रहता था। उनके बाद बायें हाथ को पहला चौक अन्दों (आनन्दों) का था। इसी में चेतन का घर था। यहीं से गली दायें हाथ तनिक सँकरी होती हुई मुड़ गयी थी। शुरू में एक भट्टी थी, जिसमें ज्वाली महरी शाम को चने और मकई के दाने भूना करती थी। उससे ज़रा आगे, बायें हाथ को एक लम्बी-सी बन्द गली 'गली खोसलियाँ' थी, जिसमें बद्दे का घर था, और आगे

गली में दायें हाथ को दूर, बरने पीर तक, दीवारों का सिलसिला चला गया था, जिसके पीछे मुसलमानों के मकान थे, पर उनका कोई दरवाज़ा उधर गली में न खुलता था। गली खोमलियाँ के बाद बायीं ओर को एक मकान था, जिसमें दो परिवार रहते थे। शरीक थे। एक विधवा थी, जिसके पाँच लड़के थे। चूंकि विधवा बड़ी लड़ाकी थी, इसलिए मुहल्ले वाले उसे 'गीदड़ी' और उसके बच्चों को 'गीदड़ी के बच्चे' कहते थे। दूसरी विधवा सधवा थी, पति तो साधारण गिरदावर था; पर पत्नी बाल-विधवा थी, बहुत बड़े घर की थी, पुनर्विवाह के बाद इस मुहल्ले में आ गयी थी; पढ़ी-लिखी थी; गला बड़ा सुरीला पाया था; रंग काला था, इसलिए 'कोयल' कहलाती थी। तीन लड़कियाँ और दो लड़के थे, जो 'कोयल के बच्चे' कहलाते थे। इसी घर की बग़ल में बढ़इयों की गली थी, जिसके सिरे पर अनन्त का मकान था। कुछ आगे दायीं ओर एक बड़े-से नीम के नीचे बरने पीर की कब्र थी, जिसका गुम्बद दीवार में बना था। उसमें दीये रखने के लिए ताक थे और रात को श्रद्धालु वहाँ एक साथ कई दीये जला जाते थे। बायीं ओर चौक चड्ढियाँ था। परे गली इस चौक के मकानों के गिर्द होती हुई रास्ते बाज़ार में जा मिली थी। बरने पीर से एक रास्ता सीधा मुसलमानों के मुहल्लों से होता हुआ क़ादेशाह के चौंक में जा निकलता था। यहीं चौक चड्ढियाँ में बरने पीर के ऐन सामने ज्योतिषी दौलतराम का मकान था, जिनका लड़का देबू मुहल्ले का प्रसिद्ध गुण्डा था। आँखों से ज़रा ऐंचा था, इसलिए काना कहलाता था। बरने पीर से आगे, जहाँ गली चौक के ऊपर से होती हुई मुड़ी थी, गली का नाम 'बनियों की गली' हो गया था, जिसमें चेतन का एक पुराना सहपाठी लालू बनिया रहता था।

रामदित्ते की दुकान पर पहुँच कर चेतन ने आध पाव बर्फ़ी ली और हलवाई को दो बड़े गिलास लस्सी के बनाने का आदेश दिया, यह समझा दिया कि मलाई अच्छी तरह मार ले, तब बर्फ़ और पानी डाले।

बर्फ़ी का दोना अनन्त के आगे करते हुए चेतन ने एक टुकड़ा मुँह में रखा और बद्दे पर नख से शिख तक एक दृष्टि डाली। उसका मन हुआ कि हन्से और अनन्त दोनों से कहे कि क्यों इस ग़रीब को तंग करते हो,

पर बद्दे के सामने वह कुछ भी न कह सका ।

तभी बर्फ़ी का टुकड़ा में मुँह में रखते हुए अनन्त बोला, "कल लालू बनिया कह रहा था कि ४२२६ नम्बर तो अखबार में था ही नहीं," फिर चेतन की ओर देखते हुए अनन्त बोला, "तुम तो यार अख़बार में काम करते हो, क्या तुम ने मैट्रिक के रिज़ल्ट में ४२२६ रोल नम्बर देखा था ?"

'क्या बकते हो !' चेतन कहना चाहता था, 'क्या अख़बार के एडीटर सारे नम्बरों को याद रखते हैं,' लेकिन उसने देखा, अनन्त की आँखों में शरारत है और चेतन से निगाहें मिलाते हुए उसने आँख ज़रा-सी दबा भी दी है ।

"था कैसे नहीं ?" बद्दा ज़ोर से बोला, "मैं अभी ला कर दिखाता हूँ ।"

और वह गली की ओर भाग गया ।

चेतन क्षण भर उसे जाते देखता रहा, फिर उसने ज़रा-सा हँसते हुए कहा, "बद्दा वैसा-का-वैसा है, इसमें कुछ भी तो फ़र्क नहीं आया, सिवा इसके कि पास हो गया है ।"

"कौन साला पास हो गया है ?" सहसा झमानों का हन्सा बोला और उसने ज़ोर का ठहाका लगाया, "इस बार जब बद्दा इम्तिहान में बैठा तो पट्ठे ने अपना रोल नम्बर अपनी माँ तक को नहीं बताया । जब मैट्रिक का रिज़ल्ट निकला तो उसने माँ को आ कर ख़ुशख़बरी सुनायी कि वह सेकिण्ड डिवीज़न में पास हो गया है । माँ 'ए' और 'बी' में तमीज़ नहीं कर सकती । ख़ुशी से उसकी बाछें खिल गयीं, 'तुम्हारा नाम है अख़बार में ?' उसने पूछा ।....'नाम नहीं, रोल नम्बर छपे हैं,' बद्दे ने कहा, 'यह देखो मेरा रोल नम्बर !' और पट्ठे ने लिस्ट में एक जगह उँगली रख दी । इसकी माँ ने खोसलों से रुपये उधार ले कर सारे मुहल्ले में लड्डू बाँट दिये ।"

"रंडी का पूत सौदागर का घोड़ा, खायेगा बहुत और चलेगा थोड़ा !" सहसा रामदित्ते ने लस्सी बिलोते-बिलोते उस बेज़ारी से, जो उसके चेहरे पर स्थायी खोल सरीखी चढ़ी रहती थी, उनके ज्ञान में वृद्धि की । यह

कहते हुए रामदित्ता हँसा भी, लेकिन उसकी बेज़ारी उसकी आकृति पर वैसे ही चिपकी रही।

किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। अनन्त बोला, "तुम देबू काने को तो जानते ही हो, नम्बरी हरामज़ादा है। उसने न जाने कैसे पता लगा लिया कि वह रोल नम्बर, जो यह अपना बताता था, किसी दूसरे का है। उसने सचमुच छान-बीन की अथवा यों ही ब्लफ़ किया, लेकिन बद्दा झट मुकर गया कि उसने तो वह नम्बर बताया ही नहीं।"

झमानों का हन्सा इस बात पर ज़ोर से हँसा और उसने अपने बायें हाथ पर ज़ोर से दायाँ हाथ मारा।

०

बद्दा चेतन से दो बरस बड़ा था और उसी के स्कूल में उससे दो कक्षा आगे पढ़ता था। उसकी माँ प्रसिन्नी (प्रसन्न कुमारी) जवानी ही में विधवा हो गयी थी और मुहल्ले की अन्य विधवाओं की तरह साधु-सन्तों में उसकी बड़ी आस्था थी। कितने ही उसके धर्म के भाई थे। कुछ उनकी सहायता से और कुछ सूत कात-अटेर कर वह अपने इस लड़के को पढ़ा-लिखा कर बड़ा अफ़सर बनाने के स्वप्न देखा करती थी। उसके ख़याल में उसका यह लड़का मुहल्ले के सब लड़कों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और मेधावी था। जब वह अपनी गली में बैठी, पड़ोसिनों के साथ सूत कात या अटेर रही होती तो अपनी अथवा पड़ोसिन की दहलीज़ पर बैठा बद्दा उसे और उसकी पड़ोसिनों को अपनी बुद्धि के चमत्कार से हैरत में डाल दिया करता। मुहल्ले में किसका कब जन्म हुआ; किसकी कब शादी हुई; कौन कब मरा—सब दिन, तारीखें, बल्कि हर घटना और दुर्घटना का समय तक उसे याद था। गाड़ियों के टाइमटेबल, दिन-त्योहारों की तारीख़ें, मुहल्ले के लोगों की गति-विधि, हर चीज़ के बारे में उसे पूरा-पूरा इल्म था। कई बार जब किसी दिन-त्योहार की तारीख़ अथवा मुहल्ले की कोई घटना या दुर्घटना सन्देह अथवा विवाद का विषय बन जाती तो बद्दा सप्रमाण अपनी बात सिद्ध कर देता और उसकी माँ की पड़ोसिनें उसकी बुद्धि तथा स्मृति की प्रखरता से चकित रह जातीं। उसमें किसी तरह का ऐब नहीं था और

उसकी माँ कहा करती थी कि निहालचन्द तो लड़कियों जैसा लड़का है। इसमें कोई सन्देह नहीं था। दिन-दिन भर वह अपनी माँ की सहेलियों में बैठा रहता और उसकी माँ समय-समय पर अपने निहाले के इस या उस गुण का बखान करती रहती। इसलिए जब वह पहली बार मैट्रिक में फ़ेल हुआ और आ कर उसने माँ से कहा कि मेरे पेपर तो बड़े अच्छे हुए थे, लेकिन इनविजिलेटर से मेरा झगड़ा हो गया था; उसने मेरा पेपर या तो आगे भेजा नहीं या उसकी जगह कोई ख़ाली कापी रख दी है तो उसकी माँ तुरन्त मान गयी और उसने सारे मुहल्ले में घोषणा कर दी कि उसका लड़का तो बड़े अच्छे नम्बरों से पास होता, पर इंजीलेटर (बद्दे की माँ अपने लड़के से सुने हुए अंग्रेज़ी शब्द अपनी बातचीत में इस्तेमाल करने की बड़ी शौकीन थी) ने उससे दुश्मनी करके उसकी कापी बदल दी।

लेकिन बद्दा दूसरे साल फिर रह गया। तब उसने सारा दोष अपने स्कूल-टीचरों के मत्थे मढ़ दिया कि वे उसके ख़िलाफ़ हैं और उसे ठीक से कुछ बताते नहीं। उसने माँ से कहा कि अब वह स्कूल की फ़ीसें नहीं भरेगा, प्राइवेट इम्तिहान देगा और फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हो कर दिखा देगा। और तब वह या घर ही में पढ़ता रहता या गली की औरतों में बैठा रहता। तभी से उसका नाम बद्दा पड़ गया।

पहली प्राइवेट परीक्षा उसने उसी वर्ष दी, जिस साल चेतन ने मैट्रिक किया। अंग्रेज़ी के पर्चे में एक कहानी आयी जिसमें ख़ाली जगहें छोड़ी गयी थीं और उन्हे भर कर कहानी को पूरा करना था। कहानी का सार यह था कि जिसे राम रक्खे उसे कौन चक्खे। कहानी कुछ यों थी :

राजकुमार हीरासिंह एक सख्त लड़ाई में शत्रुओं से हार कर भागा। रास्ते में उसका घोड़ा मर गया। लेकिन रात हो गयी थी, इसलिए वह एक पहाड़ी गुफा में छिप गया। पीछे शत्रु उसे ढूँढते हुए वहाँ पहुँचे, लेकिन भगवान की कृपा से इस बीच एक मकड़ी ने गुफा के मुहाने पर जाला बुन दिया। शत्रु के दो सैनिक उधर भी निकले। एक ने गुफा में राजकुमार को ढूंढने का प्रस्ताव किया, पर दूसरे ने मशाल की रोशनी में जब गुफा के मुहाने पर जाला बुना हुआ देखा तो उसने यह कह कर

प्रस्ताव रद्द कर दिया कि अगर राजकुमार गुफा में गया होता तो यह जाला टूटा होता। वे दोनों दूसरी जगह राजकुमार को ढूंढ़ने चले गये और राजकुमार की जान बच गयी।

जिस पुस्तक से यह कहानी प्रश्न-पत्र में दी गयी थी, उसमें मकड़ी और मक्खी का सम्वाद भी छपा था। मकड़ी सुन्दर जाल बुन कर मक्खी को बुलाती है, उसके सुन्दर पंखों और उसके मनमोहक स्वर की प्रशंसा करती है, पर वह उसके जाल में नहीं फँसती।

शाम को यहीं रामदित्ते की दुकान के सामने उसे बद्दा मिल गया तो चेतन ने पूछा, "कैसा कर आये पेपर ?"

ख़ुशी से दाँत निकोसते और चेतन के हाथ-पर-हाथ मारते हुए बद्दे ने कहा, "एकदम आसान था। वह मकड़ी और मक्खी की गुफ़्तगू आ गयी। मैंने सबसे पहले वही सवाल किया। दस में से नौ नम्बर कहीं नहीं गये।" (बद्दे ने सवाल में शब्द स्पाइडर (Spider) पढ़ा और कहानी लिख डाली। बाकी सवाल उसने कैसे किये होंगे, इसकी कल्पना की जा सकती है।)

बद्दे की बात सुन कर चेतन मन-ही-मन मुस्कराया था, पर प्रकट बद्दे के हाथ को तपाक से हिलाते हुए उसने केवल यही कहा, "तुम बाज़ी मार ले गये दोस्त, हम तो राजकुमार हीरासिंह वाली कहानी लिख आये हैं।"

चेतन ने बद्दे का यह कारनामा अनन्त तथा अपने दूसरे सहपाठियों को भी सुना दिया, जो उसी के साथ मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे। उन सबने बद्दे की पीठ ठोंकी और उसे विश्वास दिला दिया कि उसका यह पेपर सबसे अच्छा हुआ है और वे सब लोग सवाल ग़लत कर आये हैं और बद्दे ने अपनी माँ को यह सुसमाचार सुनाया और बद्दे की माँ ने सोल्लास गली खोसलियाँ की औरतों को यह ख़बर सुनायी और उसी दिन से बरने पीर पर दीया जलाने लगी।

लेकिन बद्दा उस साल भी फ़ेल हो गया।

इसके बाद उसने जालन्धर के सभी स्कूलों में दाख़िल हो कर मैट्रिक

करने का प्रयास किया था, पर जिस साल चेतन ने बी० ए० किया उस साल भी वह फ़ेल हो गया था। यह आठवाँ बरस था जब उसने फिर मैट्रिक की परीक्षा दी थी। नौकरी वह कोई करता न था और उसका मुख्य काम वहीं अपनी माँ की सहेलियों में बैठ कर मुहल्ला-राजनीति पर अपने अमूल्य विचार प्रकट करना और विभिन्न विषयों पर गली की स्त्रियों का ज्ञान बढाना और उनके छोटे-मोटे काम करना था। गली में वह 'धीयाँ वरगा पुत्त'[1] और अन्दाँ के चौक में 'रन्ना विच्च धन्ना'[2] प्रसिद्ध था, पर इन दोनों उपाधियों की ओर से बेपरवा, वह अपने मस्त रहता था। इधर उसने ताश और चौपड़ मे महारत हासिल कर ली थी और प्रायः लालू बनिये के घर, पण्डित बनारसीदास की दुकान पर, बाज़ार पापड़ियाँ के चौक में अथवा धर्मशाला में शिव जी के मन्दिर के आगे खुले पक्के चबूतरे पर ताश या चौपड़ की महफ़िलों में वह शामिल हुआ करता। शत्रु के वार ख़ाली करने वाले सेनानायक के यहाँ उतनी तल्लीनता न होती होगी, जितनी ताश या चौपड़ खेलते वक्त बद्दे की आँखों में होती।

०

रामदित्ते ने लस्सी बना कर एक-एक गिलास चेतन और अनन्त को दे दिया और स्वयं दूध के बड़े कड़ाहे में ग़ुर्पी चलाने लगा।

तब झमानों का हन्सा कह रहा था, "मज़े की बात यह है कि रिज़ल्ट को निकले इतने महीने हो गये हैं, लेकिन पट्ठा अपना सर्टिफ़िकेट कभी नही दिखाता। चाचा तेलूराम ने मण्डी में लाला जालन्धरी मल जी योर्गा से कह कर एक नौकरी का प्रबन्ध किया, बद्दे की बड़ी प्रशंसा की और यह भी कहा कि सेकिण्ड डिवीज़न मे मैट्रिक पास किया है, पर जब लाला जालन्धरी मल जी ने सर्टिफ़िकेट माँगा तो वो दिन सो आज का दिन, फिर बद्दे ने कभी उन्हें सूरत नहीं दिखायी।"

"लो देखो मेरा रोल नम्बर अखबार में छपा है कि नहीं।" मोड़ ही से बद्दे ने चिल्ला कर कहा।

---

१. बेटियों जैसा बेटा २. मेहरियों में मेहरा

लस्सी पी कर गिलास को एक ओर रखते हुए चेतन ने अखबार ले कर देखा। ट्रिब्यून का पुराना अंक था, पर बड़ी सावधानी से तह किया हुआ था। मैट्रिक के प्राइवेट रोल नम्बरों की लिस्ट में एक जगह लाल पेंसिल से निशान लगा हुआ था। चेतन ने पढ़ा, लिखा था—४२२६।

"देखो है कि नहीं ४२२६।" बद्दे ने उँगली से बार-बार संकेत करते हुए कहा।

तब यद्यपि कुछ ही क्षण पहले वह स्वयं अनन्त से कहना चाहता था कि क्यों बेचारे को तंग करते हो, चेतन ने हाथ बढ़ाते हुए कहा, "मेरी बधाई लो!"

और उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में लेते हुए बद्दे ने दाँत निकोस दिये। उसके नथुने फूल गये और उसकी आँखों में अपूर्व चमक आ गयी और उसने बड़े गर्व से भमानों के हन्से की ओर देखा।

"यह अखबार ले जा कर अमीचन्द को दिखाओ, वह मैजिस्ट्रेट बनेगा तो तुम्हें अपना सरिश्तेदार बना लेगा।" हन्से ने व्यंग्य से कहा।

"सर्टिफ़िकेट की भी ज़रूरत न पड़ेगी।" अनन्त बोला।

"जाऊँगा, जाऊँगा क्यों नहीं?" बद्दे ने गर्दन अकड़ा कर कहा।

"अरे वह चपरासी रख ले तो भी बड़ी बात है।"

और सभी ठहाका मार कर हँसे।

तभी दूध में सनी लोहे की खुर्पी उठाये, गालियाँ देता हुआ रामदित्ता छलाँग मार कर दुकान से उतरा और किसी के पीछे खरादियाँ के चौक की तरफ़ भागा।

"बात क्या हुई?" चेतन ने अनन्त से पूछा। लेकिन अनन्त स्वयं न जानता था।

सभी उधर को लपके।

चार

चेतन ने जब से होश सम्हाला, रामदित्ते को इसी दुकान पर बैठे देखा। पिछले कुछ वर्षों में उसकी कनपटियों के पास बाल सफ़ेद हो गये थे, उसके चेहरे की बेज़ारी बढ़ गयी थी और सामने का एक दाँत कमजोर हो कर टूट गया था, नही शेष सब कुछ वैसा ही था—सिर पर सभी ओर से पिचकी दबी गोल टोपी, गले में लट्ठे की मैली कमीज़ और कमर में लट्ठे ही का मैला, उटंग पायजामा— और दिन-दिन भर बैठे रहने के कारण परकार की तरह किंचित बाहर को मुड़ी टाँगें, कुछ अजीब तरह से अकड़ी कमर और उसकी बेढंगी चाल....उसके इस सरापे से उसके कपड़ों का—बड़ा ही साम्य था। चेतन किसी और तरह के कपड़ों में चाचे रामदित्ते की कल्पना ही न कर सकता था।

चेतन रामदित्ते को बचपन से चाचा कह कर पुकारता आया था। कुछ इसलिए कि वह भी ब्राह्मण था और कुछ इस कारण कि उसकी माँ ने उसे और उसके भाइयों को सिखा रखा था कि उसके पिता के बराबर अथवा उनसे दो-चार बरस कम जितने भी मुहल्ले वाले है, उन्हें चाचा कह कर पुकारना चाहिए। चेतन उसे चाचा कह कर पुकारता था, इसीलिए उसके मन में रामदित्ते के प्रति किंचित अपनत्व का भाव भी था और

जब लोग रामदित्ते को छेड़ते थे तो उसे बुरा लगता था।

लेकिन जैसे न चाहते हुए भी वह बद्दे को बनाने लगा था, इसी तरह रामदित्ते को चाचा कहने के बावजूद, उसके प्रति मन में सहानुभूति रखने के बावजूद, चेतन कभी-कभी उसके साथ किये जाने वाले मज़ाक में शामिल हो जाता था।

बचपन ही से उसने रामदित्ते के पहले जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुन रखी थीं, जिनमें से दो उसके मन-मस्तिष्क पर अंकित हो कर रह गयी थीं। पहली तो यह कि उसकी पत्नी बड़ी ही सुन्दर और भोली-भाली थी। रामदित्ता उसे ख़ूब पीटता था, लेकिन जब वह पहले ही बच्चे के जन्म पर (बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ था) प्रसूति के ज्वर का शिकार हो कर मर गयी तो वह दीवारों में सर पटक-पटक कर बच्चों की तरह रोता रहा। दूसरी यह कि जब उसकी दूसरी शादी होने लगी तो पण्डित गुरदासराम ने भाँजी मार दी। बात यह थी कि कुछ तो रामदित्ता पहले शादी करना ही न चाहता था, घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न होने से किसी ने ज़ोर नहीं दिया और फिर जब हरलाल के प्रयास से एक-दो बार लोग उसे देखने आये तो पण्डित गुरदासराम ने कुछ ऐसी बात कह दी कि न सिर्फ़ उस वक्त शादी रुक गयी, बल्कि आगे के लिए भी उस ग़रीब पर शादी के दरवाज़े बन्द हो गये।

चेतन बहुत छोटा था, जब उसने माँ से रामदित्ते की यह कहानी सुनी थी और तभी से पण्डित गुरदासराम के प्रति उसके मन में कुछ अजीब-सा नफ़रत का भाव पैदा हो गया था।

०

पण्डित गुरदासराम के चार लड़के थे। बड़ा, जिसकी कुछ ही दिन पहले मृत्यु हो गयी थी, बिलगा में रहता था (जहाँ से कि उनके दादा जालन्धर आये थे)। दूसरा ज्योतिषी था, तीसरा मैट्रिक करके ऑडिट आफ़िस दिल्ली में नौकर हो गया था और चौथा मुहल्ले ही नहीं, शहर भर का प्रसिद्ध गुण्डा था।

पण्डित गुरदासराम मँझोले कद के, निहायत गठे हुए बदन के आदमी

थे। गोरा रंग और बड़ी-बड़ी मूँछें। हाथ में उनके हमेशा एक मज़बूत लाठी रहती थी। चेतन ने अपनी माँ ही से सुन रखा था कि वे बड़े भारी लठैत थे। उनकी उम्र काफ़ी हो गयी थी और चेतन ने उनकी लाठी के कमाल न देखे थे, पर उसने अपनी माँ से सुना था कि एक बार वे अपने यजमानों की एक बारात के साथ जा रहे थे, जब डाकुओं ने उन्हें आ घेरा। तब पण्डित गुरदासराम ने अकेले दम अपनी लाठी से उनका मुक़ाबिला किया और न केवल बारात को लुटने से बचा लिया, वरन कई डाकुओं को घायल भी कर दिया। कभी-कभी शाम को पण्डित गुरदास-राम अपनी लाठी लिये हरलाल पंसारी की दुकान पर आ बैठते थे और चेतन उन्हें आँख भर देखता हुआ उन दिनों की कल्पना करता था, जब वे लाठी चलाते होंगे।

साधारणतः उनकी बहादुरी के कारनामे सुन कर चेतन के मन में उनके प्रति श्रद्धा का भाव होना चाहिए था, पर एक तो वह उनके दो बेटों—ज्योतिषी दौलतराम और प्यारेलाल (जो प्यारू गुण्डे के नाम से प्रसिद्ध था) से नफ़रत करता था, दूसरे जब से उसने सुना था कि बेचारे रामदित्ते की शादी उन्हीं के कारण नहीं हुई, उसके मन में कहीं से उस लठैत बुज़ुर्ग के प्रति घोर घृणा का भाव अंकुरित हो उठा था।

०

यह बीज कदाचित पेड़ न बनता यदि उसने एक न्योते में उन्हें जन्म के भूखों की तरह खाते न देखा होता।

०

चेतन ने कई बार अपने खत्री हमजोलियों से ब्राह्मणों के चार-चार, पाँच-पाँच सेर खीर खाने की कहानियाँ सुनी थीं, ब्राह्मणों के लिए 'कुत्तों' की उपाधि भी खत्रियों द्वारा शायद इसी कारण दी जाती थी, पर उसने इस बात पर कभी विश्वास न किया था और उसका कारण वह विद्वेष-मात्र समझता था, जो मुहल्ले के खत्रियों में ब्राह्मणों के प्रति आम था। स्वयं चेतन घर में कोई ज़्यादा न खाता था। उसके पिता की भूख तो खैर मद्यपता ने सुखा दी थी, पर उसके दादा, जो उम्र भर देहात में रहे और

तन-बदन से मज़बूत थे, चार रोटियों से ज़्यादा न खाते थे। हालाँकि परदादी गंगादेई पुरोहिताई करती थी, पर चेतन के दादा पटवारी थे और पिता स्टेशनमास्टर, इसलिए उनके यहाँ पुरोहिताई लगभग समाप्त हो गयी थी। चेतन की माँ तो मंसी-पूजी चीज़ें लेना भी पसन्द न करती थी। एक कारण तो यह था कि बाज़ार में जो फल रद्दी हो, जो कपड़ा अथवा बर्तन सस्ता हो, मुहल्ले के खत्री वही दिन-त्योहार को दान में देते थे। (चेतन की माँ सदा दान में अच्छी-से-अच्छी चीज़ें देने में विश्वास करती थी और जब दान देती थी तो एक ही घर में सब चीज़ें दे देती थी कि बच्चे तृप्त हो कर खायें, जबकि मुहल्ले के लोग फल का एक-एक दाना सब ब्राह्मण-घरों में बाँटते थे।) दूसरे चेतन की माँ का ख़याल था कि मंसी (दान में आयी) चीज लेने से बुद्धि भी मंसी (दान में आयी और इसीलिए रद्दी) हो जाती है। जब दिन-त्योहार को बच्चों को जीमने का न्योता आता तो माँ यथासम्भव उनकी ओर से बहाना बना देती। लेकिन दादा का कहना था कि जो श्रद्धा-भक्ति से खिलाये, वहाँ जाना चाहिए, नहीं लोग कहेंगे कि चार पैसे आने से ब्राह्मणों का दिमाग़ फिर गया है। बनियों की गली में रुल्दू श्राद्धों के दिनों में बड़ी श्रद्धा से ब्रह्मभोज कराता और यद्यपि शहर भर के भुक्खड़ ब्राह्मण उसके यहाँ न्योता पाने की आस लगाये रहते थे, पर वह कुलीन और मन से भरे ब्राह्मणों को खिला कर प्रसन्न होता और पण्डित रूपलाल को ज़रूर न्योता देता और चेतन के दादा भी कभी इनकार न करते।

एक बार, चेतन शायद तब छठी कक्षा में पढ़ता था, रुल्दू ने पण्डित रूपलाल के साथ उसको भी न्योता दिया। चेतन ने रुल्दू की इतनी प्रशंसा सुन रखी थी कि उसके मन में रुल्दू के यहाँ का भोज देखने की बड़ी उत्सुकता थी।

बनियों की गली जहाँ रास्ता बाज़ार में जा मिलती है, वहीं रुल्दू का घर था। डेवढ़ी और छोटे-से आँगन के पार एक दालान में मोढ़े बिछे थे। रुल्दू डेवढ़ी में लोटा-बाल्टी लिये खड़ा था, ज्यों-ज्यों ब्राह्मण आते, वह स्वयं अपने हाथ से अच्छी तरह उनके पैर धोता और उन्हें दालान में

ले जा कर बैठाता।

ऊँचे किनारों वाले काँसे के थाल उनके आगे रखे गये। सबसे पहले पीतल की चमचमाती छोटी बाल्टी में खीर आयी। चेतन को न जाने क्यों खीर से बड़ी चिढ़ थी, इसलिए उसने केवल एक कलछी भर ले ली। हाँ, इतना उसने ज़रूर देख लिया कि खीर बहुत बढ़िया बनी है—बासमती चावलों और शुद्ध घी की सुवास उसमें से उठ रही है, चावल कम हैं और दूध रबड़ी-सा बन गया है। दो-चार चम्मच खीर खा कर वह दूसरे जीमने वालों को देखने लगा। .. जब खीर की बाल्टी लिये परसने वाला व्यक्ति पण्डित गुरदासराम के पास पहुंचा और उसने कलछी से खीर उनके थाल में डालनी चाही तो चेतन ने आश्चर्यचकित हो कर देखा कि पण्डित जी ने 'क्या ब्राह्मणों को कलछियों से खीर खिलाते हो!' कहते हुए उसके हाथ से बाल्टी ले कर अपनी थाली में उँडेल ली। उनका थाल लबालब भर गया तो खाली बाल्टी उन्होंने उसके हाथ में थमा दी और बड़े प्रेम से पूरे हाथ में भर-भर के वे खीर के 'सड़प्पे' लगाने लगे।

चेतन को उनका यों हाथ भर-भर के, आवाज़ करते हुए, खीर खाना निहायत बुरा लगा। जब लोग खीर खत्म कर पूरी-तरकारी खाने लगे तो पण्डित गुरदासराम ने दूसरी बार खीर ली।

चेतन बड़ी देर से पूरियां खा कर इस प्रतीक्षा में बैठा था कि भोज समाप्त हो, दक्षिणा मिले तो उसकी धन-राशि में (जो वह दीवाली के दिन खिलौने लेने के लिए जमा कर रहा था) एक आने की वृद्धि हो। उसके लिए दक्षिणा का एक आना इस सारे भोज से अधिक महत्व रखता था।

और मन-ही-मन वह सोचता था कि अब खीर खत्म करके पण्डित जी उठ जायेंगे। शायद पूरी-तरकारी नहीं खायेंगे। लेकिन उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब पण्डित जी उतनी खीर खाने के बाद दस पूरियाँ खा गये और दूसरों ने, जो उनके जीम चुकने की प्रतीक्षा कर रहे थे, क्या फबतियाँ कसीं और क्या ताने दिये, इसकी उन्होंने ज़रा भी परवाह न की।

चेतन बैठा-बैठा ऊँघ गया था। खाने के बाद पण्डित जी ने तृप्त हो

कर जो डकार ली तो चेतन को लगा, जैसे कोई बैल डकारा और वह सहसा चौंक उठा। तभी पण्डित जी ने उठ कर पेट पर हाथ फेरते हुए और भी ज़ोर से डकार ली और चिकनाई-भरा हाथ अपनी बड़ी-बड़ी सफ़ेद मूँछों पर फेरा।....

उस भावभंगिमा में न जाने क्या बात थी कि मन-ही-मन चेतन को उनसे सख़्त नफ़रत हो गयी और उसने तय किया कि अव्वल तो वह कभी न्योता खाने नहीं जायेगा और यदि दादा कभी विवश करेंगे तो पहले पता लगा लेगा कि पण्डित गुरदास राम तो निमन्त्रित नहीं हैं।

लेकिन माँ ने धीरे-धीरे दादा जी को मना लिया कि न्योते पर जाना उनके लड़के की शान के खिलाफ़ है और चेतन इस मुसीबत से छूट गया।

०

जहाँ तक रामदित्ते की सगाई का सम्बन्ध है, माँ ने उसे बताया था कि बिलगा से कोई दो पण्डित आये थे। हरलाल पंसारी ने तो रामदित्ते की भलमनसाहत की बड़ी प्रशंसा की थी और उन्होंने शगुन भी दे दिया था, पर क्योंकि पण्डित गुरदासराम का लड़का बिलगा ही में रहता था, इस-लिए चलते-चलते उन्होंने उनको भी 'पालागन' करते जाना उचित समझा।

जब पण्डित गुरदासराम को पता चला कि उन्होंने अपनी लड़की का शगुन रामदित्ते को दिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए; बाछें खिलाते हुए उन्होंने कहा, "बड़ा अच्छा किया, बड़ा अच्छा किया, बेचारा चार साल से रँडुवा चला आ रहा था, अब उसका घर बस जायगा तो दौलते (उनका बड़ा लड़का दौलतराम) की बहू को भी आराम हो जायगा"....और उन्होंने आगन्तुओं को समझाया था कि दोनों साथ-साथ एक ही मकान के दो हिस्सों में रहते हैं और फिर उन्होंने सूचना दी कि दौलते और उसकी बहू ने तो कई बार कोशिश की कि उसका घर बस जाय, पर सफल नहीं हुए।

"क्यों क्या उसमें कोई ऐब है।" सहसा उनमें से एक ने पूछा।

"यों तो भलमनसाहत और भोलपन ही अपने में कम बड़ा ऐब नहीं।" पण्डित जी ने दार्शनिकों की मुद्रा में कहा, "इतनी शराफ़त भी

किस काम की कि हर साल घाटा उठाये।"

"हरलाल तो कहता था...." बिलगावासियों में से एक ने कहना चाहा।

"हरलाल क्यों न कहेगा," पण्डित गुरदासराम उसकी बात काट कर बोले, "कर्ज़ जो इतना दे रखा है उसने रामदित्ते को। दुकान से तो वह इस जन्म नहीं चुका सकता। हाँ, शादी हो जाय और दहेज के गहने बेच कर चुका दे तो और बात है।"

और पण्डित जी किंचित हँसे: "रामदित्ता तो ऐसा भोला आदमी है कि मैं आपसे क्या कहूँ। मुझे कभी दौलते ने बताया था कि उसके खून में खराबी है। उसकी शादी हुई तो मैंने उसे समझाया कि अपना इलाज करा लो। हमारे पण्डित श्यामरतन बड़े अच्छे हकीम हैं, उन्होंने कहा भी कि मैं दो-चार पुड़ियाँ दे दूँगा और वह ठीक हो जायगा। लेकिन उसने मेरी बात पर कान नहीं दिया और देख लो, न केवल पहला बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ, बल्कि बीवी भी हाथ से जाती रही।"

पण्डित जी फिर रामदित्ते की मूर्खता पर हँसे।

"फिर उसने इलाज कराया या नहीं?" बिलगावासियों में से एक ने पूछा। उसके स्वर में कुछ अजीब-सा सहम था।

"इलाज वह क्या करायेगा," पण्डित जी ने हँस कर कहा, "वह इतना भोला है कि बच्चे और पत्नी की मृत्यु को भगवान की करनी समझता है।....अरे भाई भगवान की करनी तो है, पर यह जो खोपड़ी में 'डिमाक' (दिमाग़) हमको मिला है, यह भी तो भगवान ही ने दिया है कि इसे इस्तेमाल करो।"

और वे बिलगावासी ब्राह्मण, पण्डित गुरदासराम के पैर छू कर जो गये तो फिर नहीं लौटे। रामदित्ता अपने ब्याह की तैयारियाँ ही करता रह गया। लगभग एक बरस बाद पता चला कि उस लड़की का विवाह पण्डित गुरदासराम के भतीजे से होने जा रहा है।

०

रामदित्ते की सूरत-शक्ल मे कोई ऐसी बात न थी कि उसके प्रति स्नेह

जगे, पर जाने क्यों चेतन के मन के किन्हीं गहरे स्तरों में उसके प्रति कुछ अजीब-सी दया-भरी ममता थी। वह उसकी निरीहता के कारण थी; उसकी घोर दयानतदारी के कारण थी (जिसकी वजह से वह दूध में ज़रा भी पानी न डालता था और जो उस पर यह अभियोग लगाता था, उससे लड़ने को तैयार हो जाता था और मुहल्ले के लड़के केवल उसे तंग करके आनन्द पाने के लिए कह देते थे कि उसने दूध में पानी मिलाया है) अथवा उस मूर्खता के कारण थी, जिससे वह सदा ख़सारा उठाता था, चेतन ने कभी इसका विश्लेषण नहीं किया। पर उसके मन में वह ममता थी ज़रूर।

रामदित्ते की सगाई एक बार टूटी तो फिर नहीं हुई। गर्मी के रोग की बात जो पण्डित गुरदासराम ने उड़ायी तो वह कुछ ऐसी फैली कि लड़कियों वाले फिर उधर नहीं आये।

"जाने उसे कोई बीमारी है भी कि नहीं," एक दिन रामदित्ते की बात चलने पर माँ ने कहा था, "उसे ऐसा रोग होता तो इतने बरस हो गये हैं, फिर न फूटता।" और माँ ने पण्डित गुरदासराम के कुकृत्य की ओर संकेत कर बड़े दुख से कहा था, "बाह्मन दा बाह्मन बैरी, कुत्ते दा कुत्ता बैरी।"

लेकिन यह दोष ब्राह्मणों ही में हो, ऐसी बात न थी। जालन्धर के उस कल्लोवानी मुहल्ले में रहने वालों की गति उस व्यक्ति-की-सी थी, जो पड़ोसी का अपशकुन करने के लिए अपनी एक आँख फोड़ लेता है। वे सब-के-सब उसी गन्दगी और ग़लाज़त में पड़े थे और किसी को उसमें से उठते या पनपते न देख सकते थे। वहाँ यदि जोड़ने वाले दो थे तो तोड़ने वाले चार। ब्राह्मणों में ही नहीं, खत्रियों में भी यदि कोई रिश्ता आता तो भाई-बन्द इस बात का पूरा ख़याल रखते कि वह सिरे न चढ़े। सबके सामने तो वे खीसें निकोसते हुए लड़के की प्रशंसा ही करते, लेकिन बातों-बातों में एक-दो ऐसे जुमले कस देते कि रिश्ता ले कर आने वाले के मन में लड़के की बुद्धि अथवा चरित्र; उसकी माँ के बुरे स्वभाव अथवा पिता की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में सन्देह पैदा हो जाता। इसीलिए बड़े-बूढ़े

ऐसे रिश्तों का प्रबन्ध गुप-चुप करते ।

रामदित्ते के माँ-बाप बचपन ही में मर चुके थे । कोई ऐसा बड़ा-बूढ़ा न था, जो उसकी ओर से ढंग से बात-चीत करता । हरलाल पंसारी को (चाहे इसलिए कि वह उसका पड़ोसी था और चाहे उसकी सादालौही के कारण) उससे हमदर्दी थी, पर उसकी कोशिशों के बावजूद रामदित्ते का घर न बसा था ।

लेकिन ज्यों-ज्यों उसकी उमर बढ़ती जाती, रामदित्ते के मन में अपना घर बसाने की हसरत भी दिन-दिन दुगनी होती जाती । मुहल्ले वाले कई बार उसकी शादी करा देने का वादा करके महीनों उसकी दूध-मलाई उड़ाते । और रामदित्ता एक बार ठगाई खाने के बावजूद दूसरी बार फिर ठगाई खा जाता ।

जिस किसी का मन उसे ठगने को होता, वह एक-दो बार यों ही उसकी दुकान पर लस्सी पीने या पकौड़े खाने के लिए आ बैठना और बातों-बातों में पूछता, "क्यों चाचा रामदित्ता (अजीब बात है कि उसके बराबर के लोग भी उसे चाचा कह कर पुकारते) तुम्हारी उमर कितनी होगी ?"

"पिछले माघ को २९ की हुई थी ।" रामदित्ता उसे उत्तर देता ।

और फिर वह आदमी इस बात पर खेद प्रकट करता कि उसने क्यो अभी तक दूसरी शादी नहीं की । घर तो बीवी से ही शोभा देता है; 'बिन घरनी घर भूत का डेरा;' 'छड़े उठायी पूँछड़ी, गया सौदाई हो;'[1] कुछ ऐसी ही पंजाबी-हिन्दी कहावतों से उसको घर बसाने की नसीहत करता ।

रामदित्ता उस दिन उसके दूध या लस्सी में खूब मलाई डालता अथवा पकौड़े खूब अच्छी तरह तल कर खिलाता ।

फिर कुछ दिन बाद वह आदमी उससे कहता कि उसके दूर के रिश्ते-दार की (या मित्र की) लड़की सयानी हो गयी है और वह सोचता है कि

१. **कुंवारे ने पूंछ उठायी और पागलों की तरह भटकने लगा ।**

रामदित्ते से उसका रिश्ता हो जाय तो बडा अच्छा हो। तब उस दिन से रामदित्ता उससे पैसे लेना भी छोड देता।

महीने-दो-महीने बाद हरलाल पंसारी को, जो अपने ऋण के कारण रामदित्ते के लेन-देन का हिसाब ले लिया करता था, इस बात का पता चल जाता। वह न केवल रामदित्ते को डाटता, बल्कि मुहल्लेदार को भी समझाता कि क्यों गरीब को लूटते हो।

लेकिन रामदित्ता कान को हाथ लगाने और कसमें खाने के बावजूद फिर ठगाई खा जाता।

दूसरा ब्याह करने की उसकी इच्छा इतनी प्रबल थी और जरा-सी उम्मीद पर वह इतना खुश हो जाता था कि एक बार जब चेतन की माँ ने यों ही हमदर्दी के तौर पर उसकी उमर पूछी और उसने कहा कि पिछले माघ में वह २९ वर्ष का हुआ था, और चेतन की माँ ने उसकी पहली पत्नी की सुन्दरता और सुघडापे की प्रशंसा करते हुए उससे कहा कि उसे अब घर बसाना चाहिए तो चेतन ने देखा था कि उस दिन वह सेर भर दूध देने के बाद, जो वह रोज देता था, पाव भर ऊपर से यों ही दे गया था।

उसकी इस कमजोरी का पता मुहल्ले के बडों को ही नही, बच्चों को भी था। स्वयं चेतन ने एक बार यो ही उससे पूछा था, "क्यों चाचा रामदित्ता, तेरी कितनी उमर होगी?"

"तेरे बाप से तो मैं छै बरस छोटा हूं।" उसने उत्तर दिया था।

लडको को उत्तर देने का उसका यही तरीका था। उनके बाप या चाचा, या बडे भाई का नाम ले कर वह उन्हे समझा देता था कि उसकी उमर यही कोई तीस-उनतीस की है।

लेकिन जब उसकी उमर बढती गयी और साथ ही वह लोगों को मुफ्त दूध पिला कर और पकौड़े खिला कर लगातार घाटा उठाने लगा तो आखिर हरलाल ने उसको एक दिन अपने गोदाम के एकान्त में बैठा कर समझाया कि सारे मुहल्ले में उसका कोई 'हितू' नहीं है। वे लोग उसकी लस्सी और दूध पियेंगे; उसके पकौड़े खायेंगे; पर कोई अपनी बेटी या

बहन उसे नहीं देगा। "देखो तुम्हारा घर ऐसे नहीं बसेगा, तुम अब लेन-देन का सारा हिसाब कुछ बरस के लिए मुझे करने दो। अभी तक तो मैं कभी-कभी अपना रुपया पूरा करने के लिए तुम्हारा हिसाब देखता था, पर अब मैं उस वक़्त तक तुम्हारा हिसाब देखूंगा, जब तक कि तुम्हारे हिसाब में तीन-चार सौ रुपया जमा नहीं हो जाता।"

जब रामदित्ते ने पूछा था कि इस रुपये का क्या होगा तो हरलाल ने उसे समझाया था कि देखो तुम मेरी उमर के हो। मैं उन्तालिस का हूँ तो तुम भी उन्तालिस के होगे। इन मुहल्ले वालों के रहते तो कोई जवान, कुँवारी लड़की तुम्हें देगा नहीं, लेकिन तीन-चार सौ रुपया ख़र्च करने पर किसी विधवा-आश्रम से कोई बाल-विधवा लायी जा सकती है।

रामदित्ते को अपना घर फिर से बसा देखने की इतनी साध थी कि वह तुरन्त मान गया और उसने अगले तीन बरस के लिए हरलाल के हाथ में अपना सब हिसाब सौंप दिया। यही नहीं, उसने मुफ़्तख़ोरों को मुंह लगाना भी छोड़ दिया। यदि कोई ठग उससे किसी लड़की की बात चलाता भी तो वह उससे यही कहता कि भाई हरलाल से बात कर लो। और धीरे-धीरे लोगों ने उससे उसकी उमर पूछना और किसी नये रिश्ते की बात करना बन्द कर दिया।

चेतन फ़र्स्ट ईयर में पढ़ता था जब उसने एक दिन सुना कि रामदित्ता दुलहन ब्याह कर लाया है। कॉलेज से आते ही जब माँ ने उसे यह सुसमाचार सुनाया तो वह किताबें रख कर बाज़ार की ओर भागा। आते वक़्त उसने उधर ध्यान ही न दिया था।

रामदित्ता दुकान पर नहीं था। चेतन वापस आ रहा था, जब चौक चड़्ढियाँ की ओर से वह आता हुआ दिखायी दिया। कोरे लट्ठे का पायजामा और कमीज़ उसने पहन रखी थी; सिर पर उसके नयी क्रिस्टी टोपी थी और चाल में कुछ अजीब-सा उल्लास और ख़ुशी!

"चाचा रामदित्ता बधाई!" चेतन ने अपने चौक के दरवाज़े पर रुक कर कहा।

"तुम लोगों को ही बधाई है।" चाचे रामदित्ते ने बाछें खिलाते हुए

उत्तर दिया और चेतन को रामदित्ते के एक टूटे हुए दाँत के बावजूद वह हँसी अच्छी लगी।

"हमको लड्डू-वड्डू नहीं खिलाये और बहू ब्याह कर घर ले आये।"

"खिलायेंगे, खिलायेंगे। तुम घर चलो, अभी लाते हैं।"

और चेतन मुँह-हाथ धो कर खाना खा ही रहा था कि रामदित्ता लड्डुओं का थाल ले कर आ पहुँचा और उसने हँसते हुए कहा—"सबसे पहले तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

लेकिन रामदित्ते को यह शादी रास नहीं आयी। विधवा आश्रम से तीन सौ रुपये खर्च कर बीवी लाये हुए अभी उसे दो महीने भी न हुए होंगे कि एक दिन, जब चेतन ने कई दिनों से उसकी दुकान बन्द पा कर हरलाल से उसके बारे में पूछा, तो उसे मालूम हुआ कि रामदित्ता बहुत बीमार है।

चेतन को उसकी यह नयी बीवी देखने की बड़ी उत्सुकता थी। यद्यपि मुहल्ले में पहले भी एक बाल-विधवा खत्रियों में आ चुकी थी (पर उसका तो पता उन्हें वर्षों बाद लगा था।) फिर खत्रियों ही की एक युवा विधवा डंके की चोट अपने देवर के घर बैठ गयी थी, लेकिन इसके बावजूद धर्म-भीरु मुहल्ला विधवा-विवाह के विरुद्ध था और यद्यपि चोरी-छिपे चाहे मुहल्ले की औरतों ने रामदित्ते की बीवी की सुन-गुन ली हो, खुले आम कोई उससे मिलने न गयी थी। रामदित्ते के घर विधवा का आना चेतन की माँ को भी भला न लगा था।

इतवार की छुट्टी थी, जब दोपहर का खाना खा कर चेतन ने फ़ैसला किया कि वह रामदित्ते को देख आये। रामदित्ते को क्या बीमारी है, यह हरलाल से पूछना वह भूल गया था। गर्मियों के दिन थे, पानी अभी पड़ा न था और सारे शहर में चेचक, टाइफ़ाइड, पेचिश, कॉलरा और ऐसी ही मौसमी बीमारियाँ फैली हुई थीं, फिर शायद बहुत दिन का भूखा रामदित्ता कुछ ज़्यादा खा गया था। चेतन के मन में पंजाबी कहावत घूम गयी—

'भाड़े जट्ट कटोरा लब्भा
पानी पी-पी आफरिया'

किसी ग़रीब जाट को एक कटोरा मिल गया था। वह इतना प्रसन्न हुआ कि बिना प्यास के भी बार-बार पानी पी-पी, अफारे से मर गया। शायद रामदित्ते की दशा भी उसी ग़रीब जैसी थी।

बरने पीर के सामने चौक चड़्ढियाँ में पहला मकान रामदित्ते का था। वास्तव मे उसके इधर के हिस्से में, जिसकी खिड़कियाँ बरने पीर की ओर खुलती थीं, ज्योतिषी दौलतराम अपने परिवार के साथ रहते थे, पिछवाड़े के हिस्से में रामदित्ता रहता था। मकान की ड्योढ़ी चौक में खुलती थी। अँधेरी ड्योढ़ी और उसमे भी अँधेरी सीढ़ियों में टटोल-टटोल कर आगे बढ़ता जब चेतन ऊपर पहुँचा, तो उसने देखा रामदित्ता अपनी कोठरी में चारपाई पर लेटा है। उसके गले में मोतिये का हार है; उसके सिरहाने भी मोतिये का हार पड़ा है और एक वैसा ही हार पास पड़ी घड़िया के गले मे बँधा है और रामदित्ता ज्वर की तीव्रता से कराह रहा है।

चेतन को अपनी बीमारपुरसी के लिए आते देख कर रामदित्ते को बड़ी खुशी हुई। उसने संकेत से उसे चारपाई पर बैठने के लिए कहा। चेतन चुपचाप चारपाई की पट्टी पर बैठ गया और उसने पूछा, "कहो चाचा, कैसी तबीयत है?"

रामदित्ते ने सिर हिलाया कि बुरा हाल है। साथ ही उसने अपने सूखे होंटों पर ज़बान फेरी।

"क्या तकलीफ़ है?" चेतन ने फिर पूछा।

तब कराहटों में कुछ धीरे-धीरे बोल कर और कुछ संकेत से रामदित्ते ने बताया कि उसे कई दिन से बहुत ज्वर है। आज कण्ठ पर छोटी माता ने दर्शन दिये हैं। मोतीझारा है।

चेतन समझ गया कि उसे टाइफ़ाइड है। टाइफ़ाइड में कण्ठ पर छोटे-छोटे मोतियों-से दाने निकल आते हैं। उसे मुहल्ले वाले छोटी माता या मोतीझारा कहते थे और जैसे चेचक का कोई इलाज न करते थे, उसका भी कोई इलाज न करते थे। मोतिया के हारों से माता की पूजा करते थे

और वही हार मरीज़ को पहना देते थे।

"तुम्हारी चाची ने मेरी बड़ी सेवा की है।" रामदित्ते ने बायीं ओर निगाहें फेर कर कहा, "यह न होती तो मैं मर जाता, इसने मुझे बचा लिया।"

तब चेतन की निगाह उधर गयी। बायीं ओर, किंचित अँधेरे में, एक अधेड़ उमर की निहायत कुरूप स्त्री पीढ़े पर बैठी थी। चेतन ने वहीं बैठे-बैठे हाथ जोड़ कर चाची को नमस्ते की।

लेकिन उसका सारा उत्साह भंग हो गया। जाने क्यों, वह रामदित्ते की बीवी को परम रूपवती देखने का इच्छुक था। शायद उसने माँ से रामदित्ते की पहली पत्नी की सुन्दरता का इतना बखान सुना था कि रामदित्ते के साथ (यद्यपि वह स्वयं अत्यन्त कुरूप था) किसी बदसूरत बीवी की कल्पना ही वह न कर सकता था। और इस अधेड़ 'ऊँट रे ऊँट तेरी कौन-सी कल सीधी'-ऐसी चाची को देख कर उसे बड़ी कोफ़्त हुई और कुछ देर इधर-उधर की बातें करके वह उठ खड़ा हुआ और 'अगर किसी चीज की जरूरत हो तो मुझे बताओ, मैं ला दूँ,' कहता हुआ चाची को होंटों ही में प्रणाम-सा कर चला आया। बरने पीर के पास पहुँच, नीम की ठण्डी छाया में रुक कर, उसने मुक्ति की एक लम्बी साँस खींची।

और रामदित्ता अभी पूरी तरह स्वस्थ भी न हुआ था, यों ही दुकान पर आ कर बैठने लगा था कि एक दिन जब वह घर खाना खाने गया तो सिर पीटता वापस आ गया। हरलाल को उसने बताया कि वह लुट गया है। न सिर्फ़ उसकी बीवी स्वयं भाग गयी है, बल्कि तमाम गहने-कपड़े भी ले गयी है।

हरलाल ने डाँटा कि जब उसे समझाया था कि अपनी पहली बीवी के गहने-कपड़े तब तक उसे न दिखाये, जब तक उसे साल-दो-साल उसके घर बसते न हो जायँ तो उसने क्यों गहने दिये।

तब रामदित्ते ने रोते हुए बताया कि उसने तो पहली बीवी की कोई चीज़ उसे दिखायी तक न थी, पर उस देवी ने बीमारी में उसकी इतनी सेवा-शुश्रूषा की कि अभिभूत हो कर उसने अपनी पहली बीवी के गहने-

कपडे ला कर उसके चरणो मे डाल दिये ।

"फिर अब काहे रोते हो । जब समझदारी की बात नही सुनते तो धोखा न खाओगे ?" हरलाल ने क्रोध मे कहा ।

लेकिन क्रोध के बावजूद रामदित्ते की दशा पर उसे तरस आ गया और उसने उस 'बाल-विधवा' की खोज करने की पूरी कोशिश की, पर उसका कही पता नही चला ।

वे लोग विधवा-आश्रम भी गये, पर मालूम हुआ कि वह तो कोई सफरी विधवा-आश्रम था, जो शहर मे चार-छै घर बसा कर, बोरिया-बिस्तर और साइन-बोर्ड उठा कर किसी दूसरे शहर चला गया ।

रामदित्ते पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि दूसरी शादी का भूत उसके सिर से सदा के लिए उतर गया । हरलाल का दो-अढाई सौ उसके सिर पर फिर हो गया था, सो चाचा रामदित्ता चुपचाप बिना किसी से बोले-चाले काम मे जुट गया । वह किसी की बात का जवाब न देता और कोई उससे दूसरी बीवी की बाबत पूछता तो वह उसको गालियाँ देने लगता ।

मुहल्ले के लड़को को इस बीच इस बात का पता चल गया कि अब रामदित्ता उसके बारे मे बात करने से चिढता है और खुरपी अथवा कलछी उठा कर पीछे भागता है और उन्हे विनोद का नया साधन हाथ आ गया । जितना वह चिढता उतना ही लडको को उसे चिढाने मे मजा आता ।

दूसरी बार इस तरह घर बर्बाद होने के बाद एक स्थायी बेजारी उसके चेहरे पर चिपक गयी । उसके होंट जरा-से खुले रहते, जिनमे सामने का एक टूटा दांत निहायत बदजेब दिखायी देता और एक अजीब-सी ऐंठन से उसका चेहरा कसा रहता ।

•

रामदित्ते के पीछे चौक खरादिया की तरफ जाते हुए चेतन के दिमाग मे पिछले कई बरस घूम गये ।... अभी वे गली मे दाखिल हुए ही थे कि सामने से रामदित्ता एक हाथ से छोटे-से एक लडके का कान उमेठता और

दूसरे हाथ की खुरपी से उसकी कमर तोड़ देने की धमकी देता हुआ आता दिखायी दिया।

"क्या हुआ चाचा ?" सहसा अनन्त ने पूछा।

"यह साला मेरी उमर पूछता है।" रामदित्ते ने किचकिचा कर कहा। "भला पूछो इससे कि इसे अपनी बहन मुझे देनी है या माँ ?" और उसने लड़के का कान उमेठते हुए एक पंजाबी कहावत दोहरायी कि माँ की कोख से पीछे निकलते है, आसमान में थिगली पहले लगाने लगते हैं।

और एक हाथ से उसका कान उमेठ कर दूसरे से वह खुरपी का एक हाथ उसकी पीठ पर जमाना ही चाहता था कि पीछे खरादियों के चौक में एक लड़के ने पुकारा—

"चाचा रामदित्ता कितनी उमर है तेरी ?"

रामदित्ते ने उस लड़के को छोड़ दिया और दूसरे के पीछे भागा। पर दूसरा लड़का गली में भाग कर शायद अपने मकान में जा छिपा था।

जब वह रामदित्ते के हाथ नहीं आया तो उसको और उसके पुरखों को गालियाँ देता हुआ वह लौट आया। इधर दूध उबल कर कड़ाही के नीचे गिरने लगा था। किसी ने उसे वहीं से पुकारा तो वह लड़कों का पीछा छोड दुकान की ओर पलटा। आ कर उसने उबलते दूध पर पानी के छींटे दिये और दुकान पर बैठ कर उन लड़को और उनके माता-पिता को मल्लाहियाँ सुनाता हुआ कड़ाही में खुरपी चलाने लगा।

०

यद्यपि दूसरों को उसकी इस खिजलाहट में आनन्द आ रहा था, लेकिन चेतन का हृदय कुछ अजीब-सी दया और वितृष्णा से भर उठा। उसने रामदित्ते को लस्सी और बर्फ़ी के पैसे दिये और अनन्त को बरबस खींचता हुआ चौरस्ती अटारी की ओर बढ़ गया।

पाँच

"रामदित्ते की दुकान मुहल्ले के सिरे पर न हो तो लड़कों का मन ही न लगे।" अनन्त ने चेतन के साथ चलते हुए कहा, "दिन में चार-छै बार तो गाली-गलौज हो ही जाती है। ये लौंडे साले सब मिले रहते हैं।"

और शायद रामदित्ते की मूर्खता का खयाल आ जाने से एक खुली मुस्कान अनन्त के होंटों पर फैल गयी।

लेकिन चेतन एकदम चुप हो गया। सुबह से भारी उसका मन और भी भारी हो उठा था।

अनन्त रामदित्ते की सनक और उसकी हिमाकतों का जिक्र करता रहा, पर चेतन ने जैसे वह सब सुन कर भी नहीं सुना। वह अपने विचारों में उलझा अनन्त की बातों के उत्तर मे 'हूँ, हूँ' करता रहा। रामदित्ते ही के नहीं, बद्दे के भविष्य की कल्पना भी उसे बड़ी कष्टप्रद लगी। फिर दोनों के परिपार्श्व में सारे-के-सारे मुहल्ले का जीवन और भविष्य उसके सामने घूम गया और उसने चाहा कि वह रात ही की गाड़ी से लाहौर चला जाय और वहाँ के जीवन की विशालता और गहमागहमी मे अपने इस मुहल्ले के जीवन की संकीर्णता, अकिंचनता, हेयता और टुच्चेपन को भुला दे।

लेकिन उसके पैर निरन्तर चौरस्ती अटारी की ओर बढ़ते गये और वह अनन्त का हाथ थामे उसके साथ चलता रहा।

चौरस्ती अटारी पहुँच कर सहसा अनन्त ने कहा, "लो भई, अब तुम मुझे छुट्टी दो। मुझे ज़रा चौक सूदाँ जाना है। तुम हो आओ हकीम दीनानाथ के यहाँ, मेरी ओर से भी पूछ लेना कि वह अबके मूँछों का सफ़ाया करा रहा है कि नहीं।"

और अनन्त ज़ोर से हँसा। फिर बोला, "अगले साल अगर फिर उसके घर बच्चा हुआ तो बस कान ही कटाने की बारी आ जायेगी।"

और वह फिर हँसने लगा।

हकीम दीनानाथ उनका सहपाठी था। जब वह उनके साथ आठवीं कक्षा में पढ़ता था तो अपने पिता और चाचा की तरह बड़ा हृष्ट-पुष्ट था और उन्हीं की तरह उसके बड़ी-बड़ी मूछें थीं। आठवीं ही में उसकी शादी हो गयी थी और मिडिल पास करके वह अपने पिता और चाचा के साथ दुकान पर काम करने लगा था। साल बाद ही उसके पहला लड़का हुआ था। इन आठ वर्षों में उसके पाच बच्चे हो चुके थे और न केवल उसका पहलवानों का-सा शरीर दुबला गया था, बल्कि उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें भी छँटते-छँटते मक्खी-ऐसी रह गयी थी। अनन्त कहा करता था कि उसके घर एक बच्चा और हुआ तो उसकी मूँछें सफ़ाचट हो जायँगी और फिर तो कटाने के लिए सिर्फ़ कान ही रह जायेंगे। इस साल हकीम दीनानाथ के छठा बच्चा पैदा हुआ था और अनन्त का संकेत इसी ओर था।

लेकिन चेतन ने इस भोंडे मज़ाक में अनन्त का साथ नहीं दिया। वह अभी तक अपने उन्हीं विचारों में उलझा था। जब अनन्त की हँसी बन्द हुई और उसने चलने के ख़याल से चेतन के हाथ को ज़रा-सा झटका दिया तो सहसा चेतन ने कहा—

"चाचा रामदित्ता तो आधा पागल हो गया है।"

"दो साल में पूरा हो जायगा।" और फिर ज़ोर से ठहाका लगाते चेतन के हाथ को उतने ही ज़ोर से हिलाते हुए अनन्त ने कहा, "आख़िर तुम उसे चाचा कहते हो, कुछ तो इस बात की लाज उसे रखनी ही

चाहिए ।"

चेतन को उसका यह मज़ाक और भी बुरा लगा, "अच्छा, मैं शाम को मिलूँगा ।" यह कहते और अनन्त के हाथ को हल्का-सा झटका देते हुए वह मुड़ कर पापड़ियाँ बाज़ार में हो लिया ।

०

लेकिन अनन्त के उस मज़ाक ने उसका पीछा नहीं छोड़ा । वह काँटा चेतन के हृदय में क्षण-क्षण गहरा गड़ता चला गया और जैसे उसकी टीस के अदृश्य धुएँ में रामदित्ते ही ऐसे उसके चाचा 'फल्गूराम' की आकृति अलिफ़ लैला के देव-सरीखी उसके सामने आ खड़ी हुई ।

०

चेतन के दादा पण्डित रूपलाल के तीनों भाई पागल थे । बड़े दो तो चेतन के जन्म से पहले ही परलोक सिधार गये थे, लेकिन सब से छोटे चूनीलाल को, जो शहर में 'चुन्नी पागल' के नाम से प्रसिद्ध था, चेतन ने देखा था ।

कभी चेतन के पिता ने झगड़े में अपने इस पागल चाचा की नाक तोड़ दी थी । उसी धँसी हुई नाक और कटे हुए ऊपर के होंट को लिये हुए निपट निरावरण वह मुहल्ले की गलियों और शहर के बाज़ारों में घूमा करता था और दाँत किटकिटाता और हाथों से हवा में लकड़ी और लोहे के आदमी बनाता हुआ निरन्तर उन्हें उड़ाया करता था । कोई उसे रोटी दे देता तो खा लेता, नहीं धूप या छाया में, जैसा भी मौसम होता, पड़ा रहता । कभी बेवक्त प्यास लगती तो कुएँ पर आता, नहीं तो जब शाम के तीन-चार बजे कमेटी का भिश्ती, जमादार के पीछे-पीछे, नालियाँ धुलवाता हुआ कल्लोवानी मुहल्ले में पहुँचता तो चेतन का वह पागल दादा भिश्ती के आगे अँजुली मुँह से लगा कर उकड़ूँ बैठ जाता और भिश्ती मश्क का मुँह नाली की ओर से हटा कर उधर कर देता और तृप्त हो कर चुन्नी लकड़ी और लोहे के आदमी बनाता, दाँत किटकिटाता चल देता ।

मुहल्ले में तो नहीं, पर शहर में वह सिद्ध मशहूर था । प्रायः दुख-दर्द की मारी स्त्रियाँ, सटोरिये और जुआरी अपना भविष्य जानने के लिए उसे घेरे रहते । वह साधारणतः चुपचाप बैठा मुटर-मुटर तकता रहता

या गालियाँ देता, लेकिन कभी जब अपेक्षाकृत होश में होता तो जो मन में आता, बता देता और लोगों का ऐसा विश्वास था कि जो वह बताता है, सच्चा निकलता है। चेतन ने अपने दादा ही से ऐसा सुना था कि एक बार वह पुराने खँडहर मकान मे ऊपर के चौबारे में भगवान महाबीर को सिद्ध करने के निमित्त चालीस दिन के लिए बन्द हो गया था। अन्दर से उसने कुण्डी लगा ली थी और परदादी गंगादेई से उसने कह दिया था कि अवधि पूरी होने से पहले उसे कोई न बुलाये, नही उसका तप भंग हो जायगा।

परदादी गंगादेई का वह सबसे छोटा लड़का था। प्यार भी उसे अपने सब बेटों में सबसे ज़्यादा उसी से था। हट्टा-कट्टा, जवान था। कैसे भूखा-प्यासा चालीस दिन वह उस कोठरी में बन्द रहेगा, यह सोच-सोच कर उसके प्राण सूखते थे। वह दिन में कई बार ऊपर जाती और किवाड़ों से कान लगा कर उसका मन्त्रोच्चारण सुनती। तीस-बत्तीस दिन तक तो वह अपने बेटे की सिद्धि के लोभ में अपने ऊपर जबर किये रही। उसकी आवाज़ भी उसे कुछ-न-कुछ आती रही, पर जब तैंतीसवें दिन उसे ज़रा-सी आवाज़ भी न सुनायी दी तो उसने मुहल्ला सिर पर उठा लिया और किवाड़ तोड़ डाले।

तब—ऐसा चेतन के दादा ने उसे बताया था—भगवान महाबीर ने चन्नी के मुँह पर थप्पड़ मार कर उसे बेहोश कर दिया और दादी को शाप दिया कि जा, तुझे इस बेटे का सुख कभी नसीब न होगा! जब भी तू इसके सामने होगी, यह पागल रहेगा!

यद्यपि चेतन के दादा का यह कहना था कि दादी कुछ दिन और सबर से काम लेती तो वह महाबीर को सिद्ध कर लेता, अब उसकी साधना-भंग हो गयी है, पर शहर में यह प्रसिद्ध था कि चन्नी ने हनुमान को सिद्ध कर रखा है और जो बात उसके मुँह से निकलती है, सत्य हो के रहती है। बोहड़ वाले बाज़ार के कपूर तो उसके बड़े भक्त थे, उसे कपड़े बनवा कर देते; सर्दियों में रज़ाई-तुलाई भरवा कर देते; (वह कपड़े दूसरों को दे देता और सर्दी हो या गर्मी, निरावरण घूमता) उसे घेर-घार कर ले जाते; खिलाते-पिलाते और हर तरह उसकी सेवा करते। उनका यह पूर्ण

विश्वास था कि उनके कारबार में उन्नति सिद्ध जी के प्रताप से ही हुई है।

लेकिन सिद्ध जी को उनके कारबार अथवा उनके अस्तित्व तक का होश न रहता। सारा शहर उनका अपना था और वे दिन-दिन भर घूमा करते। गर्मियों में भरे-बाज़ार किसी दुकान के तख़्त या मकान के चौतरे पर सो जाते और सर्दियों मे किसी भट्टी या तन्दूर की शरण लेते। हाँ, जब कभी होश में होते (और यह अजीब बात है कि परदादी गंगादेई जब अपने पोते के साथ दूरस्थ स्टेशनों पर चली जाती, चुन्नी को होश आ जाता) तो कपूरों के यहाँ पहुँच जाते। कपड़े पहन लेते और उन्हीं की दुकान पर पटफेरा[1] करते।

चेतन माँ के कहने पर एक बार वहाँ गया था। उसने डरते-डरते उन्हें प्रणाम भी किया था। सिद्ध जी ने उसे आशीर्वाद भी दिया था। लेकिन घण्टा भर चेतन वहाँ रहा, उसने उन्हें चुपचाप अपना काम करते पाया, एक बार भी उन्होंने किसी से बात नहीं की।

लेकिन यह तो परदादी के देहान्त के बाद की बात है। परदादी की ज़िन्दगी मे तो चेतन के ये छोटे दादा प्रायः पागल ही रहे। एक बार परदादी अचानक जालन्धर आयी तो किसी ने उसे बताया कि उसका बेटा बिलकुल होश में है और कपूरा के यहाँ पट-फेरा करता है। दादी ने न साँस ली, न पानी पिया। वह भागी गयी वहाँ पहुँची, पर माँ को देखते ही जैसे चुन्नी के गाल पर महाबीर का चाँटा पड़ा (चेतन ने यही व्याख्या सुनी) और वह कपड़े फाड़ कर लकड़ी और लोहे के आदमी बनाता और दाँत किटकिटाता भाग निकला।

चेतन के दादा का कहना था कि उसके बाद परदादी कभी वहाँ न जाती थी। उसे इसी बात का सन्तोष था कि उसका लड़का चाहे उसे न मिले, पर सुखी और स्वस्थ रहे। लेकिन अन्तर्यामी महाबीर तो जालन्धर में उसके आगमन की बात जान लेते थे और चुन्नी के गाल पर चाँटा जड़ देते थे और वह नंग-धड़ंग दादी को सताने आ पहुँचता था। इसी

१. रेशम की लच्छियों को घुटनों में फँसा कर उनके तार सुलझाना

दुख के कारण आखिर चेतन के पिता सदा के लिए अपनी दादी को साथ ले गये थे और वहीं एक दूरस्थ स्टेशन पर दादी का देहान्त हो गया था और उसकी मृत्यु के बाद उसका यह दादा फिर कभी पागल नहीं हुआ। और मरा तो कपूरों ने उसकी कमाई का तीन सौ रुपया उसकी बीवी को बुला कर दे दिया।

इसी चुन्नी पागल का बेटा फल्गूराम मियाँमीर में डाकिया था। वह पांच जमात से आगे न पढ़ा था और चेतन के पिता ने चेतन के जन्म से भी पहले उसे वहां नौकर करा दिया था। उसकी शादी हुई न थी और वह अपनी मां के साथ वहीं रहता था। कल्लोवानी मुहल्ले के मकान में उनके हिस्से का जो एक दालान और एक चौबारा था, उन्हें तो उसके उस सिद्ध पिता ने एक बार पागलपन की झोंक में जला दिया था, इसलिए फल्गू की मां अपने बेटे के पास ही रहती थी। फिर जब चेतन के पिता ने मकान नये सिरे से बनवाया तो उस दालान और चौबारे में से चौबारा चार सौ रुपये में उससे ले लिया था। दालान अभी तक उसी तरह खंडहर पड़ा था और चेतन के उस नये मकान की कानी आँख सरीखा लगता था।

उन्हीं दिनों जब चेतन के पिता मकान को नये सिरे से बनाने की सोचते थे, उन्होंने फल्गूराम को बुलाया था। चेतन तब छोटा था। पांचवीं-छठी में पढ़ता था। तभी उसने पहली बार अपने इस चाचा के दर्शन किये थे—पिता ही की तरह हृष्ट-पुष्ट, लम्बा-तगड़ा शरीर, चौड़े-चौड़े अंग, अपनी उस वर्दी में चेतन को वह डाकिये से ज़्यादा फ़ौजी लगा था।

चेतन को माँ से मालूम हुआ था कि फल्गू एक पवित्र नदी का नाम है और उसका चाचा उस नदी के दर्शनों के बाद पैदा हुआ था। तब वह अपने चाचा से मज़ाक करना चाहता था और उसने उसी चौबारे में (तब तक मकान पुराना था) जहाँ उसके दादा ने महाबीर सिद्ध करने का असफल प्रयास किया था, अपने चाचा की गोद में लेटे-लेटे पूछा था, "चाचा जी आपका नाम क्या है ?"

चेतन का ख़याल था, उसका चाचा उत्तर देगा, 'फल्गूराम' तो वह कहेगा, कि यह तो अच्छा नाम नहीं, फल्गू नदी का नाम है और राम अवतार का, मिल कर यह नाम कुछ भी नहीं बना। उसका नाम उनसे कहीं अच्छा है—चेतनानन्द—और अपने पिता से सुने हुए संधि-सहित अपने नाम के अर्थ और उसकी व्याख्या बता कर वह अपने चाचा को आश्चर्य-चकित कर देगा। लेकिन उसके चाचा ने पास पड़ी उसकी स्लेट उठा कर उर्दू लिपि में अपना जो नाम लिखा, उसे पढ़ कर चेतन स्वयं चकित रह गया। उसने लिखा—

चिच्चल ख़ाँ, चिच्चलावल ख़ाँ, जहिज्जतबिज्जत
बिजली ख़ाँ, शेर बहादुर अइय्ये ख़ाँ।

चेतन को वास्तव में यह नाम पढ़ने में कठिनाई हुई थी और उसके चाचा ही ने पढ़ कर सुनाया था।

"यह आपका नाम है?" उसने सन्देह-भरे स्वर में पूछा था।

"हाँ।"

"आपका नाम तो फल्गूराम है।"

"वह नाम मैंने छोड़ दिया अब मेरा यही नाम है।"

और फिर उसने चेतन से कहा था कि जल्दी-जल्दी पूरा नाम ले कर दिखाये। और कई बार प्रयास करने पर भी चेतन वैसा न कर सका था।

शाम को उसका चाचा उसे अपने साथ ले गया था और यद्यपि चेतन को उसने कई तरह की मिठाई ले कर दी थी, पर उसे बुरी तरह डरा भी दिया था, क्योंकि वह किसी फ़कीर की खोज में दो-तीन कब्रिस्तानों के तकियों में उसे साथ लिये-लिये घूमा था और यद्यपि चेतन ने प्रकट न होने दिया, पर वह मन-ही-मन बहुत डर गया था।

०

वहाँ पापड़ियाँ बाज़ार में जाते हुए चेतन के सामने वर्षों पहले देखे हुए अपने चाचा की आकृति और उसके साथ बिताये दो-तीन दिनों की एक-एक स्मृति घूम गयी। कुल मिला कर उसे अपना वह चाचा बुरा न लगा था, यद्यपि रोज़ कब्रिस्तानों में उसका मारा-मारा फिरना और उसे भी

साथ ले जाना उसे पसन्द न था।

इसके बाद वर्षों उसे चाचा की कोई ख़बर नहीं मिली। फिर चेतन के सबसे छोटे भाई के जन्म पर, जब माँ ने उससे खुशी का एक कार्ड फल्गू-राम को लिखने के लिए कहा तो चेतन ने बड़ी सुन्दर लिपि में, बड़े आदर के साथ सम्बोधन कर, अपने चाचा को यह सुसमाचार दिया था।

उत्तर वापसी डाक से मिला था और चेतन उसे पढ़ कर हैरान रह गया।

कार्ड मे ऊपर के आधे हिस्से में केवल दो शब्द बार-बार लिखे थे—या रब, या रब, या रब, या रब....और इसक बाद एक मिसरा लिखा था—

जहाँ बजते हैं नक़्क़ारे, वहाँ मातम भी होते हैं

इसके बाद फिर 'या रब' 'या रब' की गरदान थी और न केवल कार्ड की तरफ़, बल्कि दूसरी ओर का आधा भाग भी उन्हीं दो शब्दों मे भर कर अन्त मे लिखा था—

यादे इलाही में मशगूल फल्गूराम
(उर्फ़ शेर बहादुर अइय्ये खां)

जब उसने मां को यह ख़त पढ़ कर सुनाया तो माँ ने माथा ठोंक लिया, "इस घर की रीत कैसे चली जायगी," उसने कहा, "एक-न-एक पागल तो रहेगा ही इस घर में?" चेतन के दादा के पागल भाइयों के कारण उनका कुनबा 'पागलों का कुनबा' कहलाता था। माँ की आवाज़ का दर्द चेतन से छिपा न रहा था।

चेतन से कार्ड ले कर उसके सभी भाइयों ने बारी-बारी पढ़ा था। सब ख़ूब हँसे थे और बड़े भाई ने फ़तवा दिया था कि अब किसी दिन ख़बर आयेगी कि चुन्नी दादा की तरह फल्गू चाचा भी कपड़े फाड़ कर निकल गये हैं।

और जब तीन बरस बाद मियाँमीर से खबर आयी कि चेतन की दादी (चुन्नी दादा की पत्नी) चल बसी है और चेतन के दादा रूपलाल मियाँमीर गये और आ कर उन्होंने बताया कि फल्गू पागल हो गया है तो

किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। दादा ने बताया कि उसका दिमाग तो बहुत दिनों से ख़राब था, लेकिन जब तक भाभी (फल्गू की माँ) जीवित रही, वह नौकरी करता रहा; जब वह मर गयी तो क्रिया-कर्म से निबट कर, वह दफ़्तर गया, उसने त्याग-पत्र दे दिया, कपड़े फाड़ डाले और 'या हुसेन', 'या हुसेन' कहता हुआ वहीं से भाग गया। दो दिन चेतन के दादा वहाँ परेशान अपने उस भतीजे को ढूँढ़ते फिरे, पर वह जाने किस गाड़ी में जा बैठा था, शहर में तो उसका कहीं भी पता नहीं चला।

०

अटारी के चौरस्ते में खड़े हो कर अनन्त ने जो मज़ाक किया था तो उसका संकेत चेतन के इसी चाचा की ओर था। पापड़ियाँ बाज़ार में चलते-चलते फल्गू चाचा की याद आ जाने से चेतन ने सोचा, 'अनन्त ठीक ही तो कहता है। सच ही रामदित्ते और फल्गू चाचा में क्या अंतर है? हो सकता है, किसी दिन रामदित्ता भी दुकान से छलाँग लगा कर कपड़े फाड़ता हुआ निकल जाय!'

मुहल्ले में उन्हीं के घर नहीं, दूसरे घरों में भी पागल थे। झमानों ही में जगतू पागल था, जिसकी अभी दो वर्ष पहले मृत्यु हो गयी थी। वर्षों पहले की बात चेतन को याद हो आयी—एक दोपहर सहसा मुहल्ले में कोहराम मच गया और चौक में अपने घरों के आगे पीढ़े बिछाये कातती-अटेरती मुहल्ले की स्त्रियाँ चर्खे-पीढ़े उठा कर घरों में जा छिपीं। मालूम हुआ, जगतू पागल हो गया है और कपड़े उतार कर एकदम नंगा, वाही-तबाही बकता, भुवाड़े से बाज़ार की ओर को भाग गया है।

झमानों में से कोई कह रहा था कि नहीं, वह पागल नहीं, उसने ख़ूब शराब पी ली है और उसे अपना होश नहीं रहा।

उसकी माँ ने उन्हें आवाज़ें दे कर ऊपर बुला लिया था कि कहीं बाज़ार को न निकल जायँ। लेकिन चेतन दो-मंज़िले की खुली बैठक में चला गया था और उसने वहाँ से दो बार जगतू की झलक देखी थी। पागलों की तरह दोनों बाँहें घुमाता और गालियाँ बकता वह निपट निरा-वरण पहले बाज़ार से भुवाड़े की ओर को गया, फिर शायद घर का दर-

वाज़ा बन्द रहने से बाज़ार की ओर को भाग गया। उसका दूध का-सा गोरा-छरहरा शरीर कौंधे की लपक-सा चेतन की आँखों को चौंधिया गया था।

वह जगतू, जो एकदम चुप रहता था, मण्डी से आते अथवा मण्डी को जाते हुए मुहल्ले से गुज़रते समय जिसकी निगाहें धरती में झुकी रहती थी, अब बगूले-सा बेहया उड़ा जा रहा था। वह जाने कब तक मुहल्ले में आतंक जमाये रखता, लेकिन अमीचन्द के बड़े भाई, अमीरचन्द ने उसे पकड़, चौधराइन की डेवढ़ी में ले जा कर जूतों से इस बुरी तरह पीटा था कि फिर वह मुहल्ले से भागा तो वापस नहीं आया।

और चेतन के सामने कविराज रामदास के लिए पुस्तक लिखते समय पढ़ी हुई किताबों के कई परिच्छेद घूम गये। एक लम्बी साँस उसके हृदय से निकल गयी। इस अभावग्रस्त मुहल्ले में, जहाँ अशिक्षा, असंस्कृति, भूख और प्यास का राज्य था; जहाँ कई घरों में उमर भर के भूखे-प्यासे कुँवारे पड़े थे; अनाचारी, जुआरी व्यभिचारी और पागल न हों तो और क्या हों? क्यों बीमारियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी यहाँ घर न करें और नस्लों को खोखली न बनाती चली जायँ? कई बार जब कोई कुँवारा काफ़ी उमर गुज़र जाने पर शादी करता था तो वह पहले ही यौन-व्याधियों का शिकार हो चुका होता और कई बार जब किसी युवा रँडुवे की दोबारा शादी न होती तो वह बाद में उन रोगों का ग्रास बन जाता या विक्षिप्त हो कर गली-गली मारा-मारा फिरता....

o

यही सब सोचता हुआ चेतन पापड़ियाँ बाज़ार के तिकोने चौक मे पहुँच गया था, जब सहसा उसका ध्यान चौक के एक कोने में छिकड़ी (चौपड़) पर झगड़ते हुए दुकानदारों ने खींच लिया।

पापड़ियाँ बाज़ार का यह चौक छोटा था। दायीं ओर की दुकानें बाज़ार से हट कर तिकोन-सी बनाती हुई फिर सीध में आ गयी थीं, जिससे बाज़ार की दायीं तरफ़ छोटा-सा चौक बन गया था। एक ओर बाज़ार के किनारे अपनी दुकान के आगे साल्हो (सालिगराम) पापड़िया

पापड़ बेल रहा था। पहले वह पीठी-मिले बेसन की लोई से पेड़े बना कर रख लेता, फिर उनको ज़रा-सा तेल छुआ कर उस पर बेलन का एक-एक हाथ दे कर उन्हें चपटा करके रखे जाता, फिर दूसरी बार उठा कर गोल करके साथ पड़ी चटाई पर फेंकता जाता। जब वह उकड़ूँ बैठा-बैठा पीठी के पेड़े पर बेलन का ज़ोर देता तो उसकी एड़ियाँ किंचित उठ जातीं, पापड़ बेल कर वह चटाई पर फेंक देता तो फिर एड़ियाँ धरती पर रख लेता।

दुकान के अन्दर उसका लड़का मेलाराम सज्जी (खार) में दाल धो रहा था और सज्जी की बू सारे चौक में बस गयी थी।

चौक में जहाँ धूप थी, चटाइयों पर पापड़ बिछे थे, जिनमें दबी हुई काली मिरचें छोटी-छोटी अँखड़ियों-सी लग रही थीं।

चटाइयों के ऊपर चौक के आर-पार रस्सी बाँध कर कोने के रँगरेज़, चिराग़ ने रँगे हुए दुपट्टे और पगड़ियां सूखने को डाल रखी थीं, जो हल्की-हल्की हवा से लहरा रही थीं।

माल्हो पापड़िये के ऐन सामने रेलू उसी की तरह बाज़ार में सिलबट्टे पर दाल पीस कर पीठी बना रहा था। बदन पर उसके सिर्फ़ लँगोट और बनियान थी और उसकी बाँहों और कन्धों के पट्ठे तने हुए थे।

यद्यपि पापड़िये अपने काम में निरत थे और अभी सुबह ही थी, लेकिन पापड़ियाँ बाज़ार में खासी बेरौनकी थी। बाकी दुकानों में— जिनमें एक-दो सुनारों, एक तमाखू वाले की, एक मोघड़ कसेरे की (जो अब भी मोघड़ पटफेरा कहलाता था, यद्यपि पट फेरने का काम छोड़े हुए उसे वर्षो बीत गये थे) और एक रूई और निवाड़ का काम करने वाले द्वारका की—एकदम सन्नाटा था और इन दुकानों के मालिक चौक के उस कोने में बिछी चौपड़ की महफ़िल में शामिल थे।

चेतन ने देखा, चिराग़ रँगरेज़ और मोघड़ पटफेरा खेल रहे थे— याने उस समय खेलते हुए झगड़ रहे थे—और शेष उनके गिर्द दायरा बनाये बैठे अथवा खड़े थे। उन्हीं में उसने ज्योतिषी दौलतराम को अपनी लम्बी चोटी में गाँठ दिये, नंगे शरीर पर रामनामी ओढ़े और पाँवों मे खड़ाऊँ पहने बैठे देखा। चूंकि चौपड़ द्वार के की दुकान के नीचे बिछी थी,

इसलिए वह घुटनों के ज़रा ऊँची धोती पहने, नंगे बदन पर जनेऊ डाले तिनके से अपने पीले दाँत कुरेदता अपने तख्त पर बैठा-बैठा ही छिकड़ी का मज़ा ले रहा था ।

पापड़ियाँ बाज़ार यों भी रौनक वाला बाज़ार न था, इस पर दुनिया-जहान की चिन्ता छोड़ कर इन छिकड़ी खेलने वालों के कारण वहाँ एकदम बेज़ारी-सी फैली हुई थी । लेकिन शहर में यही अपने जैसा अकेला बाज़ार न था । जालन्धर में ऐसे कितने ही बाज़ार थे (और आज तक भी हैं) जहाँ सुबह से ले कर शाम तक ताश, शतरंज या चौपड़ की महफ़िलें गर्म रहती है ।

०

अपने चाचाओं के जीवन के तारों में उलझे चेतन ने इन छिकड़ी खेलने वालों तक पहुँच, झगड़े की आवाज़ सुन कर सिर उठाया ही था कि सहसा उसके देखते-देखते मोघड़ पटफेरे ने पैर से जूना निकाल कर तड़ा-तड़ दो-तीन चिराग़ के सिर पर जमा दिये ।

चिराग़ गोरा-चिट्टा जवान था । बड़ी खूबसूरत, भूरी-भूरी, नुकीली मूँछें उसके मुख पर शोभा देती थीं । सिर पर लटकेदार सुआ-पंखी पगड़ी, तन पर बोसकी की धारीदार कमीज़ और कमर में उसके तहबन्द था ।

जूते के पहले ही वार से उसकी पगड़ी गिर गयी । वह निमिष भर को चकित-सा खड़ा रह गया, फिर बड़े ज़ोर से गाली देता हुआ वह मोघड़ की ओर झपटा, पर 'हैं' 'हैं' करते हुए ज्योतिषी जी ने उसे अपनी बाँहों में कस लिया । दो-एक ने मोघड़ को सँभाला ।

चेतन ने एक तमाशाई से पूछा कि बात क्या हुई ?

तब उसे मालूम हुआ कि चिराग़ और मोघड़ में बाज़ी पर सेर-सेर दूध की शर्त लगी थी । मोघड़ ने सातों गोटें जीत ली थीं, केवल एक आ कर नरक के घर पड़ गयी थी । चिराग़ की सातों नर्दें मरी हुई थीं, लेकिन उसने एक ही हाथ में दो बारह, दो चौदह और दो सात मारे और न केवल धड़ाधड़ अपनी एक नर्द छुड़ा कर जीत ली, बल्कि मोघड़ की वह नरक में पड़ी गोट भी पीट डाली । फिर तो उसने मोघड़ की वह नर्द

उठने ही नहीं दी। मोघड़ उसे उठाता कि चिराग़ पीट देता। आख़िर चिराग़ ने सातों नर्दें पुगा डालीं। दोनों की एक-एक नर्द रह गयी। लेकिन दुर्भाग्य से मोघड़ की फिर नरक-घर आ पड़ी और चिराग़ ने पुगा ली। और मोघड़ ने खिसिया कर जूता खींच मारा।

मोघड़ का कहना था कि चिराग़ ने धाँधली से गोट पुगायी है, उसकी गोट भी नरक-घर में आती थी, पर उसने एक घर पीछे कर ली थी। और न केवल उसने धाँधली से बाज़ी जीती, बल्कि गाली भी दी कि यह पटफेरा नहीं, चौपड़ है और हर चपरकनाती के बस की नहीं।—उस नीच रँगरेज़ की यह मजाल कि लाला मोघड़मल को गाली दे....और वह वमक रहा था कि छोड़ दो मुझे, मैं देख लूँ इसकी पहलवानी।

चिराग़ तो शायद शान्त न होता और एकाध का सिर फट कर रहता, पर ज्योतिषी दौलतराम ने अपना चिकना-चुपड़ा चोटी वाला सिर चिराग़ के आगे कर दिया कि लो भाई, अगर तुम्हारा मन बदला ले कर ही शान्त होता हो तो दो जूते मेरे मार लो।

और ब्राह्मण का सिर झुकते ही चिराग़ का क्रोध शान्त हो गया। उसने झुक कर उनके चरण छू लिये और अपनी दुकान को जाते हुए उन सब लालाओं को गाली देते हुए कहा कि सब-के-सब नामर्द हैं, सिर्फ़ जीतना जानते हैं और फिर उससे भी बड़ी गाली अपने-आप को देते हुए कहा कि वह अपनी माँ के साथ सोये अगर फिर कभी उनके साथ खेले।

'यह कमबख़्त इतनी बड़ी कसम खा गया, लेकिन दो दिन बाद फिर यहीं आ जमेगा।' चेतन ने मन-ही-मन सोचा और एक उपेक्षा-भरी दृष्टि उन सब पर डाल कर वह आगे चल पड़ा।

वह जिन दिनों जालन्धर में था, जब उधर से गुज़रता था और ताश, शतरंज या चौपड़ की ये महफ़िलें जमी देखता था तो मन-ही-मन सोचा करता था कि वे लोग कैसे इतना वक़्त बर्बाद कर सकते हैं। उसे अपनी महत्वाकांक्षाओं और संघर्ष-तत्परता की तुलना में उन लोगों की आकांक्षा-हीनता और बेकारी पर हैरत होती थी। कभी-कभी उसे उनसे ईर्ष्या भी होती। उसका मन होता, उसे किसी तरह की चिन्ता न हो; ज़िम्मेदारी

का एहसास न हो; कोई इच्छा-आकांक्षा न हो और वह उन लोगों की तरह मज़े से दिन-दिन चौपड़ खेल सके। लेकिन कभी जब वह ऐसे उद्देश्यहीन जीवन की कल्पना करता तो सिहर उठता। उसे लगता, चाहते हुए भी वैसा जीवन बिता सकना उसके वस की बात नहीं, दो-एक दिन से ज़्यादा ऐसे रह सकना उसके लिए कठिन है....और चेतन के सामने हकीम दीनानाथ का चित्र घूम गया—जिसके मन में अपने स्तर से ऊँचा उठने की प्रबल साध थी, जिसके संघर्ष ने चेतन को सदा प्रेरणा दी थी और जो इस साध के बावजूद अभी जालन्धर में ही संघर्ष-रत था....

०

दीनानाथ की दुकान को जाते-जाते पिछले कई बरस चेतन के सामने बर-सानी साँझ के रंगीन बादलों-से घूम गये।

छै

दीनानाथ, जो हकीम की उपाधि प्राप्त करने से पहले गली-मुहल्ले में केवल 'दीना' अथवा 'ठल्लू जड़िये दा पुत्तर'[1] के नाम से याद किया जाता था, लड़कपन में काफ़ी मेधावी था। उमर में तो वह चेतन से कुछ बरस बड़ा था, लेकिन शुरू ही से चेतन की उससे खूब पटती थी।

दीनानाथ के पिता ठल्लूराम और चाचा दालचन्द बाकायदा अखाड़े जाते थे। उनके नामों से जिस ढीले-ढालेपन का आभास मिलता था, उसे कम-से-कम शारीरिक रूप में उन्होंने दूर कर दिया था। मँझोला कद, गोरा-गठा बदन, बड़ी-बड़ी आँखें और नीबू-टिकाऊ मूँछें—हाँ, मस्तिष्क की बात दूसरी है, पर सुनारों से बुद्धिजीवियों के-से मस्तिष्क की अपेक्षा भी तो नहीं की जा सकती! दीनानाथ भी कसरत करता था, लेकिन बुद्धि उसने अपने पिता अथवा चाचा की अपेक्षा कुशाग्र पायी थी। उसे पढ़ने का बेहद शौक था। चेतन छठी कक्षा ही में था, जब उसके बड़े भाई भैरो बाज़ार के महन्तराम बुकसेलर की दुकान से किराये पर उपन्यास ला कर पढ़ने लगे थे। उनकी देखा-देखी और कुछ उन द्वारा लायी गयी पुस्तकों को चोरी-छिपे पढ़ कर चेतन को भी पुस्तकें पढ़ने का शौक हो

१. जड़ाऊ गहने बनाने वाले ठल्लू का बेटा।

गया था, उसे ख़र्च के लिए जो भी पैसे मिलते, उन्हें जोड़ कर वह उपन्यास ले आता और जो पुस्तक वह लाता, उसे दीनानाथ और वह साथ-साथ पढ़ते।

उन्होंने पहले चन्द्रकान्ता, फिर चन्द्रकान्ता संतति, फिर भूतनाथ और फिर अलिफ़ लैला पढ़ी। एक दिन वह महन्तराम की दुकान पर खड़ा यों ही पुस्तकें पलट रहा था कि उसने एक पुस्तक पर 'बंगाले का जादू' लिखा देखा। पुस्तक वह घर ले आया। उसने कितने ही जादू के खेलों का ब्योरा पढ़ा, पर उसे एक भी खेल तैयार करना न आया। तब उसने पुस्तक दीनानाथ को दिखायी। दीनानाथ ने वह पुस्तक सिर्फ़ दो दिन अपने पास रखी, पर जाने इन दो ही दिनों में उसने उसमें से कितने खेल नोट कर लिये थे, क्योंकि उसके बाद महीने भर तक वह नित नये दिन उसे कोई-न-कोई नया खेल तैयार करके दिखाता रहा।

एक दिन सुबह स्कूल को जाते वक्त चेतन गली बढ़इयाँ में, जहाँ अनन्त के सामने वाले मकान में दीनानाथ रहता था, उसे बुलाने गया तो घर से निकलते ही दीनानाथ ने जेब से एक रंगीन गेंद निकाली, जिसमें बटा हुआ सूत का तागा पड़ा था। दीनानाथ ने तागे को एक ओर खींच, दोनों सिरे दोनों हाथों में ले कर उसे तान दिया। चेतन की चकित आँखों ने देखा कि गेंद ऊपर दीनानाथ की उँगली और अँगूठे के पास रुकी थी। तब दीनानाथ ने होंटों ही में कुछ मन्त्र पढ़ कर कहा—'चल बेटा!' और आज्ञाकारी गेंद घूमती हुई नीचे को चल दी। दीनानाथ ने फिर आदेश दिया—'रुक जा!' गेंद रुक गयी। दीनानाथ जब उसे आदेश देता, गेंद चल पड़ती; जब रुकने को कहता, रुक जाती।

सारा दिन स्कूल में दीनानाथ लड़कों को अपने जादू से चकित करता रहा था और सारा ही दिन चेतन उससे इस खेल का राज़ पूछता रहा था।

उसे याद था, वह कई दिन तक उसकी मिन्नतें करता रहा था, तब जा कर दीनानाथ ने उसका भेद बताया था।....यद्यपि तागा गेंद के ऊपर से डाला गया था और नीचे से निकलता था, पर वह सूराख़ सीधा न था। दोनों सिरों से टेढ़ा था और गेंद के अन्दर १२० का कोन बनाता

हुआ मिल जाता था। तागा ज़रा-सा ढीला छोड़ने पर गेंद घूमती हुई चल पड़ती और कसने पर काँपती-सी रुक जाती थी।

"कई गेंदें ख़राब करनी पड़ीं, तब जा कर ठीक हिसाब बैठा।" दीनानाथ ने सोल्लास बताया, "दोनों ओर से सूराख़ बराबर लम्बे होने चाहिएँ और गेंद के ऐन मध्य मिलने चाहिएँ। जमुने बढ़ई को केवल सूराख़ निकलवाई एक आना देना पड़ा।"

"बस इतनी-सी बात है।" दीनानाथ के उल्लास की ओर कुछ ध्यान न दे कर चेतन ने कहा था। वह समझता था कि शायद सब कुछ सच-मच मन्त्र-बल से हो रहा है।

दूसरे हफ़्ते दीनानाथ ने इससे भी दिलचस्प खेल दिखाया। बायें हाथ को अर्धचन्द्राकार करके उसने उसमें ताश का एक पत्ता थाम रखा था। चेतन ने देखा—पान की बेगम थी। तब दूसरे हाथ से ज़रा-सी राख की चुटकी ले कर उसने उस पर छिड़की और 'छू मन्तर' कह कर जो अपना दायाँ हाथ उस पर फेरा तो पान की वह बेगम माचिस की डिबिया बन गयी और दीनानाथ ने उसमें से दियासलाई निकाल कर जलायी और फिर उसे फूँक मार कर बुझा दिया।

चेतन चकित रह गया। उसने कहा—"एक बार फिर करके दिखाओ!"

दीनानाथ दोनों हाथ क्षण भर के लिए पीठ पीछे ले गया। दूसरे क्षण उसके बायें हाथ में वही पान की बेगम थी। चेतन एक टक उसे देखता रहा कि दीनानाथ उसे चालाकी से कहीं छिपाता तो नहीं। लेकिन पलक झपकते ही उसने राख की चुटकी उस पर छिड़क कर जो दायाँ हाथ उस पर फेरा तो पान की वह बेगम माचिस की डिबिया बन गयी।

कई दिन मिन्नत-खुशामद कराके जब दीनानाथ ने उसका भेद बताया तो चेतन को फिर मायूसी हुई। ताश का जो पत्ता दीनानाथ के हाथ में था, वह बड़ी साधारण पतली छोटी ताश का पत्ता था। दीनानाथ ने माचिस की डिबिया का ऊपर का खोल एक ओर से काट कर पूरे-का-पूरा पत्ते के पिछली ओर चिपका रखा था। अन्दर की तीलियों-भरी डिबिया

वह दायें हाथ के गढ़े में छिपाये रखता था और जब नीचे से ऊपर को हाथ फेरता तो ताश का पत्ता उस पर लिपट जाता और वह माचिस की डिबिया बन जाती।

"बस !" चेतन ने कहा, "यह तो पहले से भी आसान खेल है।"

"आसान खेल है !" दीनानाथ ने मुँह बिचकाया, "आसान है तो इतने दिन से माथा-पच्ची कर रहे थे, बूझ क्यों नहीं लिया ?"

"बूझना आसान नहीं !" चेतन ने उसके अहं को सन्तुष्ट करते हुए कहा और उसने दीनानाथ से अपने लिए एक ऐसा ही खेल बना देने की फ़रमाइश की।

इसके दो-तीन हफ़्ते बाद दीनानाथ ने एक और भी अद्भुत खेल दिखाया। उसने एक बिलकुल नयी ताश निकाली और उसे अच्छी तरह फेंट कर चेतन से कहा कि वह स्वयं फेंट कर एक पत्ता निकाले। चेतन ने ताश अच्छी तरह फेंट, एक पत्ता निकाल लिया। ईट का नहला था। दीनानाथ ने कहा, "इसे दियासलाई दिखा दो।"

"तुम्हारी ताश का पत्ता कम हो जायगा।"

"तुम जलाओ तो !"

चेतन ने झिझकते-झिझकते ताश के उस नये पत्ते को आग लगा दी। जब वह बिलकुल राख हो गया तो दीनानाथ ने एक शीशे-जड़ा चौखटा उठाया, जिसमें रेत भरी थी। उसे नीचे-ऊपर घुमा-फिरा कर उसने दिखा दिया कि उसमें कुछ नहीं, तब उसने पत्ते की राख ले कर उसकी चुटकी उस पर छिड़क दी और दीवार के साथ रख कर होंटों में मन्त्र पढ़ता हुआ उस पर रूमाल हिलाने लगा। चेतन की आँखें खुली रह गयी, जब उसने देखा कि धीरे-धीरे रेत का पर्दा हट गया और वही नया-नकोर ईट का नहला चौखटे में प्रकट हो गया।

बड़ी मिन्नत-समाजत के बाद जब चेतन ने उस खेल का राज़ जाना तो उसे पहले से भी अधिक निराशा हुई। उस ताश में, जिसमें से उसने पत्ता खींचा था, सब ईंट के नहले थे। एक पत्ता पहले से चौखटे में लगा था। बातों-बातों में दीनानाथ ने चौखटा उलट कर रख दिया था और

रेत नीचे को सरकने लगी थी।

जादू के वे खेल, जिन्हें देख कर अक्ल दंग रह जाती थी, सारे-के-सारे ऐसे ही थे। चेतन खेल को देख कर बड़ा आकर्षित होता, पर जब उसे भेद मालूम हो जाता तो उसका सारा उत्साह जाता रहता। यद्यपि उसने दीनानाथ से कई खेल सीख लिये थे और उनसे महल्ले के लड़कों की प्रशंसा भी प्राप्त कर ली थी, पर जादू के खेलों के प्रति वह पहला-सा उत्साह उसके मन में न रहा था।

तभी एक दिन वह महन्तराम बुकसेलर की दुकान से एक पुस्तक 'गंजीना-ए-अमलियात' उठा लाया। उसमें पहला ही परिच्छेद पढ़ के उसने तय किया कि वह हिपनाटिज़्म की अपूर्व शक्ति पैदा कर दीनानाथ को चकित कर देगा। पुस्तक में दिये गये आदेश के अनुसार उसने एक कोरे कागज़ पर काली स्याही से गोला बनाया और उसे सामने दीवार पर चस्पाँ कर दिया। कमरा बन्द कर, एक मोमबत्ती जला, वह चटाई बिछा कर घुटनों के बल बैठ गया और उसने अपनी दृष्टि उस गोले पर जमायी। तब उसे लगा कि कागज़ कदरे ऊँचा है, पुस्तक में लिखा था कि स्याही का गोला ऐन आँखों के सामने रहे। तब उठा कर उसने उसे नीचा किया। अब के वह कुछ ज़्यादा नीचा हो गया। तब उसने उसे फिर ज़रा ऊँचा किया और पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो कर वह फिर चटाई पर जा बैठा और उसने आँखें गोले पर जमा दीं। अपलक उस गोले पर दृष्टि जमाये वह मन-ही-मन सौ तक गिनती गिनने लगा। दस गिनते-गिनते उसकी पलकें झप गयीं। दूसरी बार बारह, तीसरी बार पन्द्रह वह गिन गया। हर बार वह गिनती बढ़ाता गया। एक घण्टे बाद वह उठा तो यद्यपि उसकी आँखों में पानी भर आया था, वह बड़ा प्रसन्न था, क्योंकि वह पुस्तक में लिखे अनुसार पर्याप्त प्रगति कर रहा था।

लेकिन सातवें दिन उसे अपनी साधना बन्द कर देनी पड़ी। उसकी आँखें आ गयीं। गर्मियों के दिन थे। उमस-भरे कमरे में मोमबत्ती की मद्धिम रोशनी में यों आँखें फाड़ने से उसकी पहले से कमज़ोर आँखों पर ज़ोर पड़ गया। जब तीन-चार दिन ज़िंक लोशन डालने के बावजूद आराम

न आया और उसकी तकलीफ़ बढ़ गयी तो उसके बड़े भाई उसे डॉक्टर जीवाराम को दिखाने ले गये।

डॉक्टर जीवाराम डॉक्टर न थे। उनकी ज़िन्दगी तो मेयो अस्पताल में कम्पाउण्डरी करते बीती थी। पर रिटायर हो कर उन्होंने कोट पश्का के अपने घर के निचले हिस्से में डिस्पेंसरी खोल दी थी और डॉक्टर कहलाने लगे थे। खुद ही नुस्खा लिखते और खुद ही बना कर देते थे। चेतन की आँखें देख कर उन्होंने कहा कि रोहे पड़ गये हैं। कॉस्टिक टच करना पड़ेगा और उन्होंने उसे नसीहत दी थी कि कम रोशनी में न पढ़ा करे, न लेट कर पढ़ा करे, नहीं आँखें खराब हो जायँगी। वे एक स्टूल पर बैठ गये, चेतन से उन्होंने कहा कि वह धरती पर बैठ कर उनकी गोद में सिर रखे। डॉक्टर जीवाराम बड़े लहीम-शहीम तगड़े आदमी थे। बड़ी-बड़ी सफ़ेद मूँछें उनके होंटों पर छायी थीं। ढीला-ढाला सूट और सिर पर एक बड़ी-सी पगड़ी! उनकी गोद में सिर रख कर जब उसने उनकी ओर देखा तो वह सहम-सा गया। तब बारी-बारी से उसकी दोनों आँखों में उन्होंने कॉस्टिक छुलाया। यद्यपि कॉस्टिक टच करने के बाद उन्होंने बोरिक के ठण्डे पानी से उसकी आँखें धो डालीं, लेकिन चेतन बिलबिला उठा। उसे लगा जैसे जलता अंगारा उसकी आँखों से छुला दिया गया है। बड़े भाई के सहारे लगभग अन्धों की तरह वह कोट पश्का से घर वापस आया। डॉक्टर जीवाराम ने एक बार और कॉस्टिक टच कराने का आदेश दिया था, पर चेतन ने फिर उधर मुँह नहीं किया। वह हकीम नबी जान से नुस्खा लिखा कर जीतू अत्तार से रसौंत, मुश्क काफ़ूर इत्यादि की एक पोटली बना लाया और हफ़्ता भर तक अपने कमरे के अँधेरे में लेटे-लेटे उसकी टकोर करता रहा। पन्द्रह दिन बाद जब उसकी आँखें ठीक हुईं तो हिपनाटिज़्म का भूत उसके सिर से उतर चुका था।

०

लेकिन वह जल्दी हार मानने वाला न था। उसे अब भी किसी ऐसी चीज़ की तलाश थी, जिससे वह दीनानाथ पर अपनी महत्ता सिद्ध कर सके। एक दिन जब वह फिर 'गंजीना-ए-अमलियात' पढ़ रहा था तो उसका

अन्तिम परिच्छेद पढ़ कर वह उछल पड़ा। उसमें हमज़ाद को सिद्ध करने का तरीका दर्ज था। जब उसने परिच्छेद पर शीर्षक 'हमज़ाद की तस्ख़ीर'[1] पढ़ा था तो उसे समझ में न आया था कि हमज़ाद क्या बला है, लेकिन शुरू ही में हमज़ाद की व्याख्या में लिखा था कि हमज़ाद उस शक्तिशाली पुरुष को कहते हैं, जो आदमी के साथ ही पैदा होता है और उसके अन्दर निवास करता है। यदि वह बाहर आ जाय और बस में हो जाय तो फिर उसके लिए कोई भी काम सरअंजाम देना असम्भव नहीं—वह ख़बरें दे सकता है; आमदनी बढ़ा सकता है; पानी बरसा सकता है; दूसरे के दिल का राज़ बता सकता है; किसी की ज़िन्दगी के हालात मालूम कर सकता है; दरिया पार करा सकता है; प्रेयसी को प्रेमी के चरणों में ला कर गिरा सकता है; लज़ीज़-से-लज़ीज़ खाना ला कर दे सकता है; दुश्मन को परास्त कर सकता है; अदालत में कामयाबी दिला सकता है—गर्ज़े कि आमिल[2] जो काम चाहे, वे सब सरअंजाम दे सकता है।

चेतन ने कई बार वह परिच्छेद पढ़ा। उसे हमज़ाद की सिद्धि वैसी कठिन न लगती थी और ज्यों-ज्यों वह पुस्तक पढ़ता, उसकी सचाई में उसका विश्वास दृढ़-से-दृढ़तर होता जाता। वह परिच्छेद लिखा ही ऐसे गया था कि छोटी उमर के लड़के अथवा अध-पढ़े लोग अनायास उस पर विश्वास कर लें। हमज़ाद कितने दिन की साधना के बाद प्रकट होगा; वह प्रकट हो तो कैसे उससे शर्तें स्वीकार करायी जायँ और किस शर्त पर उसे अपनी गुलामी में लिया जाय आदि बातें ऐसे ब्योरों के साथ लिखी थीं कि अनायास उन पर विश्वास हो आता था। वह परिच्छेद पढ़ते-पढते चेतन की बाल-कल्पना को पंख लग जाते। हवा के परों पर वह उड़ा फिरता। दीनानाथ के जादू के खेल हमज़ाद की सिद्धि के मुकाबिले में उसे एकदम अकिंचन दिखायी देते। जब भी वह पुस्तक पढ़ता, अलादीन के चिराग़ वाले देव की तरह उसका हमज़ाद हाथ बाँधे उसके

१. हमज़ाद को बस में करना।

२. साधक

सामने आ खड़ा होता और जो वह कहता, उसे पलक झपकते पूरा कर देता।

आखिर उसने तय कर लिया कि वह हमजाद को बस में करके रहेगा।

गर्मियों की छुट्टियाँ थीं। मुहल्ले के लड़के प्रातः उठ कर छावनी की सड़क पर सैर को जाते थे। 'नीली कोठी' के रहट पर गहरे पक्के चहबच्चे में मोटी धार के नीचे नहाते थे। इतने लड़कों की उपस्थिति में हमज़ाद को सिद्ध करना कठिन है, चेतन ने सोचा और उसने तय किया कि वह चुपराना जाया करेगा और वहीं एकान्त में हमजाद को सिद्ध करेगा और एक मंगल को नया बनवाया लँगोट मफ़लर की तरह गले में डाल, एक कागज़ में बड़ी सावधानी से पान का पत्ता लपेट कर जेब में रख, वह बड़े विश्वास के साथ चुपराना को चल दिया।

लेकिन अड्डा होशियारपुर और कोट किशनचन्द के शौक़ीन लोग सैर के लिए सुबह चुपराना ही जाया करते थे। वहाँ प्रातः खासी भीड़ होती। कहीं लोग कसरत करते, कहीं योग साधना; कहीं मुहल्ला, शहर या देश की राजनीति पर बहस और कहीं केवल स्कैण्डल का रस ले कर दिन की नीरसता से जूझने की तैयारी! इसलिए चेतन ने चुपराना से आध मील आगे एक रहट को साधना के लिए चुना। वह अपने साथियों के साथ कई बार वहाँ तक गया था। अकेले चुपराना से आगे जाते हुए उसे डर तो लगा, पर हमज़ाद को सिद्ध करने की पहली शर्त साहस थी और पुस्तक में लिखा था कि अभ्यासी को चाहिए, ऐसी जगह चुने, जहाँ अभ्यास के दौरान में कोई खलल पेश न आये, इसलिए सूरज निकलने से ज़रा पहले ही वह रहट पर पहुँच गया। इधर वह नहा-धो कर तैयार हुआ, उधर सूरज निकल आया। तब जैसा कि पुस्तक में लिखा था, लँगोट लगा, सूरज की ओर पीठ करके, वह धूप में जा खड़ा हुआ। दायें हाथ की ओर उसने पैर कर लिये। गर्दन मोड़ कर अपनी छाया के कण्ठ पर अपलक दृष्टि जमाने में उसे कठिनाई हुई। पर बड़े धैर्य के साथ वह जमा रहा और मन-ही-मन दोहराता रहा—'ऐ हमज़ाद आ कर मेरे साथ बात कर!' पुस्तक में लिखे अनुसार सात बार छाया के कण्ठ पर

और सात बार आसमान पर दृष्टि जमाने और हमज़ाद का आवाहन करते रहने में उसे लगभग डेढ़ घण्टा लग गया।

प्रयोग समाप्त कर, पुस्तक में लिखे आदेश के अनुसार पान को रहट के कुएँ में फेंक, उसने कपड़े बदले और सोल्लास घर की ओर मुड़ा....

पुस्तक में लिखा था कि दस रोज़ तक अभ्यास करने के बाद अभ्यासी को बड़े विचित्र अनुभव होंगे—कभी आँधी आती महसूस होगी और उसे लगेगा कि पेड़ टूट कर उसके ऊपर गिरने वाले हैं; कभी सुन्दर तन्वियाँ उसे भरमायेंगी, लेकिन साधक को तनिक भी विचलित हुए बिना अपना अभ्यास जारी रखना चाहिए। ये सब हरकतें हमज़ाद साधक का ध्यान बटाने और उसे आज़माने के लिए करता है।....बीसवें रोज़ हमज़ाद साधक के सामने आ कर खामोश खड़ा हो जायगा। साधक को चाहिए कि वह भी मौन रहे और अभ्यास करता जाय। कुछ दिन बाद हमजाद अभ्यासी से पान का पत्ता माँगेगा। उसे अभ्यासी तब तक पान न दे, जब तक हमज़ाद उसके बस में होने का वचन न दे। लेकिन यह वचन अभ्यासी को सोच-विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि हमज़ाद बस में होने को तैयार हो जाता है, पर कई बार ऐसी मुश्किल शर्तें रखता है, जिन्हें पूरा करना अभ्यासी के बस में नहीं होता। मसलन वह कह सकता है कि मैं तुम्हारा ग़ुलाम होने को तैयार हूँ, पर तुम्हें मुझे पेट भर खाना खिलाना होगा या तुम्हें सदा पवित्र रहना होगा....प्रकट है कि ऐसी शर्तों का पूरा करना अभ्यासी के बस में नहीं। तब कुछ दिन बाद हमज़ाद आसान शर्त रखेगा। अभ्यासी को तत्काल उसे मान लेना चाहिए। लेकिन हमज़ाद को पान देने और उसे अपनी ग़ुलामी में लेने से पहले अभ्यासी को उससे दो शर्तें जरूर मनवा लेनी चाहिएँ—पहली यह कि जब तक अभ्यासी उसे न बुलाये, वह हरगिज़ न आये, दूसरी यह कि जब वह उससे मुक्त होना चाहे, हो सके। ये दो शर्तें वह उससे न मनवायेगा तो हमज़ाद उसका जीना दूभर कर देगा, चौबीसों घड़ी उसके सिर पर सवार रहेगा अथवा बुढ़ापे में, जब अभ्यासी की शक्ति क्षीण हो जायगी, वह न केवल उसका जीना मुश्किल कर देगा, बल्कि मरने के बाद भी उसे चैन न लेने देगा....

....चुपराना से घर को वापस आते हुए चेतन की कल्पना को अनायास पंख लग गये। वह अभ्यास की सारी मंज़िलें पलक झपकते पार कर गया। उसने देखा कि हमज़ाद उसके सामने आ कर चुपचाप खड़ा हो गया है। तब शेष मार्ग चेतन ने उससे शर्तें मनवाने और क़ौल-करार लेने में तय किया। हमज़ाद को अपनी गुलामी में लेते ही एक अनिर्वचनीय उल्लास से चेतन का मुख प्रदीप्त हो उठा....उसे मालूम नहीं हुआ, कड़कती धूप में कैसे वह इतना लम्बा मार्ग तय कर आया। उसका तिलस्म तब टूटा, जब वह अपने मुहल्ले में दाखिल हुआ और उसकी माँ ने पूछा कि आज वह किधर चला गया था। इतना दिन चढ़ आया और उसकी सैर ही ख़त्म नहीं हुई।

खाना खा कर चेतन जब लेटा तो उसे लगा कि उसकी गर्दन बेतरह अकड़ गयी है और पिंडलियाँ और पैर बेहद दर्द कर रहे हैं।

०

भर-गर्मियों के दिन थे। सूरज सुबह छै-पौने-छै बजे निकल आता था और उसकी किरणें प्रातः ही से तेज़ हो जाती थीं। नंगे बदन तेज़ धूप में खड़े-खड़े उसका तन जलने लगता पर वह रोज़ डेढ़ घण्टा प्रयोग करके तभी घर आता। रात को लेटता तो भी अपनी छाया की कल्पना कर, उसके कण्ठ में दृष्टि जमा, हमज़ाद का आवाहन करता रहता। सातवें दिन उसे सिर में हल्का-सा दर्द और आँखों के पपोटों पर कुछ बोझ महसूस हुआ। तब उसे ख़याल आया कि इतनी गर्मी में इस अभ्यास का फ़ैसला करने में उसने गलती की। उसे ऐसा मौसम चुनना चाहिए था, जिसमें न बहुत गर्मी हो, न सर्दी; और धूप न केवल सही जा सके, बल्कि अच्छी भी लगे, लेकिन साथ ही उसे ख़याल आया कि जितना ही कष्ट उसे सहना पड़ेगा, उतनी ही जल्दी हमज़ाद उसके बस में आयेगा और उसे राजा उत्तानपाद के पुत्र भक्त ध्रुव की कहानी याद हो आयी, जो बचपन में माँ उसे सुनाया करती थी और उसने सोचा कि जब पाँच बरस का ध्रुव इतनी घोर तपस्या कर सकता है कि भगवान विष्णु को विवश हो उसकी मनोकामना पूरी करनी पड़ी, तब वह तो काफ़ी बड़ा हो गया है। इसके अति-

रिक्त पुस्तक में लिखा था कि दसवें दिन अभ्यास का कुछ-न-कुछ फल अवश्य होगा और उसने मन-ही-मन फ़ैसला किया था कि जैसे भी हो, वह दस दिन तक एक-निष्ठ हो कर अभ्यास करेगा और देखेगा कि दसवें दिन वे अनुभूतियाँ, जिनका पुस्तक में उल्लेख था, उसे होती हैं या नहीं।

दसवें दिन जब उसने अभ्यास शुरू किया तो न उसे आवाज़ें आयीं, न आँधी चली, न पेड़ गिरे और न कोई परी उसे भरमाने आयी। उसके सिर में बेहद दर्द रहा, लगा जैसे उसकी कनपटियाँ फटी जा रही हैं और कोई उसके दिमाग़ को बराबर हथौड़े से कूट रहा है। अभ्यास ख़त्म करके, पान कुएँ में फेंक और कपड़े पहन, जब वह घर को चला तो उससे चला न जा रहा था। दर्द की तीव्रता से उसका जी मतला रहा था और उसकी दायीं आँख में पानी आ गया था। दायें हाथ की उँगली और अँगूठे से दोनों कनपटियाँ दबाये, जब वह घर पहुँचा तो नीचे अपने कमरे में जा कर फ़र्श पर ही लेट गया।

जब वह खाना खाने ऊपर नहीं गया और माँ की आवाज़ों का उसने कोई जवाब न दिया और माँ नीचे उसके कमरे में गयी तो वह बुख़ार में बेहोश पड़ा था और रह-रह कर बड़बड़ा उठता था।—'ऐ हमज़ाद आ कर मेरे साथ बात कर!'

जब सात दिन बाद उसके ज्वर की तेज़ी कुछ कम हुई और माँ ने उससे पूछा कि वह 'हमजा-हमजा' क्या चिल्ला रहा था तो चेतन घबरा गया—कहीं हमज़ाद ने उसके थप्पड़ तो नहीं लगा दिया, चूनी दादा की तरह वह भी तो पागल नहीं हो गया? लेकिन माँ, दादा या बड़े भाई की आँखों में उसे कुछ ऐसा भाव न लगा, जैसा पागलों को देखने वालों की आँखों में होता है। उसका दिमाग़ ठीक सोच रहा था, बल्कि और भी बारीकी से सोच रहा था। तब उसके जी में आयी कि माँ को सब बात सच-सच बता दे। लेकिन वह घबरा न जाय, इसलिए वह चुप रहा और जब बिस्तर से उठने योग्य हुआ तो नीचे अपने कमरे में जा कर (बीमारी के कारण माँ उसे ऊपर दालान में ले आयी थी) उसने अमलियात के उस 'ख़ज़ाने' को छिपा दिया। पहले उसके मन में आयी थी कि वह पुस्तक को

तार-तार कर दे और उसके टुकड़े जा कर चूल्हे में डाल दे, लेकिन फिर अपनी मूर्खता की स्मृति के रूप में उसने उसे सँभाल कर रख लिया।

o

उसकी इसी बीमारी के कारण दीनानाथ जड़िये के बदले हकीम बन गया।

o

हुआ यह कि यद्यपि चेतन का बुख़ार उतर गया था, लेकिन उसके सिर की पीड़ा न गयी थी। वह बहुत कमज़ोर हो गया था या धूप में लगातार खड़े रहने और अपनी छाया पर अपलक दृष्टि जमाये रखने के कारण उसके दिमाग़ पर ज़ोर पड़ गया था, जो भी हो, दूसरे-चौथे उसके सिर में हथौड़े चलने लगते; चलते-चलते उसे चक्कर आ जाता और वह गिरने-गिरने को हो जाता। एक बार वह माँ के साथ बातें करता हुआ देर तक पैरों के बल बैठा रहा, जब वह उठा तो सहसा उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह चकरा कर फ़र्श पर गिर पड़ा।

जब कुछ क्षण बाद उसे होश आया तो उसके सिर के पीछे दर्द हो रहा था। हाथ लगाने पर उसे महसूस हुआ—गुमटा उभर आया है। मुँह पर उसने हाथ फेरा तो पानी से भीगा हुआ था। शायद माँ ने उसके मुँह पर पानी का छींटा दिया था और वह चिन्तित उसके पास बैठी थी। उसे यह बताने के लिए कि घबराने की कोई बात नहीं, वह उचक कर उठ बैठा था। पर उसे बड़ी कमज़ोरी महसूस हो रही थी।

माँ उसे डॉक्टर जीवाराम के भी ले गयी थी, हकीम नबी जान के भी और राजवैद्य दुर्गादास के भी, पर चेतन के सिर-दर्द को आराम न आया था। दवाई खाने से अस्थायी तौर पर आराम आ जाता, लेकिन फिर हफ़्ता-पन्द्रह दिन बाद दर्द शुरू हो जाता और कनपटियाँ ऐसे फटने लगतीं कि दर्द के मारे वह रो पड़ता। तब एक दिन उसके दादा अपने पुराने मित्र श्याम रतन से (जो व्यापार तो सूत का करते थे, लेकिन शौकिया हकीम थे) एक किताब ले आये—'गंजीना-ए-तिब' और उन्होंने चेतन की माँ को बताया कि किताब में सिर-दर्द की अचूक औषधि उन्हें

मिल गयी है। चेतन को सात दिन खरबूज़े के बीजों की खीर खिलायी जाय।

माँ हैरान हुई थी और उसने चेतन द्वारा दादा से पुछवाया था कि खरबूज़े के बीजों की खीर कैसी होती है ? दादा ने पुस्तक से पढ़ कर बताया कि वास्तव में खीर तो चावलों ही की होती है, पर उसे खरबूज़े के बीजों के दूध में पकाया जाता है।

घर में खरबूज़े के बीजों की कमी न थी। निर्जला एकादशी के दिन चेतन की माँ पाँच-दस सेर (जैसा भी हाथ तंग या खुला हो) खरबूज़े मँगा कर दान करती थी। चेतन और उसके भाइयों को भी काफ़ी खरबूज़े खाने को मिलते थे, फिर यजमानों के घर से भी आ जाते थे। उनके बीज फेंके न जाते थे, बल्कि एक मिट्टी की हाँडी में डाल दिये जाते थे। जब काफ़ी इकट्ठे हो जाते तो माँ पीतल की छलनी में डाल, मल-मल कर उन्हें धोती। गूदा छलनी से निकल कर नाली में बह जाता और दूध-से चमकते बीज छलनी में रह जाते। उन्हें वह चारपाई पर कपड़ा बिछा कर धूप में सूखने डाल देती। जब कोई काम न होता, कहीं 'संग-सियापे' जाना होना तो मुहल्ले की औरतें बीजों की नन्हीं-नन्हीं टोकरियाँ साथ ले जातीं, जिनमे थोड़े-से बीजों को एक गीले कपड़े में लपेट लिया जाता। औरतें बातें भी करती जातीं और लकड़ी की छोटी-छोटी चिमटियों से बीज भी निकाले जातीं। चेतन की माँ भी अवकाश के समय अथवा यों कहा जाय कि ऐसे अवकाश के समय, जब वह गली-मुहल्ले में जाती अथवा मुहल्ले की औरतें उसके यहाँ आतीं, बातें करते-करते बीज निकालती। कभी जब घर में हलवा या खीर बनती तो उन बीजों की गिरियाँ उनमें डाली जातीं।

माँ ने उसी दिन शाम को दादा जी के बताये नुस्खे के मुताबिक थोड़ी-सी खशखाश और आटे का चोकर भिगो दिया। घर में इतनी गिरियाँ तो थीं नहीं, इसलिए उसने दूसरे दिन सुबह दो मुट्ठी खरबूज़े के बीज कूँडे में डाले और रात की भीगी खशखाश भी डाल दी और फिर अच्छी तरह कूट-पीस कर, पानी डाल, कपड़े से छान कर उनका दूध निकाला। फोक

को फिर कूँडे में डाल, डण्डे से घोंटा। इस तरह दो-तीन बार घोंटने-पीसने से जब बीजों का सारा दूध निकल गया तो उसने फोक बाहर फेंक दिया और आटे के छान का पानी निथार कर दूध में मिला लिया, फिर आध सेर गाय का दूध रामदित्ते की दुकान से मँगा कर उसमें डाला और उसे आग पर चढा दिया। जब कुछ पक गया तो थोड़े-से बासमती चावल डाले और कुछ देर बाद दो बड़े चमचे शुद्ध घी के और पाँच-छै छोटी इलाइचियाँ पीस कर डालीं। सुबह से माँ इसी में लगी थी। लगभग एक बजे खीर तैयार हुई। चेतन को भूख लग आयी थी। खीर उसे बड़ी स्वादिष्ट लगी—इतनी स्वादिष्ट कि बाद में जब भी उसे याद आती, उसकी सुवास उसके मन-मस्तिष्क में बस जाती।

सात दिन माँ ने उसे खीर खिलायी। और सच ही उसके बाद कभी उसे वैसा सिर-दर्द नहीं हुआ। दीनानाथ को जब इसका पता चला कि उसके दादा के पास ऐसी पुस्तक है, जिसके नुस्खे से चेतन को आराम आया है तो उसने चेतन से अनुरोध किया कि वह दादा से पुस्तक माँगे। चेतन ने पुस्तक माँग ली तो दीनानाथ रोज़ शाम को उसके यहाँ आने लगा। वहाँ बैठा-बैठा वह पुस्तक पढ़ता और नुस्खे नोट करता। कई बार चेतन बोलता और वह नोट करता जाता।

अभी पुस्तक ख़त्म भी न हुई थी कि एक दिन दीनानाथ ने चेतन के दादा को चूरन की एक छोटी-सी शीशी दी। उसने ज़रा-सा चूरन चेतन, उसकी माँ और उसके भाइयों को भी चखाया। चेतन के दादा ने चख कर कहा—"इसमें नौशादर पड़ा है।"

"नौशादर के अलावा इसमें पूरी बीस चीज़ें और पड़ी हैं दादा जी।" दीनानाथ ने गर्व से कहा।

चेतन के दादा ने ज़ोर की डकार ली। "बाई के लिए यह मुफ़ीद[1] लगता है।" उन्होंने कहा।

"हाज़मे का इससे बेहतर चूरन आपको नहीं मिलेगा।" दीनानाथ

---

१. लाभकर

बोला, "चाचा दालचन्द मेरी मदद न करते तो यह बनता ही नहीं। चार दिन लग गये इसे तैयार करने में। अलग-अलग चीज़ें पीसना, फिर मिकदार के मुताबिक तोल कर उन्हें मिलाना। आपको कभी हाज़मे की शिकायत हो तो आप मुझसे कहिए। मैं आपको फ़ौरन बना दूँगा।"

कुछ दिन बाद झमानों की गली में मासी पूरनदेई के बच्चों को काली खांसी ने आ दबाया। जब हकीम-डॉक्टर कुछ न कर पाये (करते भी क्या, जब उनका इलाज कोई लग कर न करे—मुहल्ला ग़रीब और दवा-दारू पर पैसा लगे) तब दीनानाथ ने 'गंजीना-ए-तिब' से नोट किये नुस्ख़े के मुताबिक एक दवा बनायी। छोटी मर्घे वह पंसारी की दुकान से ले आया। बकरे की कलेजी लाया, उसे छुरी से चीर कर उसमें मर्घे रखीं। कलेजी को मिट्टी के बर्तन में रख, ढकने को गीले आटे से बन्द किया और सौ उपलों की आग में पकाया। तब बर्तन का ढकना खोल, कलेजी में से बड़ी सावधानी से मर्घे अलग कीं। उन्हें पीसा। चूरन की पुड़ियाँ बना कर मासी पूरनदेई को दीं कि इसे शहद से बच्चे को चटा दीजिए। काली खाँसी ऐसी मूज़ी होती है कि महीनों परेशान करती है। जब बच्चे को आराम आ गया तो दीनानाथ मुहल्ले का आनरेरी हकीम बन गया। जिसको तकलीफ़ होती, वह सीधा दीनानाथ के पास जाता और दीनानाथ भी उसे दवा बना देता।

इस काम में उसे ऐसा रस मिला कि सुनार का काम उसे अखरने लगा। वह अपने पिता और चाचा के साथ गहनों में हीरे-मोती जड़ता और कुन्दन भी करता, लेकिन जितना भी वक्त उसे मिलता, उसमें तिब की किताबें पढ़ता और रात को दवाइयाँ तैयार करता। लाहौर से उसने तिब्बी पत्रिका मँगानी शुरू की और वहीं से उसे मालूम हुआ कि वह पत्र-व्यवहार से न केवल हिकमत सीख सकता है, बल्कि 'हाज़िक' की परीक्षा भी पास कर सकता है। अगले चार बरसों में अनवरत श्रम से उसने हकीम हाज़िक की परीक्षा ही पास नहीं की, बल्कि उसमें अव्वल रहा और उसने स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया। परीक्षा पास करने के दूसरे ही दिन (यद्यपि दुकान अभी जड़ियों ही की थी) उसने उसके आगे बाजार के

बीचों-बीच एक बड़ा भारी बोर्ड लटका दिया, जिस पर अंग्रेज़ी-उर्दू दोनों में लिखा था :

हकीम हाज़िक, हकीम लाला दीनानाथ (गोल्ड मेडेलिस्ट)

लेकिन जड़ियागीरी और हिकमत दोनों साथ-साथ न चल सकीं। दुकान में जगह ही न थी। सामने दो तिपाइयाँ ठल्लूराम और दीनानाथ की थीं, पीछे चाचा दालचन्द बैठते थे। मरीज़ के बैठने तक को जगह न थी। फिर दो-तीन बरस से जड़ाऊ गहनों का रिवाज कम हो रहा था। तब दीनानाथ ने रायज़ादा खुशवन्त राय के मकान की वे दो बैठकें किराये पर ले ली, जो बाजियाँ वाला बाज़ार में खुलती थीं और मतिब (औषधालय) कायम कर दिया।

चेतन जब अपनी शादी पर आया था तो दीनानाथ के मतिब में भी गया था। एक बैठक को पर्दे के द्वारा दो हिस्सों में विभक्त किया गया था। बाहर हकीम साहब की मेज़, दवाइयों का छोटा-सा बक्सा और किताबों का रैक था। पर्दे के अन्दर एक बेंच था, जिस पर दरी और चादर-तकिया लगा था। वहीं खूँटी पर स्टेथोस्कोप भी टंगा था।....'हकीम को क़ारूरे और नब्ज़ से मतलब,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'स्टेथोस्कोप से यह क्या करता है ?' पर तब उसने सोचा था कि शायद साथ-ही-साथ दीनानाथ डॉक्टरी भी पढ रहा है। उसने अनन्त से यह बात कही थी तो वह ज़ोर से हँसा था। "छाती के बदले पेट पर स्टेथोस्कोप लगाता है दीना," अनन्त ने कहा था, "साला नम्बरी फ्रॉड है।" पर अनन्त की बात पर चेतन को विश्वास नहीं आया। दीनानाथ की मेधा और दया-नतदारी में उसका अटूट विश्वास था।

दूसरी बैठक में दवाख़ाना था, जिसका चार्ज दीनानाथ के पिता लाला ठल्लूराम ने ले लिया था। एक सुबह चेतन बाज़ार से गुज़रा तो उसने लाला ठल्लूराम को बैठक में झाड़ू लगाते पाया। लाला ठल्लूराम मतिब के चपरासी भी थे, काउण्टर क्लर्क भी और एकाउण्टेण्ट भी और दीनानाथ 'हकीम साहब' हो गये थे। ठल्लूराम भी अपने बेटे को 'हकीम साहब' ही कह कर पुकारते थे।

लेकिन एक साल से ज़्यादा मतिब न चल सका। बात यह थी कि दीनानाथ ने दिल्ली के हमदर्द दवाखाना और लाहौर के कविराज रामदास की नकल में मतिब खोला था। वह यह भूल गया कि दिल्ली-लाहौर और जालन्धर में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। फिर मुहल्ला कल्लोवानी, चौक चड्ढियाँ, रस्ता बाज़ार, कोट पश्का, चौक क़ादेशाह और चौक ख़रादियाँ के लोग, जिनके बल पर दीनानाथ मतिब चलाना चाहता था, प्रायः हकीम नबी जान के अभ्यस्त थे—हकीम से नुस्खा लिया और पंजपीर के जीतू अत्तार से बनवा लिया। हकीम नबी जान शाही हकीम थे। कई रियासतों से मासिक वेतन पाते थे। अमीरों से चोखी फ़ीस लेते थे, लेकिन सुबह-शाम दो घण्टे ग़रीबों को मुफ़्त देखते और नुस्खे देते थे। वे लोग, जो बरसों से वहाँ जाने के अभ्यस्त थे, हकीम दीनानाथ से नुस्खा ले कर महँगी दवाई क्यों लेते। धीरे-धीरे मुहल्ले वालों को शिकायत होने लगी कि दीना साला ठग है....कि आख़िर सुनार ही है न और सुनारों के बारे में कहावत प्रसिद्ध थी कि माँ के लिए भी ज़ेवर बनायेंगे तो उसमें से सोना रख लेंगे। यह कहावत मुहल्ले में हरेक की ज़बान पर आ गयी। इसके अतिरिक्त मतिब खुलते ही मुहल्ले में कोई दीनानाथ का भाई बन गया, कोई चचा, कोई ताया और उससे उधार लेना और न चुकाना मुहल्ले वाले अपना अधिकार समझने लगे। फलस्वरूप साल भर ही में दीनानाथ को मतिब उठा देना पड़ा। कारण यह भी हुआ कि उस घाटे को पूरा करने के लिए उसने 'गंजीना-ए-तिब' क़िस्म की किसी पुस्तक से पानी का सिरका बनाना सीखा और काफ़ी मात्रा में बना कर असली सिरके से सस्ता बेचा। आख़िर पकड़ा गया। बदनामी हुई सो हुई, मतिब भी बन्द कर देना पड़ा।

और अब दीनानाथ उसी पुरानी दुकान में बैठता था। उसके पिता और चाचा लाल बाज़ार की एक दुकान में वही पुराना काम करते थे। दुकान दीनानाथ का सात-आठ बरस का लड़का खोलता और वही उसकी सफ़ाई-उफ़ाई करता था और हकीम साहब दुकान खुल जाने के आध घण्टे बाद आ कर बैठते थे।

चूंकि दीनानाथ तिब पर फ़िदा[1] था और अपने पिता के लाख ज़ोर देने पर भी उसे फिर जड़िया बनना स्वीकार न हुआ था, इसलिए अब के दीनानाथ ने बोर्ड लगवाया तो अपने नाम के आगे 'फ़िदा-ए-तिब' की उपाधि जोड़ ली।

फ़िदा-ए-तिब हकीम हाज़िक, हकीम लाला दीनानाथ
(गोल्ड मेडेलिस्ट)

पर अनन्त हमेशा उसे 'मामा-ए-तिब' याने तिब का मामा कह कर पुकारता था।

१. न्योछावर।

सात

"कहो भाई चेतन, कब आये लाहौर मे ?"

अपने विचारों में मग्न चेतन चला जा रहा था कि अचानक रुक गया। बायीं ओर अपनी पुरानी दुकान पर छोटी-सी मेज़-कुर्सी लगाये और कमीज़ पायजामे की जगह (चेतन को आश्चर्य हुआ) सूट-बूट पहने, हकीम दीना-नाथ अपनी मक्खी-सी मूँछों में मुस्करा रहे थे।

'सुना बे मामा-ए-निब्र, क्या फ़ॉड चल रहा है आजकल ?' अनन्त उसके साथ होता तो यही सवाल करता। अनन्त की बात याद आते ही चेतन के मन में आया, कहे, 'कहिए हकीम साहब, सुना है आपके लड़का हुआ है, मुबारक हो, अबके इन मक्खी सी मूँछों को भी छुट्टी दे दीजिए।' ....लेकिन उसका मन किसी तरह के भी मज़ाक को न हुआ। चुपचाप वह दुकान के साथ लगी लकड़ी की सीढ़ी चढ़ गया।

पहले जब दीनानाथ अपने पिता और चाचा के साथ इसी दुकान पर गहनों की जड़ाई का काम करता था तो वहाँ बैठने को टाट बिछे रहते थे और सीढ़ी-वीढ़ी कुछ न थी। चेतन और अनन्त जब पहले स्कूल अथवा बाद में कॉलेज से आते हुए वहाँ रुकते थे तो वहीं टाट पर बैठ जाते थे और टाँगें नीचे लटका लेते थे, पर अब तो टाट की जगह मेज़-कुर्सी और

बेंच सजा था, इसलिए दुकान पर चढ़ने के लिए भी लकड़ी की एक सीढ़ी लगी थी।

दीनानाथ से हाथ मिलाता हुआ चेतन सीढ़ी चढ़ कर उसके सामने दीवार से लगी बेंच पर जा बैठा और उसके प्रश्न का उत्तर न दे कर उसने केवल इतना कहा :

"मुबारक हो हकीम साहब, अभी अनन्त ने बताया कि आपके लड़का हुआ है।"

"आप ही को मुबारक हो, आप ही को मुबारक हो," कहते हुए दीनानाथ का गोरा रंग किंचित लाल हो गया और उसकी मुस्कान लज्जा से रँग गयी। लेकिन चेतन को ख़ुशी नहीं हुई। उसने देखा—दीनानाथ के कल्ले धँस गये हैं; बाहर को निकली पड़ती बड़ी-बड़ी कौड़ियों-सी आँखों के पपोटे भारी हो गये हैं; गभिन, लम्बी मूँछें, जिन पर उसे कभी नाज़ था कि नीबू टिक सकता है और जो दो बरस पहले तक पम्प-शू के फीते-ऐसी थी, अब उसकी नाक के नीचे मक्खी-ऐसी चिपकी हैं। उसकी मुस्कान ज़रा फैली तो उसकी नाक के नीचे दोनों ओर ठोडी तक लकीरें बन गयीं—और अभी उसकी उमर पच्चीस वर्ष की भी नहीं थी।

"कहिए कैसा चल रहा है?" कदरे रुक कर चेतन ने कहा।

"भगवान की मेहरबानी है," मुस्कान को किंचित समेट कर मेहरबानी के 'बा' को लम्बा करते हुए दीनानाथ ने कहा और फिर एक लम्बी साँस अचानक उसके होंटों से निकल गयी, "अच्छे हकीम के लिए यह जगह ठीक नहीं है।"

"जिसके हाथ में शफ़ा है," चेतन बोला, "उसके लिए तो सभी जगह बराबर है। लोग दिल्ली-दक्खिन से आ कर उससे इलाज करायेंगे, फिर चाहे वह रेगिस्तान या जंगल में हो, गाँव या शहर में अथवा किसी तकिये या कुएँ की जगत पर।"

"किसी के यहाँ मरीज़ आयेंगे, उससे इलाज करायेंगे, उन्हें आराम आयेगा तभी तो उसकी मशहूरी होगी और लोगों को पता चलेगा कि उसके हाथ में शफ़ा है। यहाँ एक दिन मरीज़ मेरे यहाँ आता है, दूसरे दिन

नबी जान के और तीसरे दिन वैद्य दुर्गाप्रसाद के। फिर जो आता है, वह मुफ़्त दवा चाहता है," दीनानाथ कुछ चिढ़ कर बोला।

"मशहूर होने के लिए मुफ़्त दवा बाँटना बड़ा ज़रूरी है," चेतन ने कहा, "कुछ ऐसी गोलियाँ हों, जो सस्ती हों और मुफ़्त दी जा सकें—यही हाज़मे की, कब्ज़ दूर करने की, जुलाब रोकने की, वग़ैरह-वग़ैरह। कीमती नुस्खे लोग अत्तार से बनवायें। हकीम नबी जान...."

"अरे भई मैं यह सब जानता हूँ....लेकिन मुझसे शुरू ही में यह ग़लती हो गयी कि मैंने मतिब अपने मुहल्ले मे खोला। लोग सेरों शर्बत-बनफ़शा और अर्क गाओज़बान पी गये और किसी साले ने एक पैसा नहीं दिया, ऊपर से गालियाँ देते है।"

"तुम्हारे जैसी प्रतिभा वाले आदमी को लाहौर में अड्डा जमाना चाहिए," चेतन ने रद्दा जमाया, "और विज्ञापन के बल पर अपनी दवाओं को भारत भर में प्रसिद्ध करना चाहिए। अब काली खाँसी की ही तुम्हारी दवा कैसी अचूक है...."

दीनानाथ ने केवल एक लम्बी साँस ली।

और चेतन ने कविराज रामदास की कहानी सुनायी कि कैसे उन्होंने कविराज की डिग्री ली, कैसे विज्ञापन के बल पर अपने दवाखाने को भारत भर में प्रसिद्ध कर दिया, कैसे 'विवाह के भेद' लिख कर उसकी लाखों प्रतियाँ बेच डालीं और कैसे उनकी पुस्तक पढ़ने वाले उसे पढ़ते ही उनके दवाख़ाने जा पहुँचते है और उल्टे उस्तरे से हजामत बनवा आते हैं।

"तुम्हारे पास ('आप' का तकल्लुफ़ चेतन ने छोड़ दिया) बड़ी प्रतिभा है। तुम्हारा ज्ञान कविराज की अपेक्षा कही ज्यादा है, लगन और निष्ठा की कमी तुम्हारे यहाँ नहीं। तुम यहाँ पड़े सड़ रहे हो। जालन्धर तुम्हारे लिए बहुत छोटा है। तुम लाहौर चलो और वहाँ मतिब जमाओ।"

हकीम दीनानाथ की बड़ी-बड़ी आँखें फैल गयीं। पल भर वे सामने शून्य में देखते रहे—उनका कोई सपना जैसे वहाँ साकार हो गया हो। फिर वे उठ कर अलमारी से एक मसौदा उठा लाये।

"मैंने भी एक किताब लिखी है—विवाहित जोड़ों के लिए। तुम देखो,

कविराज रामदास की पुस्तक 'विवाह के भेद' के मुकाबिले में इसका स्टाइल कितना अच्छा है और इसमें दी गयी जानकारी कितनी ज़्यादा है।"

"दीने की किताब छप गयी तो तिबी दुनिया में तहलका मच जायगा।"

चेतन ने पलट कर देखा। दीनानाथ के चाचा दालचन्द अपनी बड़ी-बड़ी आँखों, नींबू-टिकाऊ मूँछों और गोल-गुलगोथने, मासूम चेहरे के साथ उसके निकट खड़े थे।

'यह उजबक कहाँ से आ गया,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, पर प्रकट उसने हाथ जोड़ 'नमस्ते' की और पूछा, "कहिए चाचा दालचन्द कैसे मिज़ाज हैं।"

"अरे हमारे मिज़ाज कभी खराब हुए हैं, जो आज होंगे।" चाचा दालचन्द हँसे और उन्होंने मूँछों को ताव दिया, "सुबह तड़के उठते हैं आज भी सौ डण्ड-बैठक लगाते हैं, दिन भर डट कर काम करते हैं, रात को गहरी नींद सोते हैं। 'बनास्पति' हम छूते भी नहीं, घर की गाय का दूध और घी इस्तेमाल करते हैं।"

और एक पांव दुकान पर रखे, अपनी जांघ को खुजलाते हुए वे किसी बुज़ुर्ग की तरह (यद्यपि उनकी उमर दीनानाथ से पाँच-छै बरस ही ज़्यादा थी) वनस्पति घी के नुकसान और शुद्ध दूध-घी के लाभ बताने लगे।

०

चाचा दालचन्द शुरू से ऐसे थे। दीनानाथ मिडिल पास करके दुकान पर बैठ गया था, पर चेतन और अनन्त का यह नियम था कि जिस दिन वे महल्ला मेंहद्दुआँ, मिट्ठा बाजार और पापड़ियां से हो कर घर को आते, कुछ देर तक दीनानाथ के पास ज़रूर बैठते। दीनानाथ ने पढ़ाई छोड़ दी थी, पर मुहल्ले के लड़कों की (विशेषकर विज्ञान की) पुस्तकें ले कर पढ़ा करता था। चेतन और अनन्त को विज्ञान का अभी उतना ज्ञान न था, अभी साइंस की पढ़ाई शुरू न हुई थी, तभी एक शाम दीनानाथ ने उन्हें विज्ञान का एक चमत्कार दिखाया। उसने दो छोटे-छोटे गिलास तिपाई पर रखे, जिनमें सफ़ेद पानी-ऐसा कुछ था। फिर एक सफ़ेद काग़ज़ ले कर एक गिलास में भिगोया। वह लाल हो गया। उसका दूसरा सिरा उसने

दूसरे गिलास में डाला, वह नीला हो गया। चेतन हैरान देखता रह गया। किसी सफ़ेद तरल पदार्थ में सफ़ेद कागज़ का रंग कैसे बदल सकता है, यह उसकी समझ में न आया।

फिर एक दिन उसने दोनों को क्रिस्टल (रवे) बना कर दिखाये। चेतन ने उससे पूछा कि यह सब उसने कहाँ से सीखा है।

उत्तर दालचन्द ने दिया—"यह सब साइंस के करिश्मे हैं। दीना इतनी उमर में ही ऐसे तजरुबे कर सकता है कि तुम्हारे साइंस-टीचर भी न जानते होंगे। बड़ा हो कर यह बहुत बड़ा साइंसदान बनेगा।"

और रसायनशास्त्र से क्या हो सकता है और कैसे दीना एक दिन ताँबे से सोना बना देगा, इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख उस दिन चाचा दालचन्द ने किया था।

फिर जब दीनानाथ जादू के खेल दिखाने लगा तब चाचा दालचन्द जादू पर भाषण देने लगे। उनकी बात तो दूर, कभी-कभी ठल्लूराम तक बीच में कूद पड़ते। जब दीनानाथ दवाइयाँ बनाने लगा तो दीनानाथ के पिता और चाचा औषधियों के बारे में उन दोनों का ज्ञान-वर्धन करने लगे। ठल्लूराम उतनी टाँग न अड़ाते, जितनी दालचन्द; लेकिन यह बीमारी दोनों को थी और जब दीनानाथ की अपेक्षा उन दोनों की बातें चेतन को सुननी पड़तीं तो वह बड़ा झुँझलाता। आख़िर एक दिन चिढ़ कर उसने अनन्त से कहा, "दीना तो ख़ैर हिकमत पढ़ता है, पर ठल्लूराम और दालचन्द तो बिन-पढ़े ही हकीम बन गये हैं!"

"मैं इन सालों को ठीक करता हूँ।" अनन्त ने कहा था।

उन दिनों वे एफ़० ए० में पढ़ते थे। एक दिन दोनों कॉलेज से आते समय पूर्ववत दीना की दुकान पर बैठ गये। दो-एक मिनट तक इधर-उधर की बातें करने के बाद अनन्त ने कहा, "यार दीने बवासीर का कोई इलाज है?"

दीनानाथ ने एक पुस्तक देख कर बड़ा लम्बा नुस्ख़ा पढ़ सुनाया।

तब काम छोड कर ठल्लूराम अपनी सस्ती ऐनक की कमानी को (जो काम करते वक्त आगे खिसक गयी थी) नाक के बाँसे पर ठीक करते हुए

बोले, "एक साहूकार को ख़ूनी बवासीर थी और लगातार ख़ून जाने से वह बेहाल हो गया था। इर्द-गिर्द के सभी हकीमों, वैद्यों, का इलाज किया, लेकिन कुछ फ़ायदा न हुआ। एक दिन बड़े ही ज़रूरी काम से वह दूसरे गाँव को जा रहा था कि रास्ते में एक रहट पर कुछ सुस्ताने को रुका। पास के खेत में गन्ने की फ़सल उगी थी और खूब लम्बे-लम्बे गन्ने लहरा रहे थे। जाट उसका आसामी था। वह दस-बीस गन्ने तोड़ लाया और उसने साहूकार के आगे रख दिये। कुछ तो साहूकार को प्यास लगी थी और कुछ गन्ने बड़े मीठे और रसीले थे, साहूकार सब-के-सब चूस गया। तब जाट ने कहा कि वह पूला भर गन्ने तोड़ रखेगा और वापसी पर साहूकार के साथ कर देगा।

"उस शाम साहूकार को ख़ून नहीं आया। दूसरे दिन उसने गन्ने चूसे, लेकिन ज्यादा चूसने से होंटों के कोने छिल गये थे, इसलिए पाँच-दस चूस कर उसने छोड़ दिये। उस दिन भी उसकी बीमारी को आराम रहा। और उसकी हैरत की कोई हद न रही, जब उसकी बवासीर एकदम ठीक हो गयी।

"एक दिन कस्बे का हकीम किसी मरीज को देखने गाँव में आया। साहूकार उसका बहुत इलाज करा चुका था। मरीज़ को देख कर वह साहूकार से भी मिलने आया और सलाम-दुआ के बाद उसका हाल-चाल पूछा।

"'—मेरी तकलीफ़ तो दूर हो गयी।'—साहूकार ने, जो इन थोड़े दिनों ही में भला-चंगा हो गया था, बड़े उल्लास से कहा।

"'—कैसे ?'

"'—गन्ने चूसने से।'

"हकीम के माथे पर तेवर पड़ गये। क्षण भर तक वह सोच में ग़र्क रहा। फिर उसने कहा—'हाँ एक तरह का गन्ना चूसने से ख़ूनी बवासीर दूर हो सकती है।'

"'—तो आपने हमें बताया क्यों नहीं।'—साहूकार ने शिकायत की।

"'—इसलिए कि वैसे गन्ने आपको मिल सकते हैं, इसकी कोई उम्मीद

न थी।"—ठल्लूराम ने बड़े नाटकीय अन्दाज़ में हकीम के स्वर की नकल की।

"'—गन्ने कैसे भी क्यों न हों, ज़रूर मिलते। हर किस्म का गन्ना यहाँ पैदा होता है।'—सेठ ने कहा।

"'—चलिए तो ज़रा उस रहट पर चलें, जहाँ से आपने गन्ने चूसे।' —हकीम बोला।

"तब उत्सुकता से भरा साहूकार दो-एक दूसरे गाँव वालों के साथ उस खेत पर गया। हकीम ने जाट से उस जगह को खोदने के लिए कहा, जहाँ से गन्ने उखाड़े गये थे। सब हैरान रह गये, जब एक मरा हुआ फनियर साँप वहाँ से दबा निकला। जाट ने बताया कि ओसारे में एक दिन साँप निकला था, जिसे मार कर वहाँ दबा दिया गया था।

"तब हकीम ने साहूकार से कहा—'आप खुशकिस्मत हैं सेठ जी, आपको इस धरती के गन्ने चूसने को मिले। बवासीर का यह इलाज किताब में लिखा है, आप क़स्बे में आइएगा तो मैं आपको दिखा दूँगा। काला फनियर साँप दो महीने तक कहीं दबा रहे और उस ज़मीन में गन्ना उगाया जाय तो उसे चूसने वाले की सख़्त-से-सख़्त ख़ूनी बवासीर को आराम हो जाता है। मैं आपको यह इलाज बता भी देता तो ऐसा गन्ना कहाँ से मिलता?'"

वह किस्सा सुना कर ठल्लूराम ने बड़े गर्व से अपने बेटे और उसके मित्रों की ओर देखा और धोती को जरा उठा कर चौकी के ऊपर से कूद, कुछ परे जा कर नाली पर लघुशंका के लिए बैठ गये।

तब चाचा दालचन्द ने मूँछों पर ताव दिया, "लेकिन मैं बवासीर का इससे भी आसान इलाज बताता हूँ।"

चेतन ने कोहनी से अनन्त को ठहोका दिया।

दालचन्द बोले, "हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा आये। कड़वी मूली को बिना छीले, धो कर, चार भागों में बाँट, नमक लगा, पत्तों के बल उल्टा लटका दो। जब पानी निकल जाय तो खाओ। हफ़्ता भर खाने से ख़ूनी-से-ख़ूनी बवासीर को आराम आ जायेगा।"

"अपनी बवासीर का इलाज तुमने ऐसे ही किया था?" अनन्त ने

किताबें उठा कर नीचे बाज़ार में खड़े होते हुए कहा ।

"तेरे बाप का किया था ।" दालचन्द गरजे और एक वज़नी गाली उन्होंने अनन्त की ओर फेंकी ।

"अपनी माँ का किया होगा, मेरे बाप को तो कभी यह शिकायत नहीं हुई ।" और बिना रुके, भागने को तैयार होते हुए अनन्त ने कहा, "माईयवा एक सुनार हिकमत पढ़ने लगा कि सारे-का-सारा कुनबा ही हकीम बन गया ।"

"आ तेरी माँ की...." पास पड़ी निहाई उठा, चौकियों के ऊपर से छलांग लगा कर अनन्त की ओर गाली का पत्थर फेंकते हुए, दालचन्द बाज़ार में कूदे । लेकिन अनन्त इस बीच में बहुत दूर निकल गया था और बिना पीछे को देखे सरपट भागा जा रहा था । कुछ दूर उसके पीछे भागे जा कर गालियाँ देते और हाँफते चाचा दालचन्द वापस लौट आये ।

हरलाल पंसारी की दुकान पर रुक कर चेतन और अनन्त देर तक ठहाके लगाते रहे ।

•

दालचन्द शुद्ध घी के लाभ बता रहे थे और चेतन एकटक उनकी ओर देख रहा था । उसे सदा ऐसे आदमियों से ईर्ष्या होती थी, जो सुख-दुख को समान रूप से ग्रहण कर, जो भी सामने आये, उसे विधि का विधान समझ, सिर-माथे ले लेते हैं । जिन्हें न महत्वाकांक्षा है, न स्पर्धा । जो थोड़े में सन्तोष कर, आराम से खाते-पीते, सोते और समय आने पर पके फल-से झड़ जाते हैं । चाचा दालचन्द की आँखों में चेतन को सदा कुछ अजीब-सा, मूर्खता की सीमाओं को छूता हुआ, भोलापन लगा था । और चेतन को इस भोलेपन से भी कभी-कभी ईर्ष्या हो आती थी । इस भोलेपन के कारण ही एक विचित्र मूर्खता-भरा आत्म-विश्वास उनमें था । उनसे बेहतर भी कोई सोच सकता है, इसे दालचन्द कभी न मान पाते । अपनी बात की सचाई में उन्हें अटूट विश्वास था । और वे झील के पानी पर तैरते हुए ऐसे फूल-से थे, जो न झील की गहराइयों को जानता है, न आकाश की बुलन्दियों को, जो हँसता-मुस्कराता बहता चला जाता है । फिर कोई लहर आती है

और उसे डुबा देती है और वह उसी तरह मुस्कराता हुआ डूब जाता है।

दालचन्द को उसने जब भी देखा था, इसी तरह खिले-माथे देखा था। उनके अन्तर में जैसे झंझा-झक्कड़ का गुजर ही न था। एकरस धीमी-धीमी बयार जैसे वहाँ रमकती रहती थी। अनन्त जब उन्हें परेशान करता तो फिर दोनों कुछ दिन तक पापड़ियाँ बाज़ार के बदले लाल बाजार की ओर से हो कर आते। दस-बारह दिन बाद, जब वे फिर आ कर दीनानाथ के पास बैठते तो दालचन्द सब कुछ भूल चुके होते। वे उन्हें 'उजबक' के नाम से याद करते, पर कई बार चेतन को उनके स्वभाव की इस सादगी से ईर्ष्या भी हो आती।

शुद्ध घी के लाभ और 'बनास्पति' के दुर्गुण बता कर दालचन्द ने कहा, "अब मुझे शुद्ध घी से चुपड़ी गर्म-गर्म रोटी पर शक्कर डाल कर खाने की आदत है। सर्दियों में लगातार मैं घी-शक्कर खाता हूँ...."

"बुज़ुर्गों ने कहा भी है"—सामने की दुकान पर बैठे देसराज जड़िये ने काम छोड़ कर कहा, "घी खाइए शकर से, दुनिया खाइए मकर से।"

"ख़ैर, हम दुनिया को मकर से खायें-न-खायें—अपनी मेहनत की कमाई खाते हैं—पर घी शक्कर से ज़रूर खाते हैं।" दालचन्द बोले।

और उन्होंने अपनी बात का तार पकड़ा, "हाँ तो मैं कह रहा था कि मुझे शुद्ध घी से चुपड़ी गर्म-गर्म रोटी पर शक्कर रख कर खाने की आदत है। खाना खाने के बाद उसी से मुँह मीठा करता हूँ। पिछले दिनों मैं अपने एक सम्बन्धी के यहाँ फगवाड़ा गया। अब क्या बताऊँ, जब हम खाना खाने लगे तो मैंने कहा कि ज़रा आख़िरी रोटी पर एक चम्मच घी रख कर शक्कर डाल दीजिएगा।

"खाना ख़त्म करके जब शक्कर वाली रोटी का एक ग्रास मैंने तोड़ा तो जाने कैसा लगा। सारे खाने का मज़ा किरकिरा हो गया। जी ऊपर को आने लगा। मैंने पूछा, 'यह घी कैसा है?'

"'शुद्ध बनास्पति।'

"और नतीजा यह कि अब रोटी पर घी डाल कर शक्कर रखते ही फगवाड़ा में चखे बनास्पति घी की याद आ जाती है और जी मिचलाने

लगता है।"

"अरे भाई एक दिन बनास्पति सभी खायेंगे; जब आदमी को खाना नहीं मिलेगा तो गाय-भैंस को कौन खिलायेगा।" देसराज ने वहीं से कहा, "हमने तो अभी से बनास्पति की आदत डाल ली है।"

"तब तक हम यहाँ नहीं रहेंगे," दालचन्द ने मूँछों के बाग़ में दाँतों का मोतिया बिखेरते हुए कहा।

"तुम्हारी ज़िन्दगी में होगा, तुम्हारी ज़िन्दगी में।" देसराज अपनी दुकान के तख्ते पर खड़े हो कर अँगड़ाई लेते हुए, औलियाओं के-से अन्दाज़ में बोले।

"अच्छा भाई चेतन ख़ुश रहो!" चाचा दालचन्द ने देसराज की बात को सुनी-अनसुनी कर चेतन की पीठ थपथपायी, "यहाँ आते हो तो कभी उधर भी दर्शन दिया करो।"

और वे गालों के सेब खिलाते, अलमस्त चल दिये।

o

दालचन्द के जाने के बाद दीनानाथ ने पुस्तक खोली। और बोले, "मैंने इसका नाम रखा है—'शादी : ख़ाना-आबादी[1] या बर्बादी।'

लेकिन चेतन उठ खड़ा हुआ। शादी की समस्या पर कुछ भी सुनने को उसका मन न था—"देखो दीनानाथ, मैं कल आऊँगा और इत्मीनान से सुनूँगा। अभी मैं एक-दो मित्रों से मिलने जा रहा हूँ।"

और उसने हाथ बढ़ा दिया।

हकीम दीनानाथ भी उठे। उसके हाथ को दोनों हाथों में ले कर बड़ी गर्मजोशी से दबाते हुए और मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, "तो कल ज़रूर आना, भूलना नहीं।"

निमिप भर के लिए चेतन की निगाहें उनकी नाक के दोनों ओर ठोड़ी तक खिंच आने वाली लकीरों पर अटक गयीं, फिर उसने कहा, "नहीं, नहीं, ज़रूर आऊँगा।"

और वह दुकान से नीचे उतरा और उसने चलते-चलते एक 'नमस्कार' देसराज की ओर भी फेंक दिया।

---

१. ख़ाना = घर। ख़ाना-आबादी = घर की आबादी।

आठ

कुछ आगे तुनके धोबी की दुकान के इधर ताले-कुंजियाँ बनाने वालों की दुकानें थीं। वे लोग साँचों में पिघला हुआ लोहा डाल कर कुंजियाँ-ताले बनाते थे। उधर लोहार का साथी छोकरा धौंकनी से चीड़ के कोयलों में हवा करता, जिन पर रखी कुठाली में धातु पिघलती, इधर लोहार साँचे को तैयार करता। जब साँचा तैयार हो जाता तो वह उसके ऊपर वाला हिस्सा उठा कर नीचे वाले हिस्से के मुँह से रेत-मिली मिट्टी हटाता। साँचे के बीच में कुंजी की आकृति खुदी होती। वह लोहे की आर (सुम्भी) से साँचे के मुँह से कुंजी तक एक लकीर-सी खींच देता। तब ऊपर का हिस्सा भी इसी तरह ठीक कर रूई के फाहे में मिट्टी के तसले से कुछ मसाला ले कर साँचे पर छिड़क, पेच कस देता और उसे निहाई के साथ खड़ा कर पैर के दबाव से रोक, सँड़सी से कुठाली उठा कर पिघली धातु उसमें उँड़ेल देता। साँचे से धुआँ उठने लगता और जले मसाले और रेत की बू फैल जाती। कुठाली को वापस अँगीठी पर रख, उसमें और धातु के टुकड़े डाल, वह साँचे को तख्ते पर रखता, उस पर दो-एक मुक्के मार, साँचा खोल कर सधे हुए हाथों से ऊपर का हिस्सा उठा लेता। निचले भाग में ढली हुई कुंजी चमकती, जिसके सिरे से धातु की एक लकीर साँचे के मुँह तक आते हुए धातु का एक गुमटा-सा बन जाती। तब साँचे के दोनों ओर कुछ हल्के-

से ठकोर कर वह उसे दोनों में ले ऐसे उलटता कि कुंजी बाहर जा गिरती और साँचे की रेत ज़रा भी न हिलती। तब सँड़सी से कुंजी को उठा कर वह पानी से भरी मिट्टी की छोटी-सी नाँद में डुबोता। शूँ की आवाज़ होती। धुआँ और लोहगन्ध उठ कर नथुनो में भर जाती। फिर वह छेनी और हथौड़े की एक ही चोट से धातु का गुमटा अलग कर देता, नयी बनी कुँजी को दायीं ओर कुजियों के ढेर पर फेंक देता और साँचे से मसाला मिली-जुली रेत अलग कर उसे फिर सान कर साँचे में भरता।

न जाने इस प्रक्रिया में क्या आकर्षण था कि चेतन जब भी स्कूल या कॉलेज से अकेला आता, वहाँ रुक कर कितनी ही देर तक ताले-कुजियाँ बनते देखता रहता। कभी कुंजियाँ बन चुकी होतीं और लोहार उनके ढेर से एक के बाद एक कुजी उठा कर, उसे रेती से साफ़ करता। उसके हाथ मशीन की गति से चलते और चेतन मन्त्रमुग्ध-सा देखा करता। कभी वह ताले का ऊपर और नीचे का हिस्सा जोड़ता। बार-बार की देखी हुई प्रक्रिया उसे हर बार नयी लगती। साँचे में पड़ी, नयी-ढली चमकती कुजी उसे सदा नवजात शिशु-सी लगती और जब लोहार साँचे के मुँह पर बन जाने वाले गुमटे और कुंजी के बीच की पतली-सी पत्ती को काटता तो उसे लगता, जैसे उस शिशु की नाल कट रही है।

चेतन हकीम दीनानाथ की दुकान से चला तो मन-ही-मन उसने मनाया कि लोहार कुजियाँ बना रहा हो। वह कुछ क्षण खड़ा वह सब देखे और उसके नथुनों में वह अजीब-सी, जली रेत और जलते लोहे और पानी की मिली-जुली गन्ध भर जाय।

और सच ही लोहार साँचा तैयार कर रहा था और अँगीठी पर कुठाली में पिघली धातु लाल हो रही थी। चेतन वहाँ रुका ही था कि अनन्त ने उसके कन्धे पर ज़ोर से हाथ मारा।

"सुना वे, हो आया मामा-ए-तिब के ?"

"तुम तो लाल बाज़ार की तरफ़ गये थे।"

"तीरथ से मिलने का इरादा था चौक सूदाँ में, वह मिला नहीं तो सोचा बिल्ले से मिल लें, वह आजकल बोहड़ वाले बाज़ार में चौबारा ले

कर रहता है। वह भी नहीं मिला, तब इधर से चला आया। दीना तुम्हें मिला ?"

"हाँ।"

"क्या हाल-चाल है उसके ? मूँछों की सफ़ाई उसने करायी कि नहीं ?"

"करायी तो नहीं, पर यही हाल रहा तो जल्दी ही करा लेगा।"

अनन्त हँसा—"क्यों ?"

"हाल मुझे हकीम हाज़िक हकीम दीनानाथ गोल्ड मेडलिस्ट का कुछ ख़स्ता ही लगा।"

"अब वह चाहता है फ्रॉड से पैसा कमाना," अनन्त बोला, "फ्रॉड से प्रैक्टिस तो क्या चलेगी, एक दिन जेल में चला जाय तो बड़ी बात नहीं।"

"क्यों ?"

"अरे जब से वाजियाँ वाला बाज़ार का मतिब फ़ेल हुआ है तो 'शेरा एण्ड कम्पनी' की देखा-देखा दीना कई तरह की जाली कम्पनियों के नाम से विज्ञापन देता है और जाली माल बेचता है। प्लांचिट,[1] नकली कैमरे, घड़ियाँ और न जाने क्या-क्या....वह समझता है, किसी को मालूम नहीं। एक-न-एक दिन पकड़ा जायगा तो सारी चालाकी निकल जायगी....हमारी तो बोल-चाल बन्द है, नहीं मैं उससे कहता कि साले चार दिन तुझे हिकमत पास किये हुए हैं, आठ-दस साल प्रैक्टिस कर, अपने-आप मशहूर हो जायगा। दो ही दिन में ठाकुरदत्त मुल्तानी बन जाय, ऐसा कहाँ का जीनियस है तू ! यह सब फ्रॉड करना था तो हिकमत पढ़ने की क्या ज़रूरत थी !"

और अनन्त हँसा।

"मैंने तो उसे सलाह दी है कि वह लाहौर चल कर मतिब खोले।

१. लकड़ी का एक पान की शक्ल का यन्त्र, जिसके माध्यम से आवाहित आत्माएँ अपनी बात लिखाती हैं।

इतने नुस्खे उसे याद हैं, तिब का उसे इतना ज्ञान है, ज़रा-सा विज्ञापन करे तो कविराज रामदास जैसा प्रसिद्ध हो जायगा। कविराज भी ऐसे ही लाहौर में आ कर जमे थे।"

"कविराज के कितने बच्चे हैं ?" सहसा अनन्त ने पूछा।

निमिष भर को, इस सवाल के बेतुकेपन के कारण, चेतन चुप रह गया। फिर उसने कहा, "लड़का तो उनके एक ही था। अब चौदह वर्ष के बाद दूसरा हुआ है।"

"दूसरे बच्चे के लिए जो चौदह बरस तक रुक सकता है, वही कविराज रामदास बन सकता है। दीने ने आठ साल में पाँच बच्चे पैदा कर दिये हैं। यह लाहौर जायगा तो वे किसके बाप को रोयेंगे ? ठल्लू तो जो कमाता है, शराब में उड़ा देता है। दीने के बच्चों को यहाँ कौन पालेगा ? इस साले को किसने कहा था कि जड़ियागिरी छोड़ कर हकीम बन। ठगी के लिए वही पेशा क्या बुरा था ?"

और अनन्त ने ज़ोर से ठहाका लगाया और चेतन के कन्धे पर हाथ मारते हुए बोला, "अब किधर जा रहे हो ?"

"सोचता हूँ, जरा निश्तर के हो आऊँ।"

"उस ऐंचाताने के जा कर क्या करोगे ? चलो, देबू काने और बद्दे को लेते हैं। देबू की आँख निश्तर से ज़्यादा दबी है। चौपड़ की एक-दो बाज़ियाँ जमाते हैं। दोनों को भिड़ा देंगे और तमाशा देखेंगे।"

"मेरा मूड नहीं।"

"मूड ख़राब करने मे तुम्हारी साली अब आने से रही...."

"बको मत !"

अनन्त ने ठहाका लगाया, "अब उसका खेड़ा[1] छोड़ो और कोई दूसरा गाँव देखो। 'तुम नहीं, और सही, और नहीं और सही'—हमारा तो यही विश्वास है।"

"तुम पुराने हरजाई हो।"

---

१. खेड़ा = गाँव

"और तुम पुराने चुग़द।"

और ज़ोर से ठहाका मारता अनन्त चला गया।....चेतन कुछ क्षण ठगा-सा वहीं खड़ा रह गया। उसने देखा—लोहार ने एक-दो बार साँचे को मुट्ठी से ठकोर कर ऊपर का हिस्सा उठा लिया है और नीचे के हिस्से में नयी कुंजी नवजात शिशु-सी चमक रही है।

कुंजी....

कुछ क्षण चेतन उसे अनिमेष देखता रहा। पर उसकी आँखें देख कर भी कुछ न देख रही थीं। वह लम्बी साँस ले कर बढ़ चला।

नौ

'....अनन्त ठीक ही तो कह रहा है,' चेतन चलते-चलते सोचने लगा, 'उसके कहने का ढंग कितना भी फूहड़ क्यों न हो, पर उसकी बात में तथ्य है। आखिर उसके इस उखड़ेपन का क्या कारण है ? नीला की शादी ही ना ! क्या नीला की शादी न होती ? क्या वह उसके नाम की माला जपती रहती ? उसमें इतनी हिम्मत नहीं कि चन्दा को छोड़, उसे अपना लेता। वह चन्दा से विश्वासघात भी नहीं करना चाहता और नीला का प्यार भी पाना चाहता है। एक ओर अनन्त है—निर्द्वन्द्व ! उसे किसी तरह की दुविधा नहीं। इश्क के मामले में वह उन्मुक्त है और चेतन के सामने अनन्त के कई रोमान घूम गये। मुहल्ले में दो महरियाँ काम करती थीं—ज्वाली और मिरचाँ। दोनों की जवान लड़कियाँ थीं—अक्की और अम्बो। दोनों चेतन को चाहती थीं। अक्की बड़ी सुन्दर थी। अम्बो सुन्दर तो न थी, पर जवानी का आकर्षण उसमें था। चेतन जब कभी पानी भरने या कुएँ पर नहाने जाता और उनमें से कोई पानी भर रही होती तो जरूर उससे घड़ा खिंचवाने का अनुरोध करती और जब तक वह घड़ा खिंचवाता रहता, उससे मीठी-मीठी बातें करती रहती। लेकिन चेतन कभी इससे आगे न बढ़ा था। एक बार उसने अनन्त से उनकी बात की तो उसने उसे

कई स्कीमें बतायीं। पर जब वह किसी पर अमल न कर सका तो अनन्त ने अपनी माँ पर ज़ोर दे कर पहले एक महरी को पानी भरने के लिए रखा। जब उसकी ज़रूरत पूरी हो गयी तो फिर दूसरी को रख लिया और चेतन को सविस्तार उसने बताया कि कैसे उसने एक-एक करके दोनों लड़कियों को फाँसा।

औरतों के बारे में उसका मत था कि उनका एक ही काम है और जो पुरुष उनसे वह काम नहीं लेता, वह पुरुष कहलाने के योग्य नहीं। प्रेम-प्रेम यह सब बकवास है! दूसरी ओर उसके पिता थे। उनका मत अनन्त से भिन्न नहीं था। अपने मित्रों से इस विषय पर उनकी बहस उसने बचपन में कई बार सुनी थी। आवश्यकतानुसार वह धर्म को भी अपने पक्ष में कर लेते थे। वह मर्द क्या, जो औरतों से घबराये, उसकी शरण में आयें तो उन्हें अंगीकार न करे। कृष्ण-कन्हैया व्रज की गोपियों के संग रास रचाते थे। पर-स्त्री राधा से प्रेम करते थे। रुक्मिणि ने उनका आवाहन किया तो उसे हर लाये और जरासन्ध के पराभव के बाद उसकी बन्दिनी सोलह हज़ार राज-कन्याओं के वरण की बात उठी तो निरपेक्ष भाव से कृष्ण ने उनको वर लिया।

और वर लेना तो दूर रहा, वह नीला के प्रेम का प्रतिदान तक न दे सका। उस वक्त, जब उसके शरीर का अणु-अणु उसे चाहता था, वह अपने मस्तिष्क का अंकुश उस पर लगाये रहा। उसकी उस स्वाभाविक-सी लड़खड़ाहट का उसने उसे कितना दण्ड दिया....भीरु....कायर....चुग़द!

लेकिन तभी उसके सामने उसकी माँ का चित्र घूम गया। उसके पिता के इस पुरुषत्व और वीरता का दण्ड उस बेचारी ने कितना भोगा! उसकी आँखों के सामने लच्छमा आ गयी—गेहुँआ रंग, बेबाक आँखें, तीखे नक्श, छरहरा शरीर....पण्डित शादीराम के सार्जेण्ट मित्र मंगलसेन की बीवी और पण्डित जी की रखेल!

माँ ने एक बार बड़े दुख से उसे उसकी कहानी सुनायी थी। वह टाँडा उरमर के एक कलाल परिवार की बाल-विधवा थी। मंगलसेन जब वहाँ हेड कांस्टेबिल था तो किसी मामले में उसके यहाँ तलाशी लेने गया था,

तब उनकी नज़रें लड़ गयी थीं और आधी रात को तन की साड़ी उतार कर खिड़की से बाँध वह नंगी उसके सहारे उतर कर मंगलसेन के साथ भाग आयी थी और उसी के साथ रहने लगी थी। चेतन के पिता तब टाँडा में असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर थे। कई दिन तक वह उनके घर छिपी रही थी। मंगलसेन ने वहाँ से अपनी बदली करा ली थी और उसे साथ ही ले गया था।

लेकिन उसने चेतन के पिता का पीछा न छोड़ा था। कई बार पूरे-का-पूरा वेतन वे उसके यहाँ दे आते थे। चेतन को पहले महायुद्ध की याद थी, जब उसके पिता कोयटा में स्टेशन मास्टर थे। गेहूँ की बोरी इक्कीस रुपये की हो गयी थी। घर में एक ही तरकारी बन पाती थी और कई बार उन्हें प्याज़ के साथ ही रोटी खानी पड़ती थी। सिर पर कर्ज़ भी कम न था। उसके पिता वेतन के रुपये भेजते तो साथ आदेश लिख देते कि गेहूँ की एक बोरी लच्छमा के घर भी भिजवा दी जाय।

माँ लच्छमा को वेश्या से ज़्यादा कोई दर्जा न देती। कलाल के हाथ का खाना वह मिश्र घराने की लड़की कैसे स्वीकार करती? कभी जब उसके पिता लच्छमा को ले आते और वहीं घर में वह खाना खाती तो माँ उनका खाना तैयार कर देती, पर स्वयं उपवास कर जाती। वह भरसक उसे छूने से परहेज़ करती। छू लेती तो बाद में स्नान करती और कपड़े धो डालती। इसी कारण पति के हाथों उसे कई बार पिटना पड़ा था। एक घटना—बहुत बचपन की—चेतन के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गयी थी।

एक बार—उनका घर अभी नया न बना था—उसके पिता कहीं से आये तो लच्छमा को साथ ही लेते आये। शराब की बोतल भी वे लाये। लच्छमा ने स्वयं अपने हाथों उन्हें पिलायी। माँ ने उन्हें खाना खिलाया। तब चेतन के पिता ने नशे में धुत्त उसे आदेश दिया कि मायके से उसके लिए जो नयी साड़ी आयी है, (तीज के त्यौहार पर चेतन के नाना ने एक साड़ी और मिठाई भेजी थी) वह लच्छमा को दे दे। चेतन के पिता कभी ही माँ के लिए कुछ लाते थे। चेतन ने माँ को कभी ही अच्छे रेशमी वस्त्रों में

देखा था। साड़ी बनारसी थी। माँ को चाहे रेशमी वस्त्रों से वितृष्णा हो गयी थी और वह प्रायः उन्हें अंग न लगाती थी, पर छठे-छमाहे सन्दूक खोल कर उन्हें देख भर लिया करती थी और उस दिन की कल्पना करती थी, जब उसके लड़के बड़े होंगे, उनकी शादियाँ होंगी और वह अपनी बहुओं के तन पर उन्हे देख कर खुश हो लेगी। यह साड़ी उसने आते ही चेतन के बड़े भाई की शादी के निमित्त सन्दूक में सहेज दी थी। पिता कभी चढ़ावे में एक पैसा भी खर्च कर सकेंगे, इसकी उसे कोई आशा न थी।

लेकिन पति के आदेश को उसने कभी न टाला था। मन मसोस कर, छलछलाती आँखों से साड़ी ले आयी, उसकी धोती उस कलाली से छू न जाय, इस विचार से उसे समेट कर उसने साड़ी लच्छमा की गोद में फेंक दी। बस इसी बात पर चेतन के पिता ने उसे इतना पीटा, इतनी बार उसे गर्दन से पकड़-पकड़ कर लच्छमा के पैरों पर झुकाया, उसका माथा धरती से फोड़ा कि खून बहने लगा और वह बेहोश हो गयी।

कृष्ण....चेतन मन-ही-मन विद्रूप में हँसा। क्या नारी की यही कद्र भगवान कृष्ण करते थे! और उसके सामने राम का चरित्र आ गया।.... जब कभी चेतन के पिता कृष्ण का नाम ले कर दुराचार को ढँकने का प्रयत्न करते थे तो माँ उन्हें राम की कहानी सुनाती थी। सीता को रावण उठा ले गया, लेकिन राम उसी की माला जपते रहे। उनके किसी रोमांस का उल्लेख उनके इतने लम्बे बनवास में नहीं मिलता। शूर्पनखा, जो उनके सौन्दर्य से आकर्षित हो कर आयी, उनसे उपेक्षा पा कर ही लौटी (राम की जगह अनन्त या उसके पिता होते तो क्या उसे यों ही छोड़ देते—शायद नहीं।) फिर जब लंका-विजय के बाद राम ने स्वयं सीता को बनवास दे दिया, तब भी वे अकेले बने रहे। अपने अकेलेपन को उन्होंने राजकार्य में लगा दिया।

क्या वे सीता से प्रेम करते थे?

क्या वे अपने-आप से प्रेम करते थे?

चेतन के मन में सहसा दो प्रश्न उठे। पर वह कुछ भी तय न कर पाया। क्या ऐसा तो नहीं कि पुरुष की इन दो आदर्श-प्रवृत्तियों को पुरातन

कथाकारों ने इन दो आदर्श-पुरुषों में आरोपित कर दिया हो ! इसीलिए वे सम्पूर्ण हैं। चेतन को लगा कि उसके इर्द-गिर्द के मध्यवर्गीय लोग इन्हीं दो सीमाओं से बँधे, इन्हीं से परिचालित हैं। उनमें न कोई पूरे तौर पर राम बन पाता है, न कृष्ण। दूसरों की बात वह उतने निश्चय से नहीं कह सकता, पर वह इन दो सीमाओं के मध्य तूफ़ान की ज़द में आये हुए गुलाब की तरह डोल रहा था। उसकी नसों में उसके पिता के रक्त की गर्मी और चांचल्य भी था और माँ के रक्त का ठण्डापन और ठहराव भी। वह जब भी नीला के बारे में सोचता, उसके सामने चन्दा का चित्र घूम जाता और फिर उसी पर माँ की सिलहूत उभर आती और उसका हृदय अपार करुणा से भर जाता और चन्दा को तकलीफ़ पहुँचाने के डर ही से वह काँप उठता।

०

दाल[1]—दिला इस कदर न हो उच्चा
मारे जाण सिर जेहड़े उठाँवदे ने

चेतन रुका। बायीं ओर तुनके धोबी की दुकान पर कोई बैंतबाज़ बायें कान पर हाथ रखे बड़ी सुरीली, सोज़-भरी और दूर-दूर तक गूँजती आवाज़ में बैंत गा रहा था। दो पंक्तियाँ किंचित धीमे स्वर में गा कर फिर और ऊँचे स्वर में उसने बैंत उठाया :

दाल—दिला इस कदर न हो उच्चा
मारे जाण सिर जेहड़े उठाँवदे ने
बहुते आ जावन जो हंकार अन्दर
दिल दी कदे मुराद न पाँवदे ने
टोये[2] साँभ लैंदे अब्रे-करम[3] ताईं
टिब्बे[4] खड़े ही पये कुरलाँवदे ने
दो घड़ी कारण खिड़ के फुल्ल 'टी०-सी०'[5]
देगाँ विच पये अर्क खिचवाँवदे ने

१. उर्दू वर्णमाला का चौथा अक्षर; २. गढ़े; ३. कृपा-मेघ; ४. टीले; ५. ताराचन्द = कवि का नाम।

चेतन का ध्यान फिर पलटा। क्या नीला की स्थिति उस फूल-सी नहीं हुई, जिसे दो घड़ी खिलने का यह दण्ड मिलता है कि उसे नोच कर उबलते पानी की देग में डाल दिया जाय !

उसकी आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। कुछ अजीब-सी व्यथा उसके अन्तर को मथ गयी।

गाने वाला बड़ी दर्द-भरी आवाज में गा रहा था और चेतन सोच रहा था—यहाँ फूल खिलने से पहले नोच लिये जाते हैं। जो माली उन्हें लगाता है, वही उन्हें नोच कर अपात्र के हाथों सौंप देता है। पण्डित दीनदयाल नीला से कितना प्यार करते थे, उसे कितना लाड़ लड़ाते थे, पर वही उसका यों गला घोंटने का कारण बने....नीला....नीला....

क्या सचमुच उसे अहंकार था—अपनी सुन्दरता का ! कि नियति ने उसे तोड़ फेंकना उचित समझा। उसे तो शायद उसका भान भी न था !

और उसने पाया कि उसे दुख वास्तव में इस बात का नहीं कि नीला की शादी तेरह-चौदह बरस की उमर में हो गयी; कि कली खिल भी न पायी थी कि नोच ली गयी। दुख उसे इस बात का था कि अधेड़ के साथ हो गयी और इस शादी का कारण वास्तव में चेतन की अपनी मूर्खता, कायरता, बचपना और ढुलमुलता थी। इलावलपुर के चौबारे की वह घटना उसके मन से जा ही न पाती थी, जिसके कारण नीला को यह दण्ड भोगना पड़ा था। वह समझ न पाता था कि इस ग़लती का कैसे प्रायश्चित करे और उसका मन कहीं लग न पाता था। यदि त्रिलोक के साथ नीला की शादी हुई होती अथवा किसी और युवक के साथ हुई होती तो शायद उसे इतनी तकलीफ़ न होती। अपनी तकलीफ़ के बावजूद उसे ख़ुशी होती, लेकिन अब....अब....

दाल—दिला करें क्यों ग़म इतना
दुनिया विच्च नहीं कौन इन्सान दुखिया
दुनिया ख़ास मिसाल सराये दी ए
एथे आया सो रिहा मेहमान दुखिया

बैतबाज ने दूसरा बैत छेड़ दिया था।....

सो लोग अपने ग़म से सन्तुष्ट हैं। दुख को अनिवार्य जान, वे इसके सामने हथियार डाल कर अपनी नियति को निर्विकार रूप से स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर समझते हैं....और वह चल पड़ा....विद्रोह का एक गोला-सा उसके अन्तर में उठा और गले में अटक गया। क्या ज़रूरी है कि दुनिया सराय-सी रहे? इसमें सिवा ग़म के कुछ हाथ न आये। दुख देने वाली परिस्थितियों को आदमी न बदले; रस्मों को, जो उसी ने बनायी हैं, न तोड़े; सुख की सृष्टि न करे....दुनिया सराय है, दुख लाज़िम है, सो लोग सब्र-सन्तोष से ग़म पियेंगे और जियेंगे—नीला सब्र से दुख झेलेगी, उसका पिता झेलेगा, वह झेलेगा, चन्दा झेलेगी और जाने यह कड़ी कहाँ जा कर ख़त्म हो या शायद ख़त्म ही न हो। एक आवेश-भरे क्रोध से उसका सिर चकरा उठा और वह उसे नीचे झुकाये, बाज़ार को जैसे चीरता हुआ, ऐसी आँधी-सा उड़ चला, जो गलियों, बाज़ारों से सरसराती हुई निकल जाती है, लेकिन न छतें उड़ाती है, न मकान गिराती है और न बादल ही बरसाती है। उसने सिर उठाया तो पाया कि वह निश्तर के मकान के नीचे से गुज़रा जा रहा है। वह रुका और उसने ऊपर को सिर उठा कर आवाज़ दी।

"निश्तर....निश्तर!"

जब कोई जवाब न आया तो डेवढ़ी पार कर, वह सीढ़ियाँ चढ़ गया और जा कर उसने दरवाज़े पर ज़ोर से दस्तक दी।

"निश्तर!"

दस

"आइए बैठिए, भाई साहब अभी आते हैं।'

दरवाज़ा खोल कर एक छोटी-सी लड़की ने आँखें ज़मीन में गड़ाये हुए कहा।

चेतन आँगन लाँघ कर निश्तर के कमरे में एक मैली-सी कुर्सी पर जा बैठा। लेकिन वह गिरते-गिरते बचा। कुर्सी की एक टाँग नहीं थी। तीन टाँगों के सहारे वह दीवार के साथ रखी थी। उस पर बैठने की शर्त उसे दीवार से सटा कर रखना था और चेतन ने बैठते वक्त उसे ज़रा-सा आगे सरका लिया था।

लड़की ने बड़ी मुश्किल से अपनी मुस्कान दबायी और खेद-भरे स्वर में कहा, "मैंने कई बार भाई साहब से कहा कि इसे ठीक कराइए, किसी का सिर फूट जायगा किसी दिन, पर वे कान ही नहीं धरते। आप उधर चारपाई पर बैठ जाइए, या इसी को दीवार के साथ सटा लीजिए।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।" चेतन ने कुर्सी को दीवार के साथ सटाने के क्रम में अपनी खिन्नता मिटाते हुए कहा और कुर्सी पर बैठ कर चारपाई से एक अखबार उठा कर उससे पंखा करने लगा।

लड़की भाग कर पंखा ले आयी, उसे चुपचाप उसके सामने रख दिया

और जैसे इतने ही से उसे साँस चढ़ गयी हो, आँखें नीची किये हुए उसने पूछा, "लस्सी बनाऊँ या शिकंजी ?"

चेतन निश्तर की आर्थिक दशा से अभिज्ञ था, लेकिन पंजाब के घर में मेहमान को लस्सी या शर्बत न मिले (विशेषकर विभाजन से पहले) यह कब सम्भव था।

"नहीं, मुझे घड़े का ठण्डा पानी पिला दो!" चेतन ने पंखा उठाते हुए कहा।

लड़की चली गयी। बारह-तेरह बरस की उमर। नीला-सी सुन्दर तो नही, पर कुरूप भी नहीं। निश्तर की तरह उसकी बायीं आंख कुछ दबी थी, पर जो दबाव निश्तर को कुरूप बनाता था, वही उस लड़की को सुन्दरता प्रदान कर रहा था....'जाने नियति ने इसके भाल पर नीला का भाग्य लिखा है, या चन्दा का ?' चेतन ने सोचा, 'क्योंकि इनसे अलग भाग्य निम्न मध्यवर्ग की लड़कियों का नहीं है। जाने कब होगा ? शायद तब, जब वे सचमुच आज़ाद होंगी और भेड़-बकरियों की अपेक्षा उनकी स्थिति भिन्न होगी। एक झटका—एक पुरज़ोर झटका और निम्न-मध्यवर्ग को इस तंग घेरे में बाँध रखने वाली दीवारें ढह जायँगी। यह ठीक है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन ने उन्हें घर से बाहर निकलना सिखा दिया है, पर कितनियों को ? शायद एक प्रतिशत को भी नहीं।'

और चेतन के सामने भरा बादल घूम गया, जिसकी बूँदें इस बात पर संकोच कर रही हों कि पहले कौन बढ़े। तभी एक बढ़ती है, फिर दूसरी और फिर मूसलाधार पानी बरसने लगता है।

'शायद स्वतन्त्रता के इस संग्राम में कूदने वाली स्त्रियाँ बरसात की पहली बूँदियों-सी हैं।' चेतन ने सोचा।

कल्पना-ही-कल्पना में उसने अपने मुहल्ले पर निगाह दौड़ायी। १९२१ अथवा १९३१ के आन्दोलन में एक भी स्त्री घर से बाहर न निकली थी, एक भी जेल न गयी थी। बहुतों ने तो जुलूस तक भी न देखे थे। उनसे पूछा जाय—तुम आज़ादी चाहती हो ?—तो शायद कोई इसका उत्तर भी न दे सके।

एक लम्बी साँस चेतन के अन्तर की गहराई से निकल गयी।

"लीजिए!"

चेतन ने सिर उठाया। लड़की हाथ में कच्ची लस्सी का गिलास लिये खड़ी थी। चेतन कहना चाहता था—'इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत थी,' पर उसने कुछ नहीं कहा। गिलास उसके हाथ से ले कर वह लगभग एक ही साँस में सारा गिलास पी गया।

लड़की फ़र्श पर आँख जमाये खड़ी रही और उसके पी चुकने पर गिलास ले कर चल दी।

"निश्तर क्या देर में आयेगा?"

लड़की रुकी, लेकिन मुड़ी नहीं। "अभी आता हूँ—कह कर गये हैं।" उसने जैसे फ़र्श से कहा, "खाना खा कर नहीं गये। आते ही होंगे।"

और वह चली गयी।

चेतन ने कमरे में चारों ओर निगाह दौड़ायी—छोटा-सा वही दालान, जिसमें वह पहले भी दो-चार बार आया था। बायीं ओर चारपाई बिछी थी, जिस पर कुछ किताबें और काग़ज़ बिखरे थे। एक खस्ता-सी तिपाई और तीन टाँग की कुर्सी थी (जिस पर कि वह स्वयं किसी तरह बैठा था)। तिपाई पर तख्ती में कुछ काग़ज़ लगे थे, कलम-दवात पड़ी थी और 'सदाकत' का ताज़ा अंक (जिसे चेतन ने घबराहट में उठा लिया था और पंखा आने पर बेख़याली में वहीं रख दिया था)। दायीं ओर दीवार के साथ 'सदाकत' की फ़ाइलों के ढेर थे।

चेतन ने 'सदाकत' का वह अंक फिर उठा लिया—छै पृष्ठों का साप्ताहिक। मुखपृष्ठ पर पत्र का नाम बड़ी बेल-बूटेदार इबारत में लिखा था, जो चेतन को खासी भोंडी लगी। उसके नीचे एक शे'र छपा था :

हम सिदक पे मिट जायें, अरमान हमारा है
बातिल[1] को मिटा देंगे, ऐलान हमारा है

और शे'र के एक ओर पतले, अरबी अक्षरों में छपा था—निश्तर।

---

१. असत्य

'जैसे नाम के बिना इस शे'र को पढ़ने वाले लोग 'इकबाल' का ही तो समझ लेंगे—' चेतन मन-ही-मन हँसा।

उसकी नज़र कुछ और नीचे गयी। एक लम्बी, गोल बेल के बीच लिखा था—मालिक-एडीटर नन्दलाल 'निश्तर' हुनरवी।

इन दोनों विशेषताओं पर चेतन ने मन-ही-मन दो ठहाके लगाये। पहले 'मालिक' पर (निश्तर अपने इस परचे को 'ट्रिब्यून' से कम क्या समझता होगा) फिर 'हुनरवी' पर (तो निश्तर भी हुनर साहब के शागिर्दों में शामिल हो गया—पहले 'अब्र', फिर 'रहमत' और अब 'हुनर'—निश्तर के उस्तादों में अभी जाने और कितने नाम जुड़ेंगे ?)

०

चेतन छठी कक्षा में पढ़ता था, जब उसने पहले-पहल 'निश्तर' को देखा था। उसे वह शाम आज भी याद थी। असहयोग आन्दोलन का ज़ोर था। उसने सुबह उठते ही सामने के मकान में रहने वाले स्वर्गीय राय साहब दयालचन्द के दत्तक-पुत्र रायज़ादा खुशवन्त राय को अपने नानक-शाही ईंटों के मकान की पुरानी बेल-बूटेदार शीशम की चौखट के ऊपर बड़े सुन्दर अक्षरों में चाक से लिखते पाया :

'हामियाने-अदम-तआवुन विदेशी कपड़ा माँगने यहाँ न आयें,
वरना उनके ख़िलाफ़ कानूनी चाराजोई की जायगी।'

चेतन 'अदम-तआवुन' का मतलब समझ न पाया था तो चेतन के बड़े भाई ने बताया था कि महात्मा गान्धी ने सरकार के साथ 'ना-मिलवर्तन' (असहयोग) का नारा दिया है। ना-मिलवर्तन याने असहयोग को ही अदम-तआवुन कहते हैं। सारे देश में आग लग गयी है। स्कूल-कॉलेज बन्द हो रहे हैं। लोग विदेशी कपड़ा पहनना छोड़ रहे हैं, शराब पीना छोड़ रहे हैं, जिससे इन साले बनिया अंग्रेज़ों की सारी तिजारत तबाह हो जायगी....

उसके भाई ने बहुत कुछ बताया था, जो उसकी समझ में न आया था। लेकिन उस दिन वह स्कूल गया तो अभी पहली घण्टी भी शुरू न हुई थी कि उसने देखा—अचानक लड़के क्लासें छोड़ कर बाहर को भागे ज़ा रहे हैं। जाने बाहर गैलरी में आ कर किसी ने क्या कहा कि लड़के

उठे और बाहर को चल दिये। वह भी पीछे-पीछे चला। स्कूल के अहाते के बाहर मैदान में लड़कों का बेपनाह हुजूम था। बहुत परे स्टूल पर कोई खड़ा भाषण दे रहा था। बड़े-बड़े लड़कों के पीछे खड़े चेतन को न कुछ दिखायी दिया, न सुनायी दिया। फिर एक ज़ोर का नारा गूँजा—'इन्कलाब'—और सब एक स्वर से बोले—'ज़िन्दाबाद।' और हुजूम पुलिस-लाइन के ऊपर से अड्डा कपूर्थला की ओर चल दिया—'वन्दे मातरम' गाता और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाता। चेतन सबसे पीछे था—उसने स्कूल के गेट पर खड़े अपने टीचरों को देखा, जिनके चेहरों पर कुछ अजीब-सी बेबसी और ग्लानि-मिली खिन्नता पुती हुई थी।

पूरा गीत चेतन को सुनाई न दे रहा था। लेकिन गीत की एक कड़ी बार-बार उठती और फैलती हुई लहर-सी उस तक आ जाती :

आप गांधी क़ैद हो गया
सानूँ दे गया खद्दर दा बाणा

इस कड़ी के बाद 'इन्कलाब' का गगनचुम्बी घोष उठता और दूसरों के साथ चेतन भी 'ज़िन्दाबाद' बोल देता।

अड्डा कपूर्थला से अमाम नासरुद्दीन, फिर बड़ा बाज़ार, बोहड़ वाला बाज़ार, भैरो बाज़ार....जुलूस के साथ हज़ारों लोग शामिल हो गये, यहाँ तक कि चेतन के कानों में आगे गाने वालों की आवाज़ आना भी बन्द हो गयी। वह थक भी गया, इसलिए जब वे भैरो की मूर्ति के पास पहुँचे तो वह गली तमाखियाँ से निकल कर पापड़ियाँ बाज़ार से होता हुआ घर आ गया।

दोपहर को वह बद्दे, देबू और हन्से के साथ छिकड़ी (चौपड़) खेल रहा था कि सहसा दूर से 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' और क़ौमी गीत की आवाज़ आयी। छिकड़ी-विकड़ी वहीं छोड़, वे बाहर की ओर लपके। वे अभी कुएँ के पास ही थे कि बाज़ार की ओर से एक वालण्टियर राष्ट्रीय झण्डा उठाये, उसके पीछे खादी के कुर्ते, पाजामे और गान्धी टोपियाँ पहने दूसरे स्वयंसेवक खादी के गीत गाते और एक चादर को चारों कोनों से उठाये आते दिखायी दिये, जिसमें विदेशी कपड़ों का ढेर धरती को छू रहा था।

मुहल्ले के चौक में आ कर वे रुक गये। चादर उन्होंने चौक में बिछा दी, दो स्वयंसेवक कुएँ की जगत पर चढ़ कर गाने लगे और सभी उनके स्वर-में-स्वर मिलाने लगे। यद्यपि लगभग दस-ग्यारह वर्ष पहले चेतन ने वह गाना सुना था, पर उसे आज भी उसके पहले बन्द याद थे—

खादी दा चोला गल विच पा के
नामिलवर्तन दी तुरही वजा के
चर्खे-दी घन-तोप चढ़ा के
मारो सूत दे गोले लंकाशायर नूँ
शायर नूँ
मारो सूत दे गोले लंकाशायर नूँ

हुक्म गान्धी दा सभी मननगे
बन्ह के सिर ते कफ़न चलनगे
जलियाँ वाले कई बननगे
लै आये बन्दूकाँ, कह देयो डायर नूँ
डायर नूँ
मारो सूत दे गोले लंकाशायर नूँ

इतने बरस गुज़र जाने पर भी चेतन को याद था कि गाने वालों के चेहरे कुछ अजीब-से शहीदी जोश से जगमगा रहे थे और गीत को सुनते-सुनते कई बार उसके अपने तन में सनसनी दौड़ गयी थी और जब गाना ख़त्म होने पर उछल कर बंसी ने नारा लगाया था—'इन्कलाब'—तो सुनने वालों के स्वर-से-स्वर मिला कर चेतन भी पूरे ज़ोर से चिल्लाया था—'ज़िन्दाबाद !'

एक छोटा-सा ओज-भरा भाषण दे कर जुलूस का नेता मुहल्ले के घर-घर गया था और उसने विदेशी कपड़े माँगे थे। मुहल्ला ग़रीब, लोगों के पास पहनने के वस्त्रों का अभाव, होली जलाने को रेशमी कपड़े देने की कौन कहे। गृहणियों ने प्रायः फटे-पुराने कपड़े ही दिये थे। एक विदेशी चीथड़ा भी मिलता तो 'गान्धी बाबा की जय' और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' से मुहल्ला गूँज उठता। चेतन भी भागा-भागा माँ के पास आया था और

माँ ने ट्रंक से बहुत पुराना, पर एकदम नया लगता-सा (कि वह कीमती कपड़े अपनी बहुओं के लिए सहेज रखती थी) रेशमी लहँगा दिया था और चेतन उसे नेता को देते समय फूला न समाया था। जब उनके घर से लोग राय खुशवन्त राय की हवेली की ओर पलटे तो उन्हें शीशम का भारी दरवाज़ा बन्द मिला। तब किसी की दृष्टि चाक से लिखे गये उस नोटिस पर गयी—

'हामियाने-अदम तआवुन....

और किसी ने कहा—'टोडी बच्चा' और जुलूस वालों के साथ एक-स्वर हो कर मुहल्ले वाले चिल्ला उठे—'हाय....हाय !'

कुछ देर तक 'खुशवन्त राय—मुर्दाबाद' और 'टोडी बच्चा—हाय-हाय' कर, सयापा करने—छाती पीटने—के बाद जुलूस 'गान्धी बाबा की जय' और 'इन्कलाब ज़िन्दावाद' के नारे लगाता, उसी तरह विदेशी कपड़ों से भरी चादर उठायें, वही गीत गाता, वापस चला तो चेतन भी उसके पीछे-पीछे हो लिया था।

जब जुलूस हरलाल पंसारी की दुकान के पास से हो कर बाजियाँ वाला बाज़ार में से, खुशवन्त राय की हवेली की उन बैठकों के पास से जा रहा था, जो बाज़ार में खुलती थीं तो अचानक ऊपर की खिड़की खुली और रायज़ादा की बड़ी पत्नी ने (उनके दो पत्नियाँ थीं, पहली जालन्धर के सोंधी घराने से थीं, जो स्वतन्त्रता-आन्दोलन में सब से आगे था, पर चूँकि उससे कोई सन्तान न हुई थी, इसलिए रायज़ादा ने एक गरीब घर में दूसरी शादी कर ली थी) ज़री की रेशमी साड़ी फेंक कर तत्काल खिड़की बन्द कर ली। और 'महात्मा गान्धी की जय' और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँज गये।

जुलूस के पीछे-पीछे शहर के बाहर, कोट किशनचन्द से भी आध-एक मील आगे, चेतन 'गान्धी मण्डप' पहुँचा। गान्धी मण्डप वास्तव में एक विशाल तालाब था, जिसे 'नदीराम का तालाब' भी कहते थे। इसके चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ थीं। जब महात्मा गान्धी पहली बार जालन्धर आये तो यहीं सभा हुई थी और तभी से इसका नाम गान्धी मण्डप पड़

गया था और कांग्रेस की सभाएँ यहाँ होने लगी थीं। चेतन चलते-चलते बेहद थक गया था। तालाब की सीढ़ियों पर तिल धरने को भी जगह न थी। जाने शहर के विभिन्न मुहल्लों से कितने जुलूस वहाँ पहुँचे थे। लगता था, जैसे सारा शहर नदीराम के तालाब पर पहुँच गया है। वह चाहता था, आगे जाय, मंच के पास बैठे, लेकिन कहीं भी ख़ाली जगह दिखायी न देती थी। वह इतना थक गया था कि उसे एक कदम आगे बढ़ना कठिन लगता था। वहीं ऊपर की सीढ़ी पर वह बैठ गया। उस ज़माने में माइक्रोफ़ोन नहीं थे, न तालाब के आधे हिस्से को भर कर वहाँ प्लेट-फ़ार्म ही बनाया गया था। सूखा, विशाल नदीराम का तालाब पुराने ज़माने के स्टेडियम जैसा लगता था, लेकिन वक्ताओं को अपने कण्ठ की पूरी आवाज़ से बोलने का अभ्यास था और जब वन्दे मातरम् के गीत के बाद एक छोटा-सा लड़का स्टेज पर आया और सभा के प्रधान ने उसका परिचय दिया तो सबसे ऊपर की सीढ़ी पर बैठे चेतन को भी उसकी आवाज़ सुनायी दी। प्रधान ने नन्दलाल की मेधा की प्रशंसा करते हुए उसकी कवित्व-शक्ति और उसके स्वदेश-प्रेम की प्रशंसा की थी और कहा था कि भारत माता को ऐसे सपूतों पर गर्व है, जो इतनी छोटी उमर में स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़े है और आशा प्रकट की थी कि वह दिन दूर नहीं, जब भारत माता गुलामी की ज़ंजीरों से आज़ाद होगी और नन्द-लाल 'आज़ाद' (तब नन्दलाल का यही उपनाम था) का नाम देश के कोने-कोने में गूँज उठेगा। और उसने नन्दलाल से अपनी कविता पढने के लिए कहा था।

कविता पढ़ने से पहले नन्दलाल ने चन्द शब्द कहे। चेतन तक उसकी आवाज़ नहीं पहुँची, पर चेतन ने यह ज़रूर देखा कि इतनी बड़ी भीड़ को सम्बोधित करते हुए नन्दलाल के स्वर में (जो उससे उमर में एक-डेढ़ वर्ष छोटा ही होगा) ज़रा भी कम्पन नहीं। एक अपूर्व आत्म-विश्वास उसके सारे व्यक्तित्व से फूटा पड़ता है। और जब उन चन्द शब्दों की समाप्ति पर, जो उसने कविता पढ़ने से पहले कहे, जनता ने पूरे ज़ोर से तालियाँ पीटीं और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये तो चेतन को

नन्दलाल से बड़ी ईर्ष्या हुई।

भाषण दे कर नन्दलाल बड़े जोश से कविता पढ़ने लगा। चेतन को कविता का एक भी बन्द सुनायी नहीं दिया, पर उसने देखा कि हर बन्द के बाद जनता ने तालियाँ पीटीं और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये।

नन्दलाल की कविता के बाद दो-चार नेताओं, और उनके बाद अध्यक्ष का भाषण हुआ। लेकिन चेतन ने और कुछ न सुना, न देखा। उसकी आँखों के सामने बार-बार उस लड़के की शक्ल आती रही और कानों में जनता की करतल-ध्वनि गूँजती रही।

तभी उसने देखा कि तालाब के मध्य विदेशी कपड़ों का अम्बार लगा है और उस पर तेल छिड़क कर आग लगायी जा रही है और ऐन उस वक्त उसने 'पुलिस', 'पुलिस' का शोर सुना और ऊपर की सीढ़ियों पर अचानक लोग खड़े हो गये। चेतन ने अपने पीछे बावर्दी पुलिस को कन्धों पर लाठियाँ सजाये मार्च करते देखा। वह नानकशाही ईंटों के टूटे मुनारे पर चढ़ गया, जो शायद किसी ज़माने में गेट का स्तम्भ रहा होगा। तब दर्शकों के मध्य उस रास्ते में, जो मंच को जाता था (जिसके उस ओर स्त्रियाँ थीं और इस ओर पुरुष) चेतन ने एक काले भुजंग पहलवान-सिफ़त मुसलमान पुलिस इन्स्पेक्टर को हाथ में बेटन लिये और उसके पीछे लाठी-बन्द पुलिस की गारद को सीढ़ियाँ उतरते देखा। उसके देखते-देखते पुलिस इन्स्पेक्टर मंच पर चढ़ गया। जाने उसने लोगों से क्या कहा कि एकदम लोग उठ खड़े हुए। कुछ आगे बढ़, कुछ पीछे हटे और चेतन ने देखा कि लाठियाँ चलने लगीं और भगदड़ मच गयी। उस भाग-दौड़ में चेतन कब मुनारे से कूदा और सड़क के पार एक खेत के मचान पर जा चढ़ा, उसे याद नहीं।

दूसरे दिन जब उसने सुना कि उस सभा में बारह आदमी घायल और तेरह गिरफ़्तार हुए, जिनमें बारह वर्षीय नन्दलाल 'आज़ाद' भी है, तो कुछ अजीब-सी ईर्ष्या-मिली श्रद्धा से उसका मन आप्लावित हो आया था।

नन्दलाल को तीन महीने कठिन कारावास का दण्ड मिला था। जब वह रिहा हुआ तो चेतन ने उसे ढूँढ़ कर उससे मैत्री कर ली थी। बाद में जब

स्वदेशी आन्दोलन मन्द हुआ, हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद शुरू हुए और महावीर दल का जन्म हुआ तो दोनों साथ-साथ महावीर दल के मेम्बर बने। चेतन भी पंजाबी बैत कहने लगा था। दोनों महावीर दल के बैण्ड में बाँसुरी बजाते थे। 'निश्तर' पहले उस्ताद 'अब्र' का शागिर्द था, फिर पंजाबी कवि-सभा के प्रधान उस्ताद 'रहमत' का शागिर्द हुआ, अपना उपनाम भी उसने बदल लिया और अपने साथ ले जा कर उसने चेतन को भी 'रहमत' का शागिर्द बना दिया। रहमत रँगरेज़ था और उसके शागिर्दों में अधिकांश, शहर के आवारा, निकम्मे-निठल्ले निम्न-वर्गीय छोकरे थे। चेतन के मध्यवर्गीय को उस सिकुड़े-मड़े, अपढ़ रँगरेज़ के साथ घूमना और उस्ताद के नाते उसकी चिरौरी करना स्वीकार न हुआ। दो-एक बार वह 'रहमत' के यहाँ गया और महावीर दल के कवि-सम्मेलनों में भी शामिल हुआ, फिर वह अपने वर्ग के अधिकांश पढ़े-लिखे छात्रों की तरह उर्दू शायरी में दिलचस्पी लेने और 'रहमत' साहब को दूर ही से सलाम करने लगा। तभी 'हुनर' साहब उसे मिल गये और मन-ही-मन उसने उन्हें अपना उस्ताद बना लिया।

०

'तो निश्तर भी हुनरवी बन गया है,' उसने साप्ताहिक पर 'निश्तर' के आगे 'हुनरवी' देख कर मन-ही-मन कहा, जाने हुनर साहब ने किस-किस के शे'र अपने कह कर उसे सुनाये हैं।

और उसने 'मदाकन' का पहला पृष्ठ उलटा। दूसरे ही पृष्ठ पर जनाब नन्दलाल साहब 'निश्तर हुनरवी' की एक नज़्म छपी थी—'अफ़सोस ऐ ग़रीबी'—चेतन यह कविता हुनर साहब से सुन चुका था। छोटे बन्द में, जिसका प्रचार 'हफ़ीज़' जालन्धरी ने किया था, एक ही बैठक में हुनर साहब ने उसे धर घसीटा था। वे जो भी नया शागिर्द बनाते थे, उसके नाम से वह नज़्म लिख कर किसी गुमनाम पत्र-पत्रिका में छपवा देते थे। कई वर्ष पहले वह नज़्म चेतन के नाम से श्री गिरिजा शंकर की पत्रिका 'गिरिजा' में छप चुकी थी। 'गिरिजा' की याद आने से मुंशी गिरिजा शंकर की दरियाई घोड़े की-सी मूँछें चेतन को याद हो आयीं

और चूँकि उर्दू लिपि में ज़बर-ज़ेर का उतना ख़याल नहीं रखा जाता, इसलिए वह 'गिरिजा' को 'गरजा' पढ़ा करता था और उसे किसी मासिक पत्रिका का यह नाम बड़ा अजीब लगता था—जब यह कविता हुनर साहब ने चेतन के नाम से उन्हें दी थी तो अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों में मुस्कराते हुए मुंशी साहब ने इतना शुक्रिया अदा किया था, जैसे नज़्म नहीं, उन्होंने 'गिरिजा' का साल भर का चन्दा उन्हें दे दिया हो।

वहीं बैठे-बैठे सरसरी नज़र से वह कविता पढ़ गया। अन्तिम बन्द पर नज़र पड़ते ही उसके होंटों पर मुस्कान खेल गयी।

बुढ़िया का दिल भी क्या है, जो ग़म से भर गया है
और उसके घर का चूल्हा, मुद्दत से बुझ चुका है
है आग उसके दिल में
अब रात का समाँ है, तारीक आसमाँ है
जो इक चिराग़ वाँ है,
वो तेल से है ख़ाली, और ख़ुश्क उसकी बत्ती
हर दर्दे-ग़म को सहती, 'निश्तर' से आज कहती
अफ़सोस ऐ ग़रीबी !

बस चेतन की जगह 'निश्तर' हो गया था, वरना नज़्म वही थी।—चेतन को हैरत हुई कि तब यह उसे कैसे अच्छी लगी थी और कैसे उसने उसे अपने नाम से छपने दिया था? और उसे वे सब नज़्में, वे शे'र—भावना से ख़ाली, अनुभूतियों से शून्य, कोरी दिमाग़ी कसरत-ऐसे लगे, जिनको ज़िन्दगी का तनिक-सा भी स्पर्श न प्राप्त हुआ था और जो हुनर साहब के जीवन ही की तरह एकदम झूठे थे।

और वहीं बैठे-बैठे चेतन को लगा, जैसे पिछले कुछ दिनों ने उसकी वय में कितने ही वर्ष जोड़ दिये हैं। कल्पनाओं की दुनिया में दुख और सुख की बातें करने वाला उसका दिमाग़ दुख और सुख की असलियत को जानने लगा है—इस एक घटना—नीला की शादी—ने उसकी आँखों को एक नयी गहराई दे दी है।

नज़्म पृष्ठ के पूरे दो कालमों में छपी थी। शेष दो कालमों में 'अदीबे-

फ़ितरत निगार' जनाब 'हुनर' की एक कहानी छपी थी। यह कहानी उसने तब सुनी थी, जब वह पहली बार उनसे मिला था। लाहौर के एक गुमनाम साप्ताहिक और एक मौसमी मासिक में यह पहले छप चुकी थी और अब 'सदाकत' की रौनक बढ़ा रही थी।

उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार महाशय देवदर्शन अपने नाम के साथ इतनी बार अदीबे-फ़ितरत-निगार[1] लिखते थे कि चेतन को उनकी फ़ितरतनिगारी पर शक होने लगा था और ये हुनर....चेतन के सामने उनका वह सेहरा पढ़ना आ गया....किसी अधेड़, पिचके कल्लों वाले दूल्हे को पूनो का चाँद कहना....क्रोध से उसने 'सदाकत' के उस अंक को बायें हाथ में तोड़-मरोड़ कर कोने में फेंक दिया और चलने को उठा।

o

निश्तर की बहन आँगन में एक ओर बैठी शायद कोई उपन्यास पढ़ रही थी, उसकी आकृति पर अपूर्व तल्लीनता थी, आँखों में अजीब-सा फैलाव और तरलता थी।

"हुनर साहब तो नहीं आये थे ?" उसने चौखट से पूछा।

लड़की चौंकी और झट से उसने पुस्तक को पीठ-पीछे छिपा लिया। उसके चेहरे पर ऐसा भाव आ गया, जैसे उसे किसी ने चोरी करते पकड़ लिया हो। क्षण भर वह भौंचक्की-सी उसे देखती रही, फिर वह हड़बड़ा कर उठी।

चेतन ने अपना प्रश्न दोहराया।

"कोई आया तो था, मैंने देखा नहीं।" लड़की ने धरती में निगाहें गाड़े कहा, "पर खाना नहीं खा गये। कहते थे, अभी आता हूँ।"

"अच्छा तो कहना कि चेतन आया था।"

और वह खट-खट आँगन लाँघ गया। सीढ़ियों के अँधेरे ने उसकी चाल धीमी कर दी और वह टटोल-टटोल कर उतरने लगा।

1. प्रकृति का यथार्थ वर्णन करने वाला रचनाकार।

ग्यारह

पापड़ियाँ बाज़ार, जहाँ गली पटफेरियाँ से होता हुआ लाल बाज़ार में मिलता है, वहीं बायीं ओर को चन्द कदम चलने पर सामने एक छोटी-सी तंग, टेढ़ी-बैंगी गली जुत्तियाँ वाले चौक को जाती है। इसी गली में निश्तर का घर था। चेतन डेवढ़ी के बाहर निकला तो क्षण भर को रुका रह गया। किधर जाय, वह तय न कर पाया। घर वापस जाने को उसकी ज़रा भी इच्छा न थी। मुहल्ले के किसी आदमी से मिलने को उसका मन न था। 'अमीचन्द डिप्टी कमिश्नर हो गया है' (मुहल्ले वालों ने उसे अभी से डिप्टी कमिश्नर बना दिया था) इसके अतिरिक्त उनके पास करने को कोई बात न थी और अमीचन्द के नाम ही से चेतन के सामने शिमले के स्कैण्डल पॉयण्ट की घटना आ जाती थी। वह तो चाहता था कहीं ऐसी जगह जाय, जहाँ उसका मन नीला के विवाह, अपनी पीड़ा, अमीचन्द की डिप्टी कलक्टरी और उसके सन्दर्भ में अपनी हीनता के अहसास को एकदम भूल जाय। अनन्त से उसे हमदर्दी की आशा न थी। उपहास के एक-दो कचोके भले ही वह उसे लगा दे और दीनानाथ के पास वह जायगा तो उसे उनके महाग्रन्थ—'शादी : खाना-आबादी या बर्बादी' को पूरा सुनना पड़ेगा, इसलिए अनन्त और दीनानाथ—दोनों से कन्नी काट कर, वह

'निश्तर' के यहाँ आया था। उसने सोचा था कि वह 'निश्तर' की नयी कविताएँ सुनेगा, उसकी लनतरानियाँ सुनेगा, उसकी स्कीमें सुनेगा और जब वह मूड में आ जायगा तो उससे कहेगा कि यार 'हीर' के कुछ बोल सुनाओ। 'निश्तर' हीर बड़े दर्द और लोच-भरे स्वर में गाता था और चेतन हीर का वह स्थल सुनना चाहता था, जहाँ हीर को बरबस डोली में बैठा कर खेड़े वाले चल देते हैं।

डोली चढ़दियाँ मारीआँ हीर चीकाँ
मैंनूँ लै चल्ले बाबला लै चल्ले वे[1]

न जाने कितनी बार चेतन मन-ही-मन यह स्थल दोहरा चुका था। वह चाहता था, 'निश्तर' गाये और वह चुपचाप सुनता रहे। वह जानता था कि उसकी यह इच्छा अपने घाव को कुरेदने की इच्छा से ज्यादा महत्व नहीं रखती, पर जैसे पपड़ियाए घाव को छेड़ने में कुछ अजीब-सा दर्द-भरा सुख मिलता है, वैसा ही सुख 'हीर' के उस स्थल को सुनने और उसके माध्यम से नीला की विदा के दृश्य की कल्पना करने में उसे मिलता था। नीला जब अपनी विदा से पहले उससे मिलने आयी थी और चेतन उसके पैरों पर झुकते हुए कहने लगा था कि वह उसे क्षमा कर दे और वह—'जीजा जी आप क्या करते हैं'—कहते और उसे उठाते हुए सिसकी को दबाती भाग गयी थी, तो फिर वह नीचे जाने का, उससे आँख मिलाने का साहस न कर सका था। वह शगुन देने भी न गया था। चन्दा ही ने शगुन दिया था और आ कर बताया था कि चलते समय रो-रो कर नीला ने आँखें सुजा ली थीं, पछाड़ें खा-खा कर वह सब से गले मिली थी, जैसे वह जाना न चाहती थी और बरबस जा रही थी....'आख़िर उसकी उमर ही क्या है, बच्ची ही तो है'....उसकी पत्नी ने कहा था....और चेतन के सामने हीर की विदा का दृश्य घूम जाता था—

१. डोली चढ़ते हुए हीर चीत्कार कर उठी—ऐ पिता मुझे (खेड़े वाले) लिये जा रहे हैं।

मैंनूँ रख लै बाबला हीर आखे,
डोली घत्त कहार वी लै चल्ले वे
मेरा आखिया कदीं न मोड़दा सैं
ओह दिन बाबला कित्थे गये चल्ले वे
तेरी छतर छावें बाबल रुक्ख वाँगों
असां वाँग मुसाफ़राँ बह चल्ले वे
दिन चार न रज्ज आराम पाया
दुख दर्द मुसीबताँ सह चल्ले वे
सानूँ बोलिया-चालिया माफ़ करना
पंज रोज़ तेरे घर रह चल्ले वे ![1]

'निश्तर' गाता तो वह सारा दिन यही स्थल सुनता रह जाता, पर 'निश्तर' तो उर्दू शायर हो गया है, जाने 'हीर' वह अब गाता भी है या नहीं ?—चेतन ने सोचा और बेज़ारी से सिर हिलाया। पहले उसके मन में आयी कि वह बड़ा बाज़ार होता हुआ, अमाम नासरुद्दीन जाय, लेकिन वहाँ उसे किसी साथी से मिलने की उम्मीद न थी, कपूर्थला के अड्डे से होता हुआ वह अपने स्कूल जा सकता था, किसी पुराने अध्यापक से मिल सकता था, पर अपने स्कूल मे संलग्न एक भी अच्छी स्मृति उसके मन में न थी। वह वापस मुड़ा, गली पार करके फिर क्षण भर को रुका—दायीं

१. हीर कहती है—'बाबल मुझे रख ले, कहार डोली को उठा कर लिये जा रहे हैं। ऐ पिता तू मेरी सारी इच्छाएँ पूरी करता था। वे दिन कहाँ चले गये याने मेरी यह इच्छा तू क्यों पूरी नहीं करता।'

'पेड़ जैसी तेरी छत्र छाया में हम मुसाफ़िरों की तरह कुछ पल बैठ कर जा रहे हैं।'

'हमने चार दिन जी भर आराम नहीं किया, दुख-दर्द, मुसीबतें सह कर जा रहे हैं।'

'हमारी ग़लतियों को पिता क्षमा कर देना, तेरे घर पाँच रोज़ रह कर हम जा रहे हैं।'

ओर को जाय कि बायीं ओर को ? पहले उसने सोचा कि जौड़ा दरवाज़ा, रैनक बाज़ार होता कचहरी और कम्पनी बाग़ को निकल जाय, 'पर इस बेकार भटकने से लाभ,' उसने सोचा, 'क्यों न वह बोहड़ वाला बाज़ार किला मुहल्ला होता हुआ पुरियाँ मुहल्ला हो आये....पुरियाँ मुहल्ला.... कुन्ती....पहले प्यार की सुख-दुख-भरी स्मृतियाँ और वह बायीं ओर को मुड़ा। तभी उसके कानों में किसी बैतबाज़ की बड़ी ही ऊँची सोज़ और लय-भरी आवाज़ आयी :

मेरा दर्द गुज्झा साईं, कौन जाने
दुनिया वेख मैंनूँ मुस्कराँवदी ऐ
भाँबड़ मच्चदा बहर दे दिल अन्दर
सतह ओहनूँ कद लोल विखाँवदी ऐ[1]

वह रुका। मुड़ा। सराफ़ों की दुकानों से परे जोड़े दरवाज़े की ओर को उस्ताद रहमत की दुकान पर चन्द बेफ़िक्रे बैतबाज़ बैठे थे। सामने ही बंसी सब्जी-फ़रोश की दुकान पर भी लोग इकट्ठे थे। वह तो उन दोनों के अस्तित्व को भूल ही गया था। वह तेज़-तेज़ पलटा। बैतबाज़ गा रहा था :

घुन लक्कड़ नूँ मूलोंई खा जावे
पर न रोग़न ते आँच कुझ आँवदी ऐ
गुज्झे दर्द दी माहिया, अग्ग गुज्झी
अन्दरो-अन्दर ही साड़ मुकाँवदी ऐ[2]

चेतन वहाँ पहुँचे कि आने-जाने वाले और इर्द-गिर्द की दुकानों से काफ़ी लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। वह भी उनके पीछे जा खड़ा हुआ।

१. मेरे दिल में छिपा दुख कौन जान सकता है, दुनिया मुझे देख कर मुस्कराती है। सागर के अन्तर में दावानल धधकता है, पर सतह तो उसे दिखा नहीं पाती।

२. घुन लकड़ी को अन्दर-ही-अन्दर खा जाता है, पर रोगन पर आँच नहीं आती। प्रियतम, छिपे हुए दुख की आग भी छिपी होती है और अन्दर-ही-अन्दर जला देती है।

'वाह् वा, वाह् वा ! किन्ना सच्च आखियाई, किन्ना सच्च !' लम्बी साँस के साथ झूमते हुए एक श्रोता ने कहा—'गुज्झे दर्द दी माहिया, अग्ग गुज्झी !'

०

बंसी और रहमत के आने से पहले लाल बाज़ार बिल्ले सराफ़ के कारण प्रसिद्ध था, जिसने तीन दीवाले निकाले थे और आधा कोट पक्का जिसके सम्बन्धियों के अधिकार में आ गया था, लेकिन उन दोनों के वहाँ आ जाने से बाज़ार उन्हीं के कारण प्रसिद्ध था। उन दोनों में पहले कौन आया, चेतन नहीं जानता। उसने जब से होश सँभाला, अथवा यों कहा जाय कि जब से कविता-अविता करना आरम्भ किया, दोनों को वहाँ देखा। उनसे परिचित होने से पहले उनकी दुकानों पर बैंत सुने। ताश, शतरंज और चौपड़ की महफ़िलें यदि तब जालन्धर में सरे-बाज़ार लगती थीं तो बैंत-बाज़ी भी सरे-बाज़ार होती थी। बिल्ला सराफ़ तो बहुत देर में मशहूर हुआ, पर १९२१ के आन्दोलन के बाद 'बंसी' और 'रहमत' दोनों, बाज़ार क्या, शहर में सब से प्रसिद्ध थे।

जब कभी सब्ज़ी-तरकारी बेचना छोड़, एक हाथ में ताँबे का घण्टा और दूसरे में लकड़ी की हथौड़ी लिये, बंसी शहर में टन-टन घण्टा बजाता दिखाई दे जाता, लोग समझ लेते कि राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हो गया है। यह अजीब बात है कि जब कांग्रेस का आन्दोलन शुरू होता, बंसी अपनी दुकान-उकान भूल कर सुबह से शाम तक गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले आन्दोलन के सम्बन्ध में सूचनाओं, जुलूसो और सभाओं की डौंडी पीटता घूमा करता। राष्ट्रीय सेवा के सिलसिले में उसने केवल यही काम अपने ज़िम्मे ले रखा था और इसमें ख़ूब सिद्धि प्राप्त कर ली थी।

'भैनो ते भरावो....'

लम्बी टन-टन के बाद जब उसकी आवाज़ गूँजती तो गली-मुहल्ले के बच्चे उसके गिर्द आ इकट्ठे होते—मँझला कद, चौड़ा माथा, मासूम आँखें, हँसते होंट, सिर पर (प्रायः पिचकी) गान्धी टोपी, खादी का बंगाली कुर्ता, पर उटंग पायजामा—बच्चों को देख कर वह मुस्कराता, फिर पूरे

जोश से बोलता :

'अज्ज शाम दे साड्ढे पंज बजे सिटी काँग्रेस कमेटी वल्लों इक शान-दार जलसा नदीराम दे तला उत्ते होएगा, ते ओस जलसे विच सैयद अता-उल्लाह शाह बुख़ारी दा ज़ोरदार लेक्चर होएगा। इह ओही अता उल्लाह शाह हैण, जेहड़े मौलाना मुहम्मद अली शौकत अली नाल कांग्रेस विच शामिल होए, ते जिन्हाँ दे लेक्चर दी धुम्म सारे पंजाब विच है—की बोलदे ने—मोती रोलदे ने। हसान्दे वी ने, ते रूलान्दे वी ने। लेक्चर तों पहलाँ कवि झुम्मन अपने नवें बैंत सुनाणगे, ते नवाँ रंग लाणगे।'

और घण्टी की लम्बी टन-टन....

बंसी स्टेज पर कभी एक शब्द भी न बोला था, पर डौंडी पीटते समय वह शे'र, बैंत, दोहे—यथा-स्थान मोतियों-से पिरो देता था। और कांग्रेस की सभाओं में, उस ज़माने में भी जब आन्दोलन मन्द था, जो इतनी भीड़ हो जाती थी, तो इसमे डौंडी पीटने में बंसी की इस सिद्धि का कम हाथ न था।

लेकिन स्टेज पर उसके मुंह से बोल भी न निकलता था। एक बार क़िला मुहल्ले में—उसके अपने चौक में—सभा हुई। सारे शहर में वह उसकी डौंडी पीट आया, सभा में तिल धरने को भी जगह न रही, पर वह वक्ता के परिचय में उतना भी न कह सका, जो वह डौंडी पीटते समय कहता आया था।

०

रहे उस्ताद 'रहमत' तो यद्यपि उनके कई शागिर्द कांग्रेस आन्दोलन में जेल हो आये थे, वे उनकी राष्ट्रीय कविताएँ सुधार भी देते थे, ब-वक्त ज़रूरत उन्हें लख भी देते थे, पर उन पर राष्ट्रीय आन्दोलन का कोई प्रभाव न था। वे प्रसिद्ध इसलिए हुए कि १९२१ में शहर का सबसे बड़ा गुण्डा, जो सबसे पहले स्वराज्य मन्दिर में गया और जिसके बैंतों ने आग लगा दी, उन्हीं का शागिर्द था। उनका अपना ज़ोर कपड़े रँगने; पतले-दुबले,

मदक़ूक़[1]-मजलूक़[2] जिस्म पर कमीज़-तहमद पहने, सिर पर लटकेदार पगड़ी सजाये, कोहनियों तक रँगे हाथ लिये लौंडों के साथ घूमने; हरबल्लब की बैतबाज़ी के लिए पट्ठे तैयार करने और कवि-सम्मेलनों के आयोजन में निरत रहने में लगता था। रामनवमी हो या जन्माष्टमी, ईद हो या मुहर्रम, कहीं-न-कहीं वे पंजाबी कवि-दरबार रख देते थे और इसी नाते, 'दोआबा पंजाबी कवि-सभा' के प्रधान थे।

उनकी याद आते ही चेतन के सामने एक घटना घूम जाती थी। धर्म-सभा (माई हीराँ के गेट) में दोआबा पंजाबी कवि-सभा के तत्वावधान में विशाल कवि-सम्मेलन हो रहा था। अवसर क्या था, यह तो चेतन को याद नहीं, इतना याद है कि उस विशाल अहाते में तिल धरने को भी जगह न थी। चेतन यद्यपि कॉलेज में पढ़ता था और उर्दू में लिखने लगा था, पर पंजाबी कविता उसे तब भी अच्छी लगती थी और अच्छा कवि-सम्मेलन हो तो वह सुनने चला जाया करता था, और इसमें तो उसने सुना था कि लाहौर और अमृतसर के प्रसिद्ध पंजाबी कवि भाग ले रहे थे।

मंच पर, मेज़ के साथ दो कुर्सियाँ लगी थीं, एक पर संस्था के प्रधान के नाते अपने पतले-दुबले सींकिया शरीर पर तहमद-कमीज़ पहने, लटके-दार पगड़ी सजाये और कोहनियों तक रँगे हाथ मेज़ पर टिकाये, उस्ताद रहमत बैठे थे और दूसरे पर उस सम्मेलन के प्रधान के नाते हृष्ट-पुष्ट, गौर शरीर, सुन्दर मुखाकृति, रोब-भरे चेहरे पर बड़ी-बड़ी नोकदार मूँछें लिये, बढ़िया सूट पर गाँधी टोपी सजाये, भैरो बाजार के सफल चिकित्सक कैप्टन डॉक्टर भगवान दास बैठे थे। चेतन सामने की पंक्ति में बैठा बड़ी देर तक दोनों की तुलना करता रहा। कैप्टन भगवान दास के मुक़ाबिले में उस्ताद 'रहमत' बिलकुल चूहे-से लगते थे।

डॉक्टर साहब कवि का नाम बोलते; उस्ताद रहमत उठ कर उसका परिचय देते; कवि कविता पढ़ता; जनता वाह-वा का शोर मचाती और

---

१. यक्ष्मा का मारा; २. हस्त मैथुन का मारा—ये दोनों शब्द किसी पतले-दुबले, कमज़ोर शरीर वाले बिगड़े हुए मरियल व्यक्ति के लिए स-व्यंग्य बोले जाते हैं।

तालियाँ पीटती और अपने प्रिय कवियो को दो-दो कविताएँ सुनती । तभी डॉक्टर साहब ने नाम बुलाया—सरदार ईशर सिंह लाहौर वाले ।

उस्ताद रहमत उठे । पूर्ववत कुर्सी छोड़ कर मेज़ के दायें आये और उन्होंने कवि का परिचय दिया :

'भैनो ते भरावो, तुसी अँगरेजी दा टंगोर सुनिया होएगा....'(टंगोर चेतन चौंका—अँग्रेजी का टंगोर—पर तभी अगले वाक्य से उसकी समझ में आ गया कि उस्ताद साहब का अभिप्राय कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर से है) 'ऐस वेले सारी दुनिया विच अँगरेजी दे कवि टंगोर दी धुम्म है । ओहनाँ बंगाल दा ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान दा नाँ देस-विदेस विच रोशन कर दित्ता ऐ । हुण जेहड़े कवि तुहाडे सामने आण लग्गे ने, इह टंगोर कोलों घट्ट नहीं, इह असाडे पंजाबी दे टंगोर हण ।''[1]

और कवि का परिचय दे कर उस्ताद रहमत ने पीछे मुड़ कर देखा और बोले—'आइए सरदार ईशर सिंह जी ।'

और एक तीस-बत्तीस वर्ष के नाज़ुक-से सिक्ख कवि आगे आये और उन्होंने बारीक-सी आवाज़ में बैंत पढ़ा :

सुत्ती हुई अभागने नींद गूढ़ी
तेरा कन्त खलोताई, बूआ खोल !
पैणी कन्न'च दस्तक दी वाज नई फिर
तैनूं पेआ की गोताई, बूआ खोल !

---

१. बहनो और भाइयो, आपने अंग्रेज़ी के टंगोर (टैगोर) का नाम सुना होगा । इस वक्त सारी दुनिया में अंग्रेज़ी के कवि टैगोर की धूम है । उन्होंने बंगाल ही का नहीं, सारे हिन्दुस्तान का नाम देश-विदेश में रोशन कर दिया है । अब जो कवि आपके सामने आने वाले हैं, वे टैगोर से कम नहीं । ये हमारे पंजाबी के टैगोर हैं ।

अड़िए ! वगदे पानी 'च मार चुम्भी
वहंदा इश्क दा सोताई, बूआ खोल ।[1]

अभागन, नींद और कन्त के प्रतीक से साईं बुल्हे शाह की तर्ज़ पर, कवि गहरे दर्शन की बात कह रहा था, पर उस फ़िलासफ़ी को साधारण जनता क्या समझे ! कविता की रदीफ़ थी—बूआ खोल—याने दरवाज़ा खोल ! और 'दरवाज़ा खोल' के साथ, जब कि नारी सोई हो, बीस तरह की कल्पनाएँ वहाँ बैठे लोगों के दिमाग़ में कौंध गयीं । दो-तीन शेर तो लोगों ने सुने, फिर कवि अभी काफ़िया ही पढ़ता कि लोग एक साथ चिल्ला उठते—'बूआ खोल' ! कविता के शब्दों पर ध्यान देने की बजाय लोग रदीफ़ के आने की बाट देखते और एक साथ चिल्ला उठते—'बूआ खोल !' और कुछ हँस भी देते । कविता अभी एक चौथाई भी समाप्त न हुई थी कि पीछे खड़े लोगों में से किसी ने ज़ोर से कहा—'खोल वी बूआ भागवाने, ग़रीब कदों दा खलोता होइया ए ।'[2]—और सभा-मण्डप क़हक़हाज़ार बन गया और पंजाबी के 'टंगोर' अगला मिसरा बोलने के बदले, जहाँ से उठे थे, चुपचाप वहीं जा बैठे ।

०

दाल—दिला करें क्यों ग़म इतना
दुनिया विच नईं कौन इन्सान दुखिया

लम्बी तान, लोच और दर्द-भरी आवाज़, चेतन भीड़ में से ज़रा आगे बढ़ा । दुकान पर उस्ताद नहीं थे, उनकी प्रतीक्षा में बैठे शागिर्द लोग मश्क के लिए बैतबाज़ी कर रहे थे :

---

१. ऐ अभागन, तू गहरी नींद सोयी हुई है, तेरा पति बाहर खड़ा है, फ़ौरन दरवाजा खोल ! फिर तेरे कान में दस्तक की आवाज नहीं आयेगी । तुझे कैसा ग़ोता पड़ गया—मूर्छा आ गयी—दरवाजा खोल ! अरी, प्यार का सोता बह रहा है । बहते पानी में डुबकी लगा ले । दरवाजा खोल दे ।

२. दरवाजा खोल भी दे भागवान, बेचारा कब का खड़ा है ।

दुनिया ख़ास मिसाल सराये दी ऐ
एत्थे आया सो रिहा मेहमान दुखिया
मौका नहीं कोई गिले-शिकायताँ दा
एत्थे कुल हिन्दू मुसलमान दुखिया
ज़ाहर साइयाँ नहीं मालूम होंदा
असल विच ऐ सारा जहान दुखिया[1]

"वाह वा, किन्ना सच्च आखियाई, किन्ना सच्च—असल विच ऐ सारा जहान दुखिया!"—एक श्रोता ने दाद दी।

कवि ने नया बैत छेड़ा :

लाम—लद्द गये वक्त याराणियाँ दे
विरला होग कोई अंगदार अज्जकल
जिन्नी करो वधीक - वधीक उलफ़त
ओनी होंदी ऐ मिट्टी ख़्वार अज्जकल[2]

चेतन को लगा, जैसे यह तो नीला की तरफ़ से कोई उसी से कह रहा है :

कहना यार, फिर यार दा बुरा मँगना
एहो कुल ज़माने दी कार अज्जकल

---

१. ऐ दिल क्यों दुख मनाता है। दुनिया में कौन इन्सान है, जो दुखी नहीं।

गिले-शिकायतों का कोई अवसर नहीं, यह दुनिया एक सराय है और यहाँ आने वाला हर मेहमान दुखी है। यहाँ सभी हिन्दू-मुसलमान दुखी हैं।

ऐ प्यारे, प्रकट रूप से दिखाई नहीं देता, लेकिन वास्तव में सारा जहान दुखी है।

२. मैत्रियों के ज़माने लद गये। आज कोई विरला ही मित्र होगा। जितना ज़्यादा प्यार करो, उतनी ही मिट्टी ख़राब होती है।

ताराचन्द रख बन्द मुहब्बता नूँ
ना ओह समाँ रिहा, ना ओह यार अज्जकल ![1]

बैंत, कवि ने मैत्री को ले कर लिखा था, पर चेतन ने उसे प्रेम की ओर मोड़ लिया। उसने नीला से प्रेम किया और उसके कारण उसे समुद्र पार रंगून के कारावास में भेज दिया गया। अच्छा प्रेम किया उसने....और भीड़ से निकलने को उसने कदम उठाये....पर बंसी सब्ज़ी-फ़रोश की दुकान पर बैठे हुए किसी स्वदेश-प्रेमी कवि ने मोतीराम के बारह मासे की तर्ज़ पर 'टोडी बच्चा' गाना शुरू कर दिया :

चेतर—चित्त विच समझ ओ टोडी, राज असाडा[2] आणा ईं[3]
तेरे आक़ा अंगरेज़ाँ ने ओड़क नूँ[4] चल जाणा ईं
सभ दे सिर ते काल कूकदा,[5] क्या राजा क्या राणा ईं
बिना देस दी सेवा कीते, भला न मूल कमाणा ईं[6]
बिसाख—बिसारियो प्यार देश दा आकड़-आकड़ चलणाईं[7] तूँ
खा खुराकाँ पहन पुशाकाँ यम दा बक्करा पलणाईं तूँ[8]
चार दिनाँ दा रैन बसेरा महल-माड़ियाँ मलणाईं[9] तूँ
टोडी बच्चे, समझ प्यारे, अन्त ख़ाक विच रलणाईं[10] तूँ

१. मित्र कहना, फिर मित्र का बुरा चाहना, यही सारे ज़माने का आज दस्तूर हो गया है।

ऐ तारा चन्द अपनी मुहब्बत को अपने पास ही रख। न आज वह समय रहा और वे मित्र ही रहे।

२. हमारा; ३. आयेगा ही; ४. अन्त को; ५. मौत चीख़ती है; ६. देश की सेवा किये बिना किसी का ज़रा भी भला न होगा। ७. अकड़-अकड़ कर चलता है;

८. पौष्टिक भोजन खा कर और पोशाकें पहन कर तू यम के बकरे के समान पल रहा है ९. घेरता है। १०. टोडी बच्चे तू समझ ले कि अन्ततः तू ख़ाक ही में मिलेगा।

कुछ देर भीड़ मोतीराम की पैरोडी सुनती रही, पर आन्दोलन का ज़ोर मन्द था। देश में राष्ट्रीय सरकारों के बनने की भी बात चल रही थी। टोडी बच्चों को गालियाँ देने में उन्हें कोई दिलचस्पी न थी। भीड़ छँटने लगी। चेतन ने कदम बढ़ाया कि पीछे से किसी ने ज़ोर का हाथ उसके कन्धे पर मारा। चेतन मुड़ा :

"ओए हमीद-ऽ !"

"सुना भई चेतन ! की हाल-चाल ए ?"

पहला ज़माना होता तो हमीद बिना गाली दिये या उसे माँ का यार कहे, उसका हाल-चाल न पूछता। लेकिन चेतन ने उसके सम्बोधन में इस हल्के से तकल्लुफ़ को नहीं देखा और पुरियाँ मुहल्ले जाने का ख़याल छोड़, उसे बाँहों में भर लिया।

बारह

यद्यपि हमीद और चेतन—दोनों एक-दूसरे के गले में बाँहें डाले जौड़े दरवाज़े की ओर हमीद के घर को चले, लेकिन चन्द कदम चलने पर ही हमीद ने आपने-आपको चेतन की बाँह से आज़ाद कर लिया। उसने कुछ कहा नहीं, पहले अपनी बाँह हटा ली और जब चेतन यह संकेत नहीं समझा और वह उसी तरह हमीद के गले में बाँह डाले निरन्तर बात करता हुआ चलता रहा, तो जब वे जौड़े दरवाज़े के अन्दर दाखिल हुए, वह धीरे से चेतन की बाँह कन्धे से हटा कर अलग हो गया। न उसने मुख पर कोई भाव आने दिया, न बातों की गति मन्द की, पर चेतन के अति भावप्रवण मन ने यह बात नोट कर ली और उसे बुरा भी लगा।

•

हमीद यद्यपि चेतन के साथ तो फ़र्स्ट ईयर ही से पढ़ता था, पर उसके विषय और उसका सेक्शन चेतन से भिन्न था। चेतन का ध्यान उसने थर्ड ईयर में अपनी ओर आकर्षित किया, और कुछ ऐसे किया कि चेतन दिन-ब-दिन उसकी ओर खिंचता चला गया। पतला-छरहरा, नर्म-नाज़ुक, गोरा-चिट्टा, हँसमुख और बेपरवा! हमीद में यदि कोई दोष चेतन को

दिखायी देता था तो यही कि उसकी ऊपर की दन्त-पंक्ति किंचित अन्दर को मुड़ी थी और जब वह मुस्कराता था तो जाने चेतन को वह मुस्कान कैसी लगती थी। हालांकि वह जानता था कि वह बड़ा ही मेधावी, बेबाक और बेपरवा छात्र है, पर उसकी मुस्कान केवल दाँतों के उस दोष के कारण कुछ अजीब-सी चाटुकारी-भरी हो जाती थी।

फ़र्स्ट और सेकेण्ड ईयर में तो चेतन को हमीद के बारे में सिवा इसके कुछ नहीं मालूम हुआ कि दूसरे सेक्शन में एक सुन्दर मुसलमान लड़का है और चूँकि वह बड़ा मेधावी है, हाज़िर-जवाब है, इसलिए कॉलेज के गुण्डे उसको तंग नहीं कर पाते। वे उसके इर्द-गिर्द मँडराते रहते हैं, पर उसे छू नहीं पाते। सौन्दर्य के प्रति चेतन का अपना पक्षपात था। उस ज़माने में, जब अपर-सेक्स के प्रति उसकी चेतना न जगी थी —कुन्ती से शीतला के मेले में मिलने से भी पहले—उसे अपने समवयस्क अथवा किंचित कम उमर के सुन्दर लड़के बड़े अच्छे लगते थे। उनके पास जाना, उनसे बात-चीत करना, उनसे मैत्री करना, यह सब सम्भव न हो तो उन्हें दूर से देख भर लेना, उसे पुलकित कर देना था। बहुत पहले की बात है, शायद वह नवीं या दसवीं कक्षा में पढ़ता था, एक दिन सुबह वह अनन्त के ज़ोर देने पर नीली कोठी नहाने गया। गेट के दोनों ओर खट्टों और सन्तरों के पेड़ थे; उन पर फूल आये हुए थे और उनकी गन्ध से वातावरण महक रहा था। वे लोग चहबच्चे पर गये तो चेतन का हृदय धक् से रह गया। एक बड़ा ही सुन्दर गोरा लड़का वहाँ नहा रहा था।....

चेतन पहले भी चार बार नीली कोठी आया था। पर हर बार उसे सख़्त कोफ़्त हुई थी। नीली कोठी कम्पनी बाग़ की ओर को, कल्लोवानी से लगभग डेढ़-दो मील के अंतर पर थी। बड़ी सड़क के उस चौरस्ते पर, जहाँ आजकल रेडियो स्टेशन को रास्ता जाता है, बायीं सड़क नीली कोठी को जाती थी। उसका नाम कैसे नीली कोठी पड़ गया, चेतन नहीं जानता था। बड़े बाज़ार के एक सर्राफ़ घराने ने उसे बनवाया था। कोठी के आगे पक्की खुली जगह थी, बाग़ था और बायीं ओर के कोने में काफ़ी ऊँचाई पर रहट लगा था, जिसकी मोटी धार पक्के, गहरे चहबच्चे में गिरती

थी। चहबच्चे के किनारे, रंगदार शीशों की खिड़कियों वाला एक छोटा-सा कमरा कपड़े बदलने के लिए था। गर्मियों के मौसम में उस चहबच्चे में रहट की मोटी धार के नीचे नहाना बड़ा आनन्दप्रद था। कोठी में कोई रहता न था, शायद मालिक के किसी बेटे को यक्ष्मा था और उन्होंने उसे खुली हवा में रखने को यह कोठी बनवायी थी अथवा यों ही सुबह नहाने-धोने के लिए, लेकिन कल्लोवानी के लड़के गर्मियों में प्रायः रोज़ वहाँ आते थे। माली कभी बैलों को न लगाता तो लड़के बारी-बारी से स्वयं उसमें जुट जाते और दस-ग्यारह बजे तक नहाया करते।

नीली कोठी को कम्पनी बाग़ की दोनों ओर से रास्ता जाता था। प्यारू या देबू साथ न होते तो चेतन कम्पनी बाग़ के पार उस सड़क से जाता, जो लाला दयालचन्द की कोठी के आगे से जाती थी और कल्लोवानी मुहल्ले के लड़कों में नीली कोठी वाली सड़क कहलाती थी। यह सड़क ग्रैण्ड ट्रंक रोड जैसी सूनी न थी। इस पर प्रायः नीली कोठी तक बँगले बन गये थे और मार्ग उतना लम्बा न लगता था। लेकिन प्यारू या देबू साथ होते तो वे कम्पनी बाग़ के सामने से बड़ी सड़क पर बढ़े जाते। ग्रैण्ड ट्रंक रोड से बायीं ओर नीली कोठी को जो सड़क जाती थी, वहाँ बड़ी सड़क के दायीं ओर एकदम जंगल था—झाड़ियाँ; टीले; टोये; मदार और पपोली के अगणित पेड़—देबू और प्यारू के नेतृत्व में लड़के दिशा-फ़राग़त के लिए दूर-दूर जंगल में निकल जाते। अजीब-अजीब शर्तें रख देते। सूरज सिर पर आ जाता, पर उनका निबटना ही ख़त्म न होता। चेतन ऊब उठता। बेतरह थक जाता। प्रायः किसी-न-किसी से देबू या प्यारू की लड़ाई हो जाती, कोई-न-कोई पिट जाता। चेतन वापस आता तो फिर कभी उधर न जाने की कसमें खाता।

लेकिन उस दिन देबू या प्यारू में से कोई साथ न था। अनन्त था, दो-एक और लड़के थे, इधर ही खेतों में निबट-निबटा कर वे जल्दी ही नीली कोठी पहुँच गये थे। वह सुन्दर लड़का शायद अपने बड़े भाई या चाचा के साथ था—चेतन ने देखा एक साँवला-सा, लम्बा-पतला आदमी लँगोट लगाये मालिश करा रहा है, उसकी दायीं टाँग पर न जाने काहे का दाग़

था ! शायद यह कोठी उसी के लिए बनवायी गयी थी। उसके निकट ही रहट के चहबच्चे में वह सुन्दर लड़का उन्मुक्त नहा रहा था। चेतन और उसके साथी इधर ही रुक गये थे, क्योंकि मालिक चहबच्चे पर नहा रहे हों तो उन्हें नहाने की इजाज़त न थी।

यह स्वयं परे खड़ा निरन्तर उस लड़के को देखता रहा था। गोरा-गोरा, मक्खन-सा नर्म-मुलायम शरीर। निगाहें उस पर न टिकती थीं, न देर तक हटती ही थीं। और उस दिन के बाद चेतन कभी अकेला, कभी किसी लड़के के साथ, दूसरे लड़कों से कहीं पहले, नीली कोठी जाने लगा था, पर वह लड़का रोज न आता था। चेतन को लगता, वह उसे देख न लेगा तो किसी काम में उसका जी न लगेगा। और पता लगा कर वह शाम को उसकी दुकान के आगे से गुज़रने लगा था। कभी वहाँ उसकी झलक मिल जाती तो उसके मन-प्राण पुलकित हो उठते। वह चाहता था कि किसी तरह उसके निकट बैठ सके, उससे बातें कर सके, पर उसका संकोच हमेशा उसकी इस इच्छा के मार्ग की बाधा बन जाता। यदि उसकी जगह प्यारू होता और उसका दिल किसी लड़के पर आ जाता तो वह उसे किसी-न-किसी जगह जा पकड़ता—घर से दुकान को जाते हुए, दुकान से घर को आते हुए। वह उसकी दुकान के आगे धरना दे देता और जब भी मौका मिलता, उस लड़के को अकेले में लँगड़ी दे देता और जब वह रोने लगता तो उसे बगल में ले कर प्यार करता या वैसे ही धमकाता कि अगर वह उससे कन्नी काटेगा तो मार खायेगा। लेकिन चेतन को ये सब ढंग एकदम बर्बर और पाशविक लगते थे। और सिर्फ़ उसे एक नज़र देख कर पढ़ने-लिखने और दूसरे काम के लिए वह एकाग्रता पा जाता था।

....उन्हीं दिनों की बात है कि एक शाम वह किसी काम से चौक सूदाँ गया। शाम के समय, जब कि ट्रंक बेचने वाले चौक की बड़ी जगह घेर लेते, सूदाँ में बड़ी भीड़ होती और कन्धे-से-कन्धा छिलता। चेतन भीड़ में से बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था कि सहसा उसके पाँव जहाँ-के-तहाँ जम गये। सामने अपने भाई या पिता के साथ एक तीखे नक्शों वाला, अत्यन्त सुन्दर, गोरा लड़का सिल्क का कुर्ता और दूध-सी धुली महीन धोती

पहने आ रहा था। चेतन ने सारे शहर में ऐसा सुन्दर लड़का न देखा था। इतना ख़ूबसूरत लड़का शहर में होता तो असम्भव था कि मेले-ठेले, गली-बाज़ार, आर्य समाज और धर्म सभा के जलसों, गवर्नमेण्ट स्कूल की ग्राउण्ड में होने वाले स्कूली टूर्नामेंटों में वह उसे न देखता। 'निश्चय ही यह कहीं बाहर से आया है, क्योंकि उसका पहरावा भी तो पंजाबी नहीं'—चेतन ने सोचा। लेकिन यह तो उसने बाद में सोचा। उस वक्त तो बस उसका दिल धक् से रह गया था और उसके पाँव वहीं चिपक गये थे और रात भर वह सूरत उसकी आँखों में घूमती रही थी। बाद में उसे पता चला था कि उस लड़के का नाम रजत है। उसके पिता पंजाबी थे। एक्ज़िक्टिव इंजीनियर थे। नौकरी का ज़्यादा वक्त यू० पी० में रहे थे और वहीं उन्होंने शादी की थी। कुछ ही महीने पहले उनका देहान्त हो गया था, जिसके बाद उनकी बीवी अपने बच्चों को ले कर जालन्धर आ गयी थी, जहाँ कोट किशनचन्द में उनकी जायदाद थी।... और चेतन रोज़ शाम कोट किशनचन्द जाने लगा था।

कोट किशनचन्द याने किशनचन्द का किला जालन्धर के इर्द-गिर्द बसने वाली बारह बस्तियों में से एक है। किसी ज़माने में ये जागीरदारियाँ थीं। उनके बाहर फ़सीलें थीं, बड़ा दरवाज़ा था, क़िला था। कोट किशन-चन्द की फ़सील के कोने में जो गुम्बद था, उसमें किसी ज़माने मे केवल बन्दूकों के छेद थे, पर अब रजत की माँ ने गोलाई में बाहर को दरवाज़ा और सीढ़ियाँ बनवा कर उसे बैठक का रूप दे दिया था। चेतन ने किशन-चन्द के कोट ही में रहने वाले रजत के एक पड़ोसी मित्र से मैत्री स्थापित की और जब वह पहले दिन उस बैठक में गया था तो उसकी स्थिति उस ग़रीब देहाती युवक की-सी थी, जिसे अचानक किसी सम्राज्ञी के महल में जाने की इजाज़त मिल गयी हो। उस गोल कमरे की मेज़-कुर्सी, दीवान, कौच, तस्वीरें, पर्दे—एक-एक चीज़ चेतन को किसी दूसरी दुनिया की लगती थी। चेतन के बैठे-बैठे रज़त की बहन चाय लायी थी। चाय का सेट, दूध के जग के ऊपर मोतियों की झालर लगी जाली का रूमाल—चेतन जैसे किसी स्वर्गलोक में पहुँच गया था। उसके घर में तो कभी

चाय पी न जाती थी, पी भी जाती थी तो गिलासों में। कमीज़ों के दामन में गर्म गिलास पकड़े, चौके ही में चूल्हे के पास बैठे, वह और उसके भाई चाय सुड़का करते थे।

चेतन उस शाम न तो रजत से कोई बात कर सका था, न उसके छोटे भाई अथवा बहन से। वह उनकी प्यारी-प्यारी शिष्टाचार-भरी बातें सुनता रहा था। उसको उन सब लड़कों से ईर्ष्या हुई थी, जो वहाँ नित्य शाम को जाते थे और जब वह रात को घर आया था तो गयी रात तक वह जागता रहा था और उसकी आँखों के सामने रजत और उसके छोटे भाई ललित और उसकी बहन की हरेक बात, हरेक भंगिमा आती रही थी....

लेकिन हमीद को देख कर चेतन के मन में वैसा कुछ नहीं हुआ। शीतला के मेले में कुन्ती को देखने को बाद उसमें एक अजाना परिवर्तन आ गया था। वह कुन्ती की खिड़की के नीचे से गुज़रता था और यद्यपि वह शाम को कभी-कभी कोट किशनचन्द तक जाता था, रजत से मिलता भी था, पर उसकी ओर चेतन का वैसा आकर्षण न रहा था, बल्कि उसे कभी-कभी हँसी आती थी कि वह उसको देख कर देखता ही कैसे रह जाता था ! रजत यद्यपि अब भी उतना ही सुन्दर था, पर सर्राफ़ों का वह लड़का तो अजीब लिजलिजा-पिलपिला निकला था। चेतन हैरान था कि कभी उसे एक नज़र देखने के लिए वह सुबह नीली कोठी जाता था और फिर शाम को छत्ती गली में से हो कर जूतों वाले बाज़ार का चक्कर लगाता था। अम्बरसरिया मल (अमृतसरिया मल्ल) नाम के किसी लड़के से उसे प्यार हो सकता है, उसे इसी बात पर हैरत होती थी।

हमीद को देख कर उसका दिल धक् से चाहे न हुआ हो, पर वह उसे अच्छा ज़रूर लगता था। केवल उसकी मुस्कान, विशेषकर जब कभी वह खीसें निकोसता था, चेतन के मन में विकर्षण पैदा करती थी। चेतन ने उससे मैत्री स्थापित करने का प्रयास नहीं किया कि वह उस दौर से निकल चुका था, जब केवल सौन्दर्य के कारण किसी साथी का सम्पर्क उसे प्रिय हो। लेकिन जब थर्ड ईयर में कॉलेज-यूनियन बनी, उसकी वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में हमीद ने भाग लिया, तो चेतन ने देखा कि सारे कॉलेज

में उतने प्रभावोत्पादक ढंग से बोलने वाला दूसरा कोई नहीं है। पहली ही सभा में उसके बोलने का यह फल हुआ था कि वह कॉलेज-यूनियन का मन्त्री चुन लिया गया और चेतन उसके प्रति विशेष रूप से आकर्षित हो उठा था।

लेकिन वह हमीद के निकट आया 'श्रीमती मंजरी' के अभिनय में। आर्य समाज (कॉलेज-सेक्शन) के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर 'श्रीमती मंजरी' खेला गया। उसमें चेतन राय बहादुर जानकीदास बना और हमीद ने मुसलमान अनाथ युवक की भूमिका में काम किया। यद्यपि चेतन ने स्वयं बहुत अच्छा अभिनय किया था और दर्शकों ने उसकी प्रशंसा भी की थी, पर स्वयं चेतन हमीद के अभिनय पर मुग्ध हो गया था। उसके उतने सफल अभिनय पर उसे आश्चर्य नहीं हुआ था। वह तो रिहर्सलों ही में उसका शैदा हो गया था। नाटक का निर्देशन उनके अंग्रेज़ी अध्यापक कर रहे थे, जो गवर्नमेण्ट कॉलेज लाहौर से सेकेण्ड क्लास एम० ए० करके आये थे और उन्होंने कॉलेज में यूनियन और नाटक-क्लब का सूत्रपात किया था। पर रिहर्सलें उनके आदेशानुसार हमीद ही कराता था। उन रिहर्सलों में चेतन ने हमीद को निकट से जाना और उसे मालूम हुआ कि वह अच्छा अभिनेता और वक्ता ही नहीं, उसका अध्ययन भी बड़ा विशाल है। उन रिहर्सलों ही के दौरान में चेतन और हमीद गहरे मित्र बन गये थे। इसमें कोई सन्देह नही कि उर्दू कविता हो या अंग्रेज़ी, हमीद ने दोनों का गहरा अध्ययन किया था, पर चेतन के पास एक ऐसा गुण था, जो हमीद के पास नहीं था। वह उर्दू या अंग्रेज़ी कविता चाहे ज़्यादा न जानता हो, पर वह जन्मजात कवि था। जहाँ हमीद एक ओर शेली और कीट्स, वर्ड्ज़वर्थ और ब्राउनिंग और दूसरी ओर इक़बाल और टैगोर, हफ़ीज़ और अख़्तर शेरानी को कण्ठस्थ करने के बावजूद एक पंक्ति न लिख सकता था, वहाँ चेतन इन कवियों पर उतना अधिकार न रखने के बावजूद, अनायास शे'र-पर-शे'र और नज़्म-पर-नज़्म लिख लेता था। और जहाँ चेतन उसके विशाल अध्ययन का प्रशंसक था, वहाँ हमीद उसकी जन्मजात प्रतिभा का मद्दाह !....और दोनों दिन-ब-दिन एक-दूसरे के निकट आते

गये थे ।

नाटक के बाद हमीद एक दिन चेतन को अपने घर ले गया था और सिगरेट के धुएँ, पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों से भरा हुआ हमीद का वह कमरा चेतन के मन-मस्तक पर अमिट छाप छोड़ गया था ।

जहाँ जौड़ा दरवाज़ा दूर तक तंग गली की सूरत में रेंगता हुआ तनिक-सा फैलता है और रैनक बाज़ार शुरू हो जाता है, वहीं दायीं ओर को एक छोटे-से अहाते में हमीद का घर था । ज़नानख़ाने में तो चेतन कभी गया नही, मर्दाने के नाम पर भी उसने हमीद का कमरा ही देखा था—न बहुत छोटा, न बड़ा (ज़रा छोटा हो तो कोठरी कहलाये और ज़रा बड़ा हो तो कमरा) । बाहर से तो पक्की ईंटों का लगता था, पर अन्दर की दीवारें कच्ची थीं और उनमें बे-किवाड़ों की आलमारियाँ थीं, जो किताबों और पत्र-पत्रिकाओं से अटी पड़ी थीं । कमरे में कोई फ़र्नीचर न था । एक बड़ी-सी चौकी बीच में रखी थी, जिसके साथ दायीं दीवार तक दरी पर एक मैला-सा जाजम बिछा था और दो गाव तकिये रखे थे। पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें न केवल चौकी और जाजम पर ढेर-की-ढेर पड़ीं थीं, बल्कि कमरे के कोनों में भी उनके अम्बार लगे थे । और कमरा यदि छोटा लगता था, तो इसमें उन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के ढेरों का भी कम हाथ न था ।

चेतन ने सुना था कि हमीद नवाब ख़ैरपुर के दीवान का लड़का है । लेकिन उसके कपड़े एकदम साधारण होते थे । सुन्दर था, इसलिए सादे कमीज़-पायजामे में जॅच जाता था, पर चेतन को कभी-कभी आश्चर्य ज़रूर होता था । हमीद के कमरे को देख कर उसे और भी आश्चर्य हुआ था । बहुत बाद में उसने जाना था कि ख़ैरपुर के दीवान ने जालन्धर की एक प्रसिद्ध वेश्या को अपने घर में रख लिया था और हमीद उसी का बेटा था । हमीद के वालिद ने उसके बाद तीन या चार और शादियाँ कीं । हमीद की माँ उन दीवारों में बन्द हो गयी । एक निश्चित रकम उसे हर महीने मिलती थी, जिसमें माँ-बेटा गुज़ारा करते थे ।

उस कमरे में कदम रखते ही चेतन पर हमीद के उस विपुल ज्ञान का

भेद खुल गया था। जहाँ चेतन के पास अपनी एक भी पुस्तक न थी, वहाँ हमीद का कमरा पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों से अटा पड़ा था। चूँकि हमीद का घर कल्लोवानी मुहल्ले से दूर नहीं था, इसलिए उस दिन के बाद चेतन रोज़ हमीद के यहाँ जाने और थोड़ा-बहुत समय उसकी संगति में गुज़ारने लगा था। हमीद सिगरेट खूब पीता था और चेतन के निकट कोई सिगरेट पिये तो उसका सिर दर्द करने लगता था, पर हमीद की संगति का लाभ उठाने और उसके यहाँ पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ने के लालच में उसने सिर-दर्द की भी परवाह नहीं की और धीरे-धीरे वह उस कमरे और उसके धुएँ का अभ्यस्त हो गया।

०

लेकिन शायद हमीद और चेतन में गहरी मैत्री न होती, यदि चेतन उसे मीनाक्षी रामाराव का फ़ोटो मँगा कर (जिस प्रयास में कि हमीद नितान्त असफल रहा था) चकित न कर देता।

०

मीनाक्षी मद्रास के एक जज की एम० ए० पास लड़की थी। डायरेक्टर अडवानी मद्रास में आऊट-डोर शूटिंग के लिए गये थे, जहाँ दोनों का परिचय हुआ और डायरेक्टर अडवानी ही के प्रभाव में मीनाक्षी ने उनकी आगामी पिक्चर में काम करने का वचन दे दिया था। उस समय तक केवल वेश्याएँ अथवा ग़रीब घरों की अनपढ़ लड़कियाँ अथवा एंग्लो-इण्डियन युवतियाँ ही फ़िल्मों में काम करती थीं, लेकिन टॉकी फ़िल्मों के आते ही एंग्लो-इण्डियन लड़कियाँ एकदम फ़िल्मों से छँट गयी थीं—सुलोचना, माधुरी, सविता (सुन्दरता में आज की एक भी हीरोइन शायद जिनका मुकाबिला नहीं कर सकती) अपनी ख्याति के शिखर पर पहुँची हुई भी, केवल इसलिए बेकार हो गयी थीं कि हिन्दुस्तानी का उनका उच्चारण अंग्रेज़ी-ज़दा था। फिर माइक नाम की जो चीज़ फ़िल्मों में आगी थी, उसके कारण हर सुन्दर वेश्या फ़िल्म की हीरोइन न हो सकती थी; बोलपट अभिनय और भंगिमाओं के ऊँचे स्तर की भी माँग करता था, इसी कारण फ़िल्म इण्डस्ट्री में नयी पढ़ी-लिखी लड़कियों की माँग थी। मीनाक्षी न केवल एम० ए०

थी, सुन्दर थी, वरन एक जज की लड़की थी और फ़िल्मी पत्र-पत्रिकाओं मे फ़िल्म इण्डस्ट्री की ओर उसके आकर्षित होने की बड़ी धूम थी और उसके इण्टरव्यू, वक्तव्य, फ़ोटो—धड़ाधड़ छप रहे थे। चेतन को उन वक्तव्यों में कहीं-न-कहीं यह लगता था कि फ़िल्म इण्डस्ट्री अथवा अभिनय का आकर्षण नहीं, फ़िल्म डायरेक्टर का आकर्षण ही उसे फ़िल्मों में ले आया है। उसने अडवानी साहब का फ़ोटो देखा था—सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट युवक, चौड़ा माथा, बड़ी-बड़ी आँखें! कुछ ही वर्ष पहले वे इंग्लिस्तान से फ़िल्म निर्देशन की शिक्षा ले कर आये थे। और कुछ वर्ष बाद, जब मीनाक्षी रामाराव मीनाक्षी अडवानी बन गयी तो चेतन को आश्चर्य नहीं हुआ। पर तब इतनी पढ़ी-लिखी लड़की को फ़िल्मों मे ले आने पर अडवानी साहब की बडी प्रशंसा हो रही थी।

चेतन को मीनाक्षी कुछ वैसी अच्छी न लगी थी। उसके मुख पर जवानी का यह अल्हड़पन न था, जो चेतन की प्रिय नायिका सुलोचना अथवा ज़ुबैदा के मुख पर सदैव दिखायी देता था....चौड़ा-चौड़ा-सा मुख, खुला माथा, किंचित धँसे कल्ले, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई। होंट ज़रूर पतले और प्यारे थे और बड़ी-बड़ी आँखों से चतुराई भी टपकती थी—पर वह चेहरा कुछ बौद्धिक चाहे लगता हो, अल्हड ज़रा भी न था। और चेतन तो सुलोचना के उस अल्हड़ सौन्दर्य पर इस हद तक फ़िदा था कि उसे चित्र में देख कर ही उसके हृदय की गति तेज़ हो जाती थी। एक दिन उसने पान की एक दुकान पर सुलोचना का चित्र लगा देखा। पनवाड़ी ने किसी साप्ताहिक मे उसे फाड़ कर, उसका सिलहूत कैंची से काट, उसे कागज़ पर चस्पाँ कर, फ्रेम करा लिया था। चेतन बाज़ार मे रुका देर तक उसे देखता रहा था। फिर उसने दुकानदार से पूछा कि क्या वह उसे बेचेगा? दुकानदार ने एक रुपया दाम माँगा। उस बहुमूल्य चित्र का दाम एक रुपया चेतन को बहुत ही कम लगा। जोड़-तोड़ कर उसने एक रुपया जमा किया। उसे बराबर डर लगा रहा कि कोई दूसरा उसे उड़ा न ले जाय और इस बीच वह रोज एक बार जा कर चित्र को देख आता रहा। चित्र खरीद कर उसने बैठक के साथ वाले छोटे कमरे में लगा दिया। (जिसमें हमीद ही की तरह

उसने फ़र्श पर दरी, गद्दा और जाजम बिछा कर लिखने-पढ़ने के लिए उस पर एक चौकी सजा ली थी।)

लेकिन हमीद को सुलोचना के मुकाबिले में मीनाची कहीं ज़्यादा पसन्द थी। "बौद्धिकता नहीं," हमीद ने कहा था, "आभिजात्य मीनाची के अंग-अंग से टपकता है। सुलोचना और ज़ुबैदा तो अपने तमाम सौन्दर्य के बावजूद बाज़ारू लगती हैं।"

चेतन उससे सहमत न था। अपने अल्हड़पन के बावजूद सुलोचना किसी सम्राज्ञी से कम न लगती थी। साँचे में ढली; सरो-सी लम्बी; प्यारा नुकीला चेहरा; बड़ी-बड़ी आँखें—जिनमें अजीब-सी गरिमा, अजीब-सी दर्प-मिश्रित दीप्ति और दूरी थी—'किसी बाज़ारू औरत में ये गुण कहाँ हो सकते है !' चेतन के मन मे कटुता भर आयी थी। बाज़ारू औरत के प्रति हमीद की यह वितृष्णा—जो स्वयं एक वेश्या का बेटा था—चेतन मन-ही-मन व्यंग्य से मुस्कराया था। उसके होंटों पर एक तल्ख़ जवाब भी आया था, पर उसने केवल इतना ही कहा था—"तुम अपने कमरे मे मीनाची ही की तस्वीर लगाना।"

"मैं किसी पत्र-पत्रिका से तस्वीर काट कर नहीं लगाऊँगा।" हमीद ने कहा था और चेतन को बताया था कि उसने मीनाची को अंग्रेज़ी में पत्र लिखा है (हमीद को अपनी अंग्रेज़ी पर नाज़ था) और जल्दी ही उसका चित्र पाने की उसे आशा है। और वह तो उसका हस्ताचरित चित्र ही अपने कमरे में लगायेगा।

जब इस बात को दो महीने बीत गये और चित्र तो दूर, मीनाची का उत्तर तक न आया तो एक शाम चेतन के पूछने पर हमीद ने किंचित उदास हो कर बताया कि उसने पत्र लिखे हैं, पर मीनाची ने एक की भी सनद नहीं दी।

जाने चेतन को क्या सूझी। उसने कहा, "तुम्हें इतना ही शौक है तो मैं मँगा दूँ तुम्हें मीनाची का चित्र ?"

"तुम कैसे मँगा दोगे ?" हमीद साश्चर्य बोला। उसकी आँखें तनिक फैल गयीं और होंट किंचित खुल गये, यहाँ तक कि अन्दर को मुड़ी उसकी

दन्त-पंक्ति दिखायी देने लगी। कुछ क्षण वह इसी तरह चेतन को सिर-से-पैर तक देखता रहा, फिर उसकी आँखों में हल्के-से उपेक्षा-मिले व्यंग्य की लकीर खिंच गयी।....'यह मँगा लेगा मीनाक्षी से तस्वीर, जब कि मैं नहीं मँगा सका,' उसने सोचा और कुछ क्षण उसी तरह चेतन को देखते रह कर वह ज़ोर से ठहाका मार कर हँस दिया।

चेतन अप्रतिभ नहीं हुआ। किंचित खीझ कर उसने कहा, "तुम्हें चत्र मिल जायगा। अब हटाओ इस किस्से को!"

और दो-चार मिनट इधर-उधर की बात करके वह चला आया था। हमीद के उस व्यंग्य-भरे ठहाके ने चेतन का तन-मन जला दिया था और उसने तय किया था कि यदि वह मीनाक्षी का फ़ोटो न मँगा सका, तो हमीद के यहाँ कभी नहीं जायगा।

वास्तव में हमीद की निराशा को देखते ही चेतन के दिमाग में एक युक्ति कौंध गयी थी और उसे उस युक्ति की सफलता का इतना विश्वास था कि उसने कह दिया था, वह तस्वीर मँगा देगा। मीनाक्षी सफल हीरोइन न सही, पर एम० ए० थी, फिर जज की लड़की थी और किसी थर्ड ईयर के छात्र की चिट्ठी के उत्तर में उसका फ़ोटो भेजना असम्भव था, पर यदि कोई युवती उसे पत्र लिखे, वह ग्रैजुएट हो और लेखिका भी हो तो वह उत्तर दिये बिना न रहेगी, इस बात का उसे पूरा विश्वास था। और चेतन ने तय किया कि वह लेखिका की ओर से पत्र लिखेगा; मीनाक्षी ने डायरेक्टर अडवानी की कला पर जो लेख लिखा है, उसकी शैली की प्रशंसा करेगा, उसके कथ्य का समर्थन करेगा, लिखेगा कि डायरेक्टर अडवानी से भारतीय फ़िल्मों को बड़ी आशाएँ हैं और निश्चय ही विदेश में पाये अपने ज्ञान और अनुभव के बल पर वे भारतीय फ़िल्मों के स्तर को ऊँचा कर देंगे। और यह सब लिख कर अन्त में वह मीनाक्षी का एक हस्ताक्षरित चित्र माँगेगा, यह विश्वास दिलाते हुए कि वह उसके बारे में उत्तर के पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखेगा (लिखेगी)।

यह सब सोच कर चेतन ने अपने स्त्री-नाम पर विचार किया। उसने कई नाम सोचे, पर वे सब उसे वास्तविक न लगते थे। वह चाहता था,

ऐसा नाम, जो सरल भी हो और अच्छा भी लगे। सोच-सोच कर उसने 'चन्दा' नाम रखा। पर चन्दा चूंकि लेखिका होने जा रही थी और उसका उपनाम होना ज़रूरी था, इसलिए उसने चन्दा देवी 'कुमद' नाम रखा और इसी नाम से मीनाक्षी को एक पत्र लिखा। यद्यपि उसने कई बार शब्द-कोष की सहायता ली और अपनी ओर से सरल और प्रवहमान अंग्रेज़ी लिखी, पर वह चाहता था कि उसमें कोई त्रुटि न रहे। यदि किसी और को पत्र लिखना होता तो वह हमीद के पास जाता, लेकिन हमीद को तो वह इसकी गन्ध तक न लगने देना चाहता था। वह अमीचन्द के पास गया। अमीचन्द ने उसका पत्र ठीक कर दिया, पर चन्दा के उपनाम पर आपत्ति की। "Kumad (कुमद) नहीं, शब्द Kumud (कुमुद) होना चाहिए," उसने कहा, "फिर कुमुद पुल्लिंग होता है, किसी स्त्री का उपनाम पुल्लिंग न होना चाहिए!" कुमुद के बदले उसने 'कुमुदिनी' कर दिया!

चन्दा देवी 'कुमुदिनी' बी० ए०—चेतन को कर्ण-कटु-सा लगा। 'कुमुदिनी' नाम तो अकेला भी चल सकता है और निमिष भर को उसने सोचा कि चन्दा देवी के बदले कुमुदिनी ही कर दे। पर कुमुदिनी सहज नहीं था। सोच-सोच कर चेतन ने वही नाम रहने दिया। इस बीच में उसने एक रुपया जोड़ लिया था। वह भैरो बाज़ार से चौदह आने में एक बड़ा ही सुन्दर, सुगन्धित, विलायती हल्का-गुलाबी पैड और वैसे ही गुलाबी लिफ़ाफ़े ले आया, फिर उसने उसके दो पन्नों पर बड़े ही सुन्दर अक्षरों में वह पत्र उतारा, लिफ़ाफ़े पर मीनाक्षी का पता और प्रेषिका के स्थान पर चन्दा देवी 'कुमुद' बी० ए०, कल्लोवानी मुहल्ला, जालन्धर शहर (पंजाब) लिख कर पत्र को डाक में डाल आया। उसी दिन पोस्ट ऑफ़िस में जा कर वह डाकिए से कह आया कि चन्दा देवी 'कुमुद', कल्लोवानी मुहल्ला के नाम से जो डाक आये, वह उसी की बैठक में फेंक जाय।

चेतन को अपनी स्कीम की सफलता का इतना विश्वास था कि जब सातवें ही दिन उसे मीनाक्षी का उत्तर और बड़े ही कीमती चिकने काग़ज़ पर उसका बड़े साइज़ का हस्ताक्षरित चित्र मिला तो यद्यपि उसे आश्चर्य नहीं हुआ, पर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उसी शाम हमीद के यहाँ गया और

फ़ोटो का पैकेट उसके सामने चौकी पर फेंकते हुए उसने कहा, "लो !"

हमीद ने पैकेट खोल कर फ़ोटो निकाला और उसे देखता ही रह गया। फिर उसने उसे पलट कर देखा। पृष्ठ भाग पर अंग्रेज़ी में लिखा था :

For Chanda Devi 'Kumud'

with love

Meenakshi

"यह चन्दा देवी कमद्द कौन है ?" सहसा हमीद ने पूछा।

"कमद्द नहीं, कुमुद।" चेतन हँसते हुए बोला, "यह चन्दा का तख़ल्लुस है। कुमुद उस कमल को कहते है, जो रात को खिलता है।"

लेकिन हमीद फिर भी ठीक उच्चारण नहीं कर सका।

"यह कुमुद्द है कौन ?" उसने पूछा।

"तुम्हें आम खाने से मतलब है कि पेड़ गिनने मे ?" चेतन ने सोल्लास कहा, "तुम यह तस्वीर फ्रेम करा के वहाँ दीवार पर लगा दो कि उठते-बैठते तुम्हारे सामने रहे !"

लेकिन हमीद ने उस वक्त तक उसका पीछा नहीं छोड़ा, जब तब उसने चेतन से सच्ची बात जान नहीं ली। वह बात जान कर चेतन की प्रतिष्ठा उसकी आँखों में कहीं ज़्यादा बढ़ गयी और उनकी मैत्री बराबरी के स्तर पर उठ आयी।

०

लेकिन बराबरी चेतन और हमीद में थी नहीं। स्वयं चेतन इसे अच्छी तरह जानता था। उसने मीनाक्षी का चित्र प्राप्त कर के हमीद की श्रद्धा चाहे जीत ली हो, हमीद का जितना अध्ययन था; समाज, संस्कृति, राजनीति, दर्शन—सभी विषयों पर उसका जितना अधिकार था—वह चेतन को कहाँ प्राप्त था ! उसके पास प्रतिभा थी, पर हमीद के पास ज्ञान था। चेतन के पास वह स्रोत था, जो न जाने पूर्व-जन्म के किन संस्कारों के बल पर चट्टानी धरती में फूट बहा था। वह एकदम सूख न जाय और प्रगति कर महानद का रूप धर ले, इसके लिए उसे अध्ययन अथवा अनुभूति के अगणित स्रोतों की आवश्यकता थी। हमीद के पास वे

स्रोत थे और चेतन ने हमीद की मैत्री जीत लेने के बाद, उन स्रोतों को अपना बना लेने का निश्चय कर लिया था।

हमीद को अफ़लातून (प्लेटो), अरस्तू, शोपेनहावर, कांट, हेगल, नीत्शे, बर्गसाँ, रसेल इत्यादि पश्चिमी दार्शनिकों को पढ़ने का शौक था और वह बात-बात में अरस्तू और शोपेनहावर की उक्तियों का उल्लेख किया करता था। चेतन ने भी उस क्षेत्र में प्रवेश पाने का प्रयास किया था, वह हमीद से अफ़लातून की प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' माँग कर ले आया था, पर जाने क्यों उसे बड़ी ऊबाहट हुई थी। चन्द ही पृष्ठ पढ़ते-पढ़ते उसे नींद आने लगी थी। सिद्धान्त और दर्शन उसे उबा देते थे। जबकि उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ उसकी रातों की नींद हराम कर देती थीं। दूसरे ही दिन वह पुस्तक वापस कर आया था। तब हमीद ने उसे अंग्रेज़ी में टैगोर की कुछ कविताएँ सुनायी थीं (जिनके दो संग्रह उसके पास थे) और चेतन हफ़्तों उनमें शराबोर रहा था और उसने स्वयं उसी रंग में एक पूरी-की-पूरी कापी गद्य-गीतों से भर डाली थी। 'कर्ण और कुन्ती' तथा 'श्रीमती' नामक टैगोर के नाटकों का अनुवाद भी उसने अंग्रेज़ी के माध्यम से किया था और उन्हीं की नकल में महात्मा बुद्ध को ले कर एक एकाकी लिखने का भी प्रयास किया था।

'हफ़ीज़' जालन्धरी और 'इकबाल' का नाम तो यद्यपि चेतन ने हुनर साहब से सुना था, पर उनका अध्ययन उसने हमीद के सत्संग ही में किया—'अपने मन में प्रीत बसा ले,' 'दिल है पराये बस में,' 'जाग सोज़े इश्क जाग'—हफ़ीज़ जालन्धरी की कितनी ही कविताएँ उसने हमीद के यहाँ पढ़ी थीं और कण्ठस्थ कर ली थीं। हमीद को इक़बाल की एक ग़ज़लः

कभी ऐ हकीकते-मुन्तज़र नज़र आ लिबासे-मजाज़ में

और नज़्म—'नया शिवाला' ज़बानी याद थीं। वह झूम-झूम कर गाया करता था :

सच कह दूँ ऐ बरहमन, गर तू बुरा न माने
बुत तेरे बुतकदों के सब हो गये पुराने

और चेतन ने इकबाल और हफ़ीज़ की वे सब ग़ज़लें और नज़्में कण्ठस्थ

कर ली थीं। एक दिन चेतन हमीद के यहाँ गया तो उसने कहा, "बैठो! आज मैं तुम्हें एक नये रोमानी शायर की एक नज़्म सुनाता हूँ। और मैं समझता हूँ ऐसा रोमानी शायर उर्दू ने अभी तक पैदा नहीं किया।"

और इससे पहले कि चेतन शायर का नाम पूछता, अपने जोश में हमीद ने सुनाना शुरू किया :

ऐ इश्क कहीं ले चल, इस पाप की बस्ती से
नफ़रत-गहे-आलम[1] से, ला'नत-गहे-हस्ती[2] से
इन नफ़्स-परस्तों[3] से, इस नफ़्स-परस्ती से[4]
दूर और कहीं ले चल
ऐ इश्क कहीं ले चल

हम प्रेम-पुजारी हैं, तू प्रेम-कन्हैया है
तू प्रेम-कन्हैया है, यह प्रेम की नैया है
यह प्रेम की नैया है, तू इसका खवैया है
कुछ फ़िक्र नहीं, ले चल
ऐ इश्क कहीं ले चल

बे-रहम ज़माने को, अब छोड़ रहे हैं हम
बेदर्द अज़ीज़ों से, मुँह मोड़ रहे हैं हम
जो आस कि थी वो भी, अब तोड़ रहे हैं हम
बस ताब नहीं, ले चल
ऐ इश्क कहीं ले चल

यह जब्रकदा[5] आज़ाद अफ़कार[6] का दुश्मन है
अरमानों का क़ातिल है, उम्मीदों का रहज़न[7] है
जज़्बात[8] का मक़तल[9] है, जज़्बात का मदफ़न[10] है
चल याँ से कहीं ले चल
ऐ इश्क कहीं ले चल

---

१. इस दुनिया से जो नफ़रत की जगह है, २. इस हस्ती से जो ला'नत (घृणा) की जगह है, ३. विषय लोलुपों, ४. विषय-लोलुपता, ५. जहाँ अन्याय तथा अत्याचार होते हैं, ६. स्वतन्त्र विचारों, ७. चोर-डाकू, ८. भावनाओं, ९. बध-स्थल, १०. कब्रिस्तान।

चेतन उन दिनों हृदय की समस्त गहराई से कुन्ती को प्यार करता था। उस स्थिति में जब कुन्ती की सगाई शामचुरासी के पण्डित से हो गयी थी, उसके प्यार का कुछ परिणाम निकलेगा, इसकी उसे कोई आशा नहीं थी, पर इस भावी निराशा से न उसके प्यार में कमी आयी थी, न उसकी पीड़ा में अथवा उस पीड़ा-मिले उल्लास में। वह भी कवि के साथ इस नफ़रत-गहे-आलम से कहीं दूर निकल जाना चाहता था, जहाँ समाज के बन्धन न हों, नियति के इन्द्रजाल न हों, संकुचित मनोवृत्तियाँ और रूढ़ियाँ न हों—वह हो, उसकी प्रेमिका हो और प्रेम का देवता हो.... और हमीद ने कविता का बन्द पढ़ा :

संसार के उस पार इक, इस तरह की बस्ती हो
जो सदियों से इन्साँ की सूरत को तरसती हो
और जिसके मनाज़र[1] पर तनहाई बरसती हो
यूँ हो तो वहीं ले चल
ऐ इश्क कहीं ले चल

तो चेतन को लगा कि जैसे कवि ने उसके मन ही की बात कह दी है। और उस दिन से वह हमीद के साथ उस कविता के रचयिता कवि अख़्तर शेरानी का भक्त हो गया था। उसने न केवल वह कविता अपनी कापी में नोट कर ली थी, वरन अख़्तर शेरानी द्वारा सम्पादित और संचालित मासिक पत्रिका 'ख़यालिस्तान' का (जिसमें कि वह कविता छपी थी) पूरा पता ले लिया था, ताकि वह स्वयं भी किसी-न-किसी तरह जोड़-तोड़ कर वह पत्रिका मँगा सके।

उस दिन से दोनों मित्र पुराने शायरों को छोड़ कर अख़्तर-फ़ैन हो गये। इकबाल दिमाग़ को झकझोरता था, लेकिन अख़्तर दिल में हलचल मचा देता था और पाठकों के मन को इस दुनिया की ग़लाज़त से दूर, 'नूर की वादी' में ले जाता था, जहाँ 'कुहसार का दामन' था, 'मस्ताना हवाएँ' थीं और 'चाँदनी रातों की शफ़्फ़ाफ़ फ़िज़ाएँ' थीं। जिस तरह अपनी पसन्द

---

१. दृश्यों

के फ़िल्मी नायक अथवा नायिका के जीवन की हर गति-विधि—उनके प्रेम, विवाह, विच्छेद अथवा पुनर्विवाह की राई-रत्ती खोज-ख़बर उनके प्रशंसक रखते हैं, इसी तरह अख़्तर शेरानी के हर इश्क की कहानी उन तक आ जाती थी और कल्पनाओं के समावेश से उसे बढ़ा-चढ़ा कर वे अपने मित्रों पर रौब डाला करते थे। उन दिनों अख़्तर 'सलमा' नाम की किसी युवती के बारे में कविताएँ लिखने लगे थे और 'अख़्तर की सलमा' को ले कर उर्दू साहित्य में दसियों तरह की अटकलें लगायी जाती थीं। कोई कहता था, सलमा अख़्तर की कल्पना में बसती है; कोई कहता था कि नहीं, वह लाहौर ही में रहती है और स्वयं भी शे'र कहती है। जो भी हो, चेतन को सलमा के सम्बन्ध में लिखे गये कुछ सॉनेट और कविताएँ बेहद पसन्द थी, विशेषकर—

सुना है मेरी सलमा रात को आयेगी वादी में

और—

सलमा में दिल लगा कर बस्ती की लड़कियों में बदनाम हो गया हूँ

उन दिनों चेतन ने एक अलग बयाज[1] बना ली थी, जिसमें उसने अख़्तर शेरानी की केवल वे कविताएँ नोट की थीं, जो उसने सलमा के बारे में लिखी थी। कविताएँ ज्यादा नही थी पर चेतन को बयाज़ में कुछ और लिखना स्वीकार न हुआ था।

और थर्ड तथा फ़ोर्थ ईयर के दो साल चेतन और हमीद का लगभग बिला-नाग़ा साथ रहा था। चेतन ने उन दिनों कहानियाँ लिखीं, नाटक लिखने का प्रयास किया और हमीद के साथ मिल कर न केवल स्थानीय सिनेमा हाउस के मालिक लाला मोहन लाल को (चन्दा देवी 'कुमुद' के माध्यम से) मूर्ख बनाया, बल्कि लाहौर से निकलने वाली प्रसिद्ध फ़िल्मी पत्रिका के मालिक सम्पादक जी० आर० ओबराय को भी ख़ूब छकाया। ओबराय साहब ने 'कुमुद' के लेख ही नहीं छापे, उसे फ़िल्मी लेखन पर पुस्तकें भी भेजीं, अपने फ़ोटो भेजे और कई बार जालन्धर आ कर मिलने

---

१. नोट बुक

का प्रयास किया (जिसे चेतन सदा टाल गया।) बी० ए० करने के बाद हमीद एल० एल० बी० करने अलीगढ़ चला गया था और चेतन दैनिक पत्र के दफ़्तर में लाहौर....और आज वे अचानक मिल गये थे।

०

चेतन के हाथ को अपने कन्धे से हटा कर, एक कदम परे चलते हुए हमीद ने ज़रा ऊँचाई से बोलते हुए, उसे बताया था कि उसने एल० एल० बी० नहीं की, लखनऊ रेडियो स्टेशन खुल रहा था, उसके लिए प्रोग्राम एसिस्टेण्टों की ज़रूरत थी और वह इण्टरव्यू में चुन लिया गया है।

"मैंने तो सुना है कि अभी सिर्फ़ दिल्ली ही में रेडियो स्टेशन खुला है...."

"नहीं इसी जनवरी में लखनऊ में भी खुल गया है। पाँच सौ उम्मीदवारों में से केवल पाँच चुनने थे। अर्जियाँ इंग्लैण्ड-पलट लोगों की भी आयी हुई थीं, लेकिन इण्टरव्यू में सबसे ज़्यादा नम्बर मैंने पाये।"

"तुम्हारे ज्ञान का भी तो कोई ठिकाना नहीं।" चेतन ने कहा

और हमीद ने बताया कि आॅल इण्डिया रेडियो के कण्ट्रोलर फ़ील्डन साहब स्वयं इन्टरव्यू लेने वालों में से थे और वे उसकी बात-चीत से बड़े प्रसन्न हुए (उसने इस बात का उल्लेख नहीं किया कि नवाब ख़ैरपुर के रसूख़ से वायसराय की कौंसिल के एक मेम्बर की पुरज़ोर सिफ़ारिश भी उसे प्राप्त थी) इण्टरव्यू में क्या-क्या सवाल पूछे गये और उसने क्या-क्या जवाब दिये—हमीद सविस्तार बताता रहा। इस बीच वह कई बार हँसा, कई बार मुस्कराया और चेतन ने मार्क किया कि यद्यपि ऊपर के दाँत उसके वैसे ही तनिक पीछे मुड़े है, पर उसकी मुस्कान में चाटुकारिता नहीं, कुछ अजीब-सी ऊँचाई और बेपरवाही है।

इण्टरव्यू की बात बता कर उसने अपने काम का ब्योरा दिया कि कैसे सारा स्टेशन वही चलाता है। डायरेक्टर तो सिन्धी है और दिल्ली यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी का प्रोफ़ेसर था। उसे उर्दू एकदम नहीं आती। डायरेक्टर एकदम चुग़द है और स्टेशन का काम हमीद ही करता है—वही शेड्यूल बनाता है, वही नाटक प्रोड्यूस करता है और वही टॉक्स

कराता है और आज तक उसने एक भी डिविएशन नहीं होने दी। अगले दस साल में हिन्दुस्तान के दस शहरों में रेडियो स्टेशन खुल जायँगे और वह दस साल में यदि स्टेशन डायरेक्टर न हो गया तो उसका नाम नहीं।....यह अन्तिम बात उसने सीने पर हाथ मार कर कही।

चेतन उसकी बातें सुनता रहा—शैड्यूल, टॉक्स, डिविएशन—उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। रेडियो क्या बला है, वह न जानता था। उसने सुना था कि दिल्ली में रेडियो स्टेशन खुला है। कहीं स्टूडियो में कोई कुछ बोलता है, गाता-वाता है और वह सब चाँदनी चौक में सुनायी देता है। दीवान हॉल के सामने पार्क के खम्भों के साथ साउण्ड-बक्स लगे हैं और उनमें भाषण, गाने, नाटक—सब सुनायी देते हैं। उसने सहमा पूछा :

"लाहौर में कब तक रेडियो स्टेशन खुलेगा ?"

"स्कीमें तो बन रही हैं। फिर भी तीन-चार साल लगेंगे।"

०

हमीद का घर आ गया था। अहाते के बाहर बाज़ार ही में वह रुका और उसने हाथ बढ़ा दिया। लेकिन सहसा उसे ख़याल आया कि वह लगातार अपनी ही बातें करता रहा है और उसने चेतन का हाथ अपने हाथ में ही लिये-लिये पूछा, "तुम आजकल क्या कर रहे हो ?"

चेतन उसे बताना चाहता था, वह प्रसिद्ध समाचार-पत्र में काम करता है ; इधर उसकी तबियत ख़राब रहने लगी थी, इसलिए वह तीन महीने के लिए शिमला चला गया था ; उसकी साली की शादी थी, इसलिए वह समय से पहले ही चला आया है....पर ज्यों-ज्यों हमीद अपनी बात करता रहा, चेतन की आँखों में वह उतना ही ऊँचा होता गया और स्वयं चेतन उतना ही छोटा होता चला गया। यदि हमीद उसे अपने उसी कमरे में ले जाता, शरबत पिलाता या खाना खिलाता और पुराने मित्र-सा व्यव-हार करता तो शायद चेतन कुछ अपनी बात कहता, पर उसे पहले तो उसका कन्धे से हाथ हटा देना बुरा लगा, फिर उनकी बातों में (यद्यपि वह बड़े खुले ढंग से बातें करता रहा था) चेतन को दूरी का एहसास

हुआ, और जब अपने घर के निकट उसने हाथ बढ़ा दिया तो चेतन को लगा कि वह उसका पुराना मित्र नहीं है, जिसके साथ उसने बड़ी घनिष्ठता के दो बरस गुज़ारे थे, बल्कि अपने अतीत पर पाँव रख कर भविष्य की सीढ़ी चढ़ने वाला कैरियरिस्ट है....और उसने अपने महत्व को और भी भी घटा कर कहा :

"यों ही एक रोज़ाना अख़बार में ट्रांसलेटर हूँ। बीमार हो गया था, शिमले में आरज़ी काम मिल गया, सो वहाँ चला गया था। अब आज-कल में वापस लाहौर जाऊँगा। अख़बार में नौकरी करने का तो इरादा नहीं, कुछ जुगाड़ करूँगा यदि एम० ए० कर सकूँ।"

और इससे पहले कि हमीद उसका हाथ छोड़ कर मुड़ता, चेतन उसके हाथ को ज़रा-सा हिला कर आगे बढ़ गया।

तेरह

यद्यपि आकाश में बादल घिरे थे, पर धूप जाने कहाँ से चकमा दे कर उनके व्यूह मे निकल आयी थी और सिर पर सपाट पड़ रही थी। बेहद उमस, गर्मी और फिर रैनक बाज़ार की भीड़....लेकिन हमीद से हाथ मिला कर चेतन सिर नीचा किये चला, तो उसे धूप या उमस, गर्मी या भीड़—किसी का ध्यान नहीं रहा। अपनी हीनता का एहसास, जो सुबह अमीचन्द की उपेक्षा-भरी दृष्टि (या अ-दृष्टि) के कारण उसके मन में आ बैठा था, हमीद के व्यवहार मे कई गुना बढ़ कर उसके मन-प्राण पर छा गया। उसने अनन्त और दीनानाथ और निश्तर के यहाँ जा कर अपनी असफलता, पीड़ा और हीनभाव को छिपाने या भुलाने का प्रयास किया था, पर उसे कहीं चैन न मिला था। बार-बार उसके मन में आता था कि वह तत्काल लाहौर जाय, दैनिक समाचार-पत्र की नौकरी छोड़, किसी तरह एम० ए० में दाखिल हो जाय, फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हो, डॉक्ट्रेट करे और किसी कॉलेज में प्रोफ़ेसर हो कर किताब-पर-किताब लिखे....यहाँ तक कि उसकी ख्याति का सूरज अपनी किरणें देश ही नहीं, विदेशों में भी फैला दे और जब उसकी रोशनी अपने दफ़्तरों के संकुचित अँधेरे में, ग़ुलामी की बेड़ियों में जकड़े, कुर्सियाँ तोड़ते हुए उसके अफ़सर-मित्रों तक

पहुँचे तो उन्हें अपनी हीनता का आभास मिले।

अमीचन्द उसका सहपाठी सही, हमजोली सही, पर चेतन और उसके मध्य सदा एक अदृश्य-सी दीवार रही थी और यद्यपि ज़रूरत पड़ने पर चेतन उसके यहाँ चला जाता था और वह भी उसकी बैठक में आ जाता था, लेकिन मैत्री की घनिष्ठता उस सम्बन्ध में कभी नहीं थी। फिर अमीचन्द एफ़० ए० पास करके गवर्नमेण्ट कॉलेज, लाहौर चला गया था (कि उसके पिता लाला मणिराम असिस्टेण्ट पोस्ट मास्टर ने अपनी आधी पेन्शन के बदले सरकार से रुपया ले कर उसे वहाँ भेजने का प्रबन्ध कर दिया था) और दोनों के मध्य और भी दूरी आ गयी थी, पर हमीद तो दो बरस उसके साथ रहा....उस धुएँ-भरे कमरे की घनिष्ठता-भरी गप्पें; वह सुलोचना और ज़ुबैदा के अभिनय पर बहसें; वह ओबराय या लाला मोहन लाल को बेवकूफ़ बनाने की स्कीमे; वो इकबाल, टैगोर, हफ़ीज़ और अख़्तर शेरानी की कविताओं का इकट्ठे रसास्वादन....

'लेकिन दोस्ती बराबर वालों में होती है,' उसने मन-ही-मन में कहा, और उसके होंटों पर एक ज़हर-भरी मुस्कान खेल गयी, 'जब एक दोस्त ऊँचा उठ जाता है तो फिर वह नीचे वाले की ओर नहीं देखता। आज यदि मैं भी प्रोग्राम असिस्टेण्ट हो जाऊँ तो देखो हमीद कैसे पहले की तरह बगलगीर होता है और यदि मैं प्रोग्राम डायरेक्टर हो जाऊँ तो कैसे उसके होंटों पर वही पुरानी चाटुकारी-भरी मुस्कान तैरने लगती है!'

चेतन हमीद को जी० आर० ओबराय के बारे में बताना चाहता था कि ओबराय के किसी मित्र ने जब उसे बता दिया, चेतन ही चन्दा देवी के नाम से लिखता रहा है। तो फिर उसने कभी चेतन से आँख नहीं मिलायी। वह यह भी बताना चाहता था कि उसने अख़्तर शेरानी को एक मुशायरे मे देखा था और वह ज़रा भी ख़ूबसूरत नहीं—मँझला कद; दोहरा शरीर; फूला-फूला-सा चेहरा; तरशी हुई रॉनल्ड कोलमैन की-सी मूँछें; शराब के नशे में मख़मूर छोटी-छोटी आँखें.. वह मुशायरे में मद-मत्त आया था और किसी को शे'र पढ़ने न देता था वह उसे हुनर साहब के बारे में, अपने सम्पादक धनपतराय बी० ए० (नेशनल) के बारे

में बताना चाहता था....उसने मन-ही-मन अपनी पीठ ठोंकी कि उसने हमीद को कुछ नहीं बताया और इससे पहले कि वह उसका हाथ छोड़ कर मकान की तरफ़ पलटता, वह उसके हाथ को ज़रा-सा झटका दे कर आगे बढ़ आया।

०

"अरे भाई कहाँ अन्धों की तरह भागे जा रहे हो ?

सामने से कन्धे पर हाथ पड़ने से वह रुका और उसने सिर उठाया—"निश्तर !"

"हुनर साहब से मालूम हुआ था कि तुम आये हुए हो, हम तो तुम्हारी तरफ़ जाने की ही सोच रहे थे।"

"और मैं तुम्हारे यहाँ से आ रहा हूँ।"

"देखो हुनर साहब यहाँ बैठे हैं।" और उसने अन्दर की ओर देख कर कहा, "यह देखिए ये हज़रत तो यहीं मिल गये और हम इनकी फ़तर जाने की सोच रहे थे।"

चेतन ने देखा कि निवाड़ की दुकान में रुई, सूत और निवाड़ के गोलों में लगभग डूबे हुए, हुनर साहब और उसका साला रणवीर बैठे हैं। वह चाहता था कि किसी तरह वहाँ से भाग चले, लेकिन उसे देखते ही रणवीर लपकता हुआ बाहर आया :

"आइए जीजा जी, आइए !" और जैसे चेतन के दोनों हाथ पकड़, वह उसे लगभग खींचता हुआ अन्दर ले गया।

चौदह

"आओ भई चेतन, आओ, इनसे मिलो—महाशय रुद्रसेन आरिया (याने आर्य !) अदब से जितना लगाव इन्हें है, उतना इस सारे शहर में किसी व्यापारी को न होगा।"

और श्री रुद्रसेन आरिया ने निवाड़ों के पहिए-ऐसे गोलों पर बैठे दाँत निकोम दिये।

"और यह है चेतन ! मेरा शागिर्द है, पर अब उस्ताद बना जा रहा है।" हुनर साहब खिसियानी-सी हँसी हँसे, "बैठो भाई बैठो !"

दुकान में बेहद उमस थी। इस बात के बावजूद कि टेबल-फ़ैन पूरी तेज़ी से चल रहा था, रुई, सूत और निवाड़ के बाहुल्य से कुछ अजीब गला घोंटती-सी गन्ध वातावरण में बसी थी। चेतन का जी चाहा कि बाहर जा खड़ा हो। "मैं बैठूंगा नहीं," उसने कहा, "बाहर आपका इन्तज़ार करता हूँ, आप आइए !" पर जब महाशय रुद्रसेन ने निवाड़ के दो-एक गोल पहिये-से उठा कर परे कोने में फेंक दिये, खादी की मोटी धोती से अपनी बैल की-सी गर्दन का पसीना पोंछते हुए उससे वहाँ बैठने के लिए कहा, ताकि पंखे की हवा सीधी उस पर पड़े, और हुनर साहब ने उसे दामन से खींचा, तो इच्छा न होते हुए भी वह बैठ गया।

बैठते ही चेतन ने एक अनमनी-सी दृष्टि साहित्य के प्रेमी उस व्यापारी पर डाली—मँझला कद; गोरा-चिट्टा रंग; चौड़े-चौड़े खुले हुए अंग; गठा, गँवारू शरीर; छोटे, रूखे, खरखरे बाल; चौड़े मुख में बड़े-बड़े दाँत; मोटी खादी की बनियान से झाँकता, गले में लिपटा, मैला यज्ञोपवीत; कमर मे धोती, जो निरन्तर रूमाल का काम देते-देते मैली पड़ गयी थी....निवाड़ के ढेर पर बैठे उस व्यक्ति का साहित्य से दूर का भी नाता न लगता था।

"मैं रुद्रसेन जी को गीता का तरजुमा सुनाने जा रहा था। गीता के दूसरे बाब[1] मे आत्मा के जिन्दा-ए-जावेद[2] और लाफ़ानी[3] होने के सिलसिले में जो श्लोक आये है, उनका आम-फ़हम और आसान ज़बान में मैंने ऐसे तरजुमा किया है कि श्लोकों का पूरा-पूरा मतलब भी आ जाय और अपनी तरफ़ से कुछ तसर्रुफ़[4] भी न हो। वो जो श्लोक है न—न जीयते म्रीयते...."

महाशय रुद्रसेन आरिया हँसे—"जीयते म्रीयते नहीं," उन्होंने कहा, और शुद्ध उच्चारण से गा कर श्लोक पढ़ा :

> न जायते म्रियते वा कदाचिन्
> नायं भूत्वा भविता न भूयः।
> अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
> न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

"लीजिए इसी श्लोक से सुनिए।" हुनर साहब बोले, "आप संस्क्रीत (संस्कृत) का श्लोक पढ़ते जाइए, मैं नज़्म में उसका तरजुमा पढ़ता हूँ। संस्क्रीत तो हमें आती नहीं, लेकिन उन श्लोकों को कितना समझा है और कैसे बिना बढ़ाये-घटाये आसान जबान में उतारा है, जरा इस बात की दाद दीजिए।" और उन्होंने महाशय जी से कहा, "पढ़िए अब इसी श्लोक को फिर एक बार!"

और महाशय रुद्रसेन ने बड़ी तल्लीनता से फिर श्लोक पढ़ा।

तब 'जीवात्मा के बारे में कहा है' की भूमिका बाँधते हुए हुनर साहब

१. अध्याय २–३. अमर ४. हस्तक्षेप—अपनी ओर से बढ़ाना-घटाना।

सोच-भरे स्वर से पढ़ने लगे :

न पाबन्दे-औक़ात[1] है जन्म इसका
न खटका इसे मौत का है किसी दिन
न हो कर यह होती, बदलती नहीं यह
अजन्मा, मुसलसल,[2] सनातन, पुरातन
यह फ़ानी नहीं जिस्मे-ख़ाकी की मानिन्द,[3]
ये मरती नहीं ख़्वाह मर जाय यह तन।

"वाह वा....वाह वा !" झूम कर दाद देते हुए महाशय रुद्रसेन ने दूसरा श्लोक गाया :

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्

और हुनर साहब बोले :

पृथा पुत्र अर्जुन यह सुन बात मेरी
जो इन्सां इसे जानता ग़ैर-फ़ानी[4]
जो क़ायल है इसकी मुसलसल बक़ा[5] का
अमिटता का जिसकी नहीं कोई सानी
वो मरवायेगा किसको, मारेगा किसको
कि जब तत्व इसके हैं सब जाविदानी

महाशय रुद्रसेन अगला श्लोक पढ़ना चाहते थे, पर अपने जोश में हुनर साहब गाते गये :

कि जैसे पुराने फटे पैरहन को
नये के लिए आदमी छोड़ देता
यह जीवात्मा भी इसी तरह नाता
पुराने थके जिस्म से तोड़ लेता

---

१. समय से बंधा; २. निरन्तर; ३. भाँति; ४. अमर; ५. अनश्वरता।

न असिलह[1] में ताकत इसे काट दे
आग में है नहीं दम कि इसको जलाये
गला पाये आब[2] इसको मुमकिन नहीं यह
हवा में न हिम्मत कि इसको सुखाये।

"वाह वा ! वाह वा....वाह वा !" रुद्रसेन झूमते हुए बोले और धोती के छोर से उन्होंने मुंह और गर्दन का पसीना पोंछा। "कैसी आसान कविता में आपने श्लोकों का पद्यानुवाद किया है।"

"मुश्किल उर्दू में शे'र कहना आसान है," हुनर साहब ने गर्वस्फीत स्वर में कहा, "लेकिन आसान ज़बान में गीता के गहरे मानों को उतारना सहल नहीं।"

और दाँत निकोसते हुए उन्होंने रणवीर की ओर देख कर आँख दबायी।

"हुनर साहब की यह आसान गीता छप गयी तो लोग इसे हीर-राँझा की तरह ज़बानी याद कर के गाते फिरेंगे।"

"मेरे सामने पैसे कमाने का सवाल नहीं," हुनर साहब ने कहा, "भगवान कृष्ण के इस उपदेश को मैं घर-घर पहुँचाना चाहता हूँ। श्रीमद्भगवद्गीता के इस दूसरे अध्याय को आसान ज़बान में नज़्म करके मेरा इरादा है कि इसे छापूं और इसे आर्यसमाज के सालाना जलसे पर मुफ़्त बाँटूं। मैंने यह भी तय किया है कि इसे किसी अदब-नवाज़[3] गीता-प्रेमी को भेंट करूँ।"

"रुद्र भाई से बेहतर अदीबों का सरपरस्त कौन होगा ?" रणवीर ने रद्दा जमाया, "गीता का प्रेम तो इनका इतना है कि गीता का पाठ किये बिना ये जलपान नहीं करते और सारी-की-सारी गीता इन्हे ज़बानी याद है।"

"ज़रूर छपवाइए इसे !" महाशय रुद्रसेन ने सोत्साह कहा, "यह धर्म की सेवा ही नहीं, राष्ट्र की सेवा है। आज भारत परतन्त्र है, पर अब भी एक चीज़ है, जिसके कारण सारी दुनिया के सामने उसका मस्तक ऊँचा है और वह है भगवद्गीता।"

---

१ शस्त्र; २. पानी ३. साहित्यानुरागी।

"मैं तो इसे हज़ारों की तादाद में छपवा कर बाँट देता," हुनर साहब बेबसी से बोले, "पर आप जानते हैं, छोटे भाई के मामले ने हमारी तो बधिया ही बैठा दी है। दस हज़ार का तो गहना रख लिया हरामज़ादों ने और चढ़ावे के कपड़ों की तो बात ही दूर रही। मैं तो उन पर दावा करने के लिए यहाँ आया हुआ हूँ। कचहरियों की खाक छानते हुए मैंने सोचा कि मन के सन्ताप को दूर करने का इससे बेहतर कोई दूसरा तरीका नहीं कि श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय को नज़्म किया जाय।"

पंखे की हवा सामने से लग रही थी, पर रीढ़ की हड्डी पर पसीने की नदी बह रही थी। चेतन के लिए वहाँ और बैठे रहना मुश्किल हो गया। "चलो, ज़रा बाहर खड़े होते हैं।" उसने निश्तर से कहा और उठते हुए उसका हाथ खींचा।

"बैठो बैठो," हुनर साहब ने कहा, "अभी चलते हैं।"

लेकिन चेतन निश्तर का हाथ पकड़े, उसे साथ ही उठाता हुआ बाहर बाजार में आ गया। हवा चाहे बाहर भी बन्द थी तो भी चेतन को खुले में बड़ी राहत मिली।

दुकान के तख्ते पर एक पैर रखते हुए चेतन ने पूछा, "ये हुनर साहब किस मामले में फँस गये?"

निश्तर अपनी ऐंचातानी आँख से हँसा। "अरे भाई वो इनका छोटा भाई है न गोपालदास। उसकी शादी अभी पिछले दिनों मिट्ठा बाज़ार के लब्भू महेन्द्र की लड़की से हुई थी। इन लोगों ने न सिर्फ़ उसके लिए गहनों के तीन सेट अलग से बनवाये, बल्कि दिखावे के लिए अपनी बीवी का और अपने बड़े भाई की बीवी का ज़ेवर भी वरी में रख दिया। लड़की एक रात ससुराल रह कर जो आयी तो फिर गयी ही नहीं। उसका कहना है कि लड़का नपुंसक है और वह उसके साथ नहीं रहेगी। गहने-कपड़े सब उन्होंने रख लिये हैं और ये अब कचहरी दौड़ रहे हैं।"

"थी कुछ ऐसी बात?"

"सच्ची बात तो भगवान ही जानता है, लेकिन लोग कहते हैं कि गोपालदास ससुराल गया था तो किसी साधू को साथ ले गया था। अब

जाने क्या बात हुई, पर लड़की ने जाने से इनकार कर दिया है। हुनर साहब के बड़े भाई आ कर खुद उसके पाँवों पर पगड़ी रख गये हैं, पर लड़की टस-से-मस नहीं हुई। और अब लाल बाज़ार में लड़की के बड़े भाई ने जनरल मर्चेण्डाइज़ की दुकान खोल ली है। हुनर साहब कहते हैं कि यह सब उन्हीं के ज़ेवरों का प्रताप है।....जो भी हो, इस मामले के कारण दूसरे-चौथे हुनर साहब को जालन्धर आना पड़ता है और यहाँ की अदबी दुनिया[1] खासी सरगर्म हो गयी है।"

हालाँकि चेतन सब कुछ जानता था, तो भी उसने पूछा :

"तुम तो उर्दू में शे'र नहीं कहने लगे ?"

"लगा तो हूँ।"

"हुनरवी हुए कि नहीं ?"

झेंपते हुए निश्तर ने कहा,"पंजाबी में लिखना मैंने नहीं छोड़ा।"

"हुनरवी हुए कि नहीं ?" चेतन ने फिर दोहराया।

लेकिन इससे पहले कि निश्तर जवाब देता, हुनर साहब बाहर आ गये और उन्होंने सरगोशी में कहा, "रुद्रसेन काग़ज़ के लिए पचास रुपये खर्च करने को तैयार हो गया है, पर वह कहता है कि खुद चल कर काग़ज़ ले देगा। बनिया है न साला !"

"आपने तो खालसा होटल में खाना खिलाने का वादा किया था।" निश्तर ने कहा।

"खैर रुको, मैं अभी आता हूँ।" हुनर साहब बोले, "तुम रणवीर को बुला लो।"

निश्तर ने रणवीर को आवाज़ दी। वह बाहर आया तो हुनर साहब अन्दर गये।

"मैं तो तुमसे हीर सुनने आया था।" चेतन बोला।

"सुनायेंगे। आप तो यहीं हैं।"

"मैं शायद आज ही चला जाऊँ।"

---

१. साहित्य-संसार

'अब हुनर साहब से छुट्टी ले कर बैठेंगे।"

दूसरे क्षण हुनर साहब और महाशय रुद्रसेन बाहर आ गये। रुद्रसेन के मोटे, खुरदरे हाथ को अपने पतले-लम्बे, नाजुक दोनों हाथों में ले, बड़े तपाक से उसे दबाते और खीसें निपोरते हुए, उन्होंने महाशय जी का शुक्रिया अदा किया। और जब वो दुकान से परे निकल आये हुनर साहब ने कुर्ते की जेब से पाँच का नोट निकाल कर निश्तर को दिखाया।

पन्द्रह

हुनर साहब उर्दू भाषा में श्रीमद्भगवद्गीता के सरल पद्यानुवाद के बाद उपनिषदों को उर्दू नज़्म का जामा पहनाने की अपनी योजनाएँ सविस्तार सुना रहे थे; बड़ी लच्छेदार, बामुहावरा ज़बान में अर्द्ध-विरामों और विरामों के स्थान पर दिलचस्प चुटकुले, किस्से सुनाते चले जा रहे थे और चेतन सोच रहा था, किस तरह उनसे पीछा छुड़ाये। उनका इरादा था कि सर्व-प्रथम वे कचहरी रोड पर ख़ालसा होटल में जायेंगे और श्रीमद्भगवद्गीता के सरल पद्यानुवाद के खाते दिये गये श्री रुद्रसेन आरिया के अनुदान को सार्थक करेंगे। इसके बाद वे तीनों मण्डी रोड पर 'दोआबा विधवा सहायक सभा' के मन्त्री—संस्था के मुख-पत्र 'विधवा-सहायक' के सम्पादक दोआबे के गान्धी, महात्मा बांशीराम जी 'कर्मठ'—के दर्शन करेंगे। मण्डी जाना और लाला बांशीराम के दर्शन न करना हुनर साहब के मज़हब में कुफ़्र था—विशेषकर उस सूरत में जबकि उन्होंने अपने साप्ताहिक के दरवाज़े ही नहीं, खिड़कियाँ और रोशनदान तक हुनर साहब तथा उनके शागिर्दों के लिए चौपाट खोल रखे थे। 'विधवा-सहायक' पर सम्पादक के रूप में नाम तो चाहे महात्मा बांशीराम जी का जाता हो, पर उसके वास्तविक सम्पादक तो हुनर साहब ही थे। वे पत्र के लिए नज़्में ही न

लिखते-लिखवाते थे, वरन उसके लिए उपयुक्त लेख और कहानियाँ भी प्राप्त करते थे। यही नहीं, वे अपने परिचितों में उसका प्रचार भी करते थे और उसके ग्राहक भी बनाते थे। इस 'नेक' काम में उन्हें कुछ द्रव्य मिलता हो, ऐसी बात नहीं। इतनी दूर से आने पर चाय का एक प्याला भी उन्हें प्राप्त न होता था। पर यह देश का काम था और हुनर साहब की कला देश के किसी काम आ सके, इससे बढ़ कर हर्ष और सन्तोष की बात उनके लिए और क्या हो सकती थी। यह और बात है कि जब से उन्होंने 'विधवा-सहायक' की अन-आफ़िशियल सम्पादकी सम्हाली थी, जालन्धर, होशियारपुर और इर्द-गिर्द के कस्बों और देहात में उनके शागिर्दों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी और यदि उनके शागिर्द गुरु-दक्षिणा के निमित्त उनकी कुछ सेवा करना चाहते तो हुनर साहब उस सुख से उन्हें वंचित न रखते थे। लाला बांशीराम को उन्होंने वचन दिया था कि जब वे गीता का अनुवाद करेंगे तो उसे धारावाहिक रूप से 'विधवा-सहायक' में देंगे। इसलिए वे खालसा होटल के बाद पहले उधर जाना चाहते थे। रणवीर उनके पीछे लगा था कि उसके नाम से एक कविता ज़रूर इसी सप्ताह के 'विधवा-सहायक' में छपनी चाहिए और यद्यपि निश्तर के पास अपना एक पत्र था, पर वह भी चाहता था कि 'विधवा-सहायक' में उसकी रचनाएँ लगातार छपें....और यों हुनर साहब अपने इन दो चेलों के साथ प्रकट लाला बांशीराम के दर्शन करने, किन्तु परोक्ष में इस बात का अन्दाज़ लेने जा रहे थे कि विधवा-विवाह सम्बन्धी सामग्री के बाद 'विधवा-सहायक' में उनके और उनके चेलों के लिए कितने कॉलम बच जाते हैं। वहाँ से उनका इरादा मण्डी के प्रसिद्ध आढ़ती, लाला जालन्धरी मल जी 'योगी' के यहाँ जाने का था। चेतन कभी उनसे मिला न था, पर एक-आध जलसे में उसने उन्हें देखा ज़रूर था। लाला जालन्धरी मल के पिता जब ज़िन्दा थे और जालन्धरी मल जी चार बार फ़ेल हो कर मिडिल पास करके दुकान पर बैठने लगे थे तो उर्दू में कविता करते थे। अपना उपनाम उन्होंने 'सरफ़रोश' रखा था और उनकी राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह 'तमन्ना-ए-सरफ़रोशी' के नाम से छपा भी था। जिसके समर्पण-पृष्ठ

पर काकोरी केस के शहीद श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' का शे'र दर्ज था :

सरफ़रोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ू-ए-क़ातिल में है

उसके नीचे—

अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की पुण्य स्मृति में

मोटे अक्षरों में लिखा था।

इसी पृष्ठ के सामने 'सरफ़रोश जी' का फ़ोटो था—मँझला कद; मोटा थुल-थुल शरीर; छोटी, ख़ूब मोटी गर्दन; दायें गाल पर नाक के निकट एक बड़ा-सा मुहासा; काला-सियाह रंग—फ़ोटो में वे किसी कवि की जगह गान्धी टोपी पहने 'कलुए पहलवान' ऐसे दिखायी देते थे। कांग्रेस के आन्दोलन में उन्हें दो वर्ष कठिन कारावास का दण्ड मिला था। इसी दुख में उनके पिता बीमार रहने लगे थे। इधर 'सरफ़रोश जी' जेल से छूटे, उधर उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। जेल से आने के बाद 'सरफ़रोश जी' को फिर किसी ने कांग्रेस के जलसे में नहीं देखा। पिता के मरने के बाद उन्होंने गद्दी सँभाली, शादी की; पाँच वर्ष में पाँच बच्चे पैदा किये, लेकिन इस सब्र के बावजूद कभी-कभी अपने मन के भावों को शे'रों में व्यक्त करते रहे। जेल में उन्होंने वेदान्त ही का अध्ययन न किया था, अपना उपनाम भी 'योगी' रख लिया था। इधर वे घर में कम जाते थे, अधिक समय दुकान पर रहते थे। उसके बाद ऊपर चौबारे में चले जाते थे, जिसके बाहर खासी खुली जगह थी। वहीं उनके मित्र आ जाते और लाला जी बड़े प्रेम और भक्ति-भाव से श्रोताओं को वेदान्त के रहस्य समझाते। गान्धी टोपी उन्होंने पहननी छोड़ दी थी। कुर्ता-धोती पहनते। उन्हें गेरुवा रँगा लेते। जल्दी मैला भी न होता और उनके उपनाम के साथ मेल भी खाता। निष्काम भाव से दुकान का काम देखते थे। फला-फल की चिन्ता न करते थे (ऐसा वे कहते थे) और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे, कब उनके लड़के गद्दी सँभालते हैं और उन्हें पूर्ण रूप से योग-साधन की छुट्टी देते हैं। हुनर साहब, जो उपनिषदों को सरल उर्दू नज़्म का जामा पहनाने की सोच रहे थे, तो यह 'योगी जी' की ही प्रेरणा से था।

'शायद उपनिषदों का अनुवाद हुनर साहब, 'योगी जी' को समर्पित करें,' चेतन ने मन-ही-मन सोचा, लेकिन उसे न 'दोआबा के गान्धी' में दिलचस्पी थी, न 'मण्डी के योगी' में। यद्यपि महाशय रुद्रसेन आरिया के बनाये जाने में उसे कुछ रस मिला था और उसकी खिन्नता कुछ कम हुई थी, पर जब हुनर साहब ने उनसे पाँच रुपये ठग लिये तो उसे अपने ठगे जाने की बात याद आ गयी—जब वे पहले-पहल उससे मिले थे और वह उन्हें स्टेशन पर छोड़ने गया था तो बटुए के घर रह जाने का बहाना करके उन्होंने उससे पाँच रुपये ठग लिये थे। उस बात की याद आते ही चेतन का मन सहसा तिक्त हो उठा और हुनर साहब के सारे गुनाह—नीला के विवाह में सेहरा पढ़ने तक—उसकी आँखों के सामने आ गये और उसने चाहा, किसी तरह उनसे अलग हो जाय। तभी वे उस खुली जगह पहुँच गये, जहाँ रैनक बाज़ार और बाज़ार शेख़ाँ मिलते हैं। सहसा उसकी नज़र दायी ओर 'होशियारपुर साइकिल हाउस' के वृहदकाय बोर्ड पर गयी और उसने देखा कि दुकान पर उसका लड़कपन का साथी हरसरन बैठा साइ-किल फ़िट कर रहा है। वह लपक कर उधर बढ़ा और दूर ही से उसने 'हलो सरन' की आवाज़ लगायी और निश्तर से कहा, "मैं यहाँ कुछ देर ठहरूँगा, आप लोग चलिए।"

लेकिन निश्तर दुकान से चन्द कदम परे और हुनर और रणवीर उससे आठ-दस कदम परे जा कर खड़े हो गये।

•

हरसरन और वह आठवीं कक्षा में पढ़ते थे, जब हरसरन के पिता रिटायर हो गये और उन्होंने रैनक बाज़ार में साइकिलों की एक छोटी-सी दुकान कर ली। साइकिल तो वहाँ एक-आध ही थी, हाँ साइकिलों के टायर काफ़ी संख्या में लटके नज़र आते थे और हरसरन के पिता अपने लम्बे-तगड़े शरीर पर, केवल एक बनियान और नेकर पहने, लम्बी-लम्बी मूँछों और मोटे मुहद्दब[1] शीशों वाली ऐनक पहने, साइकिलों की मरम्मत किया

---

१. Convex

करते। साल भर बाद ही उन्होंने बग़ल की बड़ी दुकान ले ली और चेतन ने देखा कि हरसरन के बड़े भाई, जो कहीं क्लर्की करते थे, और अपने पिता जितने लम्बे न सही, पर हृष्ट-पुष्ट वैसे ही थे उतनी लम्बी नहीं, पर गझिन मूँछें रखते थे और जिनकी आँखों पर वैसी ही मोटे शीशों वाली ऐनक थी, दुकान के बाहर बैठे साइकिलों के पंक्चर बना रहे हैं। हरसरन का डील-डौल भी अपने पिता और भाई की तरह गठा हुआ, किंचित खुरदरा और अनगढ़ था। उसके चेहरे पर शीतला के दाग़ थे और माटे शीशों वाली ऐनक थी—उन दोनों भाइयों और उनके पिता के चेहरे की बनावट में चेतन को सदा कुछ ऐसी चीज़ लगी थी, जो फूहड़ और खुरदरी थी, नाज़ुक या नफ़ीस वहाँ कुछ नहीं था। लेकिन इसके बावजूद हरसरन पढ़ने में तेज़ था। क्लास में सदा पहले चार-पाँच लड़कों में आता था और वह एम० ए० तक पढ़ना चाहता था।

लेकिन उनकी दुकान का काम उसके मैट्रिक तक पहुँचते-पहुँचते इतना बढ़ा कि उसके पिता ने उसे आदेश दिया—आगे पढ़ना छोड़ कर दुकान पर बैठ! चेतन एक शाम कॉलेज से आता हुआ अनन्त के साथ टाउन हॉल में एक जलसा देखने जा रहा था (अमाम नासरुद्दीन पहुँच कर उन्होंने जलसा देखने का फ़ैसला किया था, इसलिए बाज़ार शेखाँ से वे सीधे रैनक बाज़ार को निकल आये थे।) होशियारपुर साइकिल हाउस' के सामने उसने सड़क के एक ओर हाथ-मुँह काला किये हरसरन को पंक्चर बनाते देखा था। तब यद्यपि उसने साइकिल पर बैठे-बैठे ही एक 'हैलो' उसकी ओर फेंक दी थी, पर मन-ही-मन उसे अपने मित्र पर तरस आया था, जिसने अपना उज्ज्वल भविष्य साइकिल की ट्यूबों के पंक्चर बनाने पर कुर्बान कर दिया था....

लेकिन पाँच-छै साल के इस अर्से में ही 'होशियारपुर साइकिल हाउस' ने अपने इर्द-गिर्द की दुकानों को उदरस्थ कर लिया था—बीच की दीवारें तोड़ कर एक बड़ी शानदार दुकान बन गयी थी, जिसमें साइकिलों के चम-चमाते फ्रेम, हैंण्डल, टायर और तैयार साइकिल लटके रहते थे। यद्यपि पिता पंक्चर बनाना और साइकिल फ़िट करना छोड़ चुके थे, पर दोनों भाई

अब भी साइकिलों की फ़िटिंग अपने ही हाथ से करते थे। पंक्चर बनाने, हवा भरने और छोटी-मोटी मरम्मत के लिए छोकरे थे। अवसर पड़ने पर उस काम से भी उन्हें संकोच न था। 'इसीलिए तो ये लोग इतनी जल्दी तरक्की कर गये हैं,' चेतन ने क्षण भर तक हरसरन को साइकिल फ़िट करते हुए देख कर सोचा। पसीने के कारण हरसरन की कमीज़ उसकी पीठ से चिपकी थी, ग्रीज़ लगे हाथों अथवा मैली कमीज़ के दामन से मुँह का पसीना पोंछने के कारण चेहरे पर कालिख के धब्बे लगे थे—और उसे अपने मित्र पर श्रद्धा हो आयी और लगा कि उसे हरसरन पर तरस खाने का कोई अधिकार नहीं। चेतन ने स्वयं बी० ए० करके कौन-सा बड़ा तीर मार लिया, उसका मूल्य तो ५० रु० मासिक से भी नहीं बढ़ा....घोर अभाव में दिन गुज़ारता और अपने अहम को पालता हुआ वह अपनी हस्ती को बहुत बड़ी समझ रहा है, जबकि उसके सभी मित्र छलाँगें मारते हुए उससे कहीं आगे निकल गये थे।

०

चेतन को देखते ही साइकिल फ़िट करना छोड़ कर हरसरन दुकान से उछल कर उतरा। अपने मैले ग्रीज़ लगे हाथों को उतनी ही मैली कमीज़ के दामन से पोंछते और ससंकोच दो उँगलियाँ ही आगे बढ़ाते हुए उसने कहा, "यार मेरे हाथ तो गन्दे हैं।"

"शुक्र है मेहनत और पसीने से गन्दे हैं, अपने ही भाइयों के खून से गन्दे नहीं," चेतन को अमीचन्द के हाथों का ख़याल आ गया, जो न जाने अंग्रेज़ के हुक्म से अपने देशवासियों पर क्या-क्या अत्याचार तोड़ने वाले थे और उसने हरसरन के पूरे हाथ को अपने दोनों हाथों में ले कर गर्मजोशी से दबा दिया।

हरसरन इस प्रशंसा से खुश हुआ। उसकी ऐनक के मोटे शीशों में से उसकी आँखों की चमक तो दिखायी नहीं दी, पर उस रूखे, खुरदरे, देहाती चेहरे पर उल्लास की लहर दौड़ आयी। "हमारी किस्मत में यह मेहनत ही लिखी है। भगवान ने हमें तुम्हारे-ऐसी प्रतिभा थोड़े ही दी है।" उसने मुस्कराते हुए कहा और चेतन को बताया कि कांग्रेसी होने के नाते उनके

यहाँ 'बन्दे मातरम' आता है और उसने उसके साप्ताहिक संस्करणों में चेतन की सभी कहानियाँ पढ़ी हैं और उसे ही नहीं, उसके भाई और पिता जी को भी बड़ी पसन्द हैं।

और यह कहते हुए वह मुड़ा। उसके पिता दुकान के अन्दर नये आये फ्रेमों को गिन रहे थे। उसने उन्हें आवाज़ दी और फिर खुशी से फूलते हुए चेतन का परिचय दिया।

हरसरन के पिता उससे भी ज्यादा खुश हो कर उसके लिए कुर्सी आगे बढ़ाते हुए बोले, "हरसरन आपके गुण गाया करता है, आज आपके दर्शन पा कर धन्य हुए। आइए....आइए....कुछ पल हमारी दुकान को पवित्र कीजिए!"

और खुशी के मारे उनकी बाछें खिल गयीं और काली, गझिन मूँछों में स्वस्थ दाँतों की पंक्ति चमक उठी और उसी क्षण सुबह से एकत्र होता हुआ चेतन का सारा हीन-भाव, ग्लानि, उदासी, असफलता और विपन्नता का दुख तेज़ हवा के स्पर्श से उड़ जाने वाली धुन्ध-सा न जाने कहाँ विलीन हो गया। अमीचन्द और हमीद और उसके सभी दोस्त शौक से अफ़सर हो जायँ, हज़ारों रुपये वेतन पायें, उसे अपनी गरीबी हज़ार बार स्वीकार है। अपने कलाकार के सामने उसे वे एकदम अकिंचन लगे—छोटे-से दायरे में घूमने वाले लद्दू हाथी! जब कि अपने को उसने उस नन्हें-से मुक्त विहग-सा पाया, जो आकाश के विस्तार में गाता हुआ तरारे भरता है। भले ही हाथी को बँधे-बँधाये भर-पेट मिलता है और पंछी को भूख मिटाने के लिए दाना-दाना चुगना पड़ता है, पर उसकी उड़ान के सामने ज़ंजीरों में बँधे हाथी की चाल कहाँ ठहरती है....और एक अनिर्वचनीय आनन्द में उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा।....और उसने मन-ही-मन तय किया कि वह 'होशियारपुर साइकिल हाउस' में कुछ क्षण बैठेगा, हरसरन और उसके पिता को अपने अनुभव सुनायेगा; अपने सपने, साधें, आकांक्षाएँ और उनकी पूर्ति के रास्ते में सम्भावित कठिनाइयाँ बतायेगा और उन्हें दूर कर, अपने ध्येय पर पहुँचने का दृढ़ निश्चय....लेकिन वह रुका नहीं। अपना महत्व कई गुना बढ़ कर उसके सामने आ गया। "मैं फिर आऊँगा,"

उसने कहा, "पंजाब के प्रसिद्ध कवि श्री हुनर और अन्य मित्र मेरे साथ हैं।"

"तो उनको भी बुलाइए....उनको भी बुलाइए !" हरसरन के पिता ने बाछें खिलाते हुए कहा और नौकर को आवाज़ दी कि कुर्सियाँ उधर रखे और हरसरन से कहा कि शिकंजी के चार गिलास लाये और चेतन से उन्होंने फिर सानुनय अनुरोध किया कि वह अपने मित्रों को भी बुला ले.... "हम लोग तो अनपढ़ आदमी हैं, हमारे भाग्य में आप जैसे महान व्यक्तियों के दर्शन कहाँ ? हम आपकी क्या सेवा करेंगे, यों ही सुदामा के तन्दुल...."

और वे हँसे।

चेतन ने सोचा कि वह हुनर साहब और निश्तर आदि को बुला ले। फिर शिकंजी पीते हुए बातों-बातों में 'बन्दे मातरम' में छपी अपनी कहानियों की बात चला दे ताकि हुनर साहब और निश्तर तथा रणवीर को भी पता चले कि उसकी ख्याति किस हद तक फैल गयी है और उसके प्रशंसक कहाँ-कहाँ है....लेकिन उन्हें बुलाने का कष्ट उसे नहीं करना पड़ा। इससे पहले कि वह मुड़ता, "अरे भई चेतन, हमारा भी तआरुफ़[1] अपने दोस्तों से कराओ !" कहते और खीसें निपोरते हुए हुनर साहब ने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ मारा।

हड़बड़ा कर चेतन ने हरसरन और उसके पिता को उनका परिचय दिया और चूंकि इसमें उसका ही महत्व बढ़ता था, हुनर साहब के प्रति अपनी सारी नफ़रत को भूल कर उनकी खूब प्रशंसा की। हुनर साहब कुर्सी पर जा विराजे। निश्तर और रणवीर को उन्होंने दायें-बायें बैठा लिया और धाराप्रवाह अपनी लच्छेदार बातें शुरू कर दीं।....हरसरन जब शिकंजी के गिलास लाया तो हुनर साहब उसके पिता को श्रीमद्भगवद्गीता का सरल पद्यानुवाद सुना रहे थे। बिना अपनी गति मन्द किये उन्होंने गिलास थाम लिया। वे एक बन्द सुनाते और शिकंजी का एक

---

१. परिचय।

घूँट भर लेते ।

चेतन इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब वे अपनी बात ख़त्म करें तो वह 'वन्दे मातरम' में छपी अपनी कहानियों की बात चलाये, पर वह सुअवसर उसे प्राप्त नहीं हुआ ।

०

हुनर साहब तो शायद शाम तक बैठे उन्हें कविताएँ सुनाते, पर रणवीर और निश्तर को बेतरह भूख लग आयी थी, इसलिए वे अचानक उठे । तभी उन्हें चेतन का ख़याल आया । तब उसकी कहानी-कला की उन्होंने ख़ूब प्रशंसा की और कहा कि शायरी के मैदान में भी बहुत कुछ कर दिखाने की सम्भावनाएँ उसमें हैं । यदि वह जालन्धर से न चला जाता या वे लाहौर से न आ जाते तो वे सम्भावनाएँ अब तक पूरी हो गयी होतीं....और उन लोगों के अतिथि-सत्कार तथा साहित्यानुराग के लिए उनको धन्यवाद दे कर, फिर जल्द ही उनसे मिलने का वादा करके, हुनर साहब ने दोनों हाथ माथे पर ले जा कर उन्हें 'वन्दे मातरम' कहा और चल दिये ।....

चेतन ने अस्फुट स्वर में कहना चाहा कि अब बड़ी देर हो गयी है, वह घर जायगा, पर उसे दायीं बाँह के घेरे में ले कर आगे धकेलते और बायीं बाँह में एक साथ रणवीर और निश्तर को लेते हुए हुनर साहब चल दिये ।

चलते-चलते जैसे सहसा याद आ जाने से उन्होंने गर्दन मोड़ कर फिर हरसरन और उसके पिता का शुक्रिया अदा किया और उन्हें आश्वासन दिया कि वे जल्दी ही फिर उनके दर्शन करेंगे ।

०

वे लोग अभी ग्रैण्ड ट्रंक रोड के चौरस्ते से ज़िला कचहरी की ओर बड़ी सड़क पर मुड़े ही थे कि चेतन ने देखा—ख़ालसा होटल के बाहर देबू, जगना और बिल्ला तीनों गुण्डे विराजमान हैं । तीनों एक जगह हों और कोई झगड़ा-टण्टा न हो, यह कैसे सम्भव है—और चेतन का माथा ठनका ।

दोपहर

सोलह

उन तीनों गुण्डों में देबू और जगना तो चेतन के मुहल्ले ही के थे, बिल्ला कहीं 'खिंगराँ दरवाज़ा' के अन्दर (नाइयों की गली में) रहता था, जिसे राजा ख़ैरायती राम की वजह से सारा शहर जान गया था। जालन्धर में नाई को राजा और नाइन को रानी कहा जाता था। ख़ैरायती राम शहर के बड़े-बड़े खत्री घरानों के नाई थे। अपने लड़कपन में तो उन्होंने अपने यजमानों की हजामतें भी बनायी थीं, पर सेफ़्टी रेज़र ने यह काम उनसे छीन लिया था। अब तो शादी-ग़मी, दिन-त्योहार, दावतों या शोक-समाचारों की सूचना ही अपने यजमानों के रिश्तेदारों और मेल-मुलाक़ातिया तक पहुँचाना उनका काम रह गया था, लेकिन यह काम भी प्रायः उनकी रानी ही करती थी। ख़ैरायती राम ने तो वहीं दरवाज़ा खिंगराँ के बाहर एक स्कूल खोल रखा था, जिसमें शहर के सभी साहुकारों के लड़के पढ़ने आते थे। स्कूल तो वह चार जमात तक ही था और उसमें इतिहास, भूगोल, उर्दू-अंग्रेज़ी वग़ैरह, कुछ भी पढ़ाया नहीं जाता था। ख़ैरायती राम वहाँ केवल लण्डे[1] पढ़ाते थे। लण्डे, बही-खाते की भाषा थी और ख़ैरायती राम पाँच साल ही में छात्रों को उसके गणित में ऐसा ताक कर देते थे

---

१. महाजनी

कि बी० ए० मे गणित ले कर बैठने वाला युवक उनके स्कूल से चार जमात पास लडके का मकाबिला न कर सकता। साधारण स्कूलों मे चौथी कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते लडके कठिनाई मे दस दहम अथवा बहुत हुआ तो दस बीसहम तक पहाडा याद कर पाते ह, पर खैरायती राम के स्कूल मे चौथी पास लडके १०० गुणा १०० तक पहाडा कण्ठस्थ कर लेते थे और बडी-से-बडी रकम का जोड, घटाना, गुणा या भाग कर सकते थे। ऐसे-ऐसे गुर खैरायती राम लडको को कण्ठस्थ करा देते थे कि उनके स्कूल से जो लडका पास हो कर दुकान पर बैठता, उसे बही-खाते मे किसी तरह की कठिनाई न होती। इसलिए ऐसे दुकानदार, जिन्हे अपने लडकों को अपने साथ दुकानो पर बैठाना होता, उन्हे सदा राजा खैरायती राम के स्कूल मे भेजते।

देखने मे खैरायती राम एकदम ठस दिखायी देते। मँझला कद, मोटापे की ओर को मायल दोहरा बदन, उटंग पायजामा, कमीज, उस पर मोटी गबरून का कोट, सिर पर बैठी-बैठी-सी पगडी, खिचडी मूछे और दबी हुई बायी आख! पर वे महाजनी के उस्ताद थे और यह बात शहर के व्यापारी जानते थे, इसीलिए उनकी इज्जत भी करते थे। राजा खैरायती राम के बदले उन्हे मास्टर खैरायती राम पकारते थे। बडे यजमानो के यहा भी विशेष अवसरो पर ही बुलावा देने खैरायती राम जाते। यद्यपि उनकी रानी परा नेग लेती पर स्वयं उस अनुष्ठान मे नाई का कर्तव्य पूरा करना वे अपने यजमान पर एहसान ही समझते। इसी कारण जैसे-जैसे उनके स्कूल की ख्याति बढती गयी वे स्वय अपने यजमानो मे कटते गये।

फिर एक दिन सुना मास्टर खैरायती राम के सभापतित्व मे शहर भर के नाइयों की एक सभा हुई है और उन्होने यह प्रस्ताव पास किया ह कि जो नाई बाल बनाते है, वे ही नाई कहलाने के अधिकारी है। यदि कोई व्यापार करता है तो वह अपने-आपको लाला कहला सकता है और यदि कोई पठन-पाठन का काम करता है तो वह पण्डित कहला सकता है। आर्य-समाज के सिद्धान्तों के अनुसार ब्राह्मण-क्षत्री जन्म से नही, कर्म से

होते हैं और मास्टर ख़ैरायती राम चूँकि पठन-पाठन का काम करते थे, इसलिए उन्होंने अपने पण्डित होने की घोषणा कर दी। सनातन-धर्मी हलकों में नाइयों के इस प्रस्ताव पर बड़ा रोष प्रकट किया गया और सनातन-धर्मी खत्री-ब्राह्मणों ने अपने नाइयों को धमकियाँ भी दीं कि यदि वे उनका मुकाबिला करेंगे तो उन्हें यजमानी से हाथ धोना पड़ेगा। कुछ ग़रीब नाई डर भी गये और राजा के राजा बने रहे, पर ख़ैरायती राम ने अपने यजमान छोड़ दिये, लेकिन पण्डित कहलाना नहीं छोड़ा।

खिगराँ दरवाज़ा का ख़याल आते ही शहर वालों के दिमाग़ में मास्टर ख़ैरायती राम के स्कूल और फिर उनके आन्दोलन की याद आती, लेकिन इधर जब से बिल्ला जवान हुआ और उसने गुण्डों में नाम कमाया तो दरवाज़ा खिगराँ के नाम के साथ पहले बिल्ले का नाम ही आता। मास्टर ख़ैरायती राम तो बूढ़े हो गये थे और नव-वय के लड़के तो उनके आन्दोलन की बात भी न जानते थे और बिल्ले का नाम तो हर दूसरे-तीसरे किसी-न-किसी दंगे-फ़िसाद के सिलसिले में सुनायी दे जाता।

बिल्ला (जिसका पूरा नाम हरि कुमार था और जिसे लोग 'हरिया' 'हरिया' कह कर बुलाते थे) उमर में चेतन से दो-ढाई वर्ष छोटा था और डील-डौल में उसके छोटे भाई परसराम ही की तरह हृष्ट-पुष्ट, सुडौल और सुगठित! चेतन के सामने वर्षों पहले का ज़माना घूम गया, जब हरिया पाँचवीं-छठवीं में पढ़ता था—पतला-दुबला, गोरा-चिट्टा, सुकुमार-सुन्दर—आँखें बिल्ली की आँखों-सी नीली-भूरी! इसी कारण उसका नाम बिल्ला पड़ गया था। छुटपन में चेतन को भी वह बहुत अच्छा लगता था। एक-दो बार ख़ैरायती राम को बुलाने के बहाने उसने बिल्ले के घर भी जाने की कोशिश की थी, पर कोई-न-कोई गुण्डा लड़का उसे सदा घेरे रहता और उसके निकट जाना सिर-मुँह तुड़ाने के बराबर था। फिर जाने क्यों उसकी कंजी आँखें उसे ज़रा भी अच्छी न लगतीं। माँ की वह उक्ति कि बिल्ले का (बिल्ली की-सी आँखों वाले का) कभी विश्वास न करना चाहिए, चेतन को कभी उसकी ओर आकर्षित न होने देती। लेकिन शहर का कोई ही स्कूल होगा, जिसके गुण्डे खिगराँ दरवाज़े के चक्कर न लगाते

हों। एक बार तो बिल्ले को ले कर ऐन खिंगरां दरवाज़ा के सामने, अड्डा होशियारपुर को जाने वाली सड़क पर, गुण्डों की दो पार्टियों में ऐसा डट कर मुकाबिला हुआ कि दो के चाकू लगे और दो के सिर फटे, पुलिस आ गयी और महीनों मामला-मुकदमा चला।

फिर चेतन के देखते-देखते बिल्ला अपने पतले-दुबले सींकिया शरीर के साथ स्कूल के एक पहलवान लड़के की संगति में अखाड़े जाने लगा और दो-चार बरस ही में उसने ऐसा सुगठित, हृष्ट-पुष्ट शरीर निकाला और ऐसा ज़बरदस्त लड़ाका हो गया कि जहाँ उसके पीछे लड़के घूमते थे, वह सुन्दर लड़कों के पीछे घूमने लगा और सिर फोड़ने-फोड़वाने लगा। आठवीं में वह दो साल फ़ेल हुआ। नवीं में दो साल फ़ेल हुआ। दसवी में दो साल में भी नहीं निकल सका तो उसने पढ़ाई ही छोड़ दी। अब मट्टा खेलाता था; पुलिस को ख़ूब रिश्वत देता था; पकड़ा जाता था, लेकिन हर बार छूट आता था। मोटा होता जा रहा था और शहर का नामी गुण्डा था।

०

जगना कल्लोवानी मुहल्ले के पास ही रहता था। चौरस्ती अटारी में जो धर्मशाला थी, उसके पुजारी का बेटा था। धर्मशाला में शिव का मन्दिर था, जहाँ भक्त लोग नित्य दर्शनों को आते; चढ़ावा चढ़ा कर परिक्रमा कर, होंटों को गोला बना कर उसमें जीभ से 'ओलोलो' की आवाज़ निकालते हुए 'बम भोले' बुला कर घण्टा बजाते और चौतरे पर माथा टेक कर प्रसन्न-वदन वापस जाते। शिवरात्रि में वहाँ ख़ूब चढ़ावा चढ़ता था, इसके साथ ही बाज़ार की हर दुकान के यहाँ धर्मशाला के लिए चन्दा बँधा हुआ था। मन्दिर के साथ नानकशाही ईंटों का पुराना दो-मंज़िला मकान था। ऊपर की मंज़िल में पुजारी और उसका परिवार रहता था। दो लड़कियाँ और एक लड़का। निचली मंज़िल में चार कमरे थे, जिनमें बारातें ठहरती थीं। साथ में एक बाग़ीचा था, जिसमें अखाड़ा था। धर्मशाला से काफ़ी आय हो जाती थी। पुजारी स्वयं बहुत पढ़े न थे, पर यह ज़रूर चाहते थे कि उनका इकलौता पुत्र शास्त्र पढ़े और उनकी जगह

सँभाले। पुजारी के स्वयं अनपढ़ होने के कारण धर्मशाला का वातावरण पढ़ाई के उपयुक्त न था। लम्बे-चौड़े चबूतरे पर मुहल्ले के बेफ़िक्रे दिन भर ताश, शतरंज और चौपड़ खेलते थे। एक मण्डली जाती, दूसरी आती और सुबह से शाम तक यह क्रम जारी रहता। फिर दीवाली के दिनों में पुजारी की सरपरस्ती ही में जुआ होता। एक बार चेतन अपने पिता को बुलाने गया था तो निचली मंज़िल के अन्तिम कमरे में हरीकेन लालटेन की रोशनी में कौड़ियाँ फेंकी जा रही थीं।

मुहल्ले के शौकीन लोग (जिनमें पण्डित शादीराम प्रमुख थे) धर्मशाला में कभी-कभी रास लीला करवाया करते थे और कृष्ण और राधा का नृत्य करने वाले लड़कों को उसी तरह रुपये दिखाया करते थे, जैसे मुजरे में वेश्याओं को!

इस सब वातावरण में अपने पिता की समस्त शुभेच्छाओं के बावजूद, जगना मिडिल से आगे नहीं पढ़ पाया, पर उतनी उमर ही में उसने कल्लोवानी के प्रसिद्ध गुण्डे प्यारू की सरपस्ती में सिगरेट, शराब, चोरी और जुआ—सभी 'सद्गुण' अपना लिये थे। अखाड़े वह बचपन ही से जाता था—ताश, चौपड़ और जुआ घर ही में होता था। दीवाली के जुए की महफ़िलों में वह बचपन ही में अपने पिता का प्रतिनिधित्व करता—याने जब पुजारी जी गाँजे का दम लगा कर बेहोश होते तो वह रात-रात भर जग कर नाल निकालता। आधा रुपया सुबह अपने पिता को दे देता और आधे से प्यारू और देबू और दूसरे मित्रों के साथ सिनेमा-थियेटर देखता या स्टेशन रोड के होटलों में रोग़न जोश या शाही कोर्मे के मज़े उड़ाता। इन्हीं होटलों में उसे तरुणाई ही में तमाशबीनी की भी लत पड़ गयी थी।

मिडिल फ़ेल हुए उसे तीन बरस हो चुके थे कि पुजारी जी परलोक सिधार गये। बड़ी लड़की का विवाह वे कर गये थे। छोटी बहन और माँ के साथ जगना ने अपने बाप की गद्दी सँभाली। मन्दिर की सफ़ाई-उफ़ाई तो उसकी माँ और बहन के ज़िम्मे थी, चढ़ावे का आधा वह उनसे ले लेता। पुजारी जी के वक्त में तो केवल दीवाली के दिनों में जुआ होता, लेकिन जगना के राज में दिन-रात जुए की महफ़िल जमती। धर्मशाला में

कल्लोवानी मुहल्ले और चौरस्ती अटारी वालों का साझा सम्मिलन-स्थल था। हरलाल पंसारी ने चन्दा इकट्ठा करके उसमें नहाने की टोटियाँ लगवा दी थीं। सुबह मुहल्ले के लोग वहाँ नहाने जाते थे। स्त्रियों के लिए पर्दे की जगह बनी थी। इसलिए वे भी वहाँ मन्दिर में माथा टेकने और नहाने जाती थीं। फिर जिन लोगों के घरों में जगह नहीं थी, वे लोग शादी-विवाह अथवा किसी सम्बन्धी के निधन पर शोक प्रकट करने को आने वालों के लिए दरियाँ-चटाइयाँ भी वहीं बिछाते। स्त्रियाँ अन्त्येष्टि संस्कार के बाद वहीं आ कर नहातीं। जब जगना के राज में चौबीसों घड़ी वहाँ शहर के गुण्डों का आना-जाना होने लगा तो बाज़ार और मुहल्ले वालों को बड़ी दिक्कत हुई। किसी की माँ-बहन को किसी ने छेड़ दिया और पहले मुहल्ले वालों ने दान-दक्षिणा देना बन्द किया। जब इसका कोई असर न पड़ा तो मुहल्ले और बाज़ार के चौधरियों ने मीटिंग की, उसे बेदख़ल करने का प्रस्ताव पास किया और बाज़ार से चन्दा इकट्ठा करके दीवानी में दावा दायर कर दिया। चूँकि उन दिनों मुकदमा चल रहा था, इसलिए जगना अपने चार दोस्तों को लिये, कचहरियों में घूमता था और चूँकि लोगों ने धर्मशाला का बाइकाट कर दिया था, इसलिए जगना ने वहाँ जुए और तमाशबीनी का अड्डा बना रखा था।

०

लेकिन उसके दोनों साथियों के मुकाबिले में देबू का व्यक्तित्व चेतन को कहीं दिलचस्प लगता था।

०

देबू एक आँख से ऐंचाताना था। मुहल्ले वालों को जब उपेक्षा से उसका नाम लेना होता तो वे उसके नाम के साथ 'काना' जोड़ देते। उसके पिता, ज्योतिषी दौलतराम, चेतन के पिता पण्डित शादीराम के तुफ़ैलियों में से थे। ज्योतिषी जी, पढ़ने के नाम पर, केवल तीन-चार जमात महाजनी ही पढ़े थे। ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा उन्होंने पटफेरा करने में गुज़ार दिया था। चेतन के बचपन में जालन्धर रेशम की रँगाई और 'दरियाई' के लिए प्रसिद्ध था। बड़े-बड़े कड़ाहों और देगों में कच्चा रेशम रँगा जाता। गली तमाखियाँ

और काज़ी मुहल्ले में रँगाई की दसियों भट्ठियाँ थीं। जब रँगने के बाद पानी नालियों में बहाया जाता तो सारी गली में बू फैल जाती और दूर-दूर तक नालियाँ रंगीन हो जातीं। चेतन जब किला मुहल्ला के अपने प्रायमरी स्कूल से वापस आता तो कई बार उस दुर्गन्ध से बचने के लिए नाक को आस्तीन से ढँक लेता। रँगी हुई लच्छियाँ पटफेरा बाज़ार में आतीं। दो पटफेरे आमने-सामने पीढ़ों पर बैठते। एक रँगे हुए रेशम की लच्छी को दोनों घुटनों में फँसा कर फैला लेता और घुटनों को दायें-बायें हिलाते हुए उसका एक-एक तार छोड़ता जाता, दूसरा उस तार को अपने घुटनों पर लपेटता हुआ उसी तरह उसकी लच्छी बनाता, जैसी कि पतंग-बाज़ कटी हुई डोर की लच्छी छिगुली और अँगूठे की मदद से बनाते हैं। पटफेरे इतनी तेज़ी से ये लच्छियाँ बनाते कि चेतन पटफेरा बाज़ार में रुका घण्टों रेशम के बारीक तारों की लच्छियां बनते देखता।

दरियाई—जालन्धर की खड्डियों पर बुना जाने वाला रेशमी कपड़ा—ऐसा दबीज़[1] और सुन्दर था कि वहाँ से दूर-दूर जाता। रेशम के रंग उसमें इस तरह मिले रहते कि वह धूप-छाँह का अपूर्व आभास देता.... दरियाई के घाघरे और सूट प्रायः शादियों में बनाये जाते। लेकिन जब विलायत से सस्ता मशीनी रेशम और रेशमी कपड़ा आने लगा तो जालन्धर की यह दस्तकारी खत्म हो गयी। न केवल दरियाई बननी बन्द हो गयी, बल्कि रेशम की रँगाई का काम भी ठप्प हो गया और पटफेरा बाज़ार में उल्लू बोलने लगे। तब पण्डित दौलतराम ने पुरखों का काम—पुरोहिताई—सँभाला। पुरोहित हुए तो धीरे-धीरे किला मुहल्ला के प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित आत्माराम की संगति में बैठने लगे और एक दिन उन्होंने माथे पर त्रिपुण्ड लगा, चोटी को बड़ी-सी गाँठ दे, धोती के ऊपर नंगे शरीर पर रामनामी दुपट्टा ओढ़, अपने ज्योतिषी होने की घोषणा कर दी। यों चेतन को इस बात का पूरा इल्म था कि ज्योतिषी जी चेतन के पिता की महफ़िलों में 'न' 'न' करते हुए भी 'खा' लेते हैं और इनकार में

---

१. गफ़।

सिर हिलाते हुए भी, पण्डित शादीराम के ज़बरदस्ती करने पर (तीन-चार मित्रों द्वारा दबोचे जाने पर ही) 'पी' लेते हैं। कभी जब चेतन अपने पिता की महफ़िलों में बैरे की ड्यूटी बजा रहा होता तो उसने सदा ज्योतिषी दौलतराम के 'इनकार' में 'इक़रार' देखा था और जब वे कहते—'देखो शादीराम, तुम ज़बरदस्ती न करो ! मैं हरिद्वार जा कर यह सब छोड़ आया हूँ। अपने साथ मुझे भी क्यों पाप का भागी बनाते हो।' या 'देखो, अब मैं वह दौलत राम नहीं, कर्मकाण्डी ज्योतिषी हूँ। तुम तो ब्राह्मण हो कर म्लेच्छों से भी गये-बीते हो, पर मुझे तो कुछ धर्म-कर्म करने दो !' तो चेतन जानता था कि उनका यह कथन किस बात का संकेत है ! पण्डित शादीराम ज्योतिषी जी के हरिद्वार अथवा धर्म-कर्म की माँ के साथ निकट-तम सम्बन्ध स्थापित करते हुए, अपने साथियों को आदेश देते कि इस साले का सारा हरिद्वार और धर्म-कर्म निकालो ! और उनमें दो-तीन उछल कर ज्योतिषी जी को दबोच लेते और स्वयं पण्डित जी पेय का गिलास बरबस उनके मुँह से लगा देते—ज्योतिषी जी की रामनामी कहीं उड़ जाती; उनका यज्ञोपवीत गले की फाँसी बन जाता और चारों तरफ़ से बँध कर, जैसे अतीव विवशता से, वे मदिरा का घूँट भरते। लेकिन उस तरह बँधे-बँधे जब वे गिलास की ओर देखते तो उनकी आँखों मे तृष्णा ऐसे मूर्तिमान हो कर बाहर निकलती दिखायी देती, जैसे ढक्कन के सहसा हट जाने पर भाप ! चेतन तृष्णा की उस भाप को उनकी आँखों से निकल कर उनके घिघियाते, कृत्रिम क्रोध से भरी हँसी हँसने वाले चेहरे की नस-नस पर छाते हुए देखता। और जब वे पहला घूँट भर लेते तो 'हटो मेरा वर्षों का अर्जित धर्म नष्ट कर दिया,' कहते हुए गिलास थाम लेते और अपने दबो-चने वालों को ठेल कर उठ बैठते और अपने धर्मात्मापन को भूल, पण्डित शादीराम और दूसरे साथियों को शुद्ध पंजाबी भाषा मे ग़लीज़ गालियाँ देते हुए, गिलास को मुँह मे लगा लेते।

जब वे उन महफ़िलों मे कभी गयी रात को घर लौटते तो फटे हुए ढोल के-से स्वर में गाया करते :

राम जी मेरे, मैं अपराधी तेरो

दूसरे दिन वे पण्डित शादीराम और उनके दुश्चरित्र साथियों को बीसियों गालियाँ देते हुए प्रायश्चित्त स्वरूप उपवास रखते और जप करते। सचमुच ही वे उपवास रखते या जप करते, यह तो चेतन नहीं जानता, हाँ उस बात की घोषणा वे हरलाल पंसारी की दुकान पर बैठ कर, हर आते-जाते को सुनाते हुए, ज़रूर किया करते।

यह बात कभी चेतन की समझ में न आती कि यदि ज्योतिषी जी ऐसे ही सात्विक व्यक्ति हैं तो चेतन के पिता के जालन्धर आते ही क्यों उनके घर मँडराने लगते हैं। बाद में उपवास रखने और जप-तप का कष्ट मोल लेने के बदले पण्डित शादीराम की महफ़िलों से कन्नी क्यों नहीं काट जाते ?

उनकी पण्डिताइन—देबू काने की माँ—सख़्त लड़ाकी स्त्री थी। मुहल्ले में तो यह भी प्रसिद्ध था कि वह ज्योतिषी जी को पीट भी देती है। जो स्त्री अपने पति को पीट दे, वह अपने बच्चों से क्या प्यार करती होगी! सो देबू को शैशव में, माँ की इस 'अपार ममता' के फलस्वरूप, मुँह पर तमाचे और पीठ पर मुक्के खाने की आदत पड़ गयी थी। (कुछ माता-पिता का यह मत भी तो है न कि मार खाने से बच्चे की हड्डी मज़बूत होती है और रोने से फेफड़ा।) देबू माँ की इस 'ममता' से भागा तो अपने चाचा प्यारे लाल के बस पड़ा, जिसने उसकी हड्डियों को एकदम इस्पात की बना दिया।

पण्डित गुरदास राम का सब से छोटा लड़का, ज्योतिषी दौलतराम का छोटा भाई और देबू काने का चाचा प्यारे लाल उर्फ़ प्यारू, उन युवकों में से था, जो माँ के पेट ही से गुण्डे पैदा होते हैं। चेतन को याद था कि जब से उसने होश सँभाला, प्यारू को मुहल्ले के सिरफिरे लड़कों का सरदार पाया। वे दूसरी-तीसरी में पढ़ते थे और प्यारे लाल उनसे एक-दो कक्षा ही आगे था। बड़े होने के नाते, सबको अपनी छत्र-छाया में लिये हुए, वह हर तरह की शरारतें करता। कोई ज़रा भी उसका कहना मानने से इनकार करता तो अपने शब्दों में उसे 'घड़' देता, याने अनायास पीट देता। चेतन प्रायः उसकी संगति से कन्नी काट जाता, पर

मुहल्ले में रहने के कारण कभी-न-कभी उसका साथ हो ही जाता। छुट-पन के ज़माने की दो बातें चेतन को अच्छी तरह याद थीं :

०

....गर्मियों के दिन थे, कैरियों की बहार थी। कच्ची अम्बियाँ नमक के साथ खाना अच्छा लगता था, पर चूँकि कैरी की शक्ल देखते ही घर में डाँट पड़ती थी कि आँखें आ जायँगी या गला ख़राब हो जायगा, इसलिए चेतन मुहल्ले के लड़कों के साथ कम्पनी बाग़ अथवा बाहर खेतों में निकल जाता था और वे लू-धूप, आँधी-झक्कड़ की परवाह किये बिना, गिरी हुई कैरियाँ उठा कर, या पत्थरों से गिरा कर, (प्यारू और देबू दोनों का निशाना ऐसा सधा था कि जहाँ दूसरों के पत्थर कैरी से दो-चार गज़ इधर-उधर पड़ते, उनका पहला या दूसरा निशाना ही उसे नीचे गिरा देता) किसी पेड़ की छाया में बैठ कर, छील-काट, नमक लगा कर वे कैरियाँ खाया करते। आँखें आ जाती थीं और गला भी ख़राब हो जाता था, पर ये दोनों व्याधियां कैरियां खाने के परम-सुख से उन्हे वंचित न कर सकती थी।

एक दिन सुबह वे स्कूल को जा रहे थे कि जाने किसने प्रस्ताव किया कि चलो टिक्का के बाग़ीचे से अम्बियाँ तोड़ते हुए चला जाय।

प्यारू का जाने उस दिन मूड नही था। बोला, "अब तो अम्बियाँ बिकने को बाज़ार में आने लगी है, अब पेड़ों से तोड़ने की क्या ज़रूरत है ? चलो रास्ते ही से तुम्हे दिला देता हूँ।"

उस ज़माने में बोहड़ वाले बाज़ार में ज़्यादातर किताबों की दुकानें थी, लेकिन मिट्ठा बाज़ार से बोहड़ वाले बाज़ार क ओर को मुड़ें तो वहाँ सब्ज़ी की भी दो बड़ी दुकानें थीं। सुबह का समय था और दुकान पर बड़ी भीड़ थी। कैरियों का टोकरा ज़मीन पर ही पड़ा था। दूर ही से प्यारू ने पूछा, "अम्बियां कैसे दी है ?"

सब्ज़ी-फ़रोश व्यस्त था। उसने दूसरे ग्राहकों का सामान तौलते हुए कहा, "पैसे की दो-दो।" तब प्यारू भीड़ में रास्ता बना कर कैरियों के टोकरे पर पहुँच गया, आँख का हल्का-सा इशारा उसने किया, देबू उसके

पीछे जा पहुँचा ।

तब प्यारू अत्यन्त निःसंकोच भाव से दो-दो कैरियाँ उठा कर देबू को देता गया और देबू दूसरे लड़कों को बाँटता गया । जब सब लड़कों को कैरियाँ बँट गयीं तो उसने दो कैरियाँ हाथ में ले कर भीड़ में सब्ज़ी-फ़रोश को दिखा कर एक पैसा हाथ में थमाया और अपने चेलों को ले कर स्कूल को चल दिया ।

....एक बार वह सब साथियों को ख़रबूज़े खिलाने ले गया । चौक अमाम नासरुद्दीन में ख़रबूज़ों की मण्डी थी । जगह-जगह ख़रबूज़ों के अम्बार लगे होते और लोग घेरा बाँधे ख़रीदते । प्यारे लाल एक ऐसे घेरे में घुसा, जहाँ ख़रबूज़ों का ढेर बड़ा था । ख़रबूज़े अच्छे थे और भीड़ ज़्यादा थी । वह जा कर भीड़ के आगे उकड़ूँ बैठ गया । देबू, जो इस मामले में उसका लेफ़्टिनेण्ट था, भीड़ में घुस कर उसके पीछे जा बैठा, जगना देबू के पीछे लग, तनिक झुक कर जा खड़ा हुआ । प्यारू ने दो बड़े-से ख़रबूज़े चुने और उन पर हाथ फेरता हुआ दुकानदार को सम्बोधित कर चिल्लाया—"यह कैसे दिये हैं ?" दुकानदार का ध्यान दूसरी ओर था । तब प्यारू ने एक सेकिंड में वह ख़रबूज़ा उसी तरह बैठे-बैठे ज़रा-सा उठ कर दोनों टाँगों में से पीछे ठेल दिया । देबू ने अपनी टाँगों के नीचे से जगने को दिया, जगने ने स-- से पिछले साथी को, जो उसे ले कर परे बाज़ार चढ़त सिंह के कोने पर बैठे लड़के को दे आया ।

प्यारू एक ख़रबूज़ा पीछे ठेल कर पहले से चुने दूसरे ख़रबूज़े को हाथ में ले लेता और यह देख कर कि दुकानदार का ध्यान दूसरी ओर है, फिर उसे ठेल कर तीसरे पर हाथ रख लेता ।

निर्जला एकादशी के दिन चेतन अपने दादा के साथ मण्डी ख़रबूज़े लेने आया था, वे लोग भी उनके साथ आ गये थे । चूँकि उसे एक बार देबू बता चुका था, इसलिए जब उसके दादा ख़रबूज़े लेते रहे, चेतन का ध्यान उनकी ओर ही लगा रहा ।

जब चेतन अपने दादा के साथ चला तो उसने लाल बाज़ार में उन्हें एक-एक ख़रबूज़ा लिये, दोनों हाथों के ज़ोर से उसके दो टुकड़े करके निपट

देहातियों की तरह खाते पाया ।....

०

लेकिन प्यारू यही सब न करता, और भी बहुत कुछ करता, सिगरेट-बीड़ी पीता, गन्दे-अश्लील टप्पे गाता, लड़कों से न केवल गन्दे-अश्लील मज़ाक करता, गन्दी गालियाँ देता, बल्कि उन्हें हर तरह की अश्लीलता की शिक्षा भी देता । उसकी टोली में किसी की मजाल थी कि उसकी बात से इनकार कर दे । मार-मार कर वह इनकार करने वाले को अध-मरा कर देता ।

चेतन को जिस बात पर हैरत होती थी, वह प्यारू का साहस था । विशेषकर चोरी करने में—बड़े बाज़ार मे अपनी टोली के साथ जाते हुए फल वालों की दुकानों से दुकानदार की नज़र दूसरी ओर देख कर, सेब या अनार या केलों के गुच्छे का गुच्छा उड़ा लेना उसके बायें हाथ का काम था। यही नहीं, मेलों में हलवाई की दुकान के सामने लगी भीड़ में, हाथ में एक रुपया ले कर, दूर से हलवाई को दो-एक बार दिखा, जेब में रख लेना और फिर पूरियाँ ले कर (बिना रुपया दिये) हलवाई मे बाकी पैसे ले लेना, उसका आम करतब था । वह कभी पकड़ा न गया हो, ऐसी बात न थी, पकड़े जाने पर वह चोरी की हुई चीज़ चुपचाप वापस वहीं रख देता था, लेकिन अगर दुकानदार उसको गाली देता या डाँटता तो वह तान कर घूँसा उसके दे मारता कि वह झूठ-मूठ की चोरी उसको लगा रहा है । इन सभी कामों में जो रस मिलता था, उसके कारण चेतन उसके साथ जाना चाहता था, पर एक तो उसे प्यारू की मार का डर था, दूसरे पकड़े जाने का और फिर अपने स्टेशन मास्टर पिता की बदनामी का । यह भी वह जानता था कि यदि उसके पिता को पता चल गया कि उसने कहीं चोरी की है तो वे उसे ज़िन्दा गाड़ देंगे । हर तरह का गुनाह कर देखने वाले पिताओं की तरह चेतन के पिता भी अपने पुत्रों को (यद्यपि वे कभी यह बात कहते नहीं थे) एकदम नेक और अच्छे लड़के बने देखना चाहते थे ।

लेकिन देबू के लिए कोई ऐसी कठिनाई न थी । अपने चाचा के साथ घूमने-फिरने में उसे नित नया आनन्द मिलता था । कभी-कभी ज़रा-सी

बात पर उसका चाचा निहायत बेदर्दी से उसे पीट देता था, पर इतना पिटने पर भी देबू की आँखों में चेतन ने कभी आँसू नहीं देखा। उसकी माँ ने उसकी हड्डियाँ शैशव में इतनी मज़बूत कर दी थीं कि चाचा के हाथ चाहे दुखने लग जाते हों, देबू को कुछ न होता था....और चाचा ने अपने इस 'सुयोग्य' भतीजे को हर फ़न में पूरी तरह ताक कर दिया था। एक चीज़ की कमी अलबत्ता देबू के यहाँ रह गयी थी, पर उसे पूरा करना चाचा के बस में नहीं था। दिमाग़ के नाम पर यद्यपि चाचा की खोपड़ी में भी भुस भरा था, पर वह कुछ उच्च कोटि का था (वह विद्वान या बुद्धिमान न सही, पर कुछ-न-कुछ शातिर ज़रूर था—लड़ते-झगड़ते समय अवसर-कुअवसर देख लेता था। अवसर अनुकूल न हो तो कन्नी काट जाता था) पर भतीजे के दिमाग़ का भुस निम्न कोटि का था। किसी तरह के सोच-विचार की उसमें प्रवृत्ति न थी। अंजाम की चिन्ता किये बिना वह लड़ाई में कूद पड़ता था। उसका प्रतिद्वन्द्वी तगड़ा है, या अपने गुट के साथ है, इस बात को वह कभी चिन्ता न करता और इसलिए कई बार बुरी तरह पिट जाता था और कई बार पता चलने पर नीम बेहोशी की हालत में लाया जाता था, पर स्वस्थ होते ही वह पीटने वालों में से एक-एक को अलग-अलग पकड़ कर पीट देता और ऐसा बदला लेता कि फिर दूसरों को अकेले पा कर भी उसे पीटने का साहस न होता।

•

चेतन को देबू के सम्बन्ध में दो घटनाएँ विशेषकर याद थीं, क्योंकि उनमें चेतन का भी कुछ-न-कुछ योग था।

o

पहली घटना उन दिनों की है, जब देबू की पत्नी सख़्त बीमार थी। बात यह है कि अपने चाचा की तरह देबू भी ज़्यादा न पढ़ा था। चाचा मैट्रिक में फ़ेल हो गया था। भतीजा यद्यपि मैट्रिक में तो नकल मार कर थर्ड डिवीज़न में पास हो गया था, पर एफ़० ए० में रह गया था और जैसे फ़ेल होते ही चाचा की शादी हो गयी थी, वैसे ही भतीजे की भी। कल्लो-वानी मुहल्ले के माता-पिताओं के पास लड़कों को सुधारने का एक-मात्र

इलाज था—शादी ! फिर चाहे इससे लड़के कई बार और बिगड़ जाते थे और बिगड़ी सन्तान पैदा करते थे, पर इसे कल्लोवानी मुहल्ले वाले भाग्य का दोष मान कर, कुछ इस तरह की युक्ति से मन को सन्तोष दे लेते थे, कि उन्होंने माता-पिता के रूप में अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, अब यदि बुढ़ापे में उनके भाग्य में पुत्रों के हाथों दुख सहना ही बदा है, तो क्या किया जा सकता है।

देबू की पत्नी सुन्दर थी। पर सुन्दर पत्नी देबू को बाँध न सकती थी। पत्नी सुन्दर हो या असुन्दर, उसका एक ही उपयोग देबू के निकट था। वह काम उसने भरपूर उससे लिया। पति के नाते इसके अतिरिक्त उसका कुछ दूसरा भी कर्तव्य है, इसे वह न मानता था। मानता वह तब, यदि जानता। वह जानता भी न था। देबू की बेपरवाही और उसकी माँ के अत्याचारों ने दो ही वर्ष में उस भोली-भाली लड़की को, (डोली से उतारते समय जिसके लावण्य को एक नज़र देख कर मुहल्ले वालियों ने कहा था कि देबू पहले जन्म में ज़रूर मोतियों का दान करके आया है) यक्ष्मा की गोद में ला डाला। बरने पीर की ओर जिस कमरे की खिड़की थी, उसी में खिड़की के साथ चारपाई पर पड़ी वह खाँसा करती थी और कभी-कभी नीचे से गुज़रने वालों के दिल में उसकी खाँसी को सुन कर हौल उठा करता था।

अपनी उस बीमार पत्नी के लिए यों उसने कभी चाहे कुछ न किया हो, पर एक शाम बरने पीर के नीम की छाया में कुछ मुसलमान लड़कों को छिकड़ी खेलते देख, उसने अपनी पत्नी की बीमारी का उल्लेख कर आदेश दिया कि वे शोर न मचायें और वहाँ से भाग जायें।

कल्लोवानी मुहल्ले के तीन तरफ़ मुसलमानों के मुहल्ले थे—बरने पीर के आगे सारा इलाका मुसलमानों का था। पीर की कब्र के पास भला उन्हें छिकड़ी खेलने से कौन रोक सकता था ? जब उन्होंने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी तो उसने आव देखा न ताव बढ़ कर गालियाँ देते हुए छिकड़ी को एक ओर से उठा कर उलट दिया। गोटें दूर-दूर जा गिरीं। मुसलमान युवकों ने अकेले देबू को घेर लिया।

चेतन लाहौर से दो दिन के लिए आया हुआ था। मुहल्ले में किसी से बात कर रहा था कि एक छोटा-सा लड़का भागता आया और उसने पूछा कि परसराम और शंकर कहाँ है ? (परसराम और देबू समकक्ष भी थे और अखाड़े जाने के नाते परम मित्र भी) इधर शिव शंकर भी अखाड़े जाने लगा था।

"क्या बात है ?" चेतन ने पूछा।

"बरने पीर पर देबू और मुसलमानों में लड़ाई हो रही है।"

चेतन अपने दोनों भाइयों को जानता था। लड़ाई करते समय वे आगा-पीछा न देखते थे। ख़ाह-म-ख़ाह सिर-फुटव्वल न करें, इस ख़याल मे अपने भाइयों को बुलाने के बदले वह स्वयं भागा कि जा कर मामला रफ़ा-दफ़ा करा दे।

वह अभी ज्वाली महरी की भट्टी के पास ही था, जब उसने देखा—देबू उस ओर पीठ किये खड़ा है और चार-छै मुसलमान लड़के आधा दायरा बनाये उसे दबोचने को तैयार हैं।

तभी चेतन के कदमों की चाप सुन कर या यह देखने के लिए कि मुहल्ले से कोई आ रहा है या नहीं, देबू ने पलट कर एक नज़र पीछे को डाली (उस एक निमिष में इतनी दूर से उसने जान लिया होगा कि कौन आ रहा है, यह सम्भव नहीं, लेकिन कोई आ रहा है यही ज्ञान उसके लिए काफ़ी था) दूसरे क्षण उसने गाली के रूप में ज़ोर से नारा बुलन्द किया और उछल कर उसने डुबकी-सी मारी। दूसरे क्षण एक लड़का ऊपर को उठा और पीछे को गिरा और फिर सारे-का-सारा घेरा देबू पर पिल पड़ा।

वास्तव में देबू को अपने प्रतिद्वन्द्वी की दोनों टाँगें पकड़ कर चित कर देने में अपूर्व सिद्धि प्राप्त थी। बिजली की-सी तेज़ी से वह दोनों टखनों से उसे उठा लेता और दूसरे क्षण उसका प्रतिद्वन्द्वी पटाख़ चारों-ख़ाने चित्त धरती पर जा गिरता। फिर देबू की पकड़ इतनी मज़बूत थी कि दूसरा हिल न सकता। कबड्डी खेलते समय यदि वह बारी देने वाले की टाँगें पकड़ लेता तो लकीर तक पहुँचना दूर रहा, वह उसे दो इंच न खिसकने

देता। और उसने अपने सामने वालों में से, जो लड़का सब से ज्यादा धमका रहा था, उसे नीचे दबा लिया था। चेतन जब वहाँ पहुँचा तो उसने पाया कि एक लड़का देबू के नीचे है, और शेष सब ऊपर से उसे पीट रहे हैं, पर वह नीचे वाले को दबाये जा रहा है।

तभी चेतन ने देखा, एक लड़का सामने की गली से एक लोहे का गज़ लिये हुए आया और उसने ताबड़-तोड़ दो गज़ देबू की जाँघ पर जड़ दिये।

देबू ने उसका इतना भी नोटिस नहीं लिया, जितना आदमी मक्खी के बैठने का लेता है। जब तीसरी बार वह लड़का गज़ उठा कर उसके सिर पर मारने वाला था तो चेतन को, जो सुलह-सफ़ाई कराने आया था, सख्त, गुस्सा आ गया—'देबू एक, और ये इतने, उस पर गज़ ले आये हैं'—उसने मन-ही-मन कहा और झपट कर एक ही झटके से गज़ उसके हाथ से छीन कर ज़ोर से उसकी कमर पर जमा दिया।

इससे पहले कि वह लड़का चेतन पर झपटता, परसराम, शिव शंकर झमानों का हन्सा, उसका भाई मन्सा, बद्दा—सभी आ पहुँचे और चेतन ने हवा में लातें और मुक्के तैरते देखे। शिव शंकर ने सबसे पहले चेतन पर झपटने वाले लड़के को बढ़ कर अपनी बाँहों में दबोच लिया।

लात और मुक्के खाते ही देबू पर झुके हुए मुसलमान लड़के उसे छोड़ कर इनके मुकाबिले पर आ डटे। तभी, जब सब एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो रहे थे, देबू उछल कर उठा, नीचे पड़े लड़के के चूतड़ों पर उसने ज़ोर की एक लात जमाई, बढ़ कर चेतन के हाथ से गज़ छीना और दो के सिर उसने फोड़ दिये और शेष को मार-मार कर भगा दिया।

०

दूसरी बार उसने बिल्ले का ही सिर फोड़ दिया।

०

हुआ यह कि मैट्रिक में चेतन बाज़ार चढ़तसिंह के एक लड़के के यहाँ जाया करता था। वह था तो उससे दो-एक जमात पीछे, पर स्काउट था और चेतन के ग्रुप में था और वे स्काउटिंग से इकट्ठे वापस आया करते थे। चेतन उसे घर छोड़ कर अमाम नासरुद्दीन और बड़ा बाज़ार से होता

हुआ छत्ती गली पार कर, घर को आया करता था। चेतन का वह साथी किंचित सुन्दर था। सुन्दर उतना नहीं, जितना सुकोमल था। बिल्ले का वह सहपाठी था। हालाँकि बिल्ले को स्काउटिंग में किसी तरह की दिलचस्पी न थी, पर कुछ दिनों से वह स्कूल के बाद बाहर सड़क पर या पुलिस लाइन में अपने दोस्तों के साथ खेलता रहता और जब वे स्काउटिंग के बाद स्कूल से निकलते तो उनके पीछे हो लेता और सारी शाम उसके घर के बाहर मँडलाया करता। एक दिन जब वे मेंहन्द्रुआँ के चौक में पहुँचे तो बिल्ले ने एक गन्दा-सा मज़ाक उसे किया। चेतन ने उसे समझाना चाहा तो वह उसे धकियाता हुआ निकल गया।

चेतन अपने मित्र को छोड़ कर क्रोध से भरा घर की ओर आ रहा था कि सामने से उसे देबू आता हुआ मिल गया। हाथ में उसके बटी हुई तार का छाँटा था और वह बड़ी मस्ती में, यद्यपि खासी भोंडी आवाज़ में, गा रहा था :

लच्छिए, कुँआर गन्दले !
पानी तेरेयाँ हत्थाँ दा पीना*

"कहिए भापा जी !" चेतन के पास पहुँच कर, बड़ी आत्मीयता से उसने उसके कन्धे पर हाथ जमाया !

चेतन चूँकि उससे दो वर्ष ब.ड़ा था, इसलिए देबू जब कभी अच्छे मूड में होता, हमेशा उसे 'भापा जी' (भाई साहब) कह कर पुकारा करता। यों भी दोनों के पिता लँगोटिया यार थे। चेतन ज्योतिषी जी को चाचा जी और देबू पण्डित शादीराम को चाचा जी कह कर बुलाता था और पण्डित जी के कथनानुसार दोनों सगे भाइयों से बढ़ कर थे।

"यार, यह तुम्हारा मित्र हमें बड़ा परेशान करना है ?" चेतन ने उसे अच्छे मूड में पा कर सहसा कहा।

"कौन आपको परेशान करता है, उसकी माँ की...."

***ओ घीकुआर (कुमारी) सी सुकोमल लच्छमी, हम तो तेरे ही हाथों का पानी पियेंगे !**

देबू ने हवा में गाली बहा दी और छाँटा घुमा दिया।

तब चेतन ने बिल्ले की बात बतायी और कहा कि तुम्हारे होते हुए तुम्हारा दोस्त तुम्हारे बड़े भाई की बे-इज़्ज़ती करे, यह मेरा नहीं, तुम्हारा ही अपमान है।

"चलो तो !" देबू ने ज़ोर की एक गाली बिल्ले को दी।

चेतन उल्टे पाँव मुड़ा। बिल्ला बाज़ार चढ़तसिंह ही में घूम रहा था। जा कर देबू ने बिना कुछ कहे ज़ोर का एक छाँटा उसके दिया और चेतन की ओर संकेत कर के कहा कि अपने इस बाप को क्यों धक्का दिया था।

बिल्ले की समझ में कुछ न आया। उसने समझा कि देबू मज़ाक कर रहा है, इसलिए उसने उस 'बाप' की सेवा में दो-चार 'अति मधुर वचन' हवा में फेंक दिये।

लेकिन जब इस पर देबू ने तान कर एक घूँसा उसकी नाक पर दे मारा और नाक से लहू फूट पड़ा तो बिल्ले ने देबू को धर दबोचा।

हालांकि देबू अखाड़े भी जाता था और डण्ड-बैठक भी पेलता था और उसमें साहस भी बेपनाह था, पर शरीर से बिल्ला तगड़ा था और उसे दाँव-पेंच भी देबू की अपेक्षा बेहतर आते थे। पाँच ही मिनट में उसने देबू को नीचे दबा लिया। भीड़ काफ़ी इकट्ठी हो गयी। लेकिन छुड़ाने की कोई हिम्मत न कर रहा था। जब बिल्ला उसे गर्दन से पकड़ कर बड़ी बेदर्दी से उसका सर ज़मीन पर पटक रहा था तो जाने कहाँ से देबू के हाथ मे एक ईंट आ गयी। किसी तमाशाई ने दे दी या यों ही उसका हाथ उस पर पड़ गया। नीचे पड़े-पड़े ही उसने ईंट से बिल्ले का सिर फोड़ दिया। दोनों को लहूलुहान होते देख, लोगों ने उन्हें छुड़ा दिया।

दोनों एक-दूसरे को क़त्ल कर देने की भयानक कसमें खा रहे थे, लेकिन चेतन ने उस लड़ाई के दुष्परिणाम की कल्पना कर, काफ़ी समझा-बुझा कर उनके हाथ मिला दिये थे। बिल्ले ने चेतन को देबू का बड़ा भाई मान कर उससे माफ़ी माँग ली थी और देबू ने बिल्ले से, और दोनों फटे हुए सिर लिये, एक-दूसरे के गले में हाथ डाले, हकीम दीनानाथ से पट्टी कराने, चेतन के साथ ही पापड़ियाँ बाज़ार को चल दिये थे।

सत्रह

बाजार चढ़तसिंह वाली उस घटना के याद आ जाने से चेतन के होंटों पर एक क्षीण-सी मुस्कान फैल गयी। खालसा होटल, चौरस्ते के साथ ही बायीं ओर को था। वहाँ से वह मुड़ जाय कि नहीं, इसी असमंजस में चेतन हुनर साहब की बाँह में बँधा-बँधा होटल के सामने जा पहुँचा।

"कहिए भापा जी, किद्धर?" उन्हें होटल के सामने रुकते देख, मिलाने के लिए हाथ आगे फेंकते हुए देबू ने पूछा।

चेतन ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा कि रैनक बाजार आया था, वहाँ हुनर साहब मिल गये तो उनके साथ चला आया और देबू का हाथ छोड़ कर उसने उनका परिचय कराया कि वे दोआबा ही के नहीं, प्रान्त के प्रमुख कवियों में से हैं और उनकी स्मरण-शक्ति इस ग़ज़ब की है कि अपने ही नहीं, दूसरे कवियों के भी दीवान-के-दीवान उन्हें याद हैं और देबू के बारे में उसने कहा कि उसके छोटे भाई के बराबर है—उसके चाचा पण्डित दौलतराम ज्योतिषाचार्य का बड़ा सुपुत्र, अपूर्व साहसी और निडर है!

यद्यपि अपनी प्रशंसा सुन कर देबू की ऐंची आँखें चमक उठीं और हुनर साहब की बाछें भी खिल गयीं, पर उसकी प्रशंसा में व्यंग्य का जो हल्का-

सा पुट था, (जो दोनों के विशेष गुणों की वास्तविकता की ओर इंगित करता था) उस पर चेतन स्वयं मन-ही-मन हँसा।

देबू ने हुनर साहब से कहा कि उसने उन्हें देखा है, मुशायरे में उनके शे'र भी सुने हैं और उसने सिर को झटका देते और मुस्कराते हुए, मिलाने के लिए हाथ हुनर साहब की ओर फेंका, जिसे हुनर साहब ने दाँत निकोसते हुए, तनिक आगे को झुक कर, दोनों हाथों में बड़ी गर्मजोशी से दबाया।

तब देबू ने अपने साथियों का परिचय दिया और हुनर साहब ने अपने, जिस पर बिल्ले ने बढ़ कर निश्तर के कन्धे पर ज़ोर से हाथ मारते हुए कहा—"इस काने को आपने कब अपना शागिर्द बना लिया, रहमत का बिस्तर गर्म करना क्या इसने छोड़ दिया ?"

इस पर सब ऐसे हँसे, जैसे बिल्ले ने कोई बड़ा ही शानदार और चतुराई-भरा मज़ाक किया हो। निश्तर ने अपनी दबी आँख में कहर भर कर बिल्ले की ओर देखा, पर उसी समय बिल्ले ने लम्बी साँस फेफड़ों में भरते हुए अपना चौड़ा सीना फुलाया और निश्तर की निगाहें नीची हो गयीं।

ख़ालसा होटल में बेपनाह भीड़ थी ! यों तो वह न होटल था, न रेस्तराँ—महज़ एक लोकप्रिय ढाबा था, पर उसमें बढ़िया तन्दूरी पराँठे, सूअर का गोश्त, मटन, कीमा, कोफ़्ते, मटर-पनीर की स्पेशल डिश और दही की लस्सी मिलती थी। ढाबे तो उस लाइन में वैसे और भी दो-तीन थे, पर ख़ालसा होटल का रसोइया अपने काम का माहिर था और चीज़ों के दाम वाजबी थे। हुनर साहब ने गर्मी और उमस के बावजूद अन्दर बड़े-से कमरे की मैली बेंचों और मेज़ों पर एक-दूसरे से सटे ग्राहकों को देखा। बाहर पेड़ के नीचे बिछी चारपाइयाँ भी ठसा-ठस भरी थीं।.... कमीज़ों के बटन खोले, पसीने से तर चौड़े सीनों पर पगड़ी के शमलों से हवा करते हुए जाट, बनियानें और तहमद पहने युवक और गर्मी के बावजूद सूट पहने कचहरी के बाबू....बेबसी से उन्होंने चेतन से कहा, "यहाँ तो भाई बैठने की भी जगह नहीं।"

"क्या आप खाना खायेंगे ?" सहसा देबू ने आगे बढ़ कर कहा, "लीजिए अभी जगह बन जाती है।"

उसने एक नज़र चारपाइयों पर डाली—दो पर सिक्ख जाट बैठे थे, एक पर कचहरी के दो-तीन बाबू और चौथी पर कुछ जवान लड़के—वह उधर बढ़ा और उसने कहा कि यह चारपाई खाली कर दो!

देबू ने कुछ इस तरह आदेशपूर्ण, कर्कश स्वर में यह कहा कि तीन में से दो तो एकदम उठ खड़े हुए, पर बीच का युवक, जो बाकी दो की अपेक्षा कुछ बलवान था और केवल खुली कमीज़ और तहमद पहने था, उसी तरह बैठा रहा, जैसे यह बात उससे न कही गयी हो।

"बैठो जी!" देबू ने बैठे हुए युवक की ओर ध्यान दिये बिना, हुनर साहब से कहा।

लेकिन इससे पहले कि उनमें से कोई आगे बढ़ता, उस बैठे युवक ने अपने एक साथी की बाँह पकड़ कर उससे बैठने का संकेत किया।

वह अभी आधा खड़ा, आधा बैठा ही था कि देबू ने बढ़ कर उसे बाँह से पकड़ कर घुमा दिया, "तैनूं किहा कि उठ ऐथों, फ़ेर बैठदा पिया ऐ।"[1]

अब वह बैठा हुआ युवक उठा और कन्धों को ज़रा उठा, गर्दन को आगे बढ़ा, आस्तीन की बाँहें चढ़ाता हुआ कहर-भरी नज़रों से देबू को देखता, कदम-कदम आगे बढ़ा।

"क्यों नहीं बैठन देंदा ओहनूं ?"

"ओह मंजी[2] रिज़र्व्ड है।"

"कीहदे लई[3] रिज़र्व्ड है ?"

"तेरे इस पिऊ[4] लेई।" देबू ने हुनर साहब की ओर संकेत किया।

और ज़न्नाटे का एक थप्पड़ देबू के गाल पर पड़ा। इससे पहले कि कोई कुछ कहता, स्वभावानुसार भयंकर गाली नारे के तौर पर हवा में

---

१. तुझसे कहा कि यहाँ से उठ जा, तू फिर बैठ रहा है।

२. चारपाई ; ३. किसके लिए ; ४. बाप।

फेंकता हुआ देबू उछला और उसने डुबकी-सी लगाते हुए दोनों टखनों से उस युवक को पकड़ कर उठा दिया। दूसरे क्षण वह हवा में उठा और चारों ख़ाने चित, धरती पर गिरा और देबू उसकी छाती पर जा सवार हुआ।

"हैं....हैं...." करते और खादी की धोती फटकारते हुए हुनर साहब उन्हें छुड़ाने को उधर बढ़े तो बिना कुछ कहे बिल्ले ने आगे बाँह कर दी और इशारा किया जा कर चारपाई पर बैठें।

नीचे रगड़े जाते साथी को छुड़ाने के लिए वह लड़का आगे बढ़ा, जिसकी ख़ातिर झगड़ा हुआ था, तो उसे भी बिल्ले ने रोक दिया कि तुझे लड़ना है तो मुझसे लड़, बराबर का जोड़ है, ज़रा हो जाने दे।

और पलक झपकते चारपाइयाँ ख़ाली हो गयीं। होटल के अन्दर खाना खाते हुए, रास्ता चलते हुए, सब लोग उधर पिल पड़े। ज़िन्दगी के घोर संघर्ष अथवा घोर बेकारी, सुस्ती या बेज़ारी के मारे निम्न-मध्यवर्गीय क्षण भर को तमाशा देखने आ जुटे....। पर बिल्ले और जगने ने किसी को उन्हें छुड़ाने नहीं दिया।

लेकिन वह लड़का ज़्यादा देर नीचे नहीं रहा। देबू की एक बाँह पकड़ उसने कुछ ऐसे अपने नीचे दबा कर मोड़ना शुरू किया कि पूरा ज़ोर लगाने के बावजूद देबू नीचे आ गया। अब तो तमाशाइयों के जोश का ठिकाना न रहा।

"शाबा ओए शाबा!"

"रगड़ एहनू ज़रा थल्ले!"[1]

"भुआ दे ज़रा भँवीरी वाँगूँ!"[2]

कुछ तमाशाइयों ने उसकी प्रशंसा की, दूसरे देबू को बढ़ावा देने लगे और दाँव-पेंच सुझाने लगे।

"मार न कैंची!"

"ओ लै ओए लत्ताँ च गर्दन....बन्ह लै....बन्ह लै....दे दे चरखड़ी।"[3]

---

१. रगड़ इसे ज़रा नीचे २. घुमा दे इसे ज़रा फिरकी की तरह
३. अरे टाँगों में गर्दन ले ले; बाँध ले; घुमा दे।

और सचमुच देबू ने दाँव लगा कर उसकी गर्दन को टाँगों में ले कर मरोड़ दिया और फिर ऊपर आ गया।

तमाशाइयों के जोश का वार-पार न रहा।

"बल्ले बई बल्ले।"

"दा जानदा ई बई, किद्दाँ निकलियाई थल्लों, उस्ताद दा चण्डिया दा है।"[1]

लेकिन वह युवक शायद न केवल उससे बेहतर दाँव जानता था, बल्कि शारीरिक शक्ति में भी ज़्यादा था। वह फिर नीचे से निकल कर ऊपर आ गया और इस बार लोगों के लाख शोर मचाने और देबू को शाबाशी देने पर भी उसने उसे नीचे से निकलने नहीं दिया। वह लगा उसे रगेदने।

तब हर क्षण बढ़ती भीड़ देख कर जब चौरस्ते से पुलिस का सिपाही उधर आ रहा था (सिपाही की तो उन्हें वैसी परवाह न थी, पर देबू रगेदा जा रहा था, इसलिए) बिल्ले ने उस लड़के का हाथ पकड़ कर उसे अलग कर दिया। "सिपाही आ रहा है।" उसने कहा।

देबू उठा, खिन्नता-भरे स्वर में बिल्ले से यह कहता हुआ पसीने से तर कपड़ों की मिट्टी झाड़ने लगा (जो कि सूखे बिना झड़ ही न सकती थी) कि उसने ख़ाह-म-ख़ाह छुड़ा दिया, नहीं वह एक ही दाँव में उसे तारे दिखा देता।

"ठीक है, अब चलना भी है कि तारे ही दिखाने हैं।"

देबू उस चारपाई की ओर बढ़ा। निश्तर और रणवीर उस पर बैठ गये थे और हुनर साहब बैठने जा रहे थे कि वही युवक आया और उसने कहा, "हमारी जगह है, आप उठिए!"

अबकी बिल्ला आगे बढ़ा। "जाओ कहीं दूसरी जगह जा कर बैठ जाओ, क्यों झगड़ा करते हो, ये हमारे मेहमान मशहूर शायर हैं।"

१. दाव-पेंच जानता है, कैसे निकला है नीचे से, किसी उस्ताद से मार खाया हुआ है !

"मशहूर शायर हैं तो घर से ला कर चारपाई बिछा दो। शायर हों या शायर के बाप, यह चारपाई नहीं मिल सकती। हम इस पर पहले से बैठे हैं।"

गुस्से को दबाते हुए, एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए धीरे से बिल्ले ने कहा, "ओए पहलवान देया पुत्त रा, क्यों मौत आयी है तेरी? (उसे पुलिस वाले की ओर आँख उठाते और आस्तीन चढ़ाने की कोशिश करते हुए देख कर इतना और बढ़ा दिया) ओस पुलिसिए दी वल्ल की वेख रिहा एं। असाँ पुलिस तों नई डरदे। इह चारपाई ते इह होटल वी साडा ही समझ, तेरे पिऊदा नहीं।"

युवक क्रोध से घूंसा तान ही रहा था कि बिल्ले ने बढ़ कर उसे उठाया और परे धरती पर पटक दिया और स्वयं चुपचाप बग़लों में हाथ दिये खड़ा हो गया।

युवक गिरते ही उठा और बाघ की तरह बिल्ले पर लपका। बिल्ले ने उसे एक बाँह और एक टाँग से पकड़ कर और भी परे फेंक दिया और फिर चुपचाप उसके सिर पर जा खड़ा हुआ।

क्रोध से लगभग पागल हो कर जब युवक फिर उठा तो बिल्ले ने उसे और भी परे दे पटका।

चेतन को देबू और बिल्ले पर मन-ही-मन बड़ा गुस्सा आ रहा था। एक चोरी, दूसरे सीनाज़ोरी। जब उसने पहले चारपाई ली तो क्यों वह छोड़े? उसकी पूरी सहानुभूति उस युवक के साथ थी। उसे पूरा विश्वास था कि अगर मिन्नत और प्यार से कहा जाता कि बाहर से शायर लोग आये हैं, मेहमान हैं, उनके लिए जगह चाहिए तो वह ज़रूर दे देता। उसे हुनर साहब का या अपना उस चारपाई पर बैठना एकदम अन्यायपूर्ण लगा। वह उठा और उस युवक के पास गया।

युवक धरती से उठ बैठा था, लेकिन खड़ा न हुआ था और सोच रहा था कि अब फिर उठ कर लपके या चला जाय। बिल्ला उससे कहीं ज्यादा ताकतबर था। चेतन ने उससे जा कर कहा, "तुम भाई अपनी चारपाई ले लो! खाह-म-खाह ज़रा-सी बात के लिए झगड़ा न करो! हम थोड़ी

देर बाद खाना खा लेंगे।"

तभी चारपाई पर तहबन्द के दामन से पंखा झलते हुए एक सिक्ख जाट ने बिल्ले की बहादुरी पर प्रसन्न हो कर कहा, "बाश्शाहो, एधर आ जाओ। असाँ परशादे छक लये ने।[1] अपने मेहमानाँ नूँ एधर बिठाओ।"

और वह अपने साथियों के साथ उठा।

लेकिन उस युवक को पिट कर अब वहाँ बैठना स्वीकार नहीं था। "नहीं, नहीं जी, तुसीं जाओ।" उठते हुए उसने चेतन से कहा, "एस बिल्ले नाल असी फेर सिज्झाँगे ?"[2]

और वह पीठ मोड़ कर दूसरे ढाबे की ओर चल दिया। ज़रा दूर पर उसके साथी उससे जा मिले। चेतन फिर वहीं वापस आ गया, जहाँ हुनर साहब ने जाटों वाली चारपाई भी अपनी ओर घसीट ली थी और पाँव ऊपर उठा कर उस पर बैठे हुए धोती के दामन से हवा कर रहे थे।

तभी बिल्ले ने होटल के मालिक से कहा, "देखना सरदार जी, अपने मेहमान हुए, ज़रा बढ़िया खाना खिलाना।"

"तुसीं फ़िकर न करो बाश्शाहो।" सरदार जी ने लोहे की छड़ से पकी हुई रोटी को तन्दूर से निकाल कर छकिया में रखते हुए कहा, "फ़स्स क्लास खाना खिलावाँगे!"

१. हमने खाना खा लिया है। २. इस बिल्ले से फिर सुलझेंगे।

अठारह

निश्तर और रणवीर ने बड़ी शान से सूअर के गोश्त, गुर्दे-कपूरे और तन्दूरी पराँठों का आर्डर दिया। हुनर साहब गान्धी-भक्त होके ही माँस खाना छोड़ चुके थे, इसलिए उन्होंने मटर-पनीर की स्पेशल डिश और 'मुफ़्त की दाल' को दो पैसे के शुद्ध घी से छौंक देने का आदेश दिया। आर्डर देते समय उन्होंने 'मुफ़्त की दाल' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से किया और अपने साथियों की ओर देख कर हँसे। प्रकट ही उनका संकेत उस किस्से की ओर था, जो ढाबों की इस 'मुफ़्त की दाल' के सम्बन्ध में जालन्धर में आम प्रसिद्ध था। चेतन जब भी किसी ढाबे में खाना खाता था तो मुफ़्त की इस दाल का किस्सा याद आ जाने से मन-ही-मन हँस दिया करता था।

किस्सा यों है कि दूर देहात का एक जाट जालन्धर में अपने मुकदमे के सिलसिले में आया और स्टेशन का सराय में ठहरा। गाड़ी से उतरा तो उसे ज़ोर की भूख लगी थी। सराय के सामने ही ढाबा था। ढाबे का मालिक तड़ातड़ रोटियाँ तन्दूर में लगा रहा था। "क्यों भाऊ, किद्दाँ लाइयाँ ने रोटियाँ ?"[1] जाट ने पूछा।

"पैसे दी दो-दो।"

१. **क्यों भाई, रोटियाँ किस भाव से देते हो ?**

"और दाल ?"

"दाल मुफ़्त !"

"अच्छा फ़ेर दाल दा छन्ना ई पहले भर दे !"[1] जाट ने दोनों हाथ बेताबी से आगे बढ़ाते हुए कहा।

०

निमिष-भर को चेतन के मन में आया कि वह भी उस जाट की तरह कटोरा-भर दाल माँग ले। पर ढाबे का मालिक जाट की बात पर हँस सकता है, उस-जैसे पढ़े-लिखे को जान-बूझ कर ऐसी बात करते देख कोई तीखी बात कह दे तो ? फिर यदि वह मज़ाक न समझे और उसे दाल का कटोरा भर कर दे ही दे, तो ?—वह चने या उड़द की इतनी दाल का क्या करेगा ? खा लेगा तो महीना-भर पेचिश में पड़ा रहेगा....और वह मन-ही-मन हँसा।

रणवीर ने चेतन के लिए भी सूअर के गोश्त की एक प्लेट का आर्डर दिया था, आगे वह रोग़न-जोश वग़ैरह का आर्डर देना चाहता था, पर चेतन ने उसे रोक दिया था कि तुम अपने लिए जो चाहो लो, मैं सूअर का गोश्त नहीं लूँगा और क्षण भर सोच कर उसने मटर-पनीर की प्लेट माँगी थी और दाल छौंकने का आदेश दिया था।

चेतन ने कभी सूअर का गोश्त न चखा था। उसके मन में उसे चखने की इच्छा भी थी, पर यह अजीब बात है कि सूअर के गोश्त की कल्पना ही से उसे गाय के माँस का खयाल आ जाता था और उसकी वह इच्छा मर जाती थी।....गो-माँस का ध्यान आते ही उसके सामने 'जमुना' आ जाती थी—जमुना—उनकी दुधार गाय, जिसे बचपन में चेतन ने सदा श्रद्धा और प्यार से देखा था। ऊँची-लम्बी, स्वस्थ-सफ़ेद और युवा ! लेकिन मरकही न थी। बेहद असील थी। माँ ने उसे अपनी बेटी की तरह पाला था। यद्यपि वह उसे 'गऊ माता' कहती थीं, पर उसके व्यवहार में श्रद्धा के बदले स्नेह ही अधिक था। घर के काम के बाद जितना समय

१. अच्छा फिर पहले दाल का कटोरा ही भर दो !

मिलता, वह गाय की सेवा में लगा देती, चने, बिनौले, चोकर और न जाने क्या-क्या मिला कर वह उसके लिए सानी तैयार करती। उसकी भूख-प्यास के समय का पूरा ख़याल रखती। उसके कारण घर में दूध-दही, मक्खन-घी और लस्सी का बाहुल्य रहता था और चेतन सोचा करता—ठीक ही तो है जो गाय का माँस खाना मना है। कोई अपनी माँ या बेटी का माँस खायेगा ?....और कल्पना मात्र से फुरेरी उसके शरीर में दौड़ जाती....

"जीजा जी, आप सूअर का गोश्त नहीं खाते तो रोग़न-जोश की प्लेट ही मँगाइए," रणवीर ने कहा था, "न हो, कीमा या कोफ़्ता ले लीजिए!"

"नहीं, मेरा मन नहीं।" चेतन ने अपने ही ध्यान में कहा।

०

चेतन कॉलेज ही में गोश्त खाने लगा था। वह भी अनन्त के ज़ोर देने पर। संस्कारों से वह शाकाहारी ही था। उसके पिता तो ख़ूब पीते थे और ख़ूब खाते थे, पर माँ ने उसके दिल में गोश्त के विरुद्ध अव्यक्त वितृष्णा भर दी थी। बचपन की एक घटना और उसके सम्बन्ध में माँ के साथ होने वाली बातचीत उसके दिमाग़ में सदा के लिए अंकित हो गयी थी।....

वह सात-आठ वर्ष का रहा होगा। अपने पिता के पास वह मुकेरियाँ गया हुआ था। वहाँ करीमख़ाँ काँटे वाले ने मुर्ग़ियाँ पाल रखी थीं। एक मुर्ग़ी ने नये-नये चूज़े दिये थे। चेतन को वे ज़रा-ज़रा से रुएँदार चूज़े बड़े भले लगते थे। वह खाने के बाद आधी रोटी ले कर बाहर चला जाता और 'आ,' 'आ' करता हुआ रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े उनकी ओर फेंकता। 'चूँ-चूँ' करते हुए चूज़े भागे आते। रोटी के टुकड़ों पर झपटते। एक-दूसरे की चोंच से छीन कर ले जाते। पहले तो चेतन को उन्हें बुलाने के लिए रोटी के टुकड़े फेंकने पड़ते, पर कुछ दिन बाद तो उसकी आवाज़ सुन कर और बाद में तो उसे देख कर ही वे फुदकते हुए आ जाते। चेतन चाहता कि जैसे वे करीम ख़ाँ की बीवी दानी के हाथ से रोटी टूँगते हैं, उसके हाथ से भी टूँगें। वह कभी रोटी के टुकड़े फेंकता, कभी

ज़रा दूर से दिखाता। दो चूज़े (जो शायद नर थे और इसीलिए निडर भी) उचक कर रोटी टूँग ले जाते। धीरे-धीरे वे उसके हाथ से लेने लगे। फिर तो एक दिन जब उसे रोटी तोड़ने में देर हुई, एक फुदक कर उसके घुटने पर आ बैठा। चेतन की ख़ुशी का वार-पार न रहा। उसके हाथ से वह रोटी का टुकड़ा टूँगने लगा। उसकी देखा-देखी दूसरा भी उसके घुटने पर आ बैठा और दोनों में होड़-सी लग गयी। चेतन बड़ा ख़ुश हुआ। वह तो चाहता था कि शेष तीनों चूज़े भी आ जायँ, पर उनमें साहस नहीं था। चेतन रोज़ उन दोनों चूज़ों को बुला कर गोद में खिलाता। मुर्ग़ी—भरी-पूरी, एकदम सफ़ेद—लम्बी गर्दन, भरा साफ़ सीना—सिर उठाये उत्सुक, ज़रा परे खड़ी रहती और शेष तीनों चूज़े उसके पैरों के पास इधर-उधर घूमते। चेतन कभी-कभी एक टुकड़ा उसकी ओर भी फेंक देता। मुर्ग़ी उठाती। शेष तीनों चूज़े उधर लपकते। मुर्ग़ी फिर टुकड़ा ज़मीन पर रख देती। बड़ा होता तो उसे चोंच में हिला कर तोड़ देती और चूज़े ले जाते। चेतन को यह सब बड़ा अच्छा लगता। उसे उनसे इतना प्यार हो गया था कि उसने तय किया, वह माँ से कह कर मुर्ग़ी और चूज़े दानी से ख़रीद लेगा। उसने माँ से कहा तो उसने डाँट दिया, "हम ब्राह्मण हो कर क्या मुर्ग़ियाँ पालेंगे। यह शूद्रों का काम है !"

यह बात चेतन की समझ में नहीं आयी। उसने बहुत ज़ोर दिया तो माँ ने कहा, "अच्छा मैं करीमख़ाँ से कह दूँगी कि चूज़े हमारे हो गये, रहेंगे वहीं, पर होंगे हमारे। तुम जितना चाहो वहाँ जा कर उनसे खेलो, पर घर में नहीं ला सकते।"

लेकिन दूसरे दिन चेतन रोटी ले कर गया तो उसने देखा कि एक चूज़ा कम है। उसने जा कर दानी से पूछा तो उसे मालूम हुआ कि उसके पिता के लिए रोज़ एक चूज़े की यख़नी बनती है। माँ तो घर में गोश्त पकाने न देती थी। पण्डित जी या तो शहर के कलालों के यहाँ चले जाते थे, या शाम को काँटे वाले के क्वार्टर में महफ़िल जमाते। दानी बड़ी सुन्दर थी। वही उन्हें पिलाती। वही गोश्त बना कर खिलाती....चेतन को जो बात देख कर अत्यन्त दुख हुआ था, वह यह थी कि दानी जिस

चूज़े को अपने हाथ से खिलाती थी, उसे स्वयं ही जिबह कर रही थी....
वह रोता-रोता माँ के पास गया था। माँ ने उसे समझाया था कि बेटा ये सब लोग, जो जीव-जन्तुओं की हत्या करते हैं, पापी हैं। इस जन्म में ये उन्हें खाते है, अगले जन्म में वे इन्हें खायेंगे।

"माँ, पिता जी भी क्या पापी हैं?" चेतन ने सहसा पूछा था।

माँ ने उत्तर घुमा कर दिया था, "बेटा, वे तुम्हारे पिता हैं। उनके सम्बन्ध में कोई बुरी बात सोचना भी पाप है। उनका धर्म उनके साथ, हमारा हमारे साथ। तू आज यह कसम खा कि तू जीव-जन्तुओं की हत्या न करेगा और कभी माँस न खायेगा।"

और चेतन ने पूरे जोश मे कसम खायी थी। और मन-ही-मन उस निर्दयता के लिए अपने पिता को घोर पापी भी करार दे दिया था।

o

लेकिन वह स्कूल ही में पढ़ता था, जब अनन्त ने उसे समझाया कि अगर मुर्गियों के अण्डे न खाये जायँ और जितने अण्डे मुर्गियाँ देती हैं, उनके आधे बच्चे भी निकलें तो उनके खाने को अनाज न रहे। अनन्त बचपन ही मे अण्डे खाता था। मैट्रिक तक पहुँचते-पहुँचते, यद्यपि चेतन ने अण्डा चख लिया था, लेकिन गोश्त को बी० ए० तक हाथ नहीं लगाया। बी० ए० मे अनन्त की संगति में उसने गोश्त खाया ज़रूर, पर हमेशा बचपन की यह घटना याद आ जाने मे और माँ के सामने खायी कसम और उससे सुने हुए उपदेशों के कारण वह कभी उसका आनन्द न ले पाया। सूअर के गोश्त का नाम लेते ही रणवीर और निश्तर की आँखों में जो चमक आ गयी थी और ढाबे वाले ने प्लेट में गोश्त डालने के लिए जब पतीले का ढकना उठाया तो रणवीर के मुँह से जैसी राल टपकने लगी, वैसा कभी चेतन के साथ न हुआ था। वह जब भी गोश्त चखता, उसे लगता जैसे गुनाह कर रहा है।

o

थालियाँ उनके सामने आ गयी थीं। सहसा रणवीर ने कहा, "जीजा जी ज़रा-सा एक टुकड़ा लीजिए ना!"

"नहीं, नहीं," चेतन ने कहा, "मुझे सूअर का गोश्त अच्छा नहीं लगता।"

"आपने कभी चखा है?"

"नहीं, मुझे उसके नाम ही से उस गन्दे और ग़लीज़ जानवर की याद आ जाती है," (सूअर के गोश्त के ख़याल ही से उसका ध्यान कहाँ-कहाँ चला जाता, यह वह उन मूर्खों को क्या बताता।) उसने खीझ कर कहा, "गन्दगी में लपलप थूथनी चलाता है। नालियों में लोटता है। तुम लोग कैसे उसका गोश्त खा लेते हो!"

निश्तर हँसा। "तुम भी यार कभी-कभी बड़ी हिमाकत-भरी बातें करते हो। खेतों में खाद पड़ती है और उसमें गेहूँ बोया जाता है। जितनी ज़्यादा खाद पड़ती है, उतनी बेहतर फ़सल होती है। तो क्या खाद के ख़याल से हम गेहूँ खाना छोड़ देते हैं?"

और उसने अपनी प्लेट से गोश्त का एक टुकड़ा उठा कर चेतन की थाली में रख दिया।

"इसमें हड्डी-वड्डी नहीं?"

"तुम ज़रा चख कर तो देखो!"

सूअर के गोश्त के उस टुकड़े को देख कर चेतन को तरबूज़ के किसी छोटे-से कतले की याद आ गयी। ·टी खाल-सी और उसके साथ गूदे-सा लगा गोश्त। उसने सोचा, चख कर देखे। उसने उसे उठाया भी। तभी उसे ख़याल आया—क्या वह गाय का माँस भी ऐसे ही चख सकता है। हमीद ने कितनी बार कोशिश की थी।....और उसने टुकड़ा वहीं थाली में रख दिया।

बात यह है कि तर्क ने उसे गोश्त खाने पर तैयार कर दिया था, पर उसके संस्कार इतने प्रबल थे, उसके अर्ध-चेतन में जड़ जमाये थे कि साधारण गोश्त खाने पर भी उसके सामने गाय और सूअर के गोश्त की समस्या आ जाती थी और चूंकि तर्क उसके विश्वासों को झुठला देता था, इसलिए वह तर्क का दामन ही छोड़ देता था। वह गोश्त खायेगा ही नहीं, यही तय कर लेता।....झूठ बोलना, रिश्वत की कमाई को वेतन

का अंग समझना, बच्चों को निर्दयता से पीटना, ग़रीबों का खून चूस कर सन्दिग्ध तरीकों से रुपया पैदा करना, औरतों को तिल-तिल कर मारना, उपदंश जैसे रोगों से अपनी नसलों को बर्बाद करना—सब कुछ उनके निकट उचित था, पर यदि किसी को मालूम हो जाय कि अमुक ने गाय का माँस चखा है तो शायद उसके मुहल्ले में उसका जीना मुश्किल हो जाय....और तर्क चेतन के सामने कई प्रश्न खड़े कर देता....

मुर्ग़े-मुर्ग़ियों का उतना महत्व न सही, पर लाखों ग़रीब, जो गाय-भैंस नहीं पाल सकते, बकरी पालते हैं; बकरी का ही दूध पीते हैं; बकरी उनके लिए उसी तरह माँ और बेटी है, जैसे गाय हिन्दुओं के लिए। इधर तो जब से उसने सुना और पढ़ा था कि महात्मा गान्धी बकरी का ही दूध पीते हैं और इंग्लिस्तान में जब वे गोल मेज़ कान्फ्रेंस में शामिल होने गये तो बकरी उनके साथ गयी, तब गाय के सन्दर्भ में बकरी का ख़याल उसे बार-बार आता। और वह सोचता कि यदि गाय और गाय के बछड़ों की हत्या महापाप है तो बकरी और बकरों की हत्या पाप क्यों नहीं ? उसने एक बार अपने संस्कृत अध्यापक से यही प्रश्न किया था। तब उन्होंने उसे बताया था कि गाय हमारे यहाँ इसलिए माता के समान मानी गयी कि वह दूध-घी देती है, उसके बछड़े बैल बनते हैं और न केवल भार ढोते हैं, बल्कि हल जोतते हैं और भारत ऐसे कृषि-प्रधान देश में हल जोत कर अनाज उगाने और हमारे लिए फ़सल तैयार करने वाले हमारे बेटों के समान हैं। फिर गाय ही ऐसा पशु है, जिसका गोबर न केवल खाद के काम में आता है, उपलों के काम आता है, बल्कि पवित्र है और हिन्दू उससे चौका लीपते हैं और गो-मूत्र आयुर्वेद के अनुसार दसियों व्याधियों में लाभ पहुँचाता है।

लेकिन कॉलेज में पहुँचते-न-पहुँचते कई प्रश्न इसी सम्बन्ध में चेतन के दिमाग़ को परेशान करने लगे। हमीद से होने वाली बहसों में कई बार वह निरुत्तर हो जाता था और उसे जवाब न सूझ पाता था।

पहली बात तो यह कि यदि गाय दूध देती है तो भैंस भी दूध देती है, जो गाय के दूध की अपेक्षा अधिक पौष्टिक होता है। यदि गाय के

दूध के कुछ अतिरिक्त गुण हैं तो भैंस के दूध के कुछ अन्य अतिरिक्त गुण हैं। यदि बैल भार ढोते और हल चलाते हैं तो भैंसे भी भार ढोते और हल चलाते हैं। फिर गाय-बैलों की तरह भैंसें और भैंसे क्यों नहीं पूजे जाते ?

फिर जहाँ तक कृषि का सम्बन्ध है, विज्ञान की उन्नति से ट्रैक्टर खेत जोतने लगेंगे और ट्रक भार ढोने लगेंगे, तब बैलों की क्या वैसी आवश्यकता रह जायगी और उनकी आबादी का बढ़ना क्या देश पर बोझ न बनेगा ! रही गोबर और मूत्र के दवाइयों में काम आने की बात तो विज्ञान ने कल्पनातीत उन्नति कर ली है और गाय का यह महत्व नितान्त कम हो गया है।....और पिंजरापोलों में कमज़ोर बीमार और मरियल गाय-बैल पालने से क्या यह बेहतर नहीं कि स्वस्थ पशुओं को डेरियों में रख कर उनकी उचित सेवा की जाय और बेहतर दूध-घी पैदा किया जाय।.... वह गाय की सच्ची पूजा है या यह, जो आजकल हो रही है कि गायें पिंजरापोलों में बूढ़ी या भूखी आती हैं या बाज़ारों में छुट्टी घूमती हैं, बरबस दुकानदारों का माल उड़ाती हैं और बदले में डण्डे खाती हैं और कई बार भयानक घाव लिये घूमती हैं....और बाज़ार में शुद्ध घी दिनों-दिन लुप्त होता जा रहा है।....

चेतन ने कहीं पढ़ा था कि प्राचीन काल में भारत में गोमेध यज्ञ होते थे—विदेह जनक के यहाँ ब्राह्मण अतिथियों के लिए इतना गोमाँस रसोई में पकता था कि चरबी से नालियाँ भर जाती थीं। बहुत बाद में सिकन्दर के आक्रमण के समय विजित राजाओं ने उसे ख़ूब पले हुए चरबी वाले बैल भेंट किये थे। फिर जाने कब गोवध निषिद्ध करार दे दिया गया। ज़रूर ही कभी भयानक अकाल पड़ा होगा। लाखों पशु उसकी भेंट चढ़ गये होंगे। भैंसें उस वक्त उतनी पालतू न होंगी। तब कृषि के लिए बैलों की आवश्यकता के कारण उनका वध निषिद्ध करार दे दिया गया होगा। पुरोहितों द्वारा इसका प्रचार किया गया होगा और यह धर्म का अंग बन गया होगा....और कालान्तर में दसियों दूसरी सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों की तरह यह भी एक रूढ़ि बन गयी होगी।

'आदमी या तो नितान्त शाकाहारी हो,' चेतन सोचा करता, 'नहीं बकरी या गाय या सूअर की कैद क्यों ?' यदि कोई माँस हानिप्रद नहीं तो वह केवल इसलिए त्याज्य हो कि न जाने सदियों पहले किन स्थितियों में अथवा किन कारणों से उसका निषेध कर दिया गया था, यह बात उसकी समझ में न आती थी। मुसलमान हों या हिन्दू, उसे दोनों की बात ग़लत लगती थी, पर चूँकि पिता की तामसिक वृत्ति के विरोध में माँ द्वारा शैशव ही से डाले गये सात्विक संस्कार प्रबल थे, इसलिए जब वह इस समस्या पर सोचने लगता, गोश्त खाना बन्द कर देता।

०

सूअर के गोश्त का टुकड़ा वैसे ही उसकी थाली में पड़ा था और अपने विचारों में मग्न वह दाल और पनीर के साथ रोटी खाये जा रहा था कि सहसा लोगों को ठहाके मारते और हँसते सुन कर चौंका—परे चौरस्ते पर देबू ने एक हैट वाले युवक को पीछे से झापड़ मार कर उसका हैट गिरा दिया था और वह युवक उसे कॉलर से पकड़ कर हवा में घूँसा ताने था।

"यह साला दून की लेता था," बिल्ले ने हँसी को रोक कर जगने से कहा, "इससे यह सब कभी नहीं हो सकता। तुम देख लेना, लड़ाई हो जायगी। बिना पीटे या पिटे यह आ नहीं सकता।"

और सच ही उन लोगों के देखते-देखते उस युवक ने हवा में ताना हुआ घूँसा देबू की कनपटी पर दे मारा। देबू ने उसकी कमर में हाथ डाल कर उसे लँगड़ी दे दी। तभी दुर्भाग्यवश मेयो अस्पताल की ओर से आता हुआ एक ताँगा उनको बचाने की कोशिश में युवक के हैट पर से गुज़र गया। वह युवक गिर कर उठा तो हैट उठाने के बदले देबू से लिपट गया और दोनों बीच सड़क गुत्थमगुत्था हो गये।

तब जगना और बिल्ला भाग कर गये। काफ़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। किसी तरह उन्होंने मामला सुलझाया। देबू की कमीज़ फट गयी थी। बड़ी मुश्किल से उसे समझा-बुझा कर वे साथ लाये।

वास्तव में कुछ क्षण पहले होटल के सामने बिछी चारपाई को ले कर जो लड़ाई हुई थी, उसमें देबू की कोर ज़रा दब गयी थी। यदि खुली

लड़ाई होती तो देबू सिर फोड़-फोड़वा कर उस युवक को चलता कर देता, पर देबू ने टाँगों से पकड़ कर उस युवक को जैसे गिराया था और बिल्ले ने जैसे दूसरों को उसकी मदद पर आने से रोक दिया था, उससे लड़ाई, लड़ाई न रह कर, कुश्ती हो गयी थी और कुश्ती के दाँव-पेंच वह युवक शायद देबू की अपेक्षा ज़्यादा जानता था। उस युवक को खदेड़ कर बिल्ले ने जिस आदेशपूर्ण स्वर में ढाबे के मालिक से चेतन और उसके मित्रों का पूरा ख़याल रखने के लिए कहा था, उससे देबू को ईर्ष्या हुई थी। यदि उसने उस युवक को भगा दिया होता तो वह स्वर उसका होता। वही अपने मित्रों को अच्छा खाना देने का आदेश ढाबे के मालिक को देता। यही बात उसे खल रही थी। कपड़े-वपड़े झाड़ कर और हाथ-मुँह धो कर जब वह वापस पेड़-तले आया तो अपनी झेंप मिटाने के लिए उसने जगने से कहा कि वह सामने जाने वाले आदमी की पगड़ी गिरा कर दिखाये। जगना इस फ़न में यकता था। अच्छे-भले आदमी को पीछे से जा कर धौल जमा देना, उसकी टोपी या पगड़ी गिरा देना, उसे गाली दे देना, और पकड़े जाने पर बड़े भोलेपन से माफ़ी माँग लेना, यह सब उसके बायें हाथ का खेल था। जाने क्यों उस समय जगने का मूड नहीं था या उसका ध्यान कहीं अपने मुकदमे में उलझा हुआ था अथवा अपनी जेब की रीताई ने उसे अन्यमनस्क बना रखा था, इसलिए उसने देबू की बात पर ध्यान नहीं दिया। तभी हैट पहने वह युवक सामने से गुज़रा था। तब देबू ने अपनी झेंप मिटाने और फिर से अपनी शान जताने के लिए डींग हाँकी कि वह स्वयं उसकी टोपी गिरा कर दिखा सकता है।

"पिट जाओगे साले।" बिल्ले ने कहा था।

"मजाल है!"

"या उसे पीट दोगे।"

"बिलकुल नहीं!" देबू ने कहा था, "मैं टोपी गिरा दूँगा और वह कुछ कहेगा भी नहीं। अगर जगना यह कर सकता है तो मैं क्यों नहीं कर सकता।'

जाने बिल्ले को क्या सूझी। शायद वह तमाशा देखने के मूड में था।

उसने कहा, "साले, यह तुम से नहीं होगा। यह काम जगना ही कर सकता है।"

और इस ताने का वही असर हुआ, जो कि बिल्ले को अभीष्ट था। "मैं क्यों नहीं कर सकता ?" देबू ने सिर को झटका दे कर कहा, "इसमें रखा ही क्या है—टोपी गिरा देना, यदि वह कुछ कहे तो माफ़ी माँग लेना।"

"तो जाओ गिरा कर दिखाओ उसकी टोपी।"

युवक ज़रा दूर निकल गया था। देबू लपका।

"साले पिट जाओगे। हर काम हर कोई नहीं कर सकता।" बिल्ले ने कहा।

लेकिन देबू ने उसकी बात नहीं सुनी। वह लपकता चला गया था और बिलकुल जगने की तरह उसने एक धौल पीछे से उस युवक के जमा दी थी।

•

तीनों वापस आ गये तो मालूम हुआ कि जब उस युवक की टोपी दूर जा गिरी और उसने देबू को कॉलर से पकड़ लिया तो देबू ने खेद प्रकट किया कि उससे ग़लती हो गयी, उसने समझा था कि उसका दोस्त हरि है। पर इस पर खींच कर जब एक घूंसा उस युवक ने देबू के दे मारा तो उसे भी ताव आ गया।

"बेटा, तभी तो कहा था," बिल्ले ने उसकी गर्दन पर धौल जमाते हुए कहा, "कि यह काम तुम्हारे बस का नहीं। इसे जगना ही बेहतर कर सकता है।" फिर उसने पलट कर जगने से कहा, "क्यों बेटा, ज़रा दिखाओ न अपनी करामात।"

हुनर साहब और दूसरे इस बीच में खाने से छुट्टी पा चुके थे। हुनर साहब का ख़याल था कि शायद पैसे देबू वग़ैरह ही देंगे। जब बिल्ले ने होटल के मालिक से कहा कि यह हमारे मेहमान हैं, तो पैसे देने की क्या ज़रूरत है और वे पैसे दिये बिना ही जगने की करामात देखने को तैयार हो गये थे। चेतन ने उन्हें ज़रा अलग ले जा कर समझाया कि ये लोग सब-के-सब एकदम फक्कड़ हैं। इनके पास पैसे-वैसे नहीं रहते, होटल

वाला इनकार करे तो भी पैसे आपको दे देने चाहिएँ। दूसरे बीसियों काम इन लोगों से सध सकते हैं, पर यही नहीं सध सकता।....

हुनर साहब सोचते थे कि शायद होटल वाला पैसे लेने से इन्कार करेगा और वे 'नहीं-नहीं भाई यह कैसे हो सकता, ये पैसे भी उन्हीं के हैं,' कुछ ऐसी बात कहते हुए पाँच का नोट उसके हाथ पर रखेंगे। पर ऐसी कोई बात नहीं हुई। उन्होंने पैसे पूछे। ढाबे के मालिक ने बता दिये। उन्होंने नोट बढ़ाया तो उसने ले लिया और शेष रेज़गारी गिन कर उनके हाथ पर रख दी।

तब चेतन ने सोचा कि अब वह हुनर साहब से छुट्टी ले ले, पर उसी वक्त सहसा जगने ने कहा, "अच्छा वो देखो, वह जंटलमैन जा रहा है। मैं उसका हैट गिराता हूँ। आप लोग हँसिएगा बिलकुल नहीं। मेरे पीछे-पीछे आइए, पर ज़रा दूर रहिएगा। झगड़ा अगर हो तो मुझी को डाँटिएगा।"

देबू की असफलता से या बिल्ले की प्रशंसा से वह एकदम मूड में आ गया था। था तो वह केवल मिडिल पास ही, पर उसने बढ़िया बोस्की की कमीज़ और मक्खन जीन की पैंट पहन रखी थी। हवा के पैरों पर उड़ता-सा वह चला।

वे सब भी कुछ फ़ासले से उसके पीछे चले और चेतन भी वापस जाने का ख़याल छोड़ कर उनके साथ हो लिया।

उन्नीस

कम्पनी बाग़ के दरवाज़े तक जगना अपनी करामात दिखाता गया और उसके साथी (हुनर साहब की मण्डली भी उनके साथ शामिल हो गयी थी) उससे ज़रा फ़ासले पर चलते हुए निरन्तर हँसते गये, यहाँ तक कि उनके पेट में बल पड़ गये। चेतन को वह सब सरासर गुण्डई लगती थी, पर जगना इतनी सफ़ाई से वह सब करता था कि न केवल मज़ाक दिखायी देता था बल्कि अनचाहे भी उसमे विनोद होता था। स्वयं चेतन कई बार अपनी सब खिन्नता भूल कर, अनायास हँस दिया था। उसके उदास विचार जाने कहाँ गहरे में चले गये थे और उनकी जगह उस क्षण की उत्फुल्लता ने ले ली थी। अपने साथियों के साथ वह भी उस सब में रस पाने लगा था और जब कम्पनी बाग़ के पास जगने की तमाम कोशिशों के बावजूद एक गोल-मटोल गंजे सम्भ्रान्त व्यक्ति से झगड़ा हो गया तो वह भी उन सबके साथ, उन्हीं के स्तर पर उतर कर, रस लेते हुए, मामला सुलटाने लगा—अनजाने, अनचाहे, जगने की ज़्यादती को जानते-समझते हुए भी।

०

यद्यपि वह युवक, जिसके पीछे जगना ख़ालसा होटल से लगा था,

काफ़ी दूर निकल आया था, पर तेज़-तेज चलते, जैसे उड़ते हुए जगने ने उसे जा लिया था और, "ओए सोहने हरामज़ादे ! किन्नियाँ वाजाँ तैनूं दित्तियाँ नें, ऐं, सुत्ता होया टुरना ऐं ?"[1] कहते हुए पीछे से एक धौल उसके जमा दी थी।

युवक का सोला हैट दूर जा गिरा था और पलट कर उसने कहर-भरी नज़रों से जगने की ओर देखा था। कुछ अजीब-से आश्चर्य-भरे खेद का भाव जगना की आकृति पर खेल गया था, "ओह आइ एम सॉरी !" उसने कहा था, "मैं समझा सोहन लाल है। पीछे से आप बिलकुल वैसे ही दीखे !"....और बिना उसे कुछ कहने का अवसर दिये, लपक कर उसने उसका हैट उठाया था ; जेब से रेशमी रूमाल निकाल कर उसे झाड़ा था और फिर दोनों हाथों से उसके सिर पर रख दिया था और उसकी पीठ को हल्के से थपथपाते हुए बोला था, "माफ़ कीजिएगा, बुरा न मानिएगा।" और उसने हाथ बढ़ा दिया था।

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं !" कहते हुए उस युवक ने हाथ मिलाया।

"मेरा नाम जगन्नाथ है, चौरस्ती अटारी में सभी मुझे जानते है। कभी ज़रूरत हो तो याद कीजिएगा।" कहते और उसके हाथ को झटका देते हुए वह चला आया था।

उस अन्तिम वाक्य को दोहराते हुए बिल्ले ने कहा था :

"उसे फिर गर्दन तुड़वाने की ज़रूरत होगी तो तुम्हे याद करेगा।"

और वह ज़ोर से ठहाका मार कर हँसा था। जगने के उस अन्तिम वाक्य ने मित्रों का जी हरा कर दिया था और हँसते-हँसते हुनर साहब को तो उच्छू लग गया था।

कुछ पल इस घटना का मज़ा ले कर, उसके विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करते हुए, धौल खा कर उस युवक के चेहरे पर जो आश्चर्य-मिले

१. अरे सोहने (सोहन लाल) हरामज़ादे; कितनी आवाज़ें तुम्हें दी हैं, क्या सोया हुआ चलता है।

क्रोध का भाव आया था और जगने की आकृति पर जो खेद-भरी निरीहता छा गयी थी, उसका मित्रों ने विशेषकर रस लिया था। हुनर साहब ने उस निरीहता की व्याख्या करते हुए तत्काल शे'र चस्पाँ कर दिया था :

इस सादगी पे कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।

फिर वे किसी दूसरे शिकार को खोजने लगे थे। तभी एक बुज़ुर्ग ज़िला कचहरी की तरफ़ को जाते दिखायी दिये थे—सिर पर घुटी हुई पगड़ी, लम्बा कोट, उटंग पायजामा, तनिक झुकी गर्दन....और बिल्ले ने उनकी ओर संकेत किया। जगना लपका। मित्रों ने भी कदम तेज़ किये। 'ज़रा दूर-दूर !' जगने ने इशारा किया और बढ़ चला।

बुज़ुर्ग अपने ध्यान में सिर झुकाये चले जा रहे थे कि जगने ने बिलकुल उनके कान के पास मुँह ले जाते और कन्धे पर हल्की-सी धौल जमाते हुए बड़े ज़ोर मे (जैसे कोई बहरे को बुलाये) कहा, "चाचा बिहारी लाल-ऽ-ऽ !' और दूसरे क्षण उनके सामने हो कर हाथ जोड़ते हुए वह बोला— "नमस्ते–ऽ–ऽ !"

पर 'नमस्ते' उसके मुँह से पूरा निकला नहीं था कि उसे अपनी ग़लती मालूम हो गयी और 'माफ़ कीजिएगा,' 'माफ़ कीजिएगा,' कहता हुआ वह उनके पैरों पर झुक गया और उनके घुटनों को छूता हुआ, उनके कन्धे थप-थपा कर, उन्हें समझाता हुआ कि उससे ग़लती हो गयी है, उसने उन्हे अपना बहरा चाचा बिहारी लाल समझा था, हाथ जोड़ता हुआ वह वापस आ गया।

बुज़ुर्ग के कुछ दूर निकल जाने पर उनकी चकित भंगिमा की कुछ ऐसी नकल जगने ने उतारी कि मारे हँसी के सब का बुरा हाल हो गया था।

०

गर्मी काफ़ी थी। उमस उससे भी ज़्यादा थी। पसीने के मारे बुरा हाल था, लेकिन इस सब चकल्लस में किसी को उसका ध्यान नहीं था। मस्त-अलमस्त वे बढ़े जा रहे थे। ज़िला कचहरी के अहाते के बाद जी० पी० ओ०

को जो सड़क जाती थी, उसके आगे, राय बहादुर भगतराम की कोठी के सामने कुछ दो-मंज़िले मकान नये बने थे। यह दो-मंज़िली पंक्ति कम्पनी बाग़ तक चली गयी थी। उसमें अधिकांश नये वकीलों के दफ़्तर थे। बीच में दो-एक जगह कुछ स्थान ख़ाली था और मकानों की पंक्ति पूरी नहीं थी। वहीं एक ख़ाली जगह सड़क के किनारे एक व्यक्ति लघुशंका के लिए बैठा था। जगना लपक कर उसके पास गया और ज़रा उसके कन्धे के पास झुक कर बोला—"बाश्शाओ की ढूँढ़ रहे हो?"[1]....और दूसरे क्षण उसकी अचकचाहट देख कर उसने कहा, "मूत्र रहे हो, अच्छा मूत्रो! मूत्रो!" और उसके कन्धे को हल्के से थपथपाते हुए लौट आया था और मारे हँसी के देबू और बिल्ले की आँखों में आँसू आ गये थे।

चेतन को उसकी इस अनुचित हरकत पर बेहद क्रोध आया था। यह क्या बदतमीज़ी है। पर जालन्धर में जिस तरह लोग सरे-सड़क और सरे-बाज़ार लघुशंका के लिए बैठ जाते हैं, उनकी इस आदत को दूर करने का इससे बेहतर कोई तरीका उसे नहीं लगा। हालाँकि जगने ने वह हरकत महज़ शरारत के लिए थी, पर चेतन ने सोचा कि जब भी कोई सरे-बाज़ार यों बैठे तो उसे इसी तरह टोक देना चाहिए। यदि दो-एक बार ऐसा हो तो निश्चित रूप से उसकी आदत छूट जाय....और चेतन की कल्पना में शहर के बाज़ारों की नालियों और सड़कों के किनारे लघुशंका के लिए बैठे और उन्हें परेशान करते लोग घूम गये थे और अनायास वह अपने-आप ठहाका मार हँस दिया। 'लेकिन इसमें आम लोगों का भी क्या दोष है,' दूसरे क्षण उसे ख़याल आया था, 'इस सारी सड़क पर एक भी तो मूत्रालय नहीं। घण्टों पहले घर से निकला हुआ आदमी तब क्या करे....?'

"अजी साहब क्या बात है राय बहादुर की। ऐसा बड़ा फ़ौजदारी का वकील सारे हिन्दुस्तान में नहीं।" बिल्ला कह रहा था।

वे लोग राय बहादुर भगतराम की कोठी के आगे से निकले जा रहे थे। डाकख़ाने को जाने वाली सड़क से ले कर दायीं तरफ़ कम्पनी बाग़

१. बादशाहो क्या ढूँढ़ रहे हो?

तक उनकी कोठी थी। वे फ़ौजदारी के प्रसिद्ध बैरिस्टर थे और उनकी ख्याति देश भर में फैली थी। आम जनता में उनकी विद्वत्ता और चतुराई के बारे में सच्ची-झूठी, न जाने कितनी किम्वदन्तियाँ फैली हुई थीं। जाने कैसे उनकी बात चल पड़ी थी, अपने ध्यान में मगन चेतन ने नहीं सुना, बिल्ला बड़े जोश के साथ किस्सा सुना रहा था—किस तरह राय बहादुर ने जिरह की और एक हल्के नुक्ते से सन्देह की गुंजायश पैदा करके अपने मुवक्किल को, जिसे ३०२ के अभियोग में निचली अदालत ने फ़र्द जुर्म लगा कर सेशन के हवाले कर दिया था, साफ़ बरी करा लिया....''कत्ल अँधेरे में हुआ था,'' बिल्ला सुना रहा था, ''और मकतूल के साथी की गवाही सबसे वज़नदार थी। जिरह करते समय राय बहादुर ने उससे पूछा, 'तो जब मुलज़िम ने अपने साथियों के साथ हमला किया, उस वक्त सूरज छिपे काफ़ी देर हो गयी थी, अँधेरा गहरा हो गया था ?'

—गवाह बोला, 'जी हाँ।'"

और बिल्ले ने राय बहादुर के प्रश्नों और गवाह के उत्तरों की हू-ब-हू नकल उतारी—

राय बहादुर : लड़ाई में तुम्हें पहले लाठी लगी ?
गवाह : जी हाँ !
राय बहादुर : कहाँ ?
गवाह : सिर पर !
राय बहादुर : काफ़ी ज़ोर से लगी ?
गवाह : जी हाँ !
राय बहादुर : तुम गिर गये और तुम्हारे होश-हवास गुम हो गये ?
गवाह : जी हाँ !

"'बस योर आनर मुझे कुछ नहीं कहना'—राय बहादुर ने यह कह कर जिरह खत्म कर दी।" और किस्सा जारी रखते हुए बिल्ले ने कहा, "लेकिन जब बहस हुई तो उन्होंने गवाह के बयान की धज्जियाँ उड़ा दीं। रात का वक्त था, अँधेरा था, उस पर गवाह के लाठी लगी थी और

उसके होश-हवास गुम हो गये थे, तब कैसे उसने उस अँधेरे में जाना कि मकतूल मुलज़िम की लाठी से मरा है। और जज के दिल में सन्देह पैदा कर दिया, जिसका लाभ मुलज़िम को मिला!"

"क्या बात है भाई राय बहादुर की!" देबू ने ऍंची आँख से चेतन की ओर देख कर कहा, लेकिन हुनर साहब को लगा कि वह उनसे कह रहा है और उन्होंने तत्काल कहा :

"हाँ साहब, राय बहादुर जीनियस है, और जीनियस रोज़-रोज़ पैदा नहीं होते।"

और यह कहते और बात-चीत को शे'र-ो-शायरी की ओर मोड़ते हुए हुनर साहब बोले, "अल्लामा इक़बाल ने कहा है :

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी[1] पे रोती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर[2] पैदा"

शे'र सुनाते हुए, झूम कर ख़ुद ही शे'र की दाद देते हुए उन्होंने कहा, "कितना सच्च कहा है इकबाल ने—बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा—लेकिन 'मीर' ने इसी ख़याल को किस आसानी से बाँधा है :

मत सहल हमें समझो, फिरता है फ़लक बरसों
तब ख़ाक के पर्दे से इन्सान निकलते हैं"

'मत सहल हमें समझो'—एक-एक शब्द पर जोर दे कर उन्होंने फिर एक बार पूरा शे'र कहा और फिर उन सबको उन दोनों शे'रों का मतलब समझाते हुए उनकी नज़ाकत और नफ़ासत समझाने लगे और उनकी वाणी धारा-प्रवाह बह चली।

फ़ौजदारी के मामलों में राय बहादुर भगतराम की चतुराई का इन शे'रो के साथ क्या सम्बन्ध है, चेतन की समझ में यह बात नहीं आयी, पर उनके सुनने वाले मूर्ख है, इसे हुनर साहब भली-भाँति जानते थे और मूर्खों

१. नूर = ज्योति; बेनूरी = ज्योति का अभाव = बेक़द्री; २. देखने वाली आँख रखने वाला।

पर वे जैसे रोब जमाते थे, इसे चेतन अच्छी तरह जानता था। वे चलते-चलते राय बहादुर की कोठी के दूसरे गेट के समीप पहुँच गये थे। चेतन ने वर्षों पहले बैरिस्टर भगतराम को उसी गेट मे खड़े देखा था—गठा हुआ दोहरा शरीर, बहुत बढ़िया कीमती सूट, (जिसके अन्दर उस ज़माने के फ़ैशन के अनुसार वास्केट भी थी) फूले-फूले गाल, मोटी-मोटी बाहर को निकली पड़ती-सी आँखें और गंजा सिर—चेतन के ख़याल में चतुर आदमी का पतला होना ज़रूरी था। और उसे वे किसी बड़ी अंग्रेज़ी फ़र्म के जनरल मैनेजर-ऐसे लगे थे। लेकिन उनकी आँख में अजीब-सा स्वप्निल भाव था। अपने साथी से बातें करते हुए, उसकी ओर देखते हुए जैसे वे उससे दूर कहीं और देख रहे थे।....भगतराम कितने ही बड़े बैरिस्टर हों, पर वही नरगिस के सौन्दर्य को पहचानने वाले 'दीदावर' हैं अथवा वो 'इन्सान,' जिसके लिए बरसों चाँद-सितारों ने गर्दिश की है, यह चेतन की समझ में नहीं आया। ये शे'र महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा अथवा महात्मा गान्धी पर पूरी तरह लागू हो सकते हैं, जिन्होंने ग़रीबों की 'बेनूरी' को देखते हुए उनके नूर को पहचाना।....चेतन मन-ही-मन उन शे'रों की व्याख्या कर रहा था और हुनर साहब बड़े जोश-ख़रोश से 'इक़बाल' के शे'र के मुकाबिले में 'मीर' के शे'र की सादगी और गहराई पर (निश्तर और रणवीर को सम्बोधित कर) भाषण दे रहे थे कि बिल्ले ने बोर हो कर कहा था, "उस गंजे की खोपड़ी पर एक चपत जमाओ तो जानें।"

हुनर साहब का भाषण एकदम रुक गया। रणवीर और निश्तर ने आँखें घुमायीं। सब का ध्यान उधर गया—कम्पनी बाग़ से ज़रा इधर बढ़िया कमीज़-पतलून पहने तीस एक वर्ष का गोल-मटोल आदमी जा रहा था। पहरावे ही से वह कोई वकील या अफ़सर लगता था।

"लो अभी जमा देता हूँ'" जगने ने कहा और उसने कदम बढ़ाये।

तेज़ धूप में जाने वाले की खोपड़ी चमक रही थी। जगना तेज़-तेज़ उसके पीछे पहुँचा और "ओए कद्दू!" कहते हुए ज़ोर की एक चपत उसकी गंजी खोपड़ी पर जमा, जैसे अपरिमित स्नेह से उसने उसे बग़ल में ले लिया। लेकिन दूसरे ही क्षण, जैसे उसे बिजली का तार छू गया हो,

वह उससे अलग हो गया।

तब शायद कुछ भी न होता, और जगना पहले की तरह माफ़ी माँग कर और अपने निवास-स्थान का पता बता कर वापस आ जाता, लेकिन निश्तर और रणवीर, जो उनके काफ़ी निकट पहुँच गये थे, अपनी हँसी न रोक सके और उन साहब को शक हो गया कि उन लोगों ने जान-बूझ कर मज़ाक किया है और जगने के बार-बार माफ़ी माँगने के बावजूद उन्होंने उसका हाथ थाम लिया। खींच कर झापड़ तो उन्होंने नहीं मारी कि वे सम्भ्रान्त व्यक्ति थे, पर उसे पुलिस के हवाले कर देने की धमकी देते हुए वे चिल्लाने लगे।

तभी वे सब भी घटना-स्थल पर पहुँच गये थे।

०

जगना सिर आगे किये कह रहा था कि वह गंजा तो नहीं है कि उसकी चाँद को चपतिया कर वे सन्तोष पायें, पर उसकी खोपड़ी पर एक नहीं, चार झापड़ जमा कर यदि उनका सन्तोष हो तो वे कर लें।

उन गोल-मटोल महाशय के चेहरे पर कुछ ऐसा क्रोध, अविश्वास, अनिश्चय झलक रहा था और उससे उनकी सूरत कुछ ऐसी हास्यास्पद बन गयी थी और जगने के चेहरे पर कुछ ऐसी निरीहता थी और उसने सिर कुछ इस तरह आगे बढ़ा रखा था कि चेतन तक के चेहरे पर मुस्कान आ गयी।

"इस साले से बीस बार कहा है कि बिना देखे दोस्तों को पीछे से झपट्टा न मारा करो। कई बार यह हमारे साथ भी ऐसा ही करता है। मारिए उतार कर चार जूते इसके सिर पर कि इसे आइन्दा के लिए शिक्षा मिले।" बिल्ले ने कहा था।

लेकिन यह कहते हुए उसकी आँखों में जो चमक और होंटों पर जो मुस्कान थी, उससे वे और भड़क उठे। उन्हें लगा कि सब उनका मज़ाक उड़ा रहे हैं।

"आई शैल नॉट टेक लॉ इन माइ ओन हैण्ड्ज़,"[1] क्रोध में उन्होंने

---

१. मैं कानून अपने हाथ में नहीं लूँगा।

अंग्रेज़ी बोलनी शुरू कर दी। "मैं अभी इसे थाने में ले जाऊँगा। पुलिस वाले चाहे चार जूते मारें चाहे चालीस।"

तब बात बढ़ती देख कर चेतन आगे बढ़ा था। उसने अंग्रेज़ी में उन्हें समझाया कि छोड़िए, इससे ग़लती हो गयी है, माफ़ी माँग रहा है, जाने दीजिए। पुलिस में ले जा कर आप क्या कीजिएगा। पुलिस फाँसी तो लगा नहीं देगी। मामला भी चलाइएगा तो ३२३ के अधीन महीनों अदालत की ख़ाक छानिएगा।

"हू आर यू टू इन्टरफ़ियर इन दिस अफ़ेयर ?"[1] उन्होंने उपेक्षा से हाथ झटक कर कहा।

तब हुनर साहब खादी की धोती के छोर से मुँह का पसीना पोंछते हुए आगे बढ़े और उन्होंने चेतन का परिचय दिया कि वह प्रसिद्ध कहानीकार, कवि और पत्रकार है और स्व० लाला लाजपत राय के समाचार-पत्र 'वन्दे मातरम' का सम्पादक है। और तब चेतन ने अंग्रेज़ी ही में हुनर साहब का परिचय दिया और वे साहब सम्भ्रम में पड़ गये। तभी छोटी कचहरी की ओर से ज़ोर की धूल उड़ी और उन सबकी आँखों में भर गयी। इस सब शरारत और झगड़े में किसी ने आकाश की ओर ध्यान न दिया था। पश्चिम के नभ पर ज़ोर की घटा उठी थी, जो उनके सिरों पर आ गयी थी।

क्षण भर को चेतन ने आकाश की ओर देखा, काली आँधी ताड़का राक्षसी-सी, घनी घटा को अपने पार्श्व में लिये, आकाश को आच्छादित किये, उनके सिरों पर आ गयी थी। आगे-आगे पीले-भूरे रंग के हरावल दस्ते और फिर घनी काली सेना, हज़ारों पक्षी (जैसे उसे रोक ही तो लेंगे) आकाश में दायरे बनाते, शोर मचाते उड़े आ रहे थे।

तभी दो मोटी-मोटी बूँदें उन महाशय की चाँद पर गिरीं और वे बौखला कर अंग्रेज़ी में उन्हें इस बदतमीज़ी पर शर्मसार करते हुए जगने का हाथ छोड़ कर आगे बढ़ गये और वे सब आँधी से बचने के लिए बायीं

---

१. तुम कौन हो इस मामले में दख़ल देने वाले ?

ओर की बिल्डिंग के उस बरामदे में जा खड़े हुए, जो राय बहादुर भगत-राम की कोठी के सामने पड़ता था और जिसके खम्भे पर किसी 'हरिकृष्ण एडवोकेट' का बोर्ड लगा था।

बीस

"मेरे एक साथी हैं हरिजिन्दर सिंह 'तश्ना'[1] हम दोनों हॉस्टल में इकट्ठे थे, इकट्ठे शे'र कहते और इकट्ठे शरारतें करते।"

बाहर हवा बेपनाह वेग से बह रही थी, धारासार पानी बरस रहा था और हरिकृष्ण एडवोकेट के बरामदे में, उस ओर से बेख़बर, हुनर साहब की वाणी धाराप्रवाह बह रही थी।

जगने की शरारतों और उस मोटे-मुटल्ले गंजे कद्दू की परेशानी से बात शुरू करके (जिसकी चँदिया को जगने ने बेदर्दी से चपतिया दिया था) हुनर साहब ने तत्काल बात का रुख़ अपनी ओर मोड़ लिया था और चूँकि वे जान गये थे कि उनके नये श्रोताओं को शे'रों की बारीकी और गहराई की कुछ समझ नहीं और दूसरों की बात सुनने के वे स्वयं अभ्यस्त नहीं थे, इसलिए वे कॉलेज के ज़माने का किस्सा सुनाने लगे थे।

"एक दिन हम स्टेशन पर एक साथी को गाड़ी में सवार करके जो लौटे तो देखा कि सराय के पास, शहर की ओर से, एक साधु महाराज —यह पेट को छूती लम्बी दाढ़ी; टखनों तक लम्बी (जाने असली जटाओं में नकली बाल लगा कर बटी हुई) जटाएँ; नंगे शरीर पर चन्दन के

---

१. प्यासा (कवि का उपनाम)।

टीके !—तब जाने हरजिन्दर को क्या सूझी, उसने कहा, "हुनर ज़रा इन साधू महाराज की सेवा की जाय !" मैंने कहा, "लो, अभी लो !" और मैं बढ़ कर, अपने बढ़िया सूट के मैले होने की परवाह न करके (उस ज़माने में मैं सूट पहना करता था) सरे-बाज़ार सड़क पर उनके चरणों में लेट गया।

"महात्मा जी के चेहरे पर ऐसे भक्त को देख कर एक अजीब नूर खेलने लगा। उन्होंने मुझे उठाया और बोले—'बच्चा तुझे क्या कष्ट है ?'

"मैंने कहा—'महाराज, तालिब-इल्मों को क्या कष्ट होगा। इम्तिहान की चिन्ता है। आपका आशीर्वाद चाहिए कि हम अच्छे नम्बरों से पास हो जायँ।'

"महात्मा ने मेरी पीठ थपथपाते हुए आशीर्वाद दिया।

"तब हरजिन्दर ने आगे बढ़ कर कहा—'भगवन, हमारी एक बिनती है।'

"उन्होंने मुस्करा कर आँखें उठायीं।

"हरजिन्दर ने कहा—'महाराज आप हमारा भोजन स्वीकार कीजिए। भोजन का समय भी है। पवित्र हिन्दू होटल में भोजन बहुत अच्छा बनता है। आप वहीं भोजन कीजिए।'

"'अरे बेटा हम होटलों-वोटलों में कहाँ भोजन करते हैं। तुम लोगों की इतनी श्रद्धा है तो कुछ दे दो, हम तुम्हारे नाम से भोजन कर लेंगे।'—महात्मा जी ने कहा।

"'नहीं महाराज,' हरजिन्दर उनके चरणों में झुक गया, 'हमारी बड़ी श्रद्धा है कि हम आपको अपने होटल में भोजन करायें। आप हमारी यह सेवा स्वीकार कर लेंगे, तभी हमें यकीन होगा कि आपने हमें आशीर्वाद दिया।'

"किस्सा-कोताह यह कि हम दोनों उन साधु महाराज को पवित्र हिन्दू होटल में ले गये। मीनू में जितने बढ़िया खानों के नाम थे, सभी की एक-एक प्लेट का आर्डर हमने महात्मा जी के लिए दे दिया। हरजिन्दर जाने

कहाँ से एक पंखा ले आया और उसे चँवर की तरह डुलाने लगा। जब तरह-तरह के भोजन से भरी थाली आ गयी तो महात्मा जी की आँखें चमकने लगीं और उनके मुँह से राल टपक पड़ी। तब मैंने वहीं से बैठे-बैठे कहा, 'क्या आपके यहाँ रबड़ी नहीं ? होटल वाले ने कहा कि सराय के हलवाई से मिल जायगी, कहिए मँगा दूँ। मैंने हरजिन्दर को आदेश दिया कि कटोरी ले जाओ और भाग कर पाव भर रबड़ी ले आओ।

"हरजिन्दर कटोरी उठा कर भाग गया। महाराज रबड़ी की प्रतीक्षा में कब तक स्वादिष्ट भोजन को चखने से रुके रहते। वे मगन हो कर खाने लगे और मैं महाराज को पंखा झलने लगा। जब दस मिनट तक हरजिन्दर न आया तो मैंने अपने-आपसे कहा—'जाने उसे दुकान मिली कि नहीं'—पंखा रख, मैंने दूसरी कटोरी उठायी और बाहर निकल गया। हरजिन्दर सराय के पास ही खड़ा था। हम दोनों अड्डा होशियारपुर को जाने वाले एक खाली इक्के पर सवार हुए और वहाँ से सीधे अपने हॉस्टल आ गये।"

"महात्मा जी पर क्या गुज़री ?" सहसा रणवीर ने, जो हुनर साहब के मुखारविन्द से निकले हर शब्द को पी रहा था, पूछा।

"यह तो भगवान ही जानता है या वह होटल वाला या वे महात्मा !" हुनर साहब ने हँस कर कहा, "जब तक महात्मा जी ने अपनी दाढ़ी-मूँछों के साथ-साथ पेट पर भी हाथ फेरते हुए खाना नहीं शुरू कर दिया, मैं वहाँ से नहीं उठा। मैंने उन दिनों इस घटना पर एक नज़्म लिखी थी," हुनर साहब ने कहा, "सब तो मुझे याद नहीं, पर उसका मक़ता[1] याद रह गया है :

चले आये 'हुनर' जब छोड़ कर होटल तो क्या जानें
जटाधारी की तोंद-ओ-रीश[2] पर क्या, सर पे क्या गुज़री।"

और उन्होंने ज़ोर का ठहाका लगाया, जिसमें निश्तर और रणवीर ने 'वाह-वा, वाह-वा' की दाद मिला दी।

१. अन्तिम शे'र; २. पेट और दाढ़ी।

'गदहे !' चेतन ने मन-ही-मन रणवीर और निश्तर को लक्ष्य करके कहा, 'समझते हैं कि हुनर साहब ने सच ही तो ये शरारतें की होंगी। पतले-छरहरे, गोरे-चिट्टे, सुकोमल-सुकुमार—शरारती लड़कों के हाथों खुद ही परेशान होते होंगे। फिर जैसे उन्होंने दूसरों के शे'र अपने नाम से सुनाना सीख लिया, वैसे ही दूसरों की शरारतें भी अपने नाम के साथ, कुछ कम-ज़्यादा करके जोड़ लीं।'

हुनर साहब लाहौर की शरारतों के किस्से सुनाने लगे थे, पर चेतन का ध्यान उधर नहीं था। बरामदे के खम्भे से लगा, मन्त्र-मुग्ध-सा वह आँधी-पानी के उस प्रकोप की भव्यता को देखने लगा। जाने कितने मील प्रति घण्टे की गति से तूफ़ान बह रहा था। पानी की धारें तिरछे तारों-सी तनी थीं और उनमें तलवारों की चमक और तेज़ी थी। पानी की जिस धार को बरामदे की सीढ़ियों पर सीधे पड़ना चाहिए था, वह सड़क के उधर के भाग पर जा कर गिरती थी। बरामदे से सड़क तक का भाग एकदम सूखा था। चेतन की निगाहें लगातार आम के उस पेड़ पर लगी थीं, जो राय बहादुर भगतराम की कोठी के कम्पनी बाग वाले कोने में बेतरह झुक गया था। उस दो-मंज़िली इमारत के कारण (जिसके बरामदे में चेतन खड़ा था) सामने के पेड़ों पर हवा का ज़ोर न था, लेकिन कचहरी की सड़क और उसके किनारे छोटी कचहरी और नार्मल स्कूल के खुले अहातों के कारण हवा का ज़ोर उस कोने पर पड़ रहा था—बिजली और टेलीफ़ोन के तारों को ताने, 'शाँ शाँ' करती आँधी पूरे ज़ोर से उस आम पर पिली हुई थी। उसकी सारी शाखें उसके ज़ोर से उधर को झुक गयी थीं। आँधी कुछ ऐसे लगातार बह रही थी कि एक बार की झुकी शाखें फिर अपनी पहली स्थिति में न आ पायी थीं। वह दृश्य चेतन की दृष्टि को जैसे चुम्बक की तरह बाँधे था। जाने दस मिनट, जाने बीस मिनट, जाने आध घण्टा—चेतन जैसे निर्निमेष उधर देखता रहा। तब उसे लगा, जैसे शाखों के साथ तना भी झुक रहा है और उसके देखते-देखते भयानक अरअराहट की आवाज़ के साथ, गेट को तोड़ता, उधर के बिजली के खम्भे को गिराता, वह आम छावनी वाली सड़क पर जा गिरा।

आँधी जैसे उसी पेड़ को गिराने आयी थी। कुछ देर बाद उसका ज़ोर कम हो गया। पेड़ों की शाखें झूलने लगीं, पानी की तारें बूंदों में बदलीं और फिर चुपा गयीं। आसमान पर यद्यपि हल्के-हल्के बादल थे, पर घटाओं की सेना गुज़र गयी थी। हवा हल्के-हल्के झोंकों में बह रही थी। वे लोग बरामदे से नीचे उतरे; बिल्ला, देबू और जगना सबसे हाथ मिला कर छोटी कचहरी की ओर को बढ़े और हुनर साहब ने कम्पनी बाग़ का रुख किया कि उन्हें 'विधवा-सहायक-सभा' के दफ़्तर 'दोआबा के गान्धी' के दर्शन करने जाना था। पहले चेतन ने सोचा था कि वह उनका साथ वहीं से छोड़ देगा, लेकिन इस वर्षा ने दिन को यकसर धो दिया था। प्यारी-प्यारी ठण्डी हवा बह रही थी, जिसमें अभी तक अदृश्य बूंदियाँ बसी थीं और कम्पनी बाग़ के बाद रामजीदास की मिल के ऊपर से हो कर जो सड़क मण्डी को जाती थी, उसके दोनों ओर मण्डी को जाने वाले मोड़ तक खेत-ही-खेत थे। उस ठण्डे बरसाती मौसम में उस खुली सड़क की सैर करने के खयाल ने चेतन को हुनर साहब और रणवीर का साथ भी सह्य बना दिया और जब हुनर साहब ने कहा—'चलो ज़रा तुम्हें बांशीराम जी और योगी जी से मिला लायें!' तो चेतन ने इनकार नहीं किया।

इक्कीस

कम्पनी बाग़ की सड़क भीगी थी। दोनों किनारों में पानी जमा था। वे चारों बीच सड़क चल रहे थे। हवा का झोंका आता तो ऊपर पेड़ों से पानी की फुहार बरस जाती। लायब्रेरी के पास पूरे रास्ते पर एक यूक्लिप्टस का पेड़ गिरा पड़ा था। एक-दो पत्ते तोड़ कर उन्होंने हाथों में मसले, सूँघे, यूक्लिप्टस की गन्ध मन-मस्तिष्क में बस गयी। दायीं ओर आम के नीचे सारी सड़क पर कच्ची कैरियाँ बिखरी हुई थीं और छोकरे धड़ाधड़ उन्हें चुन रहे थे। कम्पनी बाग़ के सामने, दूर मण्डी के मोड़ तक, सड़क सूनी थी। दोनों ओर खेतों में पानी भरा था और दायीं ओर के आकाश पर नीली घटा जा कर जैसे केन्द्रीभूत हो गयी थी। वहाँ शायद ज़ोर का मेंह बरस रहा था। लेकिन बायीं ओर आकाश साफ़ हो गया था। उस भीगे, खुले, धुले मौसम में हुनर साहब उमंग में आ गये। आवाज़ उनकी बड़ी प्यारी थी और हफ़ीज़ जालन्धरी के स्वर की नक़ल वे बड़ी ख़ूबी से कर लेते थे। 'लो तुम लोगों को हफ़ीज़ का एक मशहूर गीत सुनायें', की भूमिका के साथ उन्होंने गाना शुरू किया :

पूरब में जागा है सवेरा दूर हुआ दुनिया का अँधेरा
लेकिन दिल तारीक है मेरा

पच्छिम में उट्ठी हैं घटाएँ फिरती हैं सरमस्त हवाएँ
जाग उठो मयख़ाने वालो पीने और पिलाने वालो
जहर मिलाओ रस में
दिल है पराये बस में
बाग़ में बुलबुल बोल रही है नरगिस आँखें खोल रही है
शबनम मोती रोल रही है
आम पे कोयल कूक उठी है सीने में इक हूक उठी है
बन जाऊँ न कहीं सौदाई जानवरों की राम दुहाई
चुभती है नस-नस में
दिल है पराये बस में

दिल है पराये बस में—चेतन ने एक लम्बी साँस भरी—दिल अपने बस में होना तो क्या सुबह से वह यों शुतरे-बे-मुहार[1] की तरह भटकता फिरता? —वह इतने दिनों के बाद शिमले से लौटा था, आते ही बस्ती भाग गया था; बस्ती से रात आया तो सुबह होते ही इधर चला आया....माँ उससे सुख-दुख की बातें करने को तरसती होगी....चन्दा उसके दो मीठे बोलों की राह देख रही होगी....चुपीती सही, पर उसके उस मौन में कितनी अभिलाषाएँ न होंगी?....न जाने दिल में कैसी आग लगी है? कहीं भी तो नहीं लगता। कहीं भी तो नहीं बहलता। सोचे तो यह नितान्त पागलपन है, सरासर बेवकूफ़ी है। जब उसकी शादी चन्दा से हो गयी, तो नीला से उसका सम्बन्ध ही क्या? उसके साहचर्य की इच्छा ही कैसी? यह पश्चिम तो है नहीं कि एक संगिनी से मन न मिला तो दूसरी से लौ लगा ली, एक दुनिया उजड़ी तो फिर नयी दुनिया बसा ली....और अब तो नीला की भी शादी हो गयी। विवाह की जंजीरों में बँध कर वह चली भी गयी। जब कोई आशा नहीं, फिर इच्छा क्यों? क्यों नहीं वह व्यावहारिक दृष्टिकोण से सोचता....लेकिन उससे कुछ भी नहीं सोचा जाता, बार-बार वही सब उसके दिमाग़ में आता है। वह घर रहता और यों निकल कर अपनी उदासी को

1. बेलगाम ऊँट

बिखेर न देता तो वह पागल हो जाता । पर क्या वह उदास को बिखेर सका । वह तो और भी घनीभूत हो कर उसके अन्तर की गुहा में एकत्र हो रही है....उसे क्या हो गया है....उसे क्या हो गया है....?

और हुनर साहब गा रहे थे :

कौन बताये उलफ़त क्या है ? दिल क्या दिल की हकीकत क्या है ?
मर मिटने में लज्ज़त क्या है
बेदर्द इसको क्या पहचाने, जिस पे बीती हो वह जाने
सुन ऐ ज्ञानी, दुनिया है फ़ानी, हाय मुहब्बत हाय जवानी
आग लगी है खस में

आग लगी है खस में—चेतन ने सोचा—भुस में नहीं, खस में—और सुलग रही है, भड़भड़ा कर नहीं जल रही, सुलग रही है, और धुँधुआ रही है ।

०

हुनर साहब ने तब दूसरा गीत छेड़ा :

छम-छम काले बादल बरसें रिमझिम नयना रोते हैं
सावन-भादों की रुत में कुछ ऐसे दिन भी होते हैं
शोर मचाती बूंदनियाँ जब गीत बिखेरें
आशाएँ हम बिरहियों से जब आँखें फेरें
भीगी पलकों के साये में टूटे सपने सोते हैं
सावन-भादों की रुत में कुछ ऐसे दिन भी होते हैं

और वह घिरी घटा, वह भीगा मौसम, वे पानी से भरे लहलहाते खेत, वह तरल रजत-सी चमकती सड़क, वे हवा के मद-भरे झकोरे—सारा वातावरण चेतन के हृदय को एक अपरिमित उदासी से भर गया । उसने चाहा वह एकदम इस फ़िज़ा में घुल जाय, उस हवा का अंग बन जाय और सिसकारता, ग़म की बूँदियाँ गिराता, आवारा, उदास, घटाओं और हवाओं का अंग बना, देश-देशान्तर में घूमता फिरे ।

हुनर साहब बड़ी दर्द-भरी लय में गा रहे थे, चेतन अपनी सारी वृत्तियों को उधर लगा कर सुनने लगा :

काली-काली-सी बदली जब घिर कर छाये
पी बिन बरखा रुत में अपना जी घबराये
पलकों में अश्कों के मोती सौ-सौ बार पिरोते हैं
सावन-भादों की रुत में कुछ ऐसे दिन भी होते हैं
नाच रही होती है जब बरखा की रानी
बाग़ों पर आ जाती है भरपूर जवानी
अपने मन की खेती में हम बीज दुखों के बोते हैं
सावन-भादों की रुत में कुछ ऐसे दिन भी होते हैं

जिस प्रकार चेतन झुँझला कर घर से भागा था—अन्तर में गहरी होती उदासी से दूर होने के लिए—उसी तरह इन दुख-भरे गीतों से घबरा कर उसने सहसा कहा, "ये क्या दुख-भरे गीत ले बैठे हुनर साहब, कैसा सुहाना मौसम है, कोई रस-भरा, प्यार-भरा गीत छेड़िए।"

और हुनर साहब मस्ती से झूमते हुए बोले, "लीजिए सुनिए :

प्रीतम कोई ऐसा गीत सुना, सावन की भरी बरसातों में
आ जाये इश्क जवानी पर, वो रस हो प्रेम की बातों में
प्रीतम कोई ऐसा गीत सुना
जिस गीत की मीठी तानों से, इक प्रेम की गंगा फूट पड़े
उजड़ी हुई दिल की धरती में, इक नूर का दरिया फूट पड़े
प्रीतम कोई ऐसा गीत सुना।"

टीप के बन्द को गाते हुए हुनर साहब, 'गीत सुना' कुछ ऐसे लोच-भरे स्वर में लटका दे कर कहते थे कि वह स्वर दिल में दूर तक डूबता चला जाता था। गीत सुनने के बदले चेतन उसी स्वर की पुनरावृत्ति की प्रतीक्षा करता रहता। वह गीत ख़त्म हो गया तो हुनर साहब ने एक और छेड़ दिया। लेकिन चेतन का मन नहीं रमा, हफ़ीज़ के गीत में गहराई थी, उदासी थी, हल्का मीठा दर्द था, पर ये गीत तो बड़े हल्के और सतही थे। उसने चाहा निश्तर से कहे—'ज़रा हीर के कुछ बोल सुनाओ।' लेकिन जब तक हुनर साहब स्वयं ही चुप न हो जायँ, उन्हें टोकना उनका अपमान करना था....और हुनर साहब गाते गये, गीत, ग़ज़लें, नज़्में—

लेकिन चेतन ने कुछ नहीं सुना—बार-बार हफ़ीज़ का वही गीत—'दिल हैं पराये बस में'—उसके कानों में गूंजता रहा। झुँझला कर वह मन को उधर से हटा कर दूसरी ओर लगाने का प्रयास करता रहा—सोचता रहा कि उसे ज़िन्दगी में बहुत कुछ करना है—इस उद्देश्यहीन, बेकार, व्यर्थ की ज़िन्दगी से ऊपर उठना है। वह मजनूं नहीं, न राँझा है, न फ़रहाद है, उसने तो जब छठी कक्षा में हाली का यह शे'र पढ़ा था :

ऐ इश्क तूने अक्सर क़ौमों को खा के छोड़ा
जिस घर से सर उठाया, उसको बिठा के छोड़ा

तो मन-ही-मन तय किया था कि वह कभी इश्क के चक्कर में नहीं पड़ेगा। ....लेकिन तब इश्क क्या बला है, क्या वह जानता था ?....पर जिस इश्क का कोई अंजाम नहीं, उससे लाभ ?....लेकिन इश्क में हानि-लाभ का ख़याल रहे तो इश्क कैसा ?....तो क्या अब उसने मजनूं बनने की सोची है....चुग़द कहीं का....!

और अपने-आपसे उलझता, झगड़ता, अपनी मूर्खता पर व्यंग्य करता वह चला जा रहा था कि वे लोग मण्डी के बाहर पहुँच गये और एक नये, लेकिन अध-बने, अनाथ-से मकान पर उसने 'विधवा-सहायक-सभा' का बड़ा-सा बोर्ड लगा देखा।

बाईस

'विधवा-सहायक' के पन्नों में लाला बांशीराम के नाम के आगे सदा महात्मा छपता था। लाहौर के एक गुमनाम साप्ताहिक में उनके एक भक्त ने 'दोआबा के गान्धी और उनका कार्यक्षेत्र' नाम से एक लेख भी लिखा था। उनको महात्मा की उपाधि किसने दी, यह तो चेतन नहीं जानता; महात्मा गान्धी की बुद्धि का कितना प्रतिशत उनके भेजे में था, यह भी उसे नहीं मालूम, पर शक्ल-सूरत और आचार-व्यवहार से उन्होंने महात्मा गान्धी बनने में कोई कसर न उठा रखी थी—पतले-दुबले तो वे महात्मा गान्धी ही की तरह थे, पर कद उनका किंचित लम्बा था, इसलिए अपनी सेक्रेट्री—बहन सरस्वती देवी—के कन्धे पर हाथ रख कर जब वे चलते थे तो शरीर को ज़रा झुका लेते थे, शरीर पर वे महात्मा गान्धी ही की तरह घुटनों से ऊँची धोती बाँधते थे। उनके अगले दो दाँत टूटे हुए थे और महात्मा गान्धी ही के अनुकरण में नकली दाँत लगवाना उन्होंने अधर्म समझा था। बहुत धीरे बोलते थे। महात्मा गान्धी की तरह (यद्यपि वे गुजराती नहीं, शुद्ध पंजाबी थे) 'मैं' का उच्चारण 'में' करते थे और बात करते-करते, कभी सोचते, तो गान्धी जी ही की तरह होंटों पर उँगली रख लेते। एक वर्ष कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने महात्मा

गान्धी के खेमे के बाहर श्रीमती सरोजिनी नायडू को खड़े पाया था, जिस कारण उन्हें महात्मा गान्धी से मिलने में खासी कठिनाई हुई थी। जब महात्मा जी कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक में शामिल होने के लिए पण्डाल में आये तो एक हाथ से सरोजिनी देवी के कन्धे का सहारा लिये थे।....लाला बांशीराम सरोजिनी नायडू जैसी संसार-प्रसिद्ध कवयित्री-ऐसी अंग-रक्षिका और सेक्रेट्री कहाँ से लाते? उनकी एक दूर के रिश्ते की बाल-विधवा बहन, सरस्वती देवी—उनकी संस्था का काम देखती थीं। महात्मा जी की सहायता से प्रभाकर तक पढ़ भी गयी थीं। कांग्रेस-अधिवेशन से आ कर उन्होंने बहन सरस्वती देवी को अपनी सेक्रेट्री और अंग-रक्षिका नियुक्त कर दिया। महात्मा बांशीराम से जो लोग मिलने आते, उनसे पहले बहन सरस्वती देवी ही मिलतीं। और महात्मा बांशीराम जब बाहर निकलते तो वे सदा उनके साथ-साथ चलतीं और महात्मा बांशीराम का एक हाथ उनके कन्धे पर रहता। मोटी भी वे सरोजिनी नायडू जैसी ही थीं। उनमें और सरोजिनी नायडू में उतना ही अंतर था, जितना महात्मा बांशीराम और महात्मा गान्धी में।

चेतन ने सिटी कांग्रेस कमेटी की ऐसी दो-तीन बैठकों में उन्हें देखा था, जहाँ काफी गर्मा-गर्म बहस और वाद-विवाद हुआ था। महात्मा बांशीराम ज्यादा नहीं बोले, पर जो दो-चार बातें होंटों पर उंगली रख कर उन्होंने कहीं, उससे चेतन को पता चल गया था कि वे कितने पानी में हैं। सिटी कांग्रेस कमेटी पर देशभक्त लाला गोविन्दराम का एक-छत्र अधिकार था। वे ज्यादा बोलते नहीं थे, काम करते थे; हड़तालें कराते थे; धरने देते थे; जेल जाते थे। महात्मा जी यह सब न करना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने महात्मा गान्धी के आदेशानुसार दूसरा रचनात्मक काम अपने कन्धों पर ले रखा था, पर उनकी इच्छा यह भी थी कि कांग्रेस में भी उनका आधिपत्य रहे, लेकिन वहाँ उस जमाने में रचनात्मक की अपेक्षा ध्वंसात्मक काम करने वालों की ज्यादा जरूरत थी, इसलिए महात्मा जी शहर से बाहर एक सस्ते, लेकिन खुले मकान में अपनी संस्था ले गये थे और जब आन्दोलन मन्द हो जाता तो कांग्रेस की बैठकों में भी भाग लेते थे।

'गान्धी-इरविन-पैक्ट' के पहले, जब शहर के सब नेता जेल चले गये थे और उनका बाहर रहना लोगों को खल रहा था तो वे भी अपना रचनात्मक कार्य छोड़, तीन महीने के लिए जेल हो आये थे। चेतन जब भी उन्हें देखता था, उनका व्यक्तित्व उसे महात्मा गान्धी की बड़ी भद्दी पैरोडी लगता था।

वास्तव में चेतन ने तब तक दुनिया ज़्यादा नहीं देखी थी। देखी होती तो उसे आश्चर्य न होता। क्योंकि उन दिनों हर प्रान्त में कुछ लोग ऐसे थे, जो महात्मा गान्धी का अनुकरण करते थे। दिमाग़ तो वे लोग महात्मा गान्धी का कहाँ से लाते, उनके पास न महात्मा गान्धी की करुणा थी, न सहानुभूति, न जन-मानस की परख, न देश और समाज की समझ—उनका सारा ज़ोर सिर मुँड़ाने, अधनंगे रहने, मौन व्रत रखने, प्राकृतिक चिकित्सा करने, उबले सिंघाड़े या आलू या दही खाने, तकली चलाने अथवा अगले टूटे दाँत दिखाने आदि में लगता था।

चूँकि उस ज़माने में कांग्रेस के रचनात्मक कार्य भी सरकार की दृष्टि में सन्दिग्ध थे, इसलिए महात्मा बांशीराम के आश्रम में विधवाएँ ज़्यादा नहीं थी। सरस्वती देवी के अतिरिक्त केवल दो महिलाएँ और थीं। महात्मा बांशीराम का अधिकांश काम प्रचारात्मक था। इसी काम के लिए उन्होंने साप्ताहिक निकाल रखा था और उसे वे ऐसे चलाते थे कि सरकार उसे बन्द भी न करे और कांग्रेस के रचनात्मक उद्देश्यों का प्रचार भी होता रहे।

यह मकान, जिसमें महात्मा बांशीराम का दफ़्तर था, उन मकानों में से था, जिन्हें निम्न-मध्यवर्ग के लोग शहर के बाहर सस्ती ज़मीन ले कर बनाते हैं, लेकिन पूरा नहीं कर पाते कि उनकी पूँजी चुक जाती है। ऐसी सीढ़ियों से चढ़ कर, जिनकी पैंटिंग जाने कब की उखड़ चुकी थी, हुनर साहब ने उन्हें बायीं ओर साप्ताहिक के दफ़्तर में बैठने को कहा और स्वयं दायीं ओर छत पर गये, जिसके साथ दो कमरों में महात्मा जी निवास करते थे। निचली मंज़िल के कमरों में महात्मा जी का आश्रम था, जिसमें रचनात्मक कार्य होते थे—एक पाठशाला थी, एक करघा लगा था, चर्खे आदि थे, जहाँ विधवाओं को स्वतन्त्रता से जीवन-निर्वाह करने की शिक्षा

दी जाती थी।

जिस कमरे में रणवीर और निश्तर के साथ चेतन गया, वह काफ़ी खुला था। एक ओर मेज़-कुर्सी लगी थी। मेज़ पर साप्ताहिक की उस महीने की फ़ाइल रखी थी। तीनों दीवारों के साथ ज़मीन पर साप्ताहिक के अनबिके अंक ढेरियों में लगे हुए थे। सामने एक बेंच पड़ी थी। सभी चीज़ों पर धूल की एक हल्की-सी परत चढ़ी थी।

चेतन जा कर बेंच पर बैठ गया। तभी सामने की छत पर हुनर साहब कमरे से मुँह लटकाये निकले, पर चेतन को देख कर चेहरे पर सायास मुस्कान ले आये। आ कर उन्होंने बताया कि महात्मा जी मौन व्रत से हैं और तकली चला रहे हैं।

"तो ?"

"बहन सरस्वती देवी कहती हैं कि आपको कुछ देर इन्तजार करना होगा।" हुनर साहब ने सफ़ाई दी, "असल में महात्मा बांशीराम सिर्फ़ तकली ही नहीं चलाते, इसी बीच वो अपनी सारी समस्याओं का हल भी सोचते हैं। उनके चिन्तन में ख़लल नहीं डाला जा सकता।" और हुनर साहब हँसे, "मैं भूल ही गया कि सोमवार को उनका मौन व्रत होता है। वो तकली चला रहे हैं और बात तभी हो सकती है, जब उनका तकली चलाने का प्रोग्राम ख़त्म हो जाय।"

"अभी कितनी देर लगेगी ?" चेतन ने कहा, "देर हो तो मैं चलूँ।"

"नहीं, नहीं, रुको, अभी पन्द्रह मिनट में वो ख़ाली हो जायँगे। बहन सरस्वती देवी ने कहा है कि उन्हें पौन-एक घण्टा तकली चलाते हो गया है और वे घड़ी देख कर घण्टा भर तकली चलाते हैं। बस वो ख़ाली हो जायँ तो उनसे मिल कर चलेंगे, 'विधवा-सहायक' के सिलसिले में तो बात करने मुझे फिर आना ही पड़ेगा। यहाँ से 'योगी' जी के चलेंगे। इधर उन्होंने योग में काफ़ी महारत हासिल कर ली है। वे समाधि लगाये हों और आप चुपचाप उनके पास बैठ जाइए तो अपने आप उनके विचारों का असर आप पर होने लगता है।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"यही तो योग का कमाल है।"

"किसी का प्रचार करना कोई आपसे सीखे।"

"नहीं प्रचार की बात नहीं, मुझ पर तो भाई उनका बड़ा असर है। इस अपने भाई के मामले में मैं बड़ा परेशान था, उनकी बातों से मुझे बड़ी शान्ति मिली। मैंने तो उनसे वादा किया है कि मैं उपनिषदों के सार को सीधी-सादी उर्दू नज़्म में जनता के सामने रखूंगा।"

और हुनर साहब रणवीर और निश्तर की ओर मुड़े। "देखो यार," उन्होंने कहा, "मैं 'विधवा सहायक' के ताज़ा इशू के लिए एक नज़्म लिखता हूँ, इतने में तुम लोग इन फ़ाइलों में से वो सारे परचे छाँट लो, जिनमें मेरी नज़्में या कहानियाँ या मज़मून छपे हैं।"

रणवीर और निश्तर आज्ञावान शिष्यों की तरह साप्ताहिक की फ़ाइलों पर पिल पड़े। चेतन ने वक्त काटने को मेज़ पर से पत्र की उस महीने की फ़ाइल उठा ली और हुनर साहब कुर्सी पर ही फसकड़ा मार कर बैठ गये और मेज पर रखे हुए साप्ताहिक के पैड पर नज़्म लिखने लगे।

चेतन पन्ने-पर-पन्ना पलटता चला गया, पर कहीं उसका मन न टिका। 'विधवा-सहायक', लाहौर के 'गुरू घण्टाल' या 'पारस' की तरह, ऐसा लोकप्रिय साप्ताहिक नही था, जिसे देख कर उस कार्निवाल की याद आये, जिसमें हर रुचि और हर तबियत के दर्शकों का मनोरंजन हो सके—जहाँ दसियों तरह के जुए का प्रबन्ध हो; चाय, कॉफ़ी और मादक द्रव्यों के पान की व्यवस्था हो; जादू के खेमे हों; मौत का कुआँ हो; छोटा-मोटा सरकस हो; पाँच सौ फ़ुट की ऊँचाई से कपड़ों में आग लगा कर पानी में कूदने वाला जाँबाज़ हो; और सब से बढ़ कर, जहाँ एक खेमे में हिमालय की कन्दरा से आने वाले साधु-महात्मा भी हों, जो श्रोताओं को ज़िन्दगी और मौत, सुख और दुख से ऊपर उठने का भेद बतायें!....'विधवा-सहायक' तो चेतन को गुरुकुल के वार्षिक अधिवेशन की याद दिलाता था, जिसमें हर तरफ़ सिर मुँडाये या तेल और कंघी की कृपा से मुक्त, झाड़-झंखाड़ बाल बढ़ाये, मोटी खादी के कपड़े पहने, गले में मैले यज्ञोपवीत लटकाये, नंगे पाँव, नंगे सिर ब्रह्मचारी घूमते दिखायी दें। जिधर नज़र उठायें, दीवारों

पर, खम्भों पर, वेद-वाक्य चस्पाँ नज़र आयें। सुनने को लगातार घिसे-पिटे उपदेश मिलें या ऐसे भजन, जिनके गायकों का कनसुरापन श्रवणों को घायल कर दे।....यह साप्ताहिक बाज़ार में तो बिकता नहीं था, कि उसे पाठकों की रुचि-अभिरुचि की परवाह होती। चन्दे पर चलता था। उसके ग्राहक बँधे-टके थे। ज़िले में जितनी कांग्रेस कमेटियाँ थीं, जितने रचनात्मक केन्द्र थे, सभी को वह ख़रीदना पड़ता था और उसमें ज़िले के सभी रचनात्मक केन्द्रों के कार्य की रिपोर्ट छपती थी, स्त्रियों और अछूतों की समस्याओं पर 'नवजीवन' में छपे महात्मा गान्धी के लेखों का उर्दू अनुवाद रहता था; महात्मा बांशीराम जी का सम्पादकीय होता था, और शेष वह सब होता था, जो हुनर साहब स्वयं या अपने शागिर्दों से लिखवाते थे—कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों को दृष्टि में रख कर!....दो अंक पलटते-पलटते चेतन की आँखें झपने लगीं। सुबह से वह घूम रहा था, और बाहर चाहे हवा चल रही हो, पर कमरे में बड़ी उमस थी। 'विधवा-सहायक' की फ़ाइल मुँह पर रखे, बेंच की पीठ से सिर लगाये, वह ऊँघ गया।

"लीजिए हो गयी!"

चेतन चौंका। हुनर साहब ने पैर फिर नीचे टिका लिये थे और वे पैड का काग़ज़ दोनों हाथों में लिये नज़्म पढ़ने को तैयार थे। उनकी आवाज़ सुन कर रणवीर और निश्तर उधर लपके।

"एक बेवा के जज़्बात को देखिए, कितनी सादगी से मैंने चन्द सतरों में रख दिया है।" हुनर साहब ने कहा और कविता पढ़ने लगे। चेतन भी चुस्त हो कर बैठ गया।

"ज़िन्दगी इज़तराब[1] है जैसे
इक मुसलसल अज़ाब[2] है जैसे
जिसकी हर सतर में निहाँ[3] नाले[4]
हसरत-ए-ग़म का बाब[5] है जैसे।"

"वाह-वा!" रणवीर की आँखें प्रशंसा से चमक उठीं।

---

१. बेचैनी; २. लगातार यन्त्रणा; ३. छिपे हुए; ४. क्रन्दन; ५. परिच्छेद।

"क्या बात है!" निश्तर ने दाद दी, "मुकर्रर इरशाद।"[1]

हुनर साहब ने फिर यही बन्द पढ़ा और बोले :

"हर तरफ़ आफ़ताब[2] था इक दिन
हर तरफ़ माहताब[3] था इक दिन
नूरो-नग़मा[4] से ज़िन्दगी भरपूर
मीठा-मीठा-सा ख़्वाब था इक दिन
लेकिन अब जिसके वरक[5] फीके हैं
बेमज़ा-सी किताब है जैसे
जिसका हर बाब एक सहरा है
जिसको पढ़ना इताब[6] है जैसे"

"वाह्-वा....वाह्-वा !"

रणवीर और निश्तर झूम उठे। "कैसे चन्द अलफ़ाज़ में बेवा की ज़िन्दगी की वीरानी का नक्शा खींच दिया है आपने !" निश्तर ने दाद दी।

हुनर साहब की बाछें खिल गयीं और वे बताने लगे कि किस तरह मेज़ पर बैठने से पहले उनका दिमाग़ एकदम ख़ाली था। वे मेज़ पर बैठे, उन्होंने काग़ज उठाया कि 'बादल से बँधे आते हैं मज़मूं मेरे आगे' वाली कैफ़ियत हो गयी।

और चेतन सोचने लगा—क्या इन्होंने यह नज़्म सचमुच अभी लिखी है, या किसी उस्ताद की रचना में फेर-बदल करके उसे इस मौके के लिए मौज़ूं बना लिया है। क्षण भर वह चुप-चाप उन्हें देखता रहा—लेकिन उसने स्वयं कई बार उन्हें मिनटों में पूरी ग़ज़ल या नज़्म कहते देखा था। 'यह आदमी क्यों लाहौर नहीं जाता,' उसने सोचा, 'इसकी तो वहाँ ख़ासी इज़्ज़त थी और दैनिक-पत्रों के सण्डे-एडीशनों में जैसी समसामयिक समस्याओं पर नज़्में लिखने की ज़रूरत पड़ती है, वह तो सब इसके बायें हाथ का खेल है, फिर 'विधवा-सहायक-सभा' के इस मुख-पत्र अथवा

१. फिर से कहिए; २. सूरज; ३. चांद; ४. ज्योति और संगीत; ५. पृष्ठ; ६. विपत्ति।

निश्तर के दो-वरके[1] 'सदाकत' में लिख कर इसे कौन-सा सुख मिलता है ?'....और उसने पूछा :

"क्यों हुनर साहब, आप लाहौर क्यों वापस नहीं जाते, यहाँ तो आप वीराने ही में अपनी प्रतिभा के फूल खिला रहे हैं।"

"भाई, मैं पिता जी के मरने पर एक महीने की छुट्टी ले कर घर आया था, फिर हालात कुछ ऐसे बदले कि घर की ज़िम्मेदारी सँभालनी पड़ी और मैं वापस नहीं जा सका।"

"लेकिन आप क्या गाँव में दुकान पर बैठते हैं ?"

"दुकान पर बैठना हम मलंगों के बस की बात कहाँ ?" वे हँसे, "उसके अलावा भाइयों की जो मदद हो सकती है, करता हूँ। अभी यह जो मुकदमा कचहरी में चल रहा है, इसे मेरे सिवा कौन देख सकता है ? लाहौर की याद आती तो है, लेकिन ऐ बसा आरज़ू कि ख़ाक शुदः।[2]"

और उन्होंने लम्बी साँस ली।

"मगर आप यहाँ के पत्रों में लिखने की बजाय लाहौर के अख़बारों में भी तो लिख सकते हैं।"

"विधवा-सहायक में लिखना तो मैं देश-सेवा के काम में अपना हिस्सा अदा करना समझता हूँ," उन्होंने कहा, "रहे लाहौर के अख़बार, तो जहाँ-जहाँ मैं लिखता था, वहाँ 'दोज़खी' जमा हुआ है और 'दोज़खी' से तुम जानते हो मेरी कैसी लगती है। दरअसल लाहौर में जा कर मैंने जिस तरह उन लोगों का नातिक़ा बन्द किया था, उससे वो बिलबिला उठे थे और उन्होंने मेरे ख़िलाफ़ वो मज़मून लिखा था।"

ये 'दोज़खी' लाहौर के एक प्रसिद्ध शायर थे, जो पत्र-पत्रिकाओं में (रोज़ी कमाने के लिए) छद्म नाम से व्यंग्य-कालम तथा व्यंग्य-कविताएँ लिखते थे। एक बार उन्होंने हुनर साहब की एक कविता को ले कर यह सिद्ध करते हुए कि उस कविता को लिखने में उन्होंने चार कवियों की उसी

१. दो पृष्ठों का साप्ताहिक या दैनिक।

२. उन आरज़ुओं को क्या कहें, जो ख़ाक हो गयीं !

ज़मीन में लिखी हुई ग़ज़लों पर डाका डाला है, उनका बेहद मज़ाक उड़ाया था। हुनर साहब ने उसका उत्तर (अपने जाने मुँह-तोड़) दिया था, पर बात नहीं बनी थी और अखबारी हलकों में उनकी पीठ-पीछे लोग उन्हें चोर कवि ही समझते थे। यदि सचमुच उनके पास ऊँचे दर्जे की मौलिक प्रतिभा होती तो वे अनवरत श्रम से नयी-से-नयी कविताएँ दे कर अपने विरुद्ध उस प्रतिवाद का घेरा तोड़ देते, लेकिन मौलिक लिखने के लिए जो श्रम दरकार था, वह उनके पास नहीं था। सस्ती ख्याति पाने की इच्छा और एक मिनट के नोटिस पर ग़ज़ल या नज़्म लिख सकने की प्रतिभा, जो दैनिक उर्दू पत्रों के 'अपने विशेष कवि' के लिए आवश्यक है, उनके पास प्रचुर मात्रा में थी। उन्होंने मीर, सौदा, ग़ालिब, मोमिन, दाग़, आतिश, असग़र, फ़ानी, जिगर—सभी शायरों के दीवान पढ़ रखे थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। एक ही ज़मीन पर लिखी हुई विभिन्न उस्तादों की ग़ज़लें उन्हें कण्ठस्थ थीं और जब उन्हें किसी समसामयिक समस्या पर कुछ लिखना होता (और उन दिनों विरोधी पत्रों के विशेष शायरों और व्यंग्य-लेखकों में नित्य नोक-झोंक चलती, जिससे पाठकों का खासा मनोरंजन होता) तो वे अजाने भी उन ग़ज़लों का उपयोग कर लिया करते थे—रदीफ़ या काफ़िया बदल कर या कुछ शब्दों का हेर-फेर करके ! लेकिन हर दूसरे-तीसरे इस तरह ग़ज़लें और नज़्में लिखने और उनकी दाद पाने के कारण उन्हें मौलिक लिखने का अभ्यास न रहा था। हुनर साहब की स्थिति ऐसे चित्रकार की-सी थी, जो मौलिक चित्र बनाते-बनाते रोज़ी के लिए कमर्शियल आर्ट की शरण ले और बीसियों देशी और विदेशी पत्र-पत्रिकाओं की सहायता से विज्ञापन-दाताओं के लिए नित-नये डिज़ाइन बनाये और फिर जब कोई ब्योरा अथवा रंग-विधान अथवा आधारभूत विचार उसके अपने चित्रों में प्रतिबिम्बित हो जाय तो वह उसे सर्वथा मौलिक मान कर आत्मवंचना का शिकार होता रहे।

वहीं बैठे-बैठे चेतन ने एक अव्यक्त उपेक्षा और दया से हुनर साहब की ओर देखा—'इस आदमी के भाग्य में साहित्य में अपनी कला की छाप छोड़ना नहीं लिखा,' उसने सोचा, 'यह इन्हीं छोटे-मोटे पत्रों में लिख कर

और निश्तर तथा रणवीर जैसे छुटभइये शागिर्दों से अपनी रचनाओं की दाद पा कर अपने अहं को सन्तोष देता रहेगा। महान साहित्यिक बनना इसके भाग्य में नहीं, और उसने मन-ही-मन तय किया कि चाहे उसे अच्छी कविता अथवा कहानी लिखने में वर्षों लग जायँ (वह उस समय तक अपनी रचनाओं से सन्तुष्ट नहीं था) पर वह लिखेगा मौलिक। दूसरों की अनुभूतियों अथवा विचारों को चुराने के बदले अपनी ही अनुभूतियों को व्यक्त करेगा, दूसरों की दौलत पर डाका नहीं डालेगा।

•

हुनर साहब बड़े जोश-ख़रोश से वह कविता सुना रहे थे, जिससे उन्होंने 'दोज़ख़ी' का मुँह बन्द कर दिया था कि सहसा बहन सरस्वती देवी ने आ कर बताया कि महात्मा जी ख़ाली हैं और उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बहन सरस्वती देवी जब अपने मोटे-मुटल्ले शरीर, गोल-मटोल मुँह, और ऊपर की किंचित बाहर को निकली हुई दन्त-पंक्ति के साथ अचानक आ खड़ी हुई तो चेतन अपने ही विचारों में ग़र्क था। सहसा चौंक कर वह क्षण भर निर्निमेष उनकी ओर देखता रह गया। उस 'मूढ़' को इस तरह अपनी ओर मटर-मटर तकते पा कर और अप्रकृतिस्थ हो, उन्होंने सिर का पल्लू ज़रा माथे पर खींचा, तेवर चढ़ा लिये और मुड़ कर चप्पल फटफटाती वापस चली गयीं।

तब हुनर साहब उठे और उन्होंने प्रस्ताव किया कि महात्मा बांशीराम जी से मिल आया जाय। तब आगे-आगे वे और पीछे-पीछे उनके चेले महात्मा जी के कक्ष की ओर बढ़े। चौखट के अन्दर ही बहन सरस्वती देवी उनके स्वागतार्थ खड़ी थीं।

यह कमरा, जिसमें वे लोग दाख़िल हुए, पहले कमरे से भी ज़्यादा अनढका था। वहाँ तो मेज़-कुर्सी अथवा बेंच थी, यहाँ वह भी नदारद थी। दीवारों पर कहीं कोई तस्वीर या कैलेण्डर न था। दीवारों की सफ़ेदी कई जगह से उड़ चुकी थी और नंगी ईंटें, जिनकी पैंटिंग न जाने बनते ही उखड़ गयी थी, आने वालों पर कुछ अजीब-सी वितृष्णा से मुस्करा रही थीं। कमरे के मध्य, दायीं दीवार के साथ एक चटाई बिछी थी, जिस पर

महात्मा बांशीराम जी बैठे थे। कुहनी उन्होंने तकिये पर टिका रखी थी, पाँव सिकोड़ कर, बिलकुल महात्मा गान्धी की मुद्रा में, वे तख़्ती घुटनों पर रखे कुछ लिख रहे थे।

उन लोगों ने उन्हें 'नमस्कार' किया, जिसके उत्तर में महात्मा जी ने अपने टूटे दाँत दिखा दिये और उन्हें बैठने का संकेत किया। बहन सरस्वती देवी ने उनके लिए महात्मा जी के सामने एक चटाई बिछा दी थी, जिस पर चारों बैठ गये थे, हालाँकि खुल कर केवल दो ही उस पर बैठ सकते थे। बहन सरस्वती देवी दरवाज़े में रखे पीढ़े पर बैठी चुपचाप तकली चलाने लगीं।

चेतन और निश्तर महात्मा जी से ज़रा दूरी पर थे। रणवीर हुनर साहब के साथ लगा बैठा था। "यार तुम लोग कहाँ ले आये बोर करने के लिए?" चेतन ने किसी तरह चटाई के किनारे निश्तर से सट कर बैठते हुए उसके कान में कहा।

यद्यपि उसने यह बात निश्तर के कान में कही थी, लेकिन हुनर साहब ने सुन ली, और मुड़ कर माथे के तेवर चढ़ाते हुए उन्हें इशारे से डाँटा।

महात्मा बांशीराम ने हाथ के इशारे से पूछा कि ये क्या कहते हैं?

"चेतन जी कह रहे हैं," हुनर साहब ने दाँत निपोरते हुए कहा, "कि आप इस तरह बैठे हुए बिलकुल महात्मा गान्धी लगते हैं।"

और उन्होंने चेतन की ओर मुड़ कर ज़रा-सी आँख दबा दी। चेतन का जी चाहा—ज़ोर से ठहाका मार दे। बड़ी मुश्किल से उसने अपने-आपको रोका।

महात्मा जी ने इस पर फिर अपने टूटे दाँत दिखा दिये और उँगली को होंटों पर रख कर सोचने की मुद्रा बना, तख़्ती पर लगे पैड का पृष्ठ पलट कर लिखा—'मैं तो उनकी ख़ाके-पा[1] का मुकाबिला भी नहीं कर सकता'—और पैड के ऊपर का काग़ज़ निकाल कर (जिस पर वे पहले ही से कुछ लिख रहे थे) तख़्ती हुनर साहब की ओर बढ़ा दी।

---

१. चरण-रज।

चेतन ने तनिक उचक कर हुनर साहब के कन्धे के ऊपर से तख़्ती पर लिखा हुआ वाक्य पढ़ा। उसका मन हुआ ज़ोर से कहे—यह बात आपने सोलहों आने सच लिखी है—लेकिन पूरे संयम के साथ उसने अपने-आपको इस उच्छृंखलता से रोका। वह बोरियत, जो इतनी देर से वह हुनर साहब की संगति में, महात्मा बांशीराम जी के तकली चलाना ख़त्म करने की प्रतीक्षा में, महसूस कर रहा था, उसे बार-बार उच्छृंखलता पर बाधित कर रही थी। लेकिन बरबस अपने ऊपर अधिकार प्राप्त कर, वह फिर उसी तरह बैठ गया और उसकी आँखें उसका भेद न खोल दें, इस अभिप्राय से उसने अपनी दृष्टि बहन सरस्वती देवी की तकली पर जमा दी।

हुनर साहब महात्मा बांशीराम जी का उत्तर पढ़ कर प्रशंसा से मुस्कराये—"यह तो आपकी कसर-नफ़्सी[1] है," उन्होंने कहा, "लोग यों ही तो आपको 'दोआबे का गान्धी' नहीं कहते।"

इस पर महात्मा जी ने फिर तख़्ती को उनके हाथ से ले लिया और उस पर एक लम्बा वक्तव्य लिखा कि किस प्रकार वे लोग महात्मा जी के अकिंचन सेवक हैं—सूरज के गिर्द घूमने वाले टिमटिमाते सितारे। महात्मा गान्धी सामने हों तो शायद वे लोग दिखायी भी न दें। उनकी अनुपस्थिति ही में वे चमकते हैं और यथासम्भव अपनी टिम-टिम आभा से अँधेरे में रोशनी दिखाने का प्रयास करते हैं। किस तरह महात्मा गान्धी के आदेश पर उन्होंने अपने प्रान्त की विधवाओं की स्थिति सुधारने का काम अपने कन्धों पर लिया है और इसी काम में अपना जीवन लगा देने का निश्चय किया है। यदि वे अपने प्रान्त की विधवाओं और पथभ्रष्ट नारियों को कुछ भी उठा सकें तो वे अपने-आपको धन्य मानेंगे....आदि....आदि....

और तख़्ती हुनर साहब को दे कर उन्होंने उँगली फिर होंटों पर रख ली।

हुनर साहब ने पढ़ कर बाछें खिलाते हुए उनकी सेवा और त्याग की

---

१. विनम्रता।

बड़ी प्रशंसा की और कहा कि वे तो उनकी जीवनी लिखने की सोच रहे हैं, हिन्दुस्तान को यदि अपने गान्धी पर गर्व है तो दोआबा को अपने 'गान्धी' पर कम गर्व नहीं।

चेतन बोर हो रहा था, 'जाने ये कितना मक्खन यहाँ खर्च करेंगे ?' उसने मन-ही-मन कहा, 'शायद ये 'विधवा-सहायक' का सम्पादन करने के लिए महात्मा जी से कुछ पाते भी हैं, लेकिन ये मुझे क्यों साथ ले आये हैं'....और वह उठा।

हुनर साहब ने उसे आस्तीन थाम कर बैठा लिया कि अभी चलते हैं और अपना वक्तव्य जारी रखा कि आज़ादी की लड़ाई केवल 'स्वराज्य-मन्दिरों' को सुशोभित करने के बल पर ही नहीं लड़ी जा रही। चर्खे के हत्थे पर, तकली के सूत पर, खादी के करघों पर और नारियों की स्वतन्त्रता के क्षेत्र में भी लड़ी जा रही है और महात्मा बांशीराम ने जो काम अपने ज़िम्मे लिया है, वह जेल जाने से कम महत्वपूर्ण नहीं।

और यों महात्मा जी को प्रसन्न करके हुनर साहब ने कहा कि वे ताजा अंक के लिए सामग्री के सम्बन्ध में बात-चीत करने आये थे, पर भूल गये कि वे मौन व्रत से हैं, इसलिए कल आयेंगे। महात्मा जी को उन्होंने चेतन की प्रतिभा से अवगत कराया और बताया कि वह भी 'विधवा-सहायक' में नियमित रूप से लिखेगा।....और वे 'नमस्कार' कर के उठे।

लेकिन जैसे उन्हें तभी कुछ याद आ गया हो, वे फिर घुटनों के बल चटाई पर बैठ गये और उन्होंने कहा कि उन्हें साप्ताहिक के वे अंक चाहिएँ, जिनमें उनकी अपनी रचनाएँ छपी हैं।

महात्मा बांशीराम ने तख्ती पर लिखा कि वे पहले भी दो बार फ़ाइल ले जा चुके हैं।

तब हुनर साहब ने कहा कि उन्हीं के बल पर उन्होंने 'विधवा-सहायक' के दो आजीवन-सदस्य बनाये हैं, और उन्होंने मन में प्रण किया है कि वे साप्ताहिक के सौ आजीवन सदस्य बनायेंगे। ये अंक वे लाला जालन्धरी मल जी 'योगी' के लिए ले जा रहे हैं और भगवान ने चाहा तो जल्द ही वे भी 'विधवा-सहायक' के आजीवन सदस्य बन जायँगे।

इस पर महात्मा बांशीराम जी ने दांत दिखाते हुए परम उदारता से उन्हें अंक ले जाने की आज्ञा दे दी और बहन सरस्वती देवी को बुला कर उन्हें लिख कर समझा दिया कि हुनर साहब को वे पिछले एक वर्ष की फ़ाइल ले जाने दें।

o

पन्द्रह मिनट बाद जब वे सीढ़ियों से उतरे तो निशतर और रणवीर 'विधवा-सहायक' के अंक उठाये हुए थे और हुनर साहब इस तरह खुश-खुश चले जा रहे थे, जैसे वे कारूँ का ख़ज़ाना ढो कर ले जा रहे हों।

तेइस

मण्डी बाज़ार में बेहद कीचड़ था। रामजीदास की मिल के ऊपर से ग्राने वाली पक्की सड़क पर उतनी ग्रावा-जाई न थी। वर्षा के बाद सड़क धुल-निखर कर चमकने लगी थी। 'विधवा-सहायक-सभा' का कार्यालय मण्डी बाजार से एक-डेढ़ फ़र्लांग उधर ही को था, इसलिए वहाँ तक पहुँचने में उन्हें कहीं भी कीचड़ के दर्शन न हुए थे। एक-डेढ़ फ़र्लांग बाद सड़क पर, यों कहें कि बाज़ार में, इतना कीचड़ हो सकता है, इसकी चेतन ने कल्पना भी न की थी। शिमले की चमचमाती सड़कों पर तीन महीने घूमने के बाद वह भूल ही गया था कि उसके शहर के गली-बाज़ारों में इतना कीचड़ होता है। बात वास्तव में यह थी कि मण्डी की सन्निकटता के कारण उस सड़क पर अचानक पहले एक ग्रोर, फिर दोनों ग्रोर दुकानें शुरू हो गयी थीं ग्रौर मण्डी के पीछे से शहर को जाने वाली सड़क जहाँ से बायीं ग्रोर को निकली थी, वहाँ से तो बाज़ार एकदम घना हो गया था, क्योंकि वहाँ न केवल मण्डी को ग्राने वाली बैलगाड़ियाँ ग्राती थीं, वरन दिन-रात शहर से स्टेशन ग्रौर स्टेशन से शहर को ग्राने-जाने वाले इक्के-ताँगे भी चलते थे! फिर हथगाड़ियाँ, खोंचे वाले, साइकिल-सवार, पैदल—इतनी ग्रामद-रफ़्त थी ग्रौर सड़क इतनी कटी-फटी थी कि ज़रा-भी पानी बरसता तो बाज़ार

बाज़ार न रहता, कीचड़ और दलदल बन जाता।

लेकिन हुनर साहब इस कीचड़ की ओर से एकदम निश्चिन्त थे। अपनी दिन भर की कारगुज़ारी पर वे इतने प्रसन्न थे कि कीचड़ उनके लिए हो कर भी नहीं था। उनकी चप्पल कहीं-कहीं कीचड़ के फँस जाती; छींटे उड़ कर उनकी धोती पर गुल-बूटे बना देते; आगे से आने वाला कोई व्यक्ति उन्हें उस सँकरी पगडण्डी से (जिसका कीचड़ पैदल चलने वालों के कारण सूख गया था और जिस पर एक-दूसरे के पीछे वे चले जा रहे थे) बाज़ार के पतले कीचड़ में पैर रखने को मजबूर कर देता; बाज़ार से गुज़रने वाला कोई ताँगा उन्हें किसी दुकान के तख़्ते पर चढ़ जाने को विवश कर देता, पर वे अजाने ही यह सब करते हुए, निरन्तर बतियाते चले जा रहे थे। इन बाधाओं के कारण यदि क्षण भर को उनकी बातों का क्रम टूट जाता तो उनसे पार होने पर फिर वे वहीं से उनका तार पकड़ लेते। रगर्वार और निश्तर 'विधवा-सहायक' की फ़ाइलें उठाये, हुनर साहब की बातों के उत्तर में 'हाँ, हूँ' करते अथवा बीच-बीच में अपनी बात का लुक़मा देते हुए उनके आगे-पीछे, लेकिन साथ-साथ चले जा रहे थे।

चेतन उन सबके पीछे, पतलून के दोनों पायँचों को दोनों हाथों में उठाये, बड़ी सावधानी से चल रहा था। यद्यपि सुबह से, पहले धूल-गर्द में और फिर आँधी-पानी में घूमते हुए, उसकी पतलून की क्रीज़ का सत्यानाश हो गया था और वह पूरी तरह पायजामा चाहे न बनी थी, पर पायजामे-जैसी दिखायी देने लगी थी, तो भी चेतन उसे बचाने का हर सम्भव प्रयास कर रहा था, क्योंकि उसके पास यही एक पतलून थी और उसे डर था कि उसे एक दिन और जालन्धर न रहना पड़ जाय। इस प्रयास में वह अपने साथियों से पीछे रह जाता था। हुनर साहब आगे बढ़ जाते, रुक कर उसके साथ आ मिलने की प्रतीक्षा करते, वह आ जाता तो फिर चल पड़ते।

अचानक सामने से आने वाले एक ताँगे की ज़द से बचने के लिए चेतन बायीं ओर की दुकान पर चढ़ गया। तभी उसकी नज़र बाज़ार के दूसरी ओर एक चौड़ी-सी दुकान पर लगे 'मण्डी सोडा वाटर फ़ैक्ट्री' के

बोर्ड पर गयी और उसकी आँखों में चाचा फ़कीरचन्द की सूरत कौंध गयी। बोर्ड से नज़रें हटा कर उसने थोड़ा नीचे निगाह डाली तो चाचा को दुकान के तख़्ते पर बायीं ओर एक स्टूल पर बैठे पाया। एक टाँग उनकी स्टूल पर थी और एक नीचे, और वे दुकान के बड़े-से किवाड़ से सिर टिकाये ऊँघ रहे थे।

चेतन को सहसा बड़े ज़ोर की प्यास लग आयी। ख़ालसा होटल में तन्दूरी पराँठे और मटर-पनीर खाने के बाद उसने पानी नहीं पिया था। महात्मा बांशीराम के यहाँ उसे एक बार पानी पीने का ख़याल भी आया था, पर कुछ बहन सरस्वती देवी और कुछ महात्मा बांशीराम जी को देख कर उसे पानी माँगने का साहस न हुआ था। जब ताँगा निकल गया तो वह सड़क के पानी और कीचड़ से यथासम्भव बचता, पतलून के पायँचे उठाये बाज़ार को काटता हुआ दूसरी ओर गया और दुकान के तख़्ते में लगी लकड़ी की चौथी सीढ़ी पर पाँव रखते हुए उसने ज़ोर से कहा—"चाचा जी नमस्ते।"

चाचा फ़कीरचन्द हड़बड़ा कर उठे—मँझला कद; दोहरा शरीर; उटंग पायजामा; दो दिन की बढ़ी दाढ़ी; सिर पर छोटे-छोटे खिचड़ी बाल; मोटे होंट और बायीं आँख में बड़ी-सी फूली। चेतन को देखते ही उनके चेहरे पर एक थकी-सी मुस्कान दौड़ गयी और वे बोले, "आओ, आओ बैठो, सोडा पियो।"

चेतन ने वहीं तख़्त पर खड़े-खड़े अपने साथियों पर निगाह डाली। अपनी बातों में मस्त हुनर साहब चले जा रहे थे। पहले उसने चाहा कि उन्हें आवाज़ दे दे, फिर यह सोच कर चुप रह गया कि सोडा पी कर वह उन्हें जा पकड़ेगा और उसने कहा, "ताज़ा सोडा पिलायें चाचा जी, तब बात है।"

"हाँ-हाँ ताज़ा पिलाते है, ताज़ा पिलाते हैं!"....उन्होंने कहा और नौकर को आवाज़ दी, "ओए फेरू! चल्ल ओए ढेकिया[1] ऐद्धर।"[2]

१. प्यार की पंजाबी गाली; २. इधर।

चाचा फ़कीरचन्द चेतन के पिता पण्डित शादीराम के अत्यन्त घनिष्ठ मित्रों में से थे और पण्डित जी के मित्र चार तरह के थे :

....पहली तरह के मित्र वे थे, जिन्हें चेतन की माँ उनके सच्चे मित्र मानती थी—उनमें चौधरी तेजपाल और चौधरी गुज्जरमल प्रमुख थे—दोनों लम्बे-ऊँचे, गोरे-चिट्टे, हृष्ट-पुष्ट थे। गुज्जरमल चौधरी तेजपाल की अपेक्षा ताकतवर थे, क्योंकि वे पहलवान थे। देवी तालाब पर उनका अखाड़ा था। बड़े बाज़ार में सर्राफ़े की दुकान थी। लेकिन दुकान पर आने से पहले और दुकान को बन्द करने के बाद वे दोनों वक्त अखाड़े जाते थे। चौधरी तेजपाल बजाज थे। वहीं चौरस्ती अटारी में उनकी कपड़े की दुकान थी। माँ ने उसे बताया था कि दोनों किसी ज़माने में ख़ूब पीते थे, पण्डित शादीराम की गुण्डा पार्टी के भी महत्वपूर्ण सदस्य थे।....''पर सभी इनकी तरह तो नहीं होते,'' चेतन की माँ ने एक दिन कहा था, ''शादी-ब्याह के बाद लोग घर-गिरस्ती सँभालते हैं।''

''क्यों माँ, क्या वे अब नहीं पीते ?'' चेतन ने पूछा था।

''चौधरी गुज्जरमल तो नहीं पीते, पर चौधरी तेजपाल सुनती हूँ, रात को खाना खाते वक्त एक पेग लेते हैं।'' माँ ने कहा था, ''तुम्हारे पिता ही कहते थे कि गुज्जर अब भी पीता है, डरपोक है, घर में छिप कर पीता है और चौधरी बना हुआ है।....पर सब इनकी तरह उमर भर तो घर-गँवाऊ नहीं बने रहते।''

चौधरी गुज्जरमल की एक बात चेतन को कभी न भूलती थी। एक दिन चेतन के पिता चेतन को साथ लिये बड़ा बाज़ार में गये कि उसे कोट का कपड़ा ख़रीद कर ले दें। कपड़ा ख़रीद कर वे दो मिनट गुज्जरमल से मिलने के लिए उनकी दुकान पर गये। छोटी-सी तिपाई के पीछे चौधरी साहब पूर्ववत बैठे, छोटी-सी लकड़ी पर लगी लाख में जड़े एक गहने पर कुन्दन कर रहे थे। उनकी बायीं ओर शीशे की अलमारी में कुछ सोने-चाँदी के गहने पड़े थे। मुट्ठी में ली हुई लकड़ी को एक ओर तिपाई पर रख कर गुज्जरमल ने सिर उठाया, ''आओ शादी, बैठो !''

चेतन के पिता बैठे नहीं। वहीं, दुकान के तख़्ते पर एक पैर टिका कर खड़े हो गये और उन्होंने बताया कि बंगा स्टेशन से दुसूआ को रिलीविंग के लिए जाते हुए वे एक रात के लिए जालन्धर रुक गये हैं; चेतन के लिए कपड़ा ख़रीदने आये थे, सोचा गुज्जरमल का हाल-चाल लेते चलें।

"अब तो तुम रिटायर होने वाले होगे?" गुज्जरमल ने पूछा।

"हाँ, मेरी सर्विस के पच्चीस साल तो दो साल बाद ख़त्म हो जायेंगे, पर मैं कोशिश में हूँ कि एक साल किसी तरह और निकल जाय।"

"रिटायर होने पर तो तुम्हें कुछ प्राविडेण्ट फ़ण्ड मिलेगा?"

"मिलेगा आठ-एक हज़ार रुपया, पर तीन-चार हज़ार तो कर्ज़ ही है।"

"मेरी सलाह मानो तो बाकी रुपये से शराब की दुकान कर लो।"

चेतन के पिता हैरत से उनके मुँह की ओर देखने लगे और कुछ न समझने के आलम में हँसे।

"और दुकान के बाहर बोर्ड लगा दो—'यह सब अपने लिए है, वेचने के लिए नहीं!'" और उन्होंने पंजाबी में कहा, "कोई शराब लैगा आये तों कह देओ—असां किसे नूं नई पीन देनी, सारी असाँ आप ही पी जानी ऐ।"

और चौधरी गुज्जरमल हँसे, उनकी छोटी-छोटी आँखों में चमक आ गयी।

चेतन के पिता बेतहाशा गालियाँ देने लगे कि साले तू कोई आदमी है, बीवी ने तुझे गदहा बना दिया है, और वे गालियाँ देते हुए चेतन को साथ ले कर चले आये थे। जूतों वाले चौक तक वे अपने मित्र को गालियाँ देते आये। लेकिन चेतन के कानों में रह-रह कर चाचा गुज्जरमल का वही वाक्य गूँजता रहा—'असाँ किसे नूं नई पीन देनी, सारी असाँ आप ही पी जानी ऐ'—और उसके सामने शराब की दुकान घूम गयी, जिसके बाहर बोर्ड लगा हुआ है, कि यहाँ शराब विकने के लिए नहीं और वह मन-ही-मन हँस दिया....रास्ते में पण्डित जी ने चेतन को बताया था कि गुज्जरमल उनका बड़ा प्यारा यार था। साथ में खेलता-खाता और पीता था। साले की शादी न होती थी। लँडूरा घूमता था। मैंने ही उसकी शादी करायी और मुझे ही छोड़ बैठा।

लेकिन चेतन की माँ कहती थी कि उनके सच्चे मित्र यही दोनों हैं। जब भी मौका मिलता, दोनों उन्हें सँभल कर चलने की सलाह देते थे; उनकी गालियाँ खाते थे, पर कभी न बुरा मानते थे, न गलत बात सुझाते थे और माँ पर कभी कोई मुसीबत पड़ती थी तो वह उन्हीं को बुलवाती थी और वे कोई बहाना किये बिना, चेतन के पिता की गालियों की परवा किये बिना, चले आते थे।

....दूसरी तरह के मित्र एकदम स्वार्थी थे। उनमें देसराज प्रमुख था। वह पण्डित शादीराम के मित्रों में सबसे कमीना था। अपना पैसा उन्हें कर्ज़ दे कर उनको शराब पिलाना, घेलुए में स्वयं पीना, जुआ खेलाना और जीत लेना और फिर उसी रुपये का उनसे ब्याज लेते रहना उसका नित्य का कर्म था। कभी-कभी चेतन के भाइयों का जी चाहा करता था कि वे मार-मार कर उसका सिर पिलपिला कर दें, पर चेतन की माँ उन्हें सदा इस 'पाप' से रोक देती थी।

....पण्डित दौलतराम, मुकन्दीलाल, बनारसीदास, आदि तीसरी तरह के ऐसे मित्र थे, जिन्हें पंजाबी में पिछलगुए कहते हैं। पण्डित जी जालन्धर आते तो वे भी मँडराने लगते—कोई उनका हुक्का ताज़ा कर रहा है, कोई उनके पैर दबा रहा है—जितने दिन पण्डित जी रहते, वे लोग खाते-पीते, फिर कभी उनकी सूरत भी दिखायी न देती; बल्कि पीठ पीछे वे सदा उन्हें गालियाँ देते; उनकी निन्दा करते; और उनका परिवार जिससे दुखी हो, उसका भरसक प्रयास करते।

....हरलाल और फ़कीरचन्द को चेतन और उसके भाई अपने पिता के मित्रों की चौथी श्रेणी में रखते। खिलाते-पिलाते पण्डित जी उन्हें भी कम न थे और पण्डित जी की कोई ही महफ़िल ऐसी होगी, जिसमें हरलाल या फ़कीरचन्द न हों, पर वे उनकी कभी निन्दा न करते और चौधरी तेजपाल और गुज्जरमल यदि न मिलें तो मुसीबत के वक्त माँ उन्हीं में से किसी को बुलाती थी। हरलाल को चूँकि दुकान देखनी होती, इसलिए वे एक-आध पेग ले कर चले जाते और दीवाली के तीन दिनों के अतिरिक्त कभी जुआ न खेलते। फ़कीरचन्द को भी यद्यपि अपनी फ़ैक्ट्री देखनी होती;

पर पण्डित जी जालन्धर आते तो स्टेशन से उतरते ही पहले उनकी फ़ैक्ट्री में जाते। उन्हें कितना भी काम क्यों न हो, वे उन्हें चार गालियाँ दे कर उठने का आदेश देते और फ़कीरचन्द सब काम नौकर पर छोड़ कर उनके साथ हो लेते और जितने दिन पण्डित जी जालन्धर में गुज़ारते, वे उनके साथ बने रहते ; उनके साथ पीते-खाते, बाज़ार शेखाँ जाते और उनके सब काम करते।

चेतन ने उन्हें कभी गालियाँ बकते या ऊँचे बोलते न सुना था। उनकी उमर चेतन के पिता के बराबर ही लगती थी, पर दो-एक साल ज़रूर छोटे होंगे, क्योंकि चेतन के बड़े भाई और उनकी देखा-देखी चेतन भी उन्हें 'चाचा' कह कर पुकारता था और चेतन के पिता उनसे छोटे भाई का-सा ही प्यार करते थे। यद्यपि उनकी सोडा वाटर की फ़ैक्ट्री थी, पर आँख में दोष होने से चालीस बरस तक उनकी शादी न हुई थी। फिर एक दिन अचानक, (चेतन के पिता उन दिनों दुसूआ के स्टेशन पर नियुक्त थे और चेतन छुट्टियों में वहाँ गया हुआ था) मालूम हुआ कि चाचा फ़कीरचन्द की शादी हो गयी है और उनकी बीवी वहाँ आ कर रहेगी और उसके बच्चा होने वाला है।....क्वार्टर में जो छोटी-सी लकड़ियों वाली कोठरी थी, वह चाची के लिए खाली करा दी गयी थी। कार्तिक के महीने में उसे बच्चा होना था। और कार्तिक में जन्मा बच्चा चूँकि शुभ नहीं माना जाता, जिस घर में जन्म लेता है, उस पर विपत्ति लाता है, इसलिए माँ चाहती थी, फ़कीरचन्द की बीवी को नौकरों के किसी क्वार्टर में रखा जाय, लेकिन चेतन के पिता ने माँ को डाँट दिया था और गालियाँ देते हुए कहा था कि क्या वे अपनी छोटी भावज को नौकरों के क्वार्टर में रखेंगे ? फ़कीरचन्द उन्हें भाइयों से भी अधिक प्यारा है। और आध घण्टा माँ को लेक्चर पिला कर उन्होंने आदेश दिया था कि जैसे वे कहते हैं, वैसे ही वह करे और सब प्रबन्ध कर दे।

चाचा फ़कीरचन्द अपनी बीवी को छोड़ कर चले गये थे और चेतन की माँ को घर के अलावा उसकी सेवा-शुश्रूषा का भार भी उठाना पड़ा था।

चेतन ने जब पहले दिन चाची को देखा तो देखता ही रह गया था।

वह इतनी सुन्दर थी कि उसके चेहरे पर आँखें न टिकती थीं—मँझला कद, छरहरा शरीर, लम्बे काले बाल, गालों में हल्के-हल्के गढ़े, मोतियों-सी दन्तावली, बड़ी-बड़ी नशीली आँखें, चौड़ा माथा। वह हँसती तो दोनों गालों में गढ़े बन जाते।—तब चेतन ने पूछा था कि माँ, इतनी सुन्दर पत्नी चाचा फ़कीरचन्द को इस उमर में कैसे मिल गयी ?

"इतनी सुन्दर न होती तो कुँवारी ही माँ बनने को न हो जाती ?" माँ ने उपेक्षा से कहा था, "जब इसके पिता को पता चला तो उन्हें किसी जरूरतमन्द की तलाश हुई, जिसके गले इसे मढ़ दें। तुम्हारे पिता को जाने किस ने ख़बर दी। इन्हें फ़कीरचन्द की याद आयी। सो इन्होंने चुपचाप उसे बुला कर शादी करा दी और शादी कराके सीधे यहाँ ले आये। बच्चा हो जायगा तो फिर जालन्धर में शादी का पता देंगे और ले जायेंगे।"

कार्तिक में बच्चा हुआ था, जो किसी अनाथालय में भेज दिया गया था और चाची दुल्हन बन कर जालन्धर चली गयी थी। चेतन की माँ का ख़याल था कि ऐसी फिर-निकलियाँ घर में कम ही टिकती हैं, पर चाची के विरुद्ध फिर किसी ने शिकायत नहीं सुनी। साल बाद चाचा के यहाँ एक बच्ची ने जन्म लिया, जो दुर्भाग्य से माँ पर न जा कर, पिता पर गयी; इतना ही शुक्र है कि उसकी आँख में फूली नहीं थी।

लेकिन माँ चाची को क्षमा न कर पायी थी—विशेषकर कार्तिक के महीने में उनके यहाँ आ डेरा जमाने के लिए! घर में जो भी नयी विपत्ति टूटती—पण्डित जी ज्यादा शराब पीते, या जुए में हार जाते, या बाजार शेख़ाँ में रुपया उड़ा आते, उसे माँ उसी कार्तिक में होने वाले बच्चे के सिर मढ़ देती।

चेतन जब भी कभी चाचा फ़कीरचन्द के घर जाता, चाची उसकी बड़ी आव-भगत करती। उसे वह हमेशा अच्छी लगती और चेतन की समझ में न आता कि कार्तिक में ही सही, उनके घर उसके बच्चा होने का उनके दुर्भाग्य से क्या सम्बन्ध है? उसके पिता तो पहले भी पीते थे, जुआ भी खेलते थे और बाजार शेख़ाँ भी जाते थे।

०

दूसरे बच्चे के बाद चाची बीमार पड़ गयी थी। चेतन एफ़० ए० में था, जब उसके पिता ने एक दिन माँ से कहा कि चलो इस बार तुम्हें हरिद्वार का स्नान करा लायें। और उन्होंने दस दिन की छुट्टी तथा पासों के लिए आवेदन-पत्र भेज दिया।

पण्डित जी ने प्रोग्राम बनाया था कि वे उनके साथ जा कर दस दिन में उन्हें छोड़ आयेंगे और वे लोग पूरा एक महीना हरिद्वार रह कर आयें। माँ यह सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई थी। एक बड़ा गहना गिरवी रख कर माँ ने तीर्थ-यात्रा का प्रोग्राम बनाया था। लेकिन ठीक चलने के समय माँ का सारा उल्लास हवा हो गया था, जब उसे पता चला था कि पण्डित जी चाचा फ़कीरचन्द और उनकी पत्नी को भी साथ ले जा रहे हैं।

तब चेतन को मालूम हुआ कि चाची सख्त बीमार है। उसे यक्ष्मा हो गया है। पण्डित जी को किसी से पता चला है कि कनखल में कोई वैद्य है, जिसके हाथ में जादू है और उन्होंने फ़कीरचन्द को परामर्श दिया है कि वह अपनी बीवी का वहाँ इलाज कराये। पण्डित जी ने बताया था कि उनकी भावज महीना भर उनके साथ ही रहेगी और चाचा उसकी देख-भाल करेंगे। पर माँ जानती थी कि सारा ख़र्च उसी को करना पड़ेगा, देख-भाल भी उसी को करनी पड़ेगी। और ज़रा-सी भी कमी रह गयी तो पण्डित जी ख़ून कर देने पर उतारू हो जायेंगे।

स्टेशन पर चेतन ने चाची को देखा था और उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आया था कि यह वही सुन्दर, स्वस्थ, परियों-ऐसी युवती है। उसका रंग एकदम काला पड़ गया था। हड्डियों की एक छोटी-सी ढेरी लगती थी। चाचा फ़कीरचन्द उसे गोद में बैठा कर लाये थे। वह उठ कर खड़ी न हो सकती थी। बैठे-बैठे घिसट कर चलती थी। छोटी-सी बच्ची लगती थी। उनको देख कर वह हँसी तो उसके मोतियों-से दाँत चमक उठे थे—और उसकी वह मुस्कान चेतन के हृदय पर सदा के लिए अंकित हो गयी थी—भयानक, दुखद और कातर!

गाड़ी से उतरते ही हरिद्वार में पण्डों ने उन्हें घेर लिया था। एक

पण्डे की बही पर उनके परदादा तक का नाम लिखा था। 'हर की पैड़ी' के निकट पण्डे का घर था। दो कमरों में चेतन की माँ, उसके भाई और पिता ठहरे थे और सामने ही एक कमरे में चाचा फ़क़ीरचन्द और चाची। पण्डित जी उसे कनखल के वैद्य को दिखा कर, दवा वग़ैरह का प्रबन्ध करके इस खोज में निकल गये थे कि शाम के शग़ल के लिए उन्हें कहीं से बोतल मिल जाय, पर हरिद्वार उनके लिए एकदम नया था। शराब कहाँ मिलती है, यह उन्हें मालूम न था और फिर तीर्थ-स्थान में किसी से उसका पता पूछना उन्हें ठीक न जँचता था। लेकिन पण्डित जी हार मानने वाले न थे। चाचा फ़क़ीरचन्द को ले कर वे जाने कहाँ चले गये थे कि एक रात घर नहीं आये। चाची को आँतों का कष्ट था। चेतन और उसके भाइयों को सुला कर रात को माँ स्वयं चाची के कमरे में सोयी थी और रात में उसे कई बार उठना पड़ा था। पण्डित जी और फ़क़ीरचन्द दूसरे दिन रात के करीब पूरी बस करके कहीं भीम गोडा की ओर से आये थे और उन्होंने माँ को सरगोशी में बताया था कि वे ऋषि-केश देखने गये थे, पर वापसी का प्रबन्ध नहीं हो सका, इसलिए रात वहीं रह गये थे। काली कमली वाले के दर्शन कर आये हैं।....लेकिन उन्होंने कागज़ में लिपटी हुई जो चीज़ माँ को सँभाल कर रखने के लिए दी, उससे चेतन को पता चल गया कि वे किस कमली वाले के दर्शन करने गये थे....

दूसरे दिन माँ ने उनको ऋषिकेश दिखा लाने के लिए कहा तो उन्होंने हामी भरी कि हाँ, आज ही चलेंगे, लेकिन वही कागज़ में लिपटी बोतल ले कर वे गये तो शाम से पहले उनका पता नहीं चला।

और जब दस दिन बाद वे वापस चले गये तो माँ ने सुख की साँस ली। रात-दिन उसे यही खयाल रहता था कि तीर्थ-स्थान में इस सब पाप-कर्म को भगवान क्षमा नहीं करेंगे। उसकी बड़ी इच्छा थी कि अब, जब वे इतनी दूर चल कर आये हैं तो एक बार हर की पैड़ी पर स्नान कर लें, लेकिन पण्डित जी को स्नान करने का अवकाश ही नहीं था। वे दस बजे उठते, जब माँ गंगा-स्नान कर, पूजा-पाठ से फ़ारिग़ हो चुकती

और उठ कर जब लस्सी का एक गिलास पीने जाते तो शाम से पहले उनकी सूरत दिखायी न देती। लेकिन इस सबके बावजूद वे उन दस दिनों में चाचा फ़कीरचन्द और उनकी पत्नी को कनखल के वैद्य के यहाँ ले जाते रहे और दवा-दारू का पूरा प्रबन्ध करके ही हरिद्वार से लौटे थे।

०

चाची जब हरिद्वार पहुँची थी तो चाचा फ़कीरचन्द उसे गोद में उठा कर गंगा-स्नान कराने ले गये थे, पर उसके बाद चेतन ने देखा कि वह बैठे-बैठे घिसट कर, मकान की सीढ़ियाँ उतर, बाज़ार का थोड़ा-सा हिस्सा पार-कर, हर की पैड़ी पर जाती है। वहीं सीढ़ियों पर स्नान करती है और कपड़े बदल, वहीं काफ़ी देर बैठ कर लौटती है। कंकाल-मात्र होने के बावजूद, वह पूरी तरह शृंगार करती। उसकी जीवनी-शक्ति देख कर चेतन चकित रह गया था। और जब चाचा फ़कीरचन्द महीने बाद वापस लौटे थे तो चाची का शरीर कुछ भर गया था और रंग भी गेहुँआ हो गया था।

छै महीने बाद जब चेतन ने उसे पहले की तरह हृष्ट-पुष्ट देखा तो उसे हैरत नहीं हुई।

०

'मण्डी सोडा वाटर फ़ैक्ट्री' में एक-दूसरे के पीछे तीन कमरे थे। सबसे पिछले में मशीन लगी थी, बीच के कमरे में दो बड़े पानी के टब पड़े थे, जिनमें से एक में ख़ाली और दूसरे में भरी बोतलें रखी थीं। एक अलमारी भी थी, जिसमें एसेंस की शीशियाँ और शर्बत की बोतलें थीं। बाहर के कमरे में दीवारों के साथ लकड़ी के रैक थे, जिनके दरम्यानी तख़्तों में बोतल के बराबर गोल टुकड़े कटे थे। भरी जाने के बाद बोतलें उनमें सजा दी जाती थीं। इसी कमरे में लकड़ी के एक तख़्त पर छोटा-सा डेस्क पड़ा था, जो काउण्टर का काम देता था।

चाचा फ़कीरचन्द ने अन्दर जा कर टब में पड़ी हुई एक ख़ाली बोतल उठा ली, और चेतन से, जो उनके पीछे-पीछे अन्दर चला गया था, पूछा कि वह कैसी पियेगा—केला, सन्तरा, माल्टा, ख़स या रोज़?

चेतन को उन दिनों गुलाब की भीनी-भीनी गन्ध और मीठा-मीठा ज़ायका बड़ा अच्छा लगता था। उसने कहा—"रोज़!"

तब चाचा फ़क़ीरचन्द ने बोतल में नाप कर कुछ शर्बत डाला, कुछ एसेंस और फिर उसे पिछले कमरे में जा कर मशीन में रख दिया। चेतन डरता-डरता मशीन के पास जा खड़ा हुआ....लड़कपन में उसे बोतलों में सोडा भरे जाते देखना बेहद पसन्द था। वह स्कूल से आते वक़्त भैरो बाज़ार में घण्टों बोतलें भरी जाते देखा करता था। उन दिनों चाचा फ़क़ीर चन्द और चेतन के मुहल्ले ही के खत्री, शन्नो चाची के देवर + पति, चाचा मुकन्दी लाल ने मिल कर वहाँ सोडे की मशीन लगायी थी। तब जालन्धर में सोडे की मशीन नयी-नयी आयी थी। रुपये का प्रबन्ध चेतन के पिता ने ही किया था और अपने इन दोनों मित्रों को साझीदारी में काम करने को कहा था।....चेतन किला मुहल्ला के प्रायमरी स्कूल से आते वक्त फ़ैक्ट्री के चबूतरे के निकट रुक कर बोतलों को भरी जाती देखा करता। लाला मुकन्दी लाल मशीन चलाते। उनके गोरे-गोरे अंग (धोती उनकी घुटनों के ऊपर और आस्तीनें कोहनियों पर चढ़ी होतीं) और श्रम के कारण लाल हो जाने वाला उनका गोरा मुख चेतन को बड़ा भला लगता। तभी जब एक दिन वह खड़ा बोतलें भरी जाती देख रहा था—एक बोतल फट गयी।....उस ज़माने में शीशे की गोली वाली बोतलों में सोडा भरा जाता था और चेतन के पिता बोतल के मुह में फँसी गोली पर अँगूठा रख कर दूसरे हाथ के एक ही मुक्के से बोतल खोल देने को भी बहादुरी का लक्षण मानते थे और उनकी महफ़िलों में एक ही बार में सोडे की बोतल खोल देने पर भी शर्तें लग जाती थीं और दो-चार रुपये इधर-से-उधर हो जाते थे। लेकिन चूँकि शीशे की गोली बिना बोतल टूटे बाहर नहीं आ सकती थी, इसलिए ज़रा-सी अतिरिक्त गैस भर जाने से ये बोतलें फट जाती थीं—विशेषकर गर्मियों के मौसम में—और बोतलें भरने का काम खासा संकटपूर्ण था....हालाँकि लाला मुकन्दी लाल मशीन का चक्का घुमा रहे थे और चेतन नीचे बाज़ार में खड़ा था, लेकिन बोतल फटी तो शीशे का एक टुकड़ा लाला मुकन्दी लाल के गाल को चीर गया और बड़ा-सा घाव

हो गया और बोतल की गोली चेतन के माथे पर आ लगी और वहाँ गुमटा उभर आया....लाला मुकन्दी लाल ने उस दिन से मशीन की हत्थी घुमाना छोड़ दिया और चेतन ने मशीन चलते देखना ।....वास्तव में बोतलें जब फटती थीं तो चेतन और उसके साथी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न होते थे—एक तो बड़े जोर का पटाख़ा होता, दूसरे शीशे की गोली, जो फ़ैक्ट्री के किसी काम न आती, उन्हें खेलने को मिल जाती । लेकिन मशीन से इतनी दूर खड़े रहने पर भी बोतल की गोली से माथा फट सकता है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी और उस दिन के बाद वह सदा मशीन के पास जाते डरता था ।....

फेरू मशीन की हत्थी चलाने लगा । लड़कपन की घटना याद आ जाने और बोतल के फट जाने के भय से चेतन का दिल धड़कने लगा । लेकिन क्षण भर मशीन से बोतल में गैस भरने की ज़ोरदार 'शों' की आवाज़ हुई, पानी भर गया और चाचा फ़कीरचन्द ने मशीन घुमा कर बोतल निकाल ली । तब उन्होंने फेरू को आदेश दिया कि भाग कर एक पैसे की बर्फ़ ले आये । और स्वयं कुछ और बोतलें भर कर उसे दिखायीं ।

बर्फ़ आ गयी तो चाचा ने बोतल खोली और गिलास में उँडेल कर उसे चेतन को दिया । सोडे के नन्हें कण गैस के साथ उड़ कर चेतन के नथुनों में समा गये । उनका तीखापन और सुगन्ध चेतन को बड़ी अच्छी लगी । लेकिन उसे ज़ोर की छींक आ गयी और उसके हाथ का गिलास गिरते-गिरते बचा । तब गिलास को हाथ में लिये हुए वह बाहर आया । उसकी नज़र सामने गयी और वह अचकचा गया—बाज़ार में हुनर साहब, रणवीर और निश्तर सीढ़ी के बराबर खड़े थे ।

चौबीस

सफ़ाई देते हुए किंचित हँस कर चेतन ने कहा, "मुझे ज़रा प्यास लग आयी थी ! चाचा जी की फैक्ट्री के बोर्ड पर नज़र पड़ गयी तो...."

"प्यास तो हमें भी लगी है।" बात काटते हुए, उसी तरह हँस कर हुनर साहब ने कहा।

"आइए, आइए ! ऊपर चढ़ आइए !" चाचा फ़कीरचन्द सोत्साह बोले। फिर चेतन की ओर पलट कर उन्होंने कहा "अपने दोस्तों से कहो, ऊपर आ जायँ !"

और बिना उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये, उन्होंने फेरू को आवाज़ दी "चल्ल ओए ढकिया, दो पैसे दी बर्फ़ होर लै आ, ते रोज़ दियाँ तिन्न बोतलाँ खोल के एहना नूँ पिला।"

हुनर साहब ऊपर चढ़ आये थे। उन्होंने कहा, "नहीं नहीं, हम तो यों ही मज़ाक कर रहे थे, आप तकल्लुफ़ न कीजिए।"

लेकिन यह कहने से पहले उन्होंने कनखियों से देख लिया कि फेरू बर्फ़ लेने चला गया है।

"नहीं नहीं, तकल्लुफ़ की कोई बात नहीं !" चाचा फ़कीरचन्द ने कहा, "इसे अपनी ही दुकान समझिए।"

तब सहसा चेतन को अपने कर्तव्य का भान हो आया। उसने हुनर साहब को चाचा फ़कीरचन्द का और चाचा को अपने मित्रों का परिचय दिया।

"बाऊ होता (चेतन के पिता को उनके मित्र बाऊ (बाबू) शादी-राम या केवल बाऊ कहते थे) तो आपके शे'र सुनता," चाचा फ़कीर-चन्द ने चेतन के पिता की रंगीली तबियत का ज़िक्र करते हुए कहा, "उसे गाने-बजाने और शे'र-शायरी का शौक है। मुझे तो कुछ वैसी समझ नहीं।"

"वह शे'र ही क्या, जो आम आदमी की समझ में न आये।" हुनर साहब ने कहा, "सादगी और पुरकारी[1] मैं शे'र की सबसे बड़ी ख़ूबी मानता हूँ। 'कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई' वाले शे'र हम नहीं कहते।"

और स्टूल खिसका कर उस पर स्वयं बैठते और बाकी सबको तख़्त पर बैठने के लिए कहते हुए हुनर साहब ने चाचा फ़कीरचन्द को बताया कि किस प्रकार उन्होंने गीता के कठिन श्लोकों को आसान ज़बान में रख दिया है—इस तरह कि पढ़े-लिखे और अनपढ़ समान रूप से उनमें रस ले सकें और गीता के गहन दर्शन को हृदयंगम कर सकें—"मैं आपको कुछ बन्द सुनाता हूँ," उन्होंने सहसा कहा, "देखिए आप समझते हैं कि नहीं।"

और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये उन्होंने गीता का वही अनुवाद सुनाया, जो न जाने वे सुबह से कितनों को सुना चुके थे। तीसरी बार तो चेतन ही सुन रहा था।

चाचा फ़कीरचन्द के पल्ले कुछ पड़ा या नहीं, यह तो चेतन उनके अनासक्त भाव से नहीं जान सका, पर वे ध्यान से सुनते रहे और उन्होंने प्रशंसा भी की। इसी बीच फेरू बर्फ़ ले आया।

"चाचा जी, आपने फ़ैक्ट्री खोली है, तो मन-दो-मन बर्फ़ मँगा कर क्यों नहीं रखते?" चेतन ने कहा, "क्या आप केवल दुकानदारों ही को बोतलें सप्लाई करते हैं, फुटकर ग्राहकों को नहीं देते?"

१. सादगी में ख़ूबी पैदा हो तो उसे पुरकारी कहते हैं।

"एक पूरी सिल सुबह लेता हूँ बेटा," चाचा ने कहा, "आज बारह बजे तक ऐसा रश रहा कि सब ख़त्म हो गयी। अब शाम को फिर आयेगी।"

फेरू ने इस बीच बर्फ़ धो-कूट कर साफ़ गिलासों में डाली और तीन बोतलें खोल कर एक-एक गिलास उन तीनों के हाथों में थमा दिया।

रोज़ का गुलाबी पानी और भीनी-भीनी गन्ध ! हाथ में गिलास आते ही हुनर साहब झूम गये और उन्होंने सोडे के गुलाबी पानी को लक्ष्य कर शे'र पढ़ा :

"शेख़ जी, सोडा है दुख़्ते - रज़[1] नहीं
आप क्यों बेकार ही घबरा गये"

और यह शे'र चाचा फ़कीरचन्द की समझ में आ गया और रणवीर तथा निश्तर के साथ उन्होंने भी दाद दी।

हुनर साहब ने प्रसन्न हो कर कहा, "एक दूसरा शे'र सुनिए !

इश्क़ है क्या उबाल सोडे का
अभी आया अभी उतर भी गया"

"वाह........वा !" चाचा फ़कीरचन्द खुश हो गये। हुनर साहब ने गिलास खाली किया तो उन्होंने फेरू को चार बोतलें विमटो की खोलने का आदेश दिया।

विमटो का ब्राण्ड उस ज़माने में नया-नया निकला था। साधारण लेमोनेड की बोतल यदि छै पैसे में आती थी तो विमटो की छै आने में। कोका कोला की तरह उसका ज़ायका था। चेतन को संकोच हुआ। उसने कहा, "नहीं चाचा जी, मेरे लिए न खोलिएगा।"

उसका ख़याल था—हुनर साहब उसका इशारा समझ जायँगे। लेकिन वे चुप बने रहे। विमटो के नाम ही से उनके चेहरे पर चमक आ गयी थी।

"एक ही बोतल से तुम्हारी प्यास मिट गयी।" चाचा फ़कीरचन्द

१. अंगूर की बेटी = शराब।

ने कहा, "तुम्हारे पिता तो एक बार आठ आदमियों के लिए बनी हुई लस्सी की बटलोई अकेले पी गये थे।"

"अकेले !" हुनर साहब चहके, "कितनी लस्सी थी ?"

"सोलह-सत्रह गिलास होंगे !" चाचा फ़कीरचन्द ने कहा और वे किस्सा सुनाने लगे।

"एक बार हम लोग कसरत करके लौटे। गर्मियों के दिन थे। सख़्त प्यास लगी थी। मैंने शक्कर घोल कर डेढ़ सेर दूध की लस्सी छोटी बटलोई में बनायी।

"'यार पानी और डालो, सख़्त प्यास लगी है।' बाऊ ने कहा।

"'पानी काफ़ी है।' मैंने उत्तर दिया।

"'साले यह सारा तो मैं अकेला पी जाऊँ !' बाऊ गरजा।

"हम आठ मित्र थे। मैंने फ़ी कस (प्रति व्यक्ति के हिसाब से) दो गिलास गिन कर सोलह डाले थे और एक ऊपर से डाल दिया था। मैंने खीझ कर कहा, 'तुम अकेले पी जाओ तो मैं तुम्हे एक रुपया इनाम दूँ।'

"और शादी ने यह भी नहीं पूछा कि साले तू एक रुपया लायेगा कहाँ से ? बटलोई उठा कर मुँह से लगा ली और उस समय तक उसे नहीं छोड़ा, जब तक उसकी अन्तिम बूँद कण्ठ में नहीं उँडेल ली।"

चेतन को यद्यपि अपने पिता से वैसा प्यार न था, पर यह बात सुन कर उसका सीना दुगुना हो गया और उसने बड़े गर्व से अपने साथियों की ओर देखा।

फेरू ने तब तक विमटो की बोतलें खोल कर गिलासों में भर दी थीं। चाचा फ़कीरचन्द ने सब से पहला गिलास भर कर हुनर साहब को पेश किया।

गिलास लेते हुए हुनर साहब बोले, "एक शे'र याद आया है। है तो मज़ाहिया (हास्य रस का) पर लगता है, जैसे पण्डित जी के लिए ही कहा गया है :

एक साग़र से मेरी प्यास नहीं बुझ सकती
साक़िया आज पिला ह्विस्की का मटका मुझको"

और यह कहते हुए मस्ती से उन्होंने विमटो ही को ह्विस्की समझ कर मुँह से लगा लिया।

चाचा फ़कीरचन्द की सारी उदासी दूर हो गयी। ह्विस्की के नाम ही से उनके चेहरे पर सरूर खेलने लगा—"वाह—वा क्या शे'र कहा है! बाऊ शादीराम यहाँ होता तो इसकी दाद देता। सचमुच उसके लिए मटका भी कम है।"

और चाचा फ़कीरचन्द किस्सा सुनाने लगे, जब पण्डित जी ने बोतल को मुँह लगा 'एक ही डीक' में उसे खत्म कर दिया था।

विमटो का गिलास खत्म करके हुनर साहब ने होंटों पर ज़बान फेरी। विमटो ह्विस्की नहीं थी, पर उन्हें सरूर आ गया। उन्होंने एक और शे'र कहा :

"तशनगी[1] जाम से बुझी गरचे
दीद[2] की तेरे प्यास बाकी है"

मस्ती से शे'र कहते हुए वे बोले, "चाचा जी, हलक़ की प्यास तो हम ने बुझा ली, लेकिन आपकी बातों की प्यास हमेशा रहेगी।" और चाचा फ़कीरचन्द से चचा-भतीजे का रिश्ता स्थापित करते हुए उन्होंने कहा, "अब हम जब भी जालन्धर आये आपके दर्शन किये बिना न जायँगे।"

और ये कहते और उठते हुए उन्होंने जेब से बटुआ निकाला।

चाचा फ़कीरचन्द ने उनके हाथ से बटुआ ले कर उनकी जेब में रख दिया और चेतन के पिता पण्डित शादीराम से अपनी दोस्ती का उल्लेख करते हुए उनके एहसानों का ज़िक्र किया और बताया कि यह फ़ैक्ट्री चेतन के मित्र के नाते उनकी अपनी है, वे जब चाहें शौक से आयें।

तब प्रसन्न हो कर हुनर साहब ने उनसे वादा किया कि वे 'मण्डी सोडा वाटर फ़ैक्ट्री' का कोई विज्ञापन बाँटना चाहें तो उन्हें याद करें, वे नज़्म में उन्हें ऐसा बढ़िया विज्ञापन तैयार कर देंगे कि लोग अश-अश कर उठें।

और 'वन्दे मातरम' कहते हुए, दोनों हाथ जोड़ कर वे सीढ़ियाँ उतर गये। उनके चेले उनके पीछे हो लिये। चाचा फ़कीरचन्द को 'पैरी पौना' करके चेतन भी उनके पीछे चल दिया।

---

१. प्यास। २. दर्शन।

पच्चीस

पतलून के दोनों पायँचे पूर्ववत उठाये, बड़ी सावधानी से बाज़ार के कीचड़ में रास्ता बनाता हुआ, चेतन अपने साथियों से फिर पीछे रह गया। उसका ध्यान चाचा फ़कीरचन्द से होता हुआ, चौधरी गुज्जरमल, तेजपाल, देस-राज और अपने पिता के अन्य मित्रों की ओर चला गया।....उसके पिता में हज़ार दुर्गुण थे, तो भी उनके एक इशारे पर उनके मित्र उनके लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाते थे। चेतन ने सोचा—क्या उसका भी कोई ऐसा घनिष्ठ मित्र है? और उसने पाया कि उसका तो एक भी ऐसा मित्र नहीं। अनन्त है, पर क्या अनन्त चौधरी गुज्जरमल, लाला तेजपाल या चाचा फ़कीरचन्द की तरह उसके लिए सब कुछ कर सकता है? सोचने पर उसे उत्तर 'नहीं' में मिला।....लेकिन उसने अनन्त के लिए स्वयं क्या किया? क्या स्कूल या कॉलेज में साथ-साथ इकट्ठे घूमना मैत्री के लिए पर्याप्त है। चेतन ने सोचा तो उसे लगा कि शायद नहीं! मैत्री में शायद देना ज़्यादा होता है और लेना कम! गुज्जरमल हों या तेजपाल, दौलतराम हों या देसराज, वे चेतन के पिता को पसन्द करें या न करें, पर चेतन जानता था कि यदि ज़रूरत पड़ने पर उनमें से कोई उसके पिता के पास चला जाय तो उनका काम करने के लिए वे कोई कसर न उठा

रखेंगे और शायद यही एहसास था, जो उनके मित्रों को पण्डित जी के साथ बाँधे रखता था। वे दिल-ही-दिल में जानते थे कि उनकी गालियाँ सब ऊपर की हैं, उनका जो कुछ है, सब मित्रों को ले कर है, मित्रों के लिए है....और बाज़ार के उस कीचड़ में क़दम-क़दम सरकते हुए चेतन को अपने उस पिता से, जिससे वह नाराज़ भी था और आतंकित भी, और हृदय में कहीं गहरे नफ़रत भी करता था, पहली बार ईर्ष्या हो आयी।....वह सुबह से डोलता फिर रहा है। यदि उसका भी कोई अभिन्न मित्र होता, जिससे वह अपने दिल की बात कह सकता; जो उसकी तक-लीफ़ को समझ सकता, कुछ और न करता तो उसके साथ दिन भर आवारा घूम सकता, तो वह कितना हल्का हो जाता।....पर उसका कोई मित्र नहीं था। वह नितान्त एकाकी था। अपने तीव्र संघर्ष पर विजय पाने के लिए, अपने से आगे उसने कुछ देखा ही नहीं, और जब तक किसी दूसरे के लिए कुछ न किया जाय, वह हमारे लिए क्या करेगा ?—एक सेवा करता है, दूसरा धन से सहायता करता है, तीसरा स्नेह देता है। जो व्यक्ति मित्र से सेवा के लिए सेवा, धन के लिए धन या स्नेह के लिए स्नेह का प्रतिदान चाहे, उससे बड़ा मूर्ख कोई नहीं है।....चेतन के पिता शायद अपने मित्रों से कुछ नहीं चाहते थे, उनके लिए वे कुछ कर सकें, केवल इसकी छूट चाहते थे और जब वे समझ लेते थे कि अब उनकी ज़रूरत मित्र को नहीं रही तो वे उससे कन्नी काट लेते थे। गुज्जर-मल और तेजपाल जम गये थे, सफ़ेदपोश, शरीफ़ कहलाने लगे थे और अपने-अपने मुहल्लों के चौधरी हो गये थे, तब पण्डित शादीराम भी उनसे परे हट गये थे और उन लोगों को साथ लिये रहते थे, जिनको खिला-पिला सकें, जिनके लिए कुछ कर सकें और जिनकी संगति में अपने ख़ाली वक़्त को भर सकें। यह अजीब बात है कि जो लोग पीठ-पीछे उनको गाली देते थे और पण्डित शादीराम को पता था कि गाली देते हैं, उनको भी खिलाने-पिलाने में वे संकोच न करते थे। "मेरा हाथ किसी के आगे फैले नहीं," वे कहा करते थे, "किसी के हाथ पर कुछ रखे—यों न हो," वे हाथ फैला देते, "बल्कि यों हो!"—और हाथ की पाँचों उँगलियों

को किसी के हाथ पर कुछ रखने के अन्दाज़ में मिला कर वे दिखाते।

०

बाज़ार जहाँ मण्डी की ओर मुड़ा, वहाँ कीचड़ और भी गहरा हो गया था। तब आज जैसी पक्की सड़क न थी। बैल-गाड़ियों के पहियों ने सड़क के शरीर को बुरी तरह रौंद डाला था। बीचों-बीच दो गहरी लकीरें ही न बना दी थीं, वल्कि इधर-उधर भी गहरे घाव कर दिये थे और सड़क किसी राजगीर का एक विशाल तगार[1] बनी हुई थी। चेतन यह न समझ पा रहा था, किस प्रकार बच कर वह मण्डी के दरवाज़े तक जा सके। एकदम किनारे-किनारे, आने-जाने वाले आदमियो के पैरों के निशानों पर पैर रखता हुआ, रुक-रुक कर वह चलने लगा....और तब न जाने कैसे अपने पिता के वैवाहिक जीवन का एक नया ही पक्ष उसके सामने आ गया....माँ उसकी धर्मपरायण थी, पतिव्रता थी, नेक थी, पर चेतन को पहली बार लगा कि उसके पिता की आधी आवारगी का कारण वही थी....उसके पिता लड़कपन से पीने लगे थे। यार-वाश, दरिया दिल, दोस्तों के दोस्त आदमी थे। माँ मिश्र घराने में पली थी। उसके धर्म में उसके पति का हर काम पाप से भरा था। घर में चूँकि वे न गोश्त पका सकते थे, न खा-पी सकते थे, इसलिए वे ज़्यादा वक्त बाहर रहने लगे थे। चेतन को स्वयं उसकी माँ ने एक बार बताया था कि जब वह ब्याही आयी थी तो कई वर्ष तक उसने घर में गोश्त न पकने दिया था। उसके पिता बहुत अच्छा गाते थे और कई बार इकतारा अथवा सारंगी बजा कर भीख माँगने वालों को रोक लेते थे। गाना सुन कर उन्हें दो-चार पैसे के बदले दो-चार रुपये दे देते थे। कभी दिन-त्यौहार को मीरासिनों को बुला लेते थे और नर्तकियों को रुपये देने के अन्दाज़ में हर 'वेल' पर उन्हें रुपये दिखा-दिखा कर देते थे। मां इसे वेहद बुरा समझती थी। उसके पिता को किस्से पढ़ने और मौज में आ कर उन्हें ऊँची आवाज़ में गाने का शौक़ था। माँ के ख़याल में जिस घर में बच्चे हो, वहाँ किस्सों का होना असभ्य

१. तगार, जुड़ाई के लिए पानी-मिली मिट्टी का थाला।

था और पिता के जाते ही वह सब किस्मे समेट कर दालान के अँधेरे में पड़े, बड़े ट्रंक में बन्द कर देती थी कि बच्चों की नज़र कहीं उन पर न पड़ जाय....और जब माँ कुछ समझ पायी तो पानी सिर से गुज़र चुका था। कम धर्मपरायण घर की कोई स्त्री ज़रूर उन्हें गुज्जरमल अथवा तेजपाल की बीवियों की तरह ठीक कर सकती थी।....चेतन को इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि यदि माँ उसके पिता को घर में खाने-पीने देती, बल्कि स्वयं गोश्त पका कर खिलाती तो उसके पिता न बाहर जाते और न इतना उड़ाते....और चेतन को आश्चर्य हुआ कि उसने पहले कभी उस दृष्टि से अपने पिता के जीवन को नहीं देखा। वे पापी हैं, ज़ालिम हैं, क्रूर हैं, शराबी-जुआरी, तमाशबीन हैं, यही उसने जाना-समझा।—पर घर में उस मनमौजी प्रकृति वाले आदमी के लिए था क्या?—पूजा-पाठ, व्रत-नियम में उनका विश्वास न था—उनकी कला-प्रेमी आत्मा को उस घर में कितना बड़ा शून्य दिखायी देता होगा और वे यदि घर में आते ही भाग जाते होंगे तो क्या आश्चर्य है! माँ का कहना था कि वे केवल घर वालों के लिए ही बुरे हैं, बाकी दुनिया तो उनकी तारीफ़ करेगी ही, क्योंकि वे सब को खिलाते-पिलाते हैं, सारी दुनिया के बच्चे-वाले उनके बच्चे-वाले हैं, केवल अपने ही ग़ैर हैं....पर शायद बात ऐसी नहीं थी.... वह यदि अपने पिता से पूछ सकता ...यदि उसके पिता उसे बता सकते—अपने शुरू के वैवाहिक जीवन की मानसिक प्रक्रिया....पर अपने पिता के सामने तो अब भी उसके लिए बात करना कठिन था....लेकिन मण्डी के उस कीचड़-भरे तगार में सरकते हुए चेतन की कल्पना में उसकी धर्म-परायण, पतिव्रता, व्रत-नियम, देवी-देवताओं और पाप-पुण्य में परम आस्था रखने वाली माँ तथा उस फक्कड़, बेपरवा, औबाश, यार-बाश अपने पिता के वैवाहिक जीवन के शुरू दिनों के कई चित्र खिन्च गये और जहाँ पहले माँ के लिए ही उसका हृदय द्रवित हो उठता था, वहाँ पहली बार अपने पिता के लिए भी उसके मन में कुछ अजीब-सी करुणा उमड़ आयी—जाने कौन-सा शून्य उनके अन्तर में था, जिसे भरने के लिए वे सदा यार-दोस्तों को साथ लगाये रखते थे।

"जीजा जी, जीजा जी ?"

अपने ध्यान में मस्त चेतन लाला जालन्धरीमल की दुकान के आगे से निकला जा रहा था कि रणवीर की आवाज़ सुन कर चौंका। हुनर साहब तथा उनके चेले दुकान के थौतरे पर बैठे अपने कीचड़-सने पैरों और जूतों को धो रहे थे।

"अरे भई कहाँ अन्धों-बहरों की तरह बढ़े जा रहे हो, न किसी को देखते हो, न किसी की आवाज़ सुनते हो।" हुनर साहब ने वहीं से कहा।

चेतन उसी तरह पतलून के दोनों पायँचे उठाये, वापस मुड़ा।

छब्बीस

श्री जालन्धरीमल जी 'योगी' बार-बार आवाज़ करते हुए साँस ऊपर चढ़ा-उतार रहे थे और चेतन को बार-बार हँसी आती थी, उसे लगता था कि वे उन्हें दिखाने के लिए चटाई पर प्राणायाम करने जा बैठे हैं। नीचे उनके मुनीम ने बताया था कि योगी जी एक बजे तक दुकान पर बैठते हैं, उसके बाद ऊपर चौबारे में चले जाते हैं और चिन्तन, मनन और ध्यान में अपना समय बिताते हैं। उनसे चिट पर नाम लिखा कर वह ऊपर ले गया था और आ कर उसने बताया था, "योगी जी आसन पर जा बैठे हैं, आप कुछ क्षण यहीं रुकिए अथवा चुपचाप जा कर गद्दे पर बैठ जाइए।" चेतन तो वहीं रुकने के पक्ष में था, लेकिन हुनर साहब ने कहा कि चलो ऊपर चल कर बैठते हैं, तुम देखो कि योगी जी जब ध्यान लगाते हैं तो उनके पास बैठने वालों पर कैसे उनके उच्च विचारों का प्रभाव अपने-आप पड़ने लगता है। हुनर साहब ने सीढ़ियाँ चढ़ कर, दरवाज़े के बाहर उनका नाम ले कर अपने आने की सूचना दी थी कि चेतन को उनके कमरे के अन्दर किसी के तेज़ पैरों की चाप सुनायी दी। हो सकता है, यह उसका भ्रम हो, पर उसे लगा था, जैसे कोई कहीं से कूद कर कहीं दूसरी जगह जा बैठा है। अन्दर से उनका छोटा लड़का आया था और उन्हें कमरा दिखा

कर चला गया था और कमरे के अन्दर आते ही चेतन ने उन्हें चटाई पर पद्मासन में बैठे ज़ोर-ज़ोर से साँस ऊपर चढ़ाते देखा था।

हुनर साहब और उनकी देखा-देखी रणवीर और निश्तर दण्डवत के रूप में उनके चरणों के निकट धरती को छू कर पास ही गद्दे पर भक्तों की तरह जा बैठे और चेतन उनके पीछे दीवार से पीठ लगा कर बैठ गया। उसे आशा भी नहीं थी, न ही उसके मन में कहीं कोई वैसा विचार अपने-आप व्यापा, जिसका सम्बन्ध योगी जी की समाधि से हो—उसकी दृष्टि कभी उनके मोटे भद्दे शरीर, कभी मेंढक-ऐसी गर्दन, कभी मुँडी हुई खोपड़ी और कभी नाक के नीचे दायीं ओर गाल के काले-से मुहासे पर जा टिकती। और वह सोचता कि उन्हें क्या कष्ट है, जो इस समय आराम करने के बदले कष्ट उठा रहे हैं?....चेतन वहाँ आने से एकदम कन्नी काट जाता, पर उसके मन में उत्सुकता थी, देखें, 'सरफ़रोश' जी 'योगी' जी के रूप में कैसे लगते हैं और मौका मिले तो कुछ वाद-विवाद कर, अपने मन की उदासी दूर करे।

योगी जी अगर पहले कवि की जगह पहलवान लगते थे, तो अब भी उनमें कुछ वैसा अंतर दिखायी न देता था। शरीर कुछ और स्थूल हो गया था और पेट निकल आया था। उनके बढ़े हुए पेट को देख कर चेतन को खयाल आया कि शायद इसी बढ़ते पेट ने उन्हें योग-साधन की ओर मायल किया है।

चेतन की आस्था योग-साधन में नहीं थी। उसके मन में बचपन ही से कई तरह के सन्देह उठते थे और चूँकि घर में कोई ऐसा विद्वान न था, जो उसकी शंकाओं का समाधान करता और ज़िन्दगी ने उसे इतना अवकाश न दिया था कि इस गहन, गम्भीर और गूढ़ विषय का अध्ययन करे, इसलिए जब भी उसे कोई ऐसा आदमी मिलता, जिससे इस विषय पर बातचीत की जा सके, वह उसका ज़रूर लाभ उठाता।

वहीं योगी जी का ध्यान टूटने की प्रतीक्षा में बैठे-बैठे चेतन के दिमाग़ में बचपन और लड़कपन में सुनी योग-सम्बन्धी दसियों बातें घूम गयीं।

देश के अधिकांश हिन्दू निम्न-मध्यवर्गीयों की तरह भारतीय दर्शन का कोई-न-कोई मिक्सचर (जिसमें शुद्ध ज्ञान के साथ कई तरह की किम्वदन्तियाँ और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के मिले-जुले अन्ध-विश्वास शामिल थे) उसे घुट्टी ही में मिला था। दादा उसे बचपन ही से ऐसे ऋषि-मुनियों के किस्से सुनाते, जिन्होंने घोर तपोबल से सिद्धियाँ प्राप्त की थीं और जो हिमालय की कन्दराओं में तपस्या करते हुए कई सौ वर्ष तक जिये थे।....

चेतन सोचा करता था कि जब साधारण लोग सत्तर-अस्सी तक पहुँचते-न-पहुँचते परलोक-गामी हो जाते हैं, तो वे ऋषि ही कैसे कई-कई सौ साल जीते थे ?

दादा के पास उसकी इस शंका का सरल समाधान था। 'संसार में आदमी जिस दिन पैदा होता है,' वे कहते, 'उसी दिन विधाता उसके मरण का दिन भी निश्चित कर देता है। आदमी के हर साँस की गिनती यम-राज के रजिस्टर में रहती है और साँस पूरे होने पर यमराज के दूत आ कर उसे ले जाते हैं—एक साँस भी उसे वाफ़र लेना नहीं मिलता। ऋषि-मुनि साँस तो उतने ही लेते हैं, जितने विधाता ने उनके प्रारब्ध में लिखे हैं, पर वे योग-साधन से जब साँस को ऊपर चढ़ाते हैं तो हफ़्तों-महीनों नहीं छोड़ते।' और दादा महर्षि भृगु के सुपुत्र च्यवन ऋषि की कथा सुनाते, जो पेड़ के साथ पीठ लगाये समाधि में बैठे तो वर्षों-पर-वर्ष बीतते चले गये। उनका सारा शरीर तृण-पात से ढक गया और चींटियों ने अपनी बाँबी बना ली। उस मिट्टी के ढेर में केवल आँखों की जगह दो सूराख़ रह गये। तभी राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ खेलती हुई उधर आयी तो उस मिट्टी के ढेर को चींटियों की बाँबी समझ कर उसने एक काँटा छेद में खोंस दिया, जिससे ऋषि की आँख जाती रही और उनकी समाधि खुल गयी।

चेतन जब बड़ा हुआ तो योगाभ्यासी ऋषियों के चमत्कार सुन कर कभी-कभी सोचा करता कि ऐसे जीवन का लाभ क्या है ? ऐसे जीवन और मृत्यु में क्या अंतर है ? कभी वह दादा से पूछता तो बताते कि वे ऋषि-मुनि योग-साधन से इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार पा कर आत्मा को परमात्मा

में लीन कर देते थे और समाधि में उनकी बाहर की आँखें चाहे बन्द हों, पर अन्दर की आँखें खुल जाती थीं। सारे संसार की खबर उन्हें कन्दरा में बैठे हो जाती थी। संजय ने हस्तिनापुर में बैठे आखिर योग-बल ही से तो महाराज धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध का सारा हाल सुनाया था। भूत और वर्तमान ही का नहीं, भविष्यत तक का सारा ज्ञान उन्हें प्राप्त हो जाता था। उन्हीं सर्वज्ञ ऋषियों ने कलियुग में होने वाली घटनाओं का विवरण दिया है और यह तक बता दिया है कि कलियुग का पहरा कितनी सदियाँ, कितने वर्ष, महीने और दिन रहेगा और कब प्रलय आयेगी। तब चेतन के मन में प्रश्न उठता कि जब ऋषि-मुनि आत्मा को परमात्मा में मिला देते थे, भूत-भविष्यत का राई-रत्ती हाल जान लेते थे तो वे भगवान की तरह अमर क्यों नहीं हो जाते थे, मृत्यु को वे क्यों नहीं जीत पाते थे ?

दादा इस प्रश्न का उत्तर कभी यह देते कि भगवान ने यही तो एक चीज़ अपने हाथ में रखी है और वे पंजाबी भाषा की कहावत सुनाते हुए कहते—'बिल्ली ने शेर पढ़ाया, बिल्ली को ही खाने आया', और अपनी ओर से बढ़ाते, 'लेकिन बिल्ली झट पेड़ पर चढ़ गयी।' और समझाते—'यदि भगवान मौत को अपने हाथ में न रखें तो इन्सान भगवान ही को न खत्म कर दे ! और दादा भस्मासुर की कथा सुनाते, जिसने घोर तप करके भगवान शिव को प्रसन्न कर लिया और वर माँगा कि वह जिसके सिर पर हाथ रख दे, वह भस्म हो जाय। जब भगवान शिव ने उसे वर दे दिया तो उसने शिव ही को भस्म करने की ठानी। शिव अपने प्राणों को ले कर भागे। तीनों लोकों में असुर ने उनका पीछा किया। तब वे भगवान विष्णु की शरण में पहुँचे और उन्हें अपनी विपदा सुनायी। भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धर, असुर को ऐसा मोहित किया कि उसने स्वयं अपने सिर पर हाथ रख लिया और वह भस्म हो गया।

चेतन के मन में एक साथ कई शंकाएँ उठतीं कि अगर भगवान छल कर सकता है तो वह सर्वशक्तिमान भगवान क्या हुआ, धूर्त कायर हो गया। फिर शिव भी तो शक्तिमान थे, उन्होंने स्वयं ही मोहिनी रूप धर

कर असुर को भस्म क्यों न कर दिया ? भागे-भागे विष्णु की शरण में क्यों गये ?....पर दादा को कोंचने का परिणाम वह जानता था। एक बार उसने राम को चोर कह दिया था कि उन्होंने बाली को छिप कर मारा था और उसे थप्पड़ खाना पड़ा था। देवताओं के विरुद्ध कोई भी बात सुनना दादा कभी गवारा न करते थे।

और कभी ऋषियों के अमर न हो सकने की बात पर दादा कहते, 'कौन जानता है, हिमालय की कन्दराओं में कितने अमर तपस्वी पड़े है अथवा भेस बदल कर इस संसार में विचर रहे हैं। महाभारत में लिखा है कि अश्वत्थामा अमर थे, वे ज़रूर ही आज भी किसी-न-किसी रूप में संसार में विचर रहे होंगे।'

•

दादा उसे राज-योग की बातें सुनाते तो माँ कर्म-योग की; कि किस प्रकार अच्छे कर्मों का फल भगवान अच्छा देता है और बुरे कर्मों का बुरा। न केवल पूर्व-जन्म के कर्मों अथवा दुष्कर्मों का फल इस जन्म में मिलता है, वरन इस जन्म के कर्मों का फल अगले जन्म में भी मिलता है—ये जो राजा-महाराजा हैं, धनी और ऐश्वर्यशाली हैं, ये अपने पूर्व-जन्म के पुण्यों के प्रताप ही से सुख भोग रहे हैं; और ये जो कोढ़ी-कलंकी हैं, ये जो जन्मते ही मर जाते हैं और दुर्घटनाओं का शिकार हो, असमय ही काल-कवलित हो जाते हैं, ये सब पूर्व या इस जन्म के दुष्कर्मों के फल ही से इस गति को प्राप्त होते हैं। और माँ उन्हें शिक्षा देती कि सदैव अच्छे कर्म करने चाहिएँ ! जाने किस जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों से चौरासी लाख योनियों से भटकती हुई आत्मा इस मनुष्य-योनि में आती है। आदमी को यह कोशिश करनी चाहिए कि उसकी आत्मा फिर मनुष्य योनि ही में जाय और चौरासी लाख के चक्कर में न पड़े।

चेतन पूछता कि भगवान को यदि जन्म दे कर ही आदमी को तत्काल मार देना है तो वह मनुष्य-योनि देता ही क्यों है, कोई दूसरी योनि क्यों नहीं दे देता। माँ समझाती कि बेटे, वह जिसे घोर नरक कहते हैं, यही तो है, आत्मा जिसमें सदा लोहू और पीप की नदियों में सड़ती है। माँ

के पेट में बच्चा लोहू-पीप ही में तो रहता है।

'पर माँ, आत्मा तो अजर-अमर है,' वह कहता, 'उसे तो न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है। दुख तो इन्द्रियाँ पाती हैं; जब इन्द्रियाँ सोयी रहेंगी, आत्मा दुख कैसे पायगी और लोहू-पीप भी उसका क्या बिगाड़ेंगे ?'

कर्मयोग के सम्बन्ध में सबसे बड़ी शंका उसके मन में यह उठती—'इस बात का पता आदमी को कैसे चले कि जो कर्म वह कर रहा है, वह नया है, पुराने किसी कर्म का फल नहीं। कहाँ पुराने जन्म के कर्म समाप्त होते हैं और इस जन्म के शुरू होते हैं, यह कैसे मालूम हो....?'

माँ इन प्रश्नों का कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दे पाती। कभी जब उसके पिता ख़ूब पी कर आते और माँ को पीटते तो वह कहा करती कि उसने पिछले जन्म में ज़रूर ही बुरे कर्म किये होंगे, जो उसे इस जन्म में ये दुख भोगने पड़ रहे हैं। चेतन पूछता—'माँ, पिता जी को इन बुरे कर्मों का फल क्या अगले जन्म में मिलेगा ?'....माँ उसके मुँह पर हाथ रख देती कि पिता के बारे मे पुत्र हो कर कोई बुरी बात सोचना भी पाप है....

जब वह बड़ा हुआ और आर्यसमाज, अड्डा होशियारपुर के वार्षिक अधिवेशन में स्वामी सत्यदेव की कथा सुनने जाने लगा तो उसके कानों मे 'निष्काम कर्म' और 'मोक्ष'—ये दो शब्द बार-बार पड़ने लगे। स्वामी सत्यदेव की कथा सात दिन तक चलती थी। उनकी उमर काफ़ी थी, पर उनकी काठी सीधी थी, चेहरे पर तेज और स्वर में ओज था। उनकी कथा सुनने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। यद्यपि निम्न-मध्यवर्ग की, अपने घरों की चारदीवारी मे बन्द लड़कियाँ इस अवसर का लाभ उठा कर अपने-आपको दिखाने और लड़के उन्हें देखने जाते थे और चेतन भी इसका अपवाद न था, पर कभी-कभी उसके कान स्वामी जी की आवाज़ पर लग जाते और वह सुनता कि आदमी किस प्रकार संयम और तप से इस संसार के दुखों ही से ऊपर नहीं उठ सकता, बल्कि आत्मा को परमात्मा मे लीन कर, अपूर्व शान्ति का उपभोग कर, जन्म-मरण के बन्धन काट सकता है। ज्ञानयोग और कर्मयोग, दोनों से आदमी जन्म-मरण के बन्धनों

से मुक्त हो सकता है। यह जन्म पिछले जन्म के सत्कर्मों ही के फल से मिलता है। आदमी यदि कामना-सहित कर्म करेगा तो उसे इस जन्म अथवा अगले जन्म में उसका फल भोगना ही होगा, पर यदि वह कामना-रहित हो कर काम करेगा तो न केवल अगले जन्म में उसका फल नहीं मिलेगा, वरन उसके पूर्व-जन्मों के संचित कर्म भी नष्ट हो जायँगे और वह बार-बार जन्म लेने और दुख पाने से मुक्त हो कर परम-मोक्ष को प्राप्त करेगा।

....वह बहुत छोटा था तो कभी-कभी जब घर का वातावरण अत्यन्त कलुषित हो उठता था, वह सोचा करता था, वह ध्रुव की तरह घोर तप करे और जब भगवान प्रसन्न हो जायँ तो वर माँगे कि मेरे पिता को ठीक कर दो।....बड़ा हुआ और उसने आर्यसमाज के अधिवेशनों में सुख-दुख के ऊपर उठने की बातें सुनीं तो वह कभी-कभी सोचने लगा कि वह किस प्रकार इस दुख से ऊपर उठ जाय! पर योग-साधन की किसी प्रकार की सुविधा घर में नहीं थी।....और बड़ा हुआ तो अपनी इस मूर्खता पर उसे हँसी आने लगी। अपने घर के तमाम कलुषित वातावरण के बावजूद, दुनिया उसे हसीन दिखायी देने लगी....कुन्ती को एक नज़र देख लेना, उसे कई दिन तक सुख-सपनों में लीन रखने लगा....और उसे यह जन्म-जन्मान्तर के बन्धन काटने और मोक्ष प्राप्त करने की समस्या बेकार मालूम होने लगी और वह सोचने लगा कि अगर संसार दुखमय है और यह जन्म ही दुखमय है तो ये लोग आत्म-हत्या क्यों नहीं कर लेते। जन्म-जन्मान्तर के दुखों की बात किसने देखी है, इस जन्म के दुख तो आदमी पलक झपकाते काट सकता है। चूँकि आदमी समझ नहीं पाता, क्यों बुरे लोग सुखी हैं और भले दुखी, इसलिए उसने पूर्व-जन्म के कर्मों की कल्पना की है, जब पूर्व-जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में मिलता है, तो निश्चित रूप से इस जन्म के कर्मों का फल भोगने के लिए दूसरा जन्म भी लेना ही होगा, लेकिन आदमी इस जन्म ही में इस दुश्चक्र को तोड़ सकता है—बस ज़िन्दगी की ज़ंजीर काट दे और इसके दुखों से मुक्त हो जाय। अगले जन्म में फिर भगवान दुख देना चाहे तो फिर ऐसा ही करे। उन्हीं दिनों

उसने एक शे'र पढ़ा :

तेरी मीआदे-ग़म पूरी हुई ऐ जिन्दगी खुश हो
क़फ़स टूटे न टूटे मैं तुझे आज़ाद करता हूँ

यह शे'र उसे इतना अच्छा लगा कि वह कई दिन इसे गुनगुनाता रहा।

उसके दादा कहा करते थे कि मरते वक्त आदमी की वृत्ति जिस चीज़ में होती है, दूसरे जन्म में वही उसे मिलती है। इसीलिए मरने वाले के सिरहाने गीता और रामायण की कथा सुनाते हैं कि उसकी वृत्ति भगवान में लगे और वह आवागमन के बन्धन से मुक्त हो कर मोक्ष पाये और वे अजामिल की कथा सुनाया करते थे, जो महा पापी था, लेकिन मरते समय उसने अपने बड़े पुत्र को पुकारा, जिसका नाम नारायण था और इतने ही से वह मोक्ष पा गया।

चेतन को यह कथा निहायत बेतुकी लगती थी। भगवान जब अन्तर्यामी हैं तो उन्हें ज़रूर पता होगा कि यह साला मुझे नहीं, अपने पुत्र को याद करता है, फिर उसे किस तरह उन्होंने मुक्त कर दिया। पर वह दादा की गालियों के डर से यह बात न कहता था। एक दिन, जब वे उसके छोटे भाइयों को इस जन्म के दुखों और उनसे मुक्त हो कर मोक्ष पाने की बात बता रहे थे, तो चेतन ने कहा, "दादा जी यदि यह जन्म दुखमय है तो आदमी इसे ख़त्म क्यों नहीं कर देता ? आत्म-हत्या करते समय यदि वह इच्छा करे कि उसे फिर कभी मनुष्य-जन्म न मिले तो उसे कभी वह जन्म नहीं मिलेगा। इतने बरस योग-साधन और तप करने की क्या ज़रूरत है, जब आदमी एक मिनट में भव का यह बन्धन काट सकता है।".... यही बात उसने आर्यसमाज की साप्ताहिक बैठक में भी कही थी। दोनों जगह उसे लगभग एक ही उत्तर मिला था कि आत्म-हत्या पाप है। यह जन्म भगवान ने दिया है और भगवान ही इसे लेने के अधिकारी हैं। दादा इतना और जोड़ते की आदमी आत्म-हत्या करेगा तो प्रेत-योनि में जायगा उसकी आत्मा न जन्म लेगी, न 'भगवान को प्राप्त होगी' और परेशान भटकती फिरेगी।

लेकिन चेतन के मन में कई शंकाएँ एक साथ सिर उठातीं :

....भगवान ने यह जन्म कैसे दिया है ? जन्म तो पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है, कर्म आदमी ने किये हैं, वह उनके चक्कर को क्यों नहीं काट सकता ?

....और अगर भगवान ने जन्म दिया है तो राजयोग, कर्मयोग अथवा भक्तियोग से मोक्ष पाना और जन्म-जन्मान्तर के बन्धन को काटना कैसे उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं और कैसे पाप नहीं है ?

....भगवान अगर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है तो उसने ऐसे इन्सान बनाये ही क्यों, जो बुरे कर्म करते हैं; क्यों ऐसे नक्षत्र ब्रह्माण्ड में छोड़े, जिनका वैसा कुप्रभाव पड़ता है और उसे इक़बाल का शे'र याद आता :

अगर कज-रौ हैं अंजुम,[1] आसमाँ तेरा है या मेरा
तुझे फ़िक्रे - जहाँ क्यों हो, जहाँ तेरा है या मेरा

आर्यसमाजियों, सनातनधर्मियों, दादा और माँ की बातें सुनते-सुनते उसे भगवान के अस्तित्व ही में सन्देह होने लगता। भगवान कहीं छलिया था; कहीं कपटी; कहीं अत्याचारी; गरीबों का था, पर उन्हें अपार कष्ट देता था; भक्तों का था, पर उन्हें दुख दे कर उनकी परीक्षा लेता था; सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक था, पर संसार को ठीक तरह चला नहीं सकता था....

कभी जब हँसी-हंसी में वह माँ से ये सब बातें कहता और वह उसे कोई उत्तर न दे पाती तो उससे कहती कि यह सब सोचने की उसे जरूरत नहीं; उसका काम है विद्या प्राप्त करना, फिर गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश कर, घर बसाना; फिर जब वह पचास वर्ष का हो जायगा तो चाहे ज्ञान-ध्यान की बातें सोचे, वाणप्रस्थ आश्रम में जाय या संन्यासी बने—जैसे उसकी इच्छा हो, करे....

१. यदि नक्षत्र टेढ़े हैं।

बचपन से ले कर अब तक की ज़िन्दगी से सम्बन्धित सृष्टि और स्रष्टा, जन्म और मरण, आवागमन और मोक्ष, राजयोग और कर्मयोग सम्बन्धी बीसियों शंकाएँ और विचार चेतन के मन में आते रहे। साथ के कमरे से कोई बच्चा रूठ कर या पिट कर 'भाइया जी !' 'भाइया जी !'[१] चिल्लाता हुआ दरवाज़े में आ कर रिरियाता रहा (जिसे बड़ी कठिनाई से हुनर साहब ने बहला कर वापस भेजा); परे कमरे में औरतों के झगड़े की आवाज़ निरन्तर कान में पड़ती रही, लेकिन योगी जालन्धरीमल जी परम एकाग्रता से आँखें मूँदे ध्यानस्थ रहे। जब लगभग आध घण्टे बाद उन्होंने आँखें खोलीं तो हुनर साहब ने फिर उठ कर उनके घुटने छुए (यद्यपि वे उमर में हुनर साहब से शायद एकाध ही वर्ष बड़े होंगे) और रणवीर और चेतन का परिचय दिया। निश्तर को वे भली-भाँति जानते थे, क्योंकि कांग्रेस की सभाओं में इकट्ठे कविताएँ पढ़ते रहे थे।

चेतन को उन्होंने वहीं बैठे-बैठे किंचित विनम्रता से, कल्ले फैला कर, 'नमस्कार' किया। तब हुनर साहब दाँत निपोरते हुए बोले, "मैं तो अभी सीढ़ियों में आते हुए चेतन जी से कह रहा था कि योगी जी कहीं ध्यान में मग्न हों, फिर देखो उनका करिश्मा—आप-से-आप पास बैठने वालों पर उनके सद्विचारों का प्रभाव पड़ने लगता है।"

१. भाइया जी = पिता जी

सत्ताइस

"अच्छा !"—पास बैठे लोगों पर उनकी समाधि का जो मौन-प्रभाव पड़ता है, हुनर साहब से उसकी बात सुन, जालन्धरीमल जी ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा। उनके कल्ले एक सन्तुष्ट मुस्कान से फैल गये और काले भुजंग चेहरे पर अपूर्व चमक आ गयी। फिर सहसा उन्होंने हुनर साहब से पूछा, "तो आप पर क्या प्रभाव पड़ा ?"

चेतन को उनका यह प्रश्न नितान्त मूर्खता-पूर्ण लगा, पर हुनर साहब ने उसी तरह दाँत निकोसते हुए कहा, "मैं तो उन्हीं बातों पर विचार करता रहा, जो आपने बतायी थीं। गीता के कुछ श्लोकों को मैंने मश्क के लिए सीधी-सादी उर्दू नज़्म का लिबास पहनाया है।"

"अच्छा !" योगी जी की आँखों में फिर एक चमक कौंध गयी।

"बात यह है," हुनर साहब बोले, "उपनिषदों के मसले बड़े दक़ीक़[1] हैं, उन्हें सरल उर्दू नज़्म का जामा पहनाना, लोहे के चने चबाना है, इसीलिए मैंने गीता के दूसरे अध्याय को मश्क के लिए चुना। हुक्म हो तो सुनाऊँ ?"

"हाँ, हाँ....ज़रूर, ज़रूर !" और योगी जी अर्ध-पद्मासन हो बैठे।

---

१. पेचीदा, गूढ़।

हुनर साहब ने पूरे जोश से वही बन्द सुनाये, जो वे श्री रुद्रसेन आर्य, हरसरन के पिता और फिर चाचा फ़कीरचन्द को सुना आये थे।

योगी जी बड़े प्रसन्न हुए। चेतन का तो ख़याल था कि वे 'अच्छा' के सिवा कुछ भी नहीं कहेंगे, पर उन्होंने हुनर साहब की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की और भविष्यद्वाणी-मिला आशीर्वाद दिया कि सर्वशक्तिमान भगवान उन्हें अवश्य ही इतना सामर्थ्य देगा कि वे उपनिषदों के गहन ज्ञान को सरल उर्दू कविता का लिबास पहना कर, जनता को अपूर्व लाभ पहुँचायेंगे।

तब चेतन आगे खिसका।

"योगी जी, आप तो कांग्रेस-आन्दोलन में काफ़ी आगे थे," उसने कहा, "क्या बात हुई, कि आपका मन देश-सेवा से विरक्त हो गया। अब तो मैंने सुना है कि आप वर्षों से कांग्रेस की किसी सभा में नहीं गये। क्या जेल में सचमुच आपको बहुत कष्ट हुआ था?"

चेतन ने प्रकट ही उन्हें कोंचा था। पर योगी जी हतप्रभ नहीं हुए, "जेल कोई ख़ाला जी का घर तो नहीं भाई," उन्होंने अतिरिक्त धैर्य से कहा, "लेकिन औरों से ज़्यादा कष्ट हुआ हो, ऐसी बात नहीं। जेल में समाचार-पत्र और राजनीतिक पुस्तकें पढ़ने को नहीं मिलती थीं। संयोगवश मैंने धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया और मुझे पहली बार इस बात का आभास मिला कि इस विशाल विश्व में मनुष्य की हस्ती तो कण के सहस्रांश बराबर भी नहीं और आदमी न जाने अपने-आपको क्या समझता है? हमारे इस लोक जैसे, न जाने कितने लोक इसी ब्रह्माण्ड में हैं और सृष्टि की सीमा-हीन विशालता में न जाने ऐसे कितने और ब्रह्माण्ड है। इस सूरज से लाखों गुना बड़े सूरज और इस पृथ्वी से करोड़ों गुना बड़े नक्षत्र हैं। इस विशाल सृष्टि में जब हमारी पृथ्वी ही की हस्ती कण-सरीखी है, तो मनुष्य की हस्ती क्या ठहरी और फिर काल के क्रम में न जाने यह पृथ्वी कितनी बार बसी और उजड़ी, कितनी बार भगवान ने सृष्टि की और कितनी बार प्रलय? कितने स्वर्ण-युग आये और कितने लौह-युग—तब व्यक्तियों, जातियों और राष्ट्रों का अभिमान मिथ्या नहीं तो क्या है? मिथ्या के पीछे भागने के बदले, मनुष्य क्यों न 'सत' को पाने का प्रयास करे और सत को

पा कर क्यों न मोक्ष की आकांक्षा रखे ?"

"वाह-वा, किस ख़ूबसूरती से आपने आदमी की इना[1] का झूठ जाहिर कर दिया है !" हुनर साहब ने दाद दी।

उत्साह पा कर योगी जी बोले :

"सत या आत्मा, या ब्रह्म या पुरुष—उसे उपनिषदों में कई नामों से याद किया गया है—पर ये एक ही शक्ति के भिन्न नाम हैं और उस शक्ति को, जिसमें से सृष्टि उपजी और जिसमें कि यह फिर जा मिलती है; उस शक्ति को, जो दिखायी चाहे न दे, पर सृष्टि के कण-कण में व्याप रही है, जानना, उसे पाना ही सब से बड़ा सुख है। वह ब्रह्म इस सृष्टि के प्रत्येक कण का स्रष्टा ही नहीं, इसकी समस्त चेतना का स्रोत ही नहीं, परम-आनन्द का भी स्रोत है। संसार की ये गोचर वस्तुएँ, जैसे उस अनादि, अदृश्य और अनन्त शक्ति के सीमित रूप हैं, इसी तरह संसार के सुख उस सच्चे परमानन्द के अविच्छत, अटूट अंश हैं। वह ज्ञानी, जो अपनी आत्मा की गहराई में ग़ोता लगा कर उसे पा लेता है, वह न केवल ब्रह्म को पा लेता है, बल्कि उस परमानन्द को भी प्राप्त करता है, जो हर ज्ञानवान का ध्येय होना चाहिए !"

"वाह-वा, वाह-वा !" हुनर साहब ने दाद दी, "कितने सरल शब्दों में कितनी गहरी बात कही है आपने !"

योगी जी और जोश से बोलने लगे, "ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को समझाया था कि आत्मा सब सुखों का स्रोत है, इसका प्रमाण यह है कि आदमी को सब से प्रिय आत्म—अपनापा है। आदमी किसी दूसरे आदमी अथवा वस्तु से इसीलिए प्यार करता है कि वह उसमें अपनापा देखता है। पत्नी इसलिए प्यारी नहीं कि वह पत्नी है; न पति इसलिए प्रिय है कि वह पति है; न बेटा, बेटे के लिए प्यारा है; न धन, धन के कारण; ये सब इसलिए प्रिय हैं कि ये 'मेरे' है। 'मैं'—आत्म—इन सब के साथ जुड़ा है। तब आत्म के इन विभिन्न रूपों को, विभिन्न सुखांशों

१. अहं

को पकड़ने के बदले उसी आत्म को, सुख के उस अनादि, अनन्त, अनश्वर स्रोत को मनुष्य क्यों न जाने, क्यों न पकड़े, और क्यों न उसे पा कर परम-सुख को प्राप्त करे ?

"वह जो परम शान्ति की स्थिति है, इसे जानने के लिए," जालन्धरीमल जी ने और भी जोश से कहा, "आप ऐसी नींद की कल्पना कीजिए, जो स्वप्न-रहित है, जिसमें व्यक्ति को न शरीर का, न इन्द्रियों का, न मन का, न बाह्य वस्तुओं का—किसी चीज़ का ज्ञान नहीं रहता और आदमी अपने उस रूप में चला जाता है, जो कि उसकी चेतना का स्रोत है। वह परम शान्ति पा जाता है। दुख और सुख से परे हो जाता है।"

योगी जी बड़े ज़ोरों से प्रवचन दे रहे थे, जब वही नंग-धड़ंग बच्चा, शायद बड़े भाई से बचने की कोशिश में, भागता हुआ आया और उनकी गोद में धँस गया। प्रवचन समाप्त कर, उन्होंने बच्चे को गोद से उठाया और दरवाज़े की ओर धकेल दिया। बच्चा एक बार मुड़ा, पर, न जाने उनकी मुद्रा में क्या था कि वह पलटा नहीं, चला गया।

तब हुनर साहब चहके, "आपने तो परम ज्ञान प्राप्त कर लिया है योगी जी, आपने तो ज़रूर इस आत्मा को पा लिया होगा !"

"अरे नहीं भाई !" योगी जी ऐसी विनम्रता से मुस्कराये, जिससे यह प्रकट हो कि उन्होंने वह सिद्धि प्राप्त तो कर ली है, पर अपने मुँह से कहना नहीं चाहते। "यह क्या चेतन-जगत में इतना सुगम है। चेतन-जगत में आदमी आत्मा से इतना परे हो जाता है कि फिर उस स्थिति को—उस परम-सुख, उस परम-शान्ति की स्थिति को पाना उसके लिए कठिन हो जाता है। आत्मा से दूर आ कर फिर उसमें जा लीन होना वैसा सुगम नहीं। उसके लिए गहरे ज्ञान, अध्यवसाय और योग-साधन की आवश्यकता है।"

क्षण भर रुक कर योगी जालन्धरीमल जी फिर बोले, "हुनर साहब, यह संसार भला क्यों प्यारा लगता है ? ज़िन्दगी हमें क्यों दिलफ़रेब लगती है ?"

क्षण-भर के लिए हुनर साहब का उत्तर पाने के लिए योगी जी रुके,

पर हुनर साहब उजबकों की तरह मुँह उठा कर उनकी ओर देखने लगे कि महाराज, आप ही बताइए !

तब परम उल्लास से योगी जी बोले, "इसीलिए न कि हमारी आत्मा को इस संसार से, इस जीवन से कुछ-न-कुछ सुख मिलता है। लेकिन इसमें दुख भी कम नहीं है, इसलिए संसार के दुख से हम कभी-कभी बुरी तरह पीड़ित हो जाते हैं। अब उस स्थिति की कल्पना कीजिए, जिसमें सुख के साथ दुख नहीं है, जो सुख-दुख से परे की स्थिति है—परम शान्ति-भरी, स्वप्न-रहित नींद-सी—उसे पाने के लिए हमें संसार के झूठे सुखों का त्याग करना होगा, इन्द्रियों को बस में करना होगा और अपने-आपको आत्मा में लीन करना होगा। वह आत्मा, जो ब्रह्म ही का अंश है, जो इस चराचर संसार में समान रूप से व्याप्त है। आत्मा के साथ एकाकार होना, जन्म-मरण के बन्धन को काट कर मोक्ष पा लेना, परम सुख की अनुभूति प्राप्त कर लेना।....और यह हरेक के बस की बात नहीं, केवल तत्व-ज्ञानी योगी ही उस परम सुख को योग-साधन द्वारा इच्छा-अभिलाषाओं, दुख और सुख से ऊपर उठ कर पा सकते हैं।"

"लेकिन योगी जी," चेतन हँसा, "पुराने ज़माने में, जब विज्ञान ने इतनी उन्नति न की थी, आदमी को ऐसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों का दमन करने और इतनी कठिन योग-साधना की ज़रूरत थी, आजकल तो मॉर्फ़िया के एक इंजेक्शन से ही आदमी उस परम शान्ति को प्राप्त कर सकता है—गहरी नींद की उस परम शान्ति को—जिसमें कोई सपना न हो।"

योगी जी क्षण भर को चकराये, फिर एक उपेक्षा-भरी मुस्कान उनके होंटों पर खेलने लगी, "मॉर्फ़िया से वह स्थिति प्राप्त होती है कि नहीं, मैं नहीं कह सकता, पर मॉर्फ़िया लेने वाला इच्छा से जब चाहे इस चेतन जगत में तो नहीं आ सकता। जब तक मॉर्फ़िया का असर रहेगा, आदमी शान्त रहेगा, फिर अशान्त हो जायगा, जब कि ज्ञानयोग से आदमी संसार के सब काम करते हुए भी सुख-दुख, हानि-लाभ की चिन्ता से ऊपर उठ सकता है। परम ज्ञानी और परम योगी को समाधि में जिस शान्ति का

लाभ होता है, समाधि के बिना भी वह उसी स्थिति में रहता है। वह काम सब करता है, पर कामना-रहित हो कर, फलाफल की चिन्ता छोड़ कर, इसीलिए तो वह जन्म-मरण के बन्धन काट देता है।"

यदि योगी जी मंच पर से यह भाषण देते तो हुनर साहब अनायास करतल-ध्वनि कर उठते; पर तब परम-सन्तुष्ट भक्त की मुद्रा में 'वाह-वा' 'वाह-वा', कहने पर ही उन्होंने सन्तोष किया और इस बार रणवीर और निश्तर ने भी प्रशंसा की। लेकिन उनके चुप होते ही चेतन ज़ोर से हँस दिया!

"मुझे तो योगी जी, इस सब में कुछ तत्व की बात दिखायी नहीं दी। मैंने धर्म-ग्रन्थों को उतना तो नहीं पढ़ा, जितना आपने, पर सुना बहुत है और मुझे तो वह सब आत्म-वंचना के अतिरिक्त कुछ दिखायी नहीं दिया। आप कहते हैं कि एक ही आत्मा सब प्राणियों में व्याप्त है, आप यह भी कहते हैं कि जब हम दूसरी चीज़ों से प्यार करते हैं तो इसीलिए कि उनमें हम अपनापा पाते हैं, तो फिर यह कैसे है कि सृष्टि में पशु हों या पक्षी नितान्त निरपेक्ष भाव से एक-दूसरे को निगल जाते हैं, एक-दूसरे की हत्या करते हैं। क्या कोई अपने ही अंग को काट या खा सकता है?"

योगी जी हँसे, "यह तो ब्रह्म की माया है भाई। अज्ञानी को लगता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को, एक पशु दूसरे पशु को या एक पक्षी दूसरे पक्षी को खाता है, पर ज्ञानी जानता है कि जो जीव ब्रह्म से निकला, वह ब्रह्म में समा जाता है। यही तो भगवान की माया है। गीता में भगवान कृष्ण ने नहीं कहा कि मारने वाला कौन है और मरता कौन है?"

"तब भगवान ने ऐसा क्यों कर रखा है?" चेतन बोला, "यदि कोई किसी को मारता नहीं तो डाकुओं और क़ातिलों को फाँसी क्यों मिलती है और योग-साधन करने वालों के लिए 'हिंसा' से बचने का आदेश क्यों है? मुझे तो भगवान न सर्वशक्तिमान दिखायी देता है, न न्यायशील, न सर्वज्ञ। न मुझे आवागमन में कोई तथ्य दिखाई देता है, न कर्म-फल में। मुझे ये सब सिद्धान्त आदमी की सीमित बुद्धि और मृत्यु के भय का चमत्कार

दिखायी देते हैं। यदि भगवान सर्वशक्तिमान है तो उसने यह ऐसी ऊट-पटाँग हिंसा, घृणा, दुख और पीड़ा से भरी दुनिया बनायी ही क्यों? उसने इन्सान को सर्वगुण-सम्पन्न क्यों नहीं बनाया? यदि उसने यह खेल अपने मनोरंजन के लिए रचा है तो पाप-पुण्य कोई चीज़ ही नहीं, अपनी सीमित बुद्धि और संस्कारों और वातावरण के अनुसार मनुष्य काम करते हैं, उनको इसका दण्ड क्यों मिले? आदमी चूंकि मरना नहीं चाहता, इसलिए वह अगले जन्म की कल्पना करता है, जब अच्छे कर्म करने वाले को दुख मिलता है तो आदमी समझता है कि उसने पिछले जन्म में ज़रूर कुकर्म किये होंगे, क्योंकि इस जन्म में तो वह भलाई ही के काम कर रहा है और सोचता है कि अगले जन्म में ज़रूर उसे इन सत्कर्मों का सुफल मिलेगा।"

तभी वही नंगध-ड़ंग छोटा बच्चा 'भाईया जी,' 'भाईया जी!' कहता, बहती नाक सुड़कता और रिरियाता हुआ दहलीज़ में आ खड़ा हुआ।

अपना सारा संयम और शान्ति भूल कर योगी जालन्धरीमल जी चिल्लाये, "भागो यहाँ से!" और भद्दी पंजाबी गाली उसकी माँ को देते हुए उन्होंने आवाज़ दी कि उसे आ कर ले जाय। दूसरे क्षण एक मोटी भद्दी औरत आ कर घसीटती हुई उसे ले गयी। तब 'जैसे कुछ हुआ ही नहीं' के अन्दाज़ में पलट कर योगी जी ने जैसे उसे निरुत्तर करते हुए कहा, "यदि भगवान नहीं है तो यह सृष्टि किसने बनायी है? सृष्टि है तो इसका कोई बनाने वाला भी होगा।"

"तब उस बनाने वाले का कोई बनाने वाला क्यों नहीं होगा?" चेतन हँसा।

"लेकिन भगवान, जो सृष्टि का कर्ता है, जो अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी है, उसे कौन बनायेगा?"

"कौन कहता है कि उसमें ये सब गुण हैं?" चेतन ने कहा।

"जिन ऋषियों ने योग-बल से इस ब्रह्माण्ड का भेद जाना, इन नक्षत्रों की गति का पता लगाया, उन्हीं ने भगवान का भी पता लगाया।" योगी जी बोले।

"पर क्या ऐसा सम्भव नहीं," चेतन शरारत से हँसा, "कि पिछली

प्रलय से पहले इन्सान ने ऐसी ही उन्नति कर ली हो, जैसी कि वह आज कर रहा है, उसने विज्ञान के बल से नक्षत्रों का पता लगाया हो और ब्रह्माण्ड का भेद जान लिया हो और फिर किसी प्राकृतिक दुर्घटना अथवा उसके अपने ही किसी कुकृत्य के कारण प्रलय आ गयी हो, जल थल पर चढ आया हो और जहाँ जल था, वहाँ थल निकल आया और सारी पृथ्वी पर कहीं कुछ मनुष्य बच गये हों, जिनके पास उस ज्ञान की केवल याद-मात्र रह गयी हो और वह ज्ञान मौखिक रूप से हम तक आया हो। यदि किसी भगवान ने वह सब खेल रचा है, तो मैं उसे न्यायशील कभी नहीं कह सकता। प्रकृति में मुझे कहीं न्याय नहीं दिखायी देता। एक अन्धा आवेग (blind impulse) है, जो उसी तरह चला जा रहा है, जैसे यह पृथ्वी घूम रही है। न्याय-अन्याय, सुख-दुख, पुण्य-पाप, भले-बुरे की तुलना इन्सान ही करता है और मैं समझता हूँ इन्सान को पिछले या अगले जन्म की चिन्ता छोड़, इसी जन्म को बेहतर, सुखद, न्यायपूर्ण, शान्त बनाने वाले नये धर्म को विकसित करना चाहिए और ऐसा वह अपने दिमाग़ ही की मदद से कर सकता है, पिछली अनुभूतियों से शिक्षा पा कर कर सकता है, अपने इर्द-गिर्द के जीवन को देख कर, कर सकता है; समाधिस्थ हो, इस जग को माया समझ कर कभी नहीं कर सकता।"

योगी जी कुछ क्षण तक मौन रूप से उसकी ओर देखते रहे, फिर बोले, "आप नास्तिक हैं!"

चेतन ज़ोर से ठहाका मार कर हँसा। हुनर साहब ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर उसे आगे बात करने से रोकना चाहा, पर इतनी देर से बोर होने वाला उसका मन सहसा चंचल हो उठा था।

"आस्तिक और नास्तिक का प्रश्न नहीं," उसने कहा, "मैंने जो सुना और पढ़ा है, उसमें मुझे काफ़ी विरोध लगता है। एक ओर आत्मा को पा कर, ब्रह्म को पाने वाले योगी से कहा जाता है कि वह असत्य से, हिंसा से, चोरी से, ब्रह्मचर्य-हीनता से और धन के लोभ से बचे और इन्द्रियों का दमन कर, मन तथा शरीर की पवित्रता, सन्तोष, निष्ठा, अध्ययन, मनन, चिन्तन से भगवान को पाये। दूसरी ओर कर्म-योग में इस निग्रह की कोई

आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है निष्काम हो कर कर्म करने की। यदि कर्म करने में आप निष्काम हैं तो हज़ारों-लाखों की हत्या कर सकते हैं, झूठ, छल, कपट, प्रपंच सब का उपयोग कर सकते हैं। अर्जुन जब अपने बन्धु-बान्धवों को रण-क्षेत्र में अपने सामने देख कर, हथियार उठाने से सकुचा रहा था, तब भगवान कृष्ण ने उसे यही तो उपदेश दिया था। क्या आपका ख़याल है कि महाभारत के युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में धन की या ज़मीन की या यश की लिप्सा नहीं थी ? और आपका ख़याल है कि जब जयद्रथ ने अभिमन्यु की हत्या की, तो अर्जुन को दुख नहीं हुआ और जब अर्जुन ने जयद्रथ का वध किया तो उसे वध करने की कामना नहीं थी ? कामना को यदि कर्म से निकाल दिया जाय तो कर्म करने का आधे से ज़्यादा जोश ही ख़त्म हो जाय और शायद मज़ा भी....आप व्यापार करते हैं न ?" सहसा चेतन ने बात का प्रवाह रोक कर पूछा....

योगी जी ने इकरार में सिर हिलाया।

"क्या आपको झूठ नहीं बोलना पड़ता ? चार आने की चीज़ के आप छै आने नहीं लेते ?"

"पर हम व्यापारी हैं। हमारा कर्तव्य है व्यापार करना। हमारा प्रयास यही रहता है कि हमें जो कर्म करने को भगवान की ओर से मिला है, उसे निष्काम हो कर करें, फलाफल की चिन्ता न करें....और फिर पचास वर्ष की आयु होने पर तो हम इस सबसे भी मुक्त हो जायँगे।"

चेतन ने ज़ोर का ठहाका लगाया।

"आपको कोई दुख और सन्ताप है।" सहसा योगी जी ने कहा, "भगवान और धर्मशास्त्रों में आपकी आस्था नहीं, और बिना भगवान में लौ लगाये, शान्ति मिल नहीं सकती। अनास्थावान और अज्ञानी के भाग्य में दुख और सन्ताप लिखा है।" योगी जी के स्वर में किंचित क्रोध झलक आया, "आप हमारे गुरु श्री स्वामी अपूर्वानन्द जी से मिलिए, आपको ज्ञान और शान्ति दोनों का लाभ होगा।"

"मैं तो स्वामी अपूर्वानन्द जी से ज्ञान-लाभ कर लूँगा, पर ये जो करोड़ों लोग हैं, उनका क्या होगा ?" चेतन हँसा, "तत्व-ज्ञान तो हरेक के

बस का नहीं, भगवान को कोई विरला ही पाता है, पर इस प्रयास में लोग जो इस जीवन को सपना और माया और मिथ्या समझ कर भगवान-भरोसे छोड़ रहे हैं, उसी का यह परिणाम है कि हम सदियों से ग़ुलाम रहे हैं, हमारे यहाँ अकाल-मृत्यु संसार के सब देशों से ज़्यादा है—अशिक्षा, ग़रीबी, भुखमरी का दौर-दौरा है और लोग परमार्थ की चिन्ता में लीन हैं—परलोक बनाने की फ़िक्र में इहलोक को भूले बैठे हैं। परलोक में उन्हें न जाने सुख मिलता है कि नहीं, पर इस लोक में दुख ज़रूर मिलेगा। और हमारे ज्ञानी उधर ध्यान देने के बदले ब्रह्म की चिन्ता में निमग्न है।"

योगी जी ने जैसे उसकी बात नहीं सुनी। क्रोध को अपार संयम से रोक कर बड़ी धीरता से उन्होंने कहा, "आप स्वामी अपूर्वानन्द जी से मिलिए, आपको निश्चय ही शान्ति मिलेगी।"

"मैं अशान्त ज़रूर हूँ," चेतन ने कहा, "पर मैं न संसार से मुँह मोड़ सकता हूँ, न कामना छोड़ सकता हूँ। मेरा ध्यान न पूर्व जन्म की ओर है न आगामी जन्म की ओर। मैं इस जन्म को सफल और सुखी बनाना चाहता हूँ। मेरी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं, वातावरण अच्छा नहीं, लेकिन मैं इसी में से रास्ता निकालूँगा। मुझे देर लगेगी, पर मैं रास्ता ज़रूर निकाल लूँगा।"

"लेकिन आपके महात्मा गान्धी तो गीता के भक्त है। कर्मयोग में उनका अपूर्व विश्वास है।"

"महात्मा गान्धी से तो मेरी भेंट नहीं हुई," चेतन हँसा, "फिर मैंने यह कब कहा है कि हमारे दर्शन में जो है, सब बकवास है। महात्मा गान्धी ने दाने निकाल लिये होंगे, जब कि दूसरे बुद्धिमान केवल भुस को समेटे जा रहे हैं....अच्छा तो नमस्कार!"

एक बार हुनर साहब ने उसे बैठने के लिए कहा, पर जब चेतन बोला कि मैं सुबह का निकला हूँ, मुझे अब चलना चाहिए तो फिर उन्होंने ज़ोर नहीं दिया। चेतन की बातों से योगी जी के माथे पर जो तेवर आ गये थे, उन्हें दूर करना भी तो उन्हीं का कर्तव्य था, क्योंकि चेतन उन्हीं के साथ आया था। फिर, उपनिषदों के अनुवाद की बात चला कर, शाम के

चाय-पानी का भी कुछ प्रबन्ध उन्हें करना था। इसके अतिरिक्त वे अपने साथ 'विधवा-सहायक' की फ़ाइलें भी उन्हें दिखाने ले आये थे।....चेतन उठा तो वे भी उठे, पर दरवाज़े तक नहीं गये। वहीं से उन्होंने उसके हाथ को दोनों हाथों में ले कर, ज़रा पीछे को खींच, स्वयं ज़रा आगे झुक कर मुस्कराते हुए बड़ी स्निग्धता से उसे दबाया और कहा कि शाम को लाला गोविन्दराम की ओर जायेंगे, एक मुशायरा रखने की कोशिश कर रहे हैं, सम्भव हो तो वह शाम को उनसे मिले।

चेतन ने न 'हाँ' की, न 'न' और हाथ मिला कर चल दिया।

शाम

अट्ठाईस

मण्डी बाज़ार को पार कर चेतन स्टेशन तक आया तो उसका दिमाग़ आत्मा-परमात्मा, सुख-शान्ति, आनन्द और परमानन्द, ज्ञानयोग और कर्म-योग में उलझा हुआ था। क्षण भर को अड्डे पर रुक कर उसने एक नज़र ताँगों पर डाली कि यदि कोई ताँगा पंजपीर अथवा अड्डा होशियारपुर को जा रहा हो तो उस पर जा बैठे, लेकिन शायद कोई गाड़ी आने वाली थी, ताँगे वाले सब अपने अड्डे पर नम्बरवार खड़े थे—दो-एक सवारियों को बैठाये, अन्य सवारियों की तलाश में। सिपाहियों को चकमा देता हुआ, एक भी ताँगा अड्डे के बाहर न घूम रहा था। चेतन चुपचाप स्टेशन रोड को हो लिया। यद्यपि यहाँ भी बीच-सड़क काफ़ी कीचड़ था, पर सड़क के किनारे-किनारे लोगों के लगातार चलने के कारण अपेक्षाकृत सख़्त पगडण्डी बन गयी थी। पतलून के पायँचे उसने ढीले छोड़ दिये और धीरे-धीरे चल पड़ा।

o

....लाला जालन्धरीमल की दुकान से निकल, बीच-सड़क रुक कर वह ज़ोर से ठहाका मार कर हँस दिया था। जान-बूझ कर उन्हें छेड़ने और सयत्न बनाये हुए उनके शान्ति के पोज़ को भंग कर देने पर उसे शरारती

बच्चे जैसी खुशी हुई थी....'स्साला योगी का....' उसने मन-ही-मन कहा था, 'चार दिन की जेल ने लाला का सारा देश-प्रेम निकाल दिया और तत्वज्ञानी बन बैठा—'इक सुंड्ढ दी गंड्ढी लब्भी एस बांदर, हट्ट पा बैठा इह पंसारियाँ दी।'[1]—बरसों पहले हरबल्लभ के मेले पर पोने की बैत-बाज़ी मे सुने हुए बैत की एक पंक्ति उसके मस्तिष्क में कौंध गयी और वह मुस्करा दिया....'जालन्धरीमल जी 'सरफ़रोश'....सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है....जालन्धरीमल जी योगी—सुख-दुख से ऊपर उठ कर, आत्मा को परमात्मा मे लीन करने और परमानन्द की प्राप्ति करने वाला; परम धैर्यवान; स्थितप्रज्ञ; त्रिगुणातीत....मौन रूप से दूसरों के मन पर प्रभाव डालने वाला... हा हा हा....।'

लेकिन यों ठहाका मार कर वह उस विषय को अपने दिमाग़ से हटा न सका था। लाला जालन्धरीमल ढोंगी ज़्यादा हों और योगी कम, लेकिन उस दर्शन में क्या कुछ भी तत्व नही ? इतनी सदियों से वह दर्शन भारतीयों ही को नहीं, विदेशियों को भी प्रभावित कर रहा है, उसे ही क्यों उसमें आस्था नहीं होती ?

चेतन ने सोचा तो पाया कि इसका कारण उसके घर का अति धार्मिक वातावरण और आर्यसमाजी संस्थाओं में उसका शिक्षा प्राप्त करना है। उसके दादा चण्डी के उपासक ही न थे, शिव के भक्त भी थे और अन्य सभी देवी-देवताओं की पूजा भी नियम-पूर्वक करते थे। ढाई घण्टे तक चण्डी के स्तोत्र का पाठ कर तब अन्न मुँह को लगाते थे। उसकी माँ लल्लूलाल का 'प्रेम-सागर' जिस निष्ठा से पढ़ती थी, गीता का पाठ भी उसी निष्ठा से करती थी। उसके लिए वह पाठ किसी सामाजिक अथवा व्यक्तिगत दर्शन का नहीं, नित्य-नियम ही का अंग था। इन पुस्तकों का पाठ, पुण्य का काम है और इन्हे नित्य पढ़ने मे मुक्ति मिलती है, यही विचार उसे उन पुस्तकों का पाठ करने की प्रेरणा देता था। गीता के श्लोकों और उनके

---

१. इस बन्दर को सोंठ की एक गाँठ मिली और यह पंसारी की दुकान सजा बैठा।

गहन दर्शन, ज्ञानयोग और कर्मयोग को तो वह क्या समझती, हर अध्याय के साथ जो माहात्म्य थे, वह तो उन्हीं को पढ़ती थी। उन अध्यायों को पढ़ने से कौन कैसे भवसागर से तर गया, यह जान कर उसे बड़ा सुख मिलता और चूँकि इस संसार में उसने दुख-ही-दुख देखा था, वे माहात्म्य उसे बड़े ही अच्छे लगते थे। लेकिन चेतन को सत्यनारायण की कथा में (जो उसके घर पर हर पूर्णमासी को होती) और उन माहात्म्यों की कथाओं में कोई अंतर न लगता। आर्यसमाजी स्कूल में पढ़ने पर उसने जो तर्क-बुद्धि पायी, उससे उसने जाना कि वे सब कहानियाँ नितान्त असत्य हैं—ज्ञानयोग और भक्तियोग में जो अंतर है, वही गीता के अध्यायों और इन माहात्म्यों में उसे दिखायी देता था।....ज्ञानयोग अथवा कर्मयोग की बारीकियों को समझना चूँकि हर किसी के बस का नहीं, इसलिए उन माहात्म्यों को जोड़ दिया गया था ताकि उनके कारण बार-बार उन श्लोकों का पाठ करते हुए साधारण लोगों के मन पर उस गहन दर्शन का कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़े। आत्मा क्या है, इसे आम आदमी नहीं समझता, पर बार-बार गीता का पाठ करते हुए वह इतना जान लेता है कि आत्मा अमर है, अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है....और यों साधारण जन के मन से मृत्यु का भय किंचित कम हो जाता है। .. आसक्ति क्या है और काम (कामना) क्या है और आदमी काम रहित कैसे हो सकता है? यह शायद साधारण जन नहीं समझ पाता, पर उसे कर्म करना चाहिए, फल की चिन्ता न करनी चाहिए, बार-बार गीता का पाठ करते हुए यह बात उस की समझ में आ जाती है।....स्थितप्रज्ञ तो साधारण आदमी क्या बनेगा! आसक्ति से कामना कैसे उत्पन्न होती है? यह वह नहीं समझता, पर क्रोध मूढ़ भाव को पैदा करता है, सोचने-समझने की शक्तियों का नाश करता है, यह बात वह कुछ-कुछ समझ जाता है .. माँ से बार-बार सुने हुए कई श्लोक चेतन को कण्ठस्थ थे....लेकिन माँ को उन्हें पढ़ कर जितनी शान्ति मिलती थी, चेतन को उतनी ही उलझन होती थी....

बचपन में जब वह माँ से गीता की कथा सुनता था, तो उसे अक्षरशः सत्य समझता था—उसके सामने कुरुक्षेत्र की रणस्थली, कौरवों-पाण्डवों

की सेनाएँ, अर्जुन का रथ, अपने सामने बन्धु-बान्धवों और गुरुजनों को देख कर मोहग्रस्त हो, गाण्डीव रखता हुआ कुन्ती-नन्दन और गीता का उपदेश देते हुए कृष्ण घूम जाते। लेकिन बड़े होने पर उसे वह घटना नितान्त असत्य लगती। कौरव और पाण्डव भी होंगे और उनमें महाभारत का युद्ध भी अवश्य हुआ होगा, पर दोनों सेनाओं के मध्य रथ रोक कर कृष्ण ने अर्जुन को गीता का इतना सारा ज्ञान दिया होगा, यह उसे असम्भव लगता। उस स्थिति में अधिक-से-अधिक दूसरे अध्याय ही की ज़रूरत थी, अपना विराट रूप भी कृष्ण दिखा सकते थे, पर राजयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इस सब की वहाँ क्या ज़रूरत थी ?....माँ कृष्ण को भगवान समझती थी और उसे उनका हर वाक्य सत्य लगता था, पर भगवान हो कर कृष्ण का अर्जुन को शास्त्रों के अनुसार चलना और वर्ण-आश्रम को मानने का उपदेश देना चेतन को ठीक न लगता। आर्यसमाज के प्रभाव में चेतन के मन में शूद्रों के प्रति गहरी सहानुभूति उत्पन्न हो गयी थी। वर्णाश्रम धर्म यदि ठीक था, तो बेचारे शूद्रों के लिए वह सब ज्ञान वर्जित था। केवल सेवा करना और अज्ञान के गहरे अन्धकार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज़िन्दगी गुज़ारना, उनकी नियति थी। भगवान कैसे इस सब का उपदेश दे सकता है....फिर विभूति योग के अन्तर्गत उसे कई ऐसी बातें सुनने और पढ़ने को मिली थीं, जो उसकी समझ में एकदम न आयी थीं। एक स्थल पर कृष्ण ने कहा है—मैं छलनाओं में जुआ हूँ।—'भगवान कैसे यह कह सकता है ?' उसने माँ से पूछा था। तब माँ ने उसे व्याख्या पढ़ कर सुनायी थी कि संसार में उत्तम, मध्यम और नीच—जितने भी जीव और पदार्थ हैं, सभी में भगवान व्याप्त हैं और भगवान ही की सत्ता-स्फूर्ति से सब चेष्टा करते हैं। ऐसा एक भी पदार्थ नहीं, जो भगवान की सत्ता और शक्ति से रहित हो। ऐसे सब प्रकार के सात्विक, राजस और तामस जीवों एवं पदार्थों में जो विशेष गुण, विशेष प्रभाव और चमत्कार से युक्त हैं, उन्हीं मे भगवान की सत्ता और शक्ति का विशेष विकास है।

लेकिन चेतन को यह व्याख्या परस्पर-विरोधी लगती थी, भगवान सभी जीवों में भी व्याप्त हैं और उनमें जो विशेष गुण है, उसमें उसकी

शक्ति का विशेष विकास भी है। भगवान का यह पक्षपात क्यों ?....पर माँ बेचारी उसकी बात का क्या उत्तर देती ? उसे उसका यह तर्क करना ही पाप लगता था।

चेतन ने वह पूरा अध्याय पढ़ा था और वह सारे-का-सारा उसे असंगतियों और परस्पर-विरोधी बातों से भरा लगता था।....भगवान छलनाओं में द्यूत ही नहीं था, पशुओं में सिंह भी था और जलचरों में मगरमच्छ भी। वह यादवों में कृष्ण था और पाण्डवों में अर्जुन (कैसे कृष्ण स्वयं यह बात कह सकते थे, यह उसकी समझ के बाहर की बात थी) वह घोड़ों में उच्चैःश्रवा, हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में राजा था (इस अन्तिम बात पर चेतन को घोर आपत्ति थी, राज्याश्रयी ब्राह्मण यह बात कह सकता था। पर भगवान नहीं)....फिर वह मुनियों में कपिल भी था और वेदव्यास भी (यह अन्तिम बात उसे अत्यन्त हास्यास्पद लगती।)

लेकिन और बड़ा होने पर उसने जाना कि गीता में जिस घटना का उल्लेख है, वह कहीं नहीं घटी, महर्षि वेदव्यास ने इस घटना के माध्यम से उपनिषदों के ज्ञान का सार गीता में उपस्थित किया है और उस ज्ञान को बोधगम्य बनाने के लिए उस घटना का सहारा लिया है....फिर यदि कवि ग़ालिब अपने-आपको वली समझ सकता था तो कवि वेदव्यास भगवान क्यों न बन सकते थे। ग़ालिब ने 'मीर' की प्रशंसा की थी। वेदव्यास ने कपिल की प्रशंसा कर दी (भगवान के मुँह से करा दी।)

और यह अहं से ऊपर उठने का उपदेश देने वाले महर्षि की बात थी। गीता के अध्यायों में उलझा, सड़क के कीचड़ से बच कर चलता हुआ चेतन सहसा मुस्करा दिया।....वास्तव में आर्यसमाज के स्कूल और कॉलेज में उसे जो शिक्षा मिली थी, उसने दादा और माँ से मिले उसके सनातन-धर्मी विश्वासों को बुरी तरह झकझोर दिया था। कृष्ण को अवतार माने बिना गीता की सम्पूर्ण शिक्षा को ग्रहण करना असम्भव था, पर वह कृष्ण को अवतार न मानता था। वह अपने पिता के शब्दों में उन्हें महामानव मान सकता था; पर वे भगवान थे और धर्म की ग्लानि होने के कारण

उन्होंने धर्म के अभ्युत्थान के हेतु जन्म धारण किया था, इसे वह नहीं मानता था।....

आर्यसमाज का विश्वास देवी-देवताओं में न था, सगुणोपासना में न था, इसलिए भक्ति अथवा विभूतियोग में न था, पर ज्ञानयोग और कर्मयोग और राजयोग में (उपनिषदों के सार-स्वरूप) आर्यसमाज की परम आस्था थी।....लेकिन उस तर्क-बुद्धि से, जो उसे आर्यसमाज ही से मिली थी, चेतन का विश्वास उन मान्यताओं में भी न होता था। आत्मा, परमात्मा, आवागमन और मोक्ष में आर्यसमाज की परम आस्था थी। लेकिन चेतन को ये सब ऐसे सत्य न दिखायी देते, जिन पर कोई उँगली न उठा सके। कृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं :

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि
जातस्य हि ध्रुवोर्मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च

—किन्तु यदि तू इस आत्मा को सदा जन्म लेने और मरने वाला मानता हो (अमर न मानता हो) तो भी हे महाबाहो, तुम्हें इस प्रकार शोक न करना चाहिए, क्योंकि इस मान्यता के अनुसार जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है....

....लेकिन यदि अर्जुन की जगह चेतन होता तो वह कहता कि आत्मा के अमरत्व ही में नहीं, आत्मा के अस्तित्व में भी मुझे विश्वास नहीं।

'लाखों में, करोड़ों में कोई विरला ही तत्वज्ञानी उस आत्मा को, उस ब्रह्म को पाता है,' बार-बार गीता में उसने पढ़ा था .. लेकिन पाता है, इसका भी क्या भरोसा है? शायद वह समझ लेता है कि उसने पा लिया ....ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी ने तो उसे पाया, लेकिन उनके मतों में कितना अंतर है।....और अनास्था के क्षणों में चेतन को कहीं रास्ता न मिलता।

०

जहाँ तक कर्मयोग का सम्बन्ध था, चेतन की समझ में यह बात न आती थी कि कामना-रहित हो कर आदमी कैसे कर्म कर सकता है और सफल हो सकता है। क्रोध, जिसे गीता में बुद्धि का नाश करने वाला कहा

गया था, चेतन को बड़ी भारी शक्ति लगता थी। स्मृति-विभ्रम और बुद्धि का नाश करने के बदले स्मृति की धार को तेज़ और बुद्धि को बारीक कर देने वाला! यदि भगवान छलनाओं में द्यूत है, पशुओं मे सिंह और जलचरों में मगरमच्छ है तो आवेगों में वह निश्चय ही क्रोध है—चेतन ऐसा मानता था। प्रश्न वास्तव में क्रोध के प्रकार का था। गीताकार ने क्रोध का वर्गीकरण नहीं किया था। क्रोध स्वार्थ-जनित भी हो सकता है, परमार्थ-जनित भी; क्रोध नैतिक भी हो सकता है, अनैतिक भी; ग़लत भी हो सकता है, सही भी। हो सकता है कि ग़लत, अनैतिक और स्वार्थ-जनित क्रोध मूढ़ भाव पैदा कर, बुद्धि का नाश कर दे; पर वह जिसे अंग्रेजी में न्याय-जनित क्रोध (righteous anger), अमर्ष कहते हैं, वह बुद्धि को नष्ट नहीं, उसको तीक्ष्ण करता है, ऐसा चेतन समझता था। महात्मा गान्धी के सम्बन्ध में प्रचलित था कि वे युग के महान कर्मयोगी हैं, लेकिन अंग्रेज़ी सत्ता के नीचे पिसते हुए गुलाम भारतीयों को देख कर उनके मन में कुढ़न (जो क्रोध ही का दूसरा रूप है) न होती होगी, उस अमर्ष की अग्नि उनके अन्तस में मौन रूप से प्रज्वलित न होती होगी, इसे चेतन स्वीकार करने को तैयार न था। उस कुढ़न के बिना अपनी मेधा की समस्त शक्तियों को उस निष्ठा से विदेशी सरकार के विरुद्ध लगा सकना, उसे नितान्त असम्भव लगता था।

चेतन के विचार में प्रश्न केवल क्रोध का नहीं था, वरन अन्यायपूर्ण अथवा न्यायपूर्ण क्रोध का था। और क्रोध के ये दोनों प्रकार संगत अथवा असंगत, न्यायपूर्ण अथवा अन्यायपूर्ण, सही अथवा ग़लत काम से जुड़े थे। गीता का सर्जक यह कह कर छुट्टी पा गया था कि 'कौन-सा काम करने योग्य है और कौन-सा करने योग्य नहीं, इसका निर्णय करने में बड़े-बड़े ज्ञानी चक्कर में पड़ जाते हैं।' पर चेतन को लगता था कि सही योग तो इसी बात का निर्णय करने में है, इससे भाग कर स्थितप्रज्ञ होने में नहीं।
....एक बार अंग्रेज़ ट्रैफ़िक इन्स्पेक्टर ने उसके पिता को डैम फ़ूल (damned fool) कह दिया था और उसके पिता ने ज़ोर से एक थप्पड़ खींच कर उसके दे मारा था। टी० आई० ने उसी वक़्त उन्हें सस्पेण्ड कर दिया

था। तब एक दुर्निवार क्रोध ने चेतन के पिता की समस्त मेधा को एक तीखी धार दे दी थी। उस ज़माने में, जब अंग्रेज़ के सामने ज़ोर से बोलना भी गुनाह था, उन्होंने अपना मामला स्वयं लड़ा था और जीत गये थे। वह टी० आई० उनकी लाइन से बदल दिया गया था। 'अगर तुम सच्चाई पर हो,' उसके पिता कहते थे, 'तो मत डरो, भगवान ने तुम्हें बुद्धि दी है, उसका प्रयोग कर, पूरी निष्ठा से मुकाबिले पर डट जाओ। तुम निश्चय ही जीतोगे।' और माँ द्वारा दी गयी सीख की अपेक्षा यह सीख चेतन को ठीक लगती थी और उसने अपने लिए एक दर्शन बना लिया था। वह गीता का दर्शन न था। शायद कच्चा और त्रुटिपूर्ण भी था, पर चेतन को वही अच्छा लगता था। उसने उसे 'नवीन कर्मयोग' का नाम दे रखा था। इस दर्शन के अनुसार वह अपेक्षा रखता था कि कर्मयोगी पहले तय करे कि उसका पक्ष सच्चा है या झूठा, न्यायसंगत है अथवा अन्यायसंगत, नैतिक है अथवा अनैतिक। वह आत्मालोचन से इस बात को जानने की शक्ति पैदा करे और जब इसका निर्णय कर ले, तो (यदि वह सच्चाई पर हो तब) पूरी शक्ति से तीव्र कुढ़न और न्याय-संगत, दुर्निवार क्रोध से अपने पक्ष की सिद्धि में जुट जाय और सफलता पा कर ही दम ले....'अच्छे की आशा रखो और बुरे के लिए तैयार रहो' (hope for the best and be prepared for the worst) उसके पिता करते थे और इसी के अनुसार उसने गीता से इतना ले लिया था कि वह फलाफल की चिन्ता न करे, सफलता के लिए पूरी कोशिश करे, पर असफलता के लिए तैयार रहे।

स्थितप्रज्ञता, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, तत्वज्ञान और मोक्ष उसे आकर्षित नहीं करते थे—उसे अपना यह नवीन कर्मयोग ही आकर्षित करता था और ज्यों-ज्यों वह सोचता था, उसे गीता के कर्मयोग से यह कहीं कठिन दिखायी देता था। कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखना, आसक्ति और कामना-रहित हो कर अपने समस्त कर्मों को भगवान के अर्पण करना, उसे जितना कठिन लगता था, उतना ही कठिन सही और ग़लत कर्म में, न्याय-संगत और अन्याय-संगत क्रोध में विभेद की शक्ति पैदा करना। ऐसी प्रज्ञा, जो आत्म-वंचना का शिकार हुए बिना, करणीय तथा अकरणीय कर्मों का

निर्णय कर सके, उसके निकट सुगम न थी। जिस निर्णय में बड़े-बड़े ज्ञानी चक्कर में पड़ जाते हैं, उसी निर्णय पर पहुँचना उसके विचार में सच्चा योग था। ऐसी प्रज्ञा निरपेक्ष भाव से अपनी भावनाओं, अपने मनोविज्ञान, अपने कर्मों का जायज़ा लेते रहने और आत्मालोचन की शक्ति पैदा करके ही प्राप्त की जा सकती है। एक बार पता चल जाने पर कि जो काम वह करने जा रहा है, वह सही और न्यायपूर्ण है, फिर उसे करने और उसमें सफलता पाने में आवेग-रहित, एकदम ठण्डी, पर निरन्तर धधकती आग ऐसी निष्ठा से लग जाना और उसमें सफलता पाना ही उसे श्रेयस्कर लगता था। इतना सब जान लेने पर मन और तन की पूरी शक्ति लगा देने पर असफलता भी मिल सकती है, इसमें उसका ज़रा भी विश्वास न था। लेकिन उसकी चिन्ता वह नहीं करेगा, इतना उसने बड़े उदार भाव से गीता के सर्जक से ले लिया था।....'मैं कभी इस नवीन कर्मयोग को ले कर, नयी गीता का सर्जन करूँगा,' उसने मन-ही-मन कहा, 'लेकिन इससे पहले मुझे महात्मा गान्धी और महात्मा तिलक के गीता-भाष्यों को पढ़ लेना चाहिए, उपनिषदों को भी किसी अधिकारी से पढ़ लेना चाहिए और इस विषय में पश्चिमी दार्शनिकों के मत भी जान लेने चाहिएँ....'

•

"बम्बई की बिल्ली....इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी की लाजवाब फ़िल्म.... मलका-ए-हुस्न मिस माधुरी की दिलफ़रेब एक्टिंग...."

चेतन ने नज़र उठायी—लम्बी-लम्बी तिकोनी टोपियाँ और जोकरों के कपड़े पहने, बाँसों पर लगे फ्रेमों पर चस्पाँ, 'बम्बई की बिल्ली' के पोस्टर उठाये नारे लगाने वाले लड़कों के आगे-आगे कवि हरदयाल हाथ में घण्टी लिये, नये फ़िल्म के पोस्टर बाँटते आ रहे थे। शायद पूरे शहर का चक्कर लगा कर आये थे और चूँकि सिनेमा-घर के पास पहुँच गये थे, इसलिए उनकी आवाज़ में जोश आ गया था....तीखा नाक-नक्शा, लम्बा-पतला शरीर, उस पर उटंग पायजामा, कमीज़ और कोट, सिर पर पगड़ी, शमला आगे... कवि हरदयाल में इन आठ वर्षों ने कोई अंतर न पैदा किया था और चेतन के सामने कई दृश्य घूम गये, जब वह आठवीं कक्षा में पढ़ता था

और हरबल्लभ के मेले में पोने की बैतबाज़ी में हरदयाल के बैत सुनता था, जिनमें हर अन्तिम पंक्ति के पहले ये शब्द होते—

हरदयाल ने बैत तैयार कीत्ती....

वे लोग सिनेमा-घर के अन्दर चले गये तो चेतन भी उनके पीछे हो लिया।

उनतीस

बाज़ार के साथ ही गरारियों पर लगे लोहे के, छत तक ऊँचे दरवाजे के बाद बड़ा-सा कमरा था, जिसमें सामने वैसा ही लोहे का दरवाजा लगा था और उसके परे मँडुए के साथ लम्बा-सा गलियारा था, जिसमें, रुपये, बारह आने, आठ आने और चवन्नी वाले दर्जे थे। जब यह सिनेमा-घर केवल टीन का मँडुवा था और सफ़री थियेटर कम्पनियाँ आ कर वहाँ अपने खेल दिखाया करती थीं तो इसका प्रवेश-द्वार पिछली गली की ओर था। उधर मँडुए के बाहर खुला अहाता और टिकट-घर था, लेकिन सिनेमा-घर के नये मालिक (मालिक तो पुराने ही थे, कहा जाय कि नये लीज़-होल्डर) ने यह दरवाजा निकाल लिया था, इधर से भीड़ को दाखिल करने में आसानी होती थी। दफ़्तर तो उधर ही था, पर वे शाम को गलियारे में आराम-कुर्सियाँ डाल कर बैठ जाया करते थे।—पतले-छरहरे, नफ़ीस सूट पहने हुए, गेहुँआँ रंग और होंटों पर भलमन्सी-भरी मुस्कान—कुछ ही वर्ष पहले हमीद और उसने मिल कर उन्हें खूब बेवकूफ़ बनाया था और चेतन लग-भग साल भर तक रोज़ मुफ़्त सिनेमा देखता रहा था। उन्हें उसकी चालाकी का पता भी चल गया तो भी (निश्चय ही अपनी भलमन्सी के कारण) वे कुछ कर न पाये थे।....उस घटना की याद आते ही चेतन

के होंटों पर मुस्कान फैल गयी और उसने सोचा कि वह ज़रा आगे तक हो आये—शायद दफ़्तर में अथवा मँडुए के बाहर लाला मोहनलाल मिल जायँ और उनके दर्शन हो जायँ....

०

बात उन दिनों की है, जब चेतन से हमीद का परिचय हुआ ही था और चेतन ने मीनाक्षी रामाराव का चित्र मँगा कर हमीद को चकित कर दिया था और चन्दा देवी 'कुमुद' के लेख प्रसिद्ध फ़िल्मी पत्रिकाओं में निकलने लगे थे। फ़िल्म सम्बन्धी लेख लिखने में चेतन को सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उसका सारा ज्ञान पत्र-पत्रिकाओं तक ही सीमित था। सिनेमा देखने के लिए वह चवन्नी भी न जुटा सकता था। केवल एक आना रोज़ उसे जेब-खर्च के लिए मिलता था, सुबह नाश्ता करके तीन-साढ़े-तीन मील कॉलेज जाने के कारण उसे दोपहर को भूख लग आती थी और उस एक आने में से दो पैसे की बर्फ़ी खा कर, वह दो पैसे की मीठी (यद्यपि पतली) लस्सी पी लेता था। हमीद ने जब उसे एक-दो बार सिनेमा देखने को चलने के लिए कहा तो वह टाल गया था। फिर एक दिन जब उसके पिता जालन्धर आये थे और उनकी जेब कुछ भारी थी और वे अच्छे मूड में थे और उन्होंने अपने सब बेटों को चवन्नी-चवन्नी दी थी तो उनके जाने के बाद दूसरी शाम, उसने हमीद से कहा था कि उसके पास चार आने हैं, यदि वह चार आने वाले दर्जे में बैठ कर उसके साथ सिनेमा देख सकता है तो चले।

हमीद ने कहा था कि चवन्नी में दुनिया-जहान के ऐरे-ग़ैरे, नत्थू-खैरे बैठते है, फिर इतने निकट से सिनेमा देखने से आँखें ख़राब हो जाती हैं, लेकिन चलो तुम्हारी खातिर चवन्नी ही में चलते हैं।

सुलोचना और डी० बिलीमोरिया की पिक्चर थी। उसका पहला दृश्य सदा के लिए चेतन के मन पर अंकित हो गया।....डी० बिलीमोरिया[1] फ़ौजी वर्दी पहने, जहाज़ के डेक पर कोहनी टेके खड़ा, समुद्र को देख रहा

१. मौन चित्रपटों के जमाने का प्रसिद्ध अभिनेता।

हैं; जहाज़ बम्बई की बन्दरगाह पर लगने वाला है; परिन्दे जहाज़ के इर्द-गिर्द मँडरा रहे हैं....तभी उड़ता हुआ एक काग़ज़ डी० बिलीमोरिया के हाथ आ जाता है। वह किसी का पत्र है। उसकी निगाहें उठती हैं; डेक के दूसरे किनारे सुलोचना खड़ी है, वही ख़त पढ़ रही थी कि हवा से वह उसके हाथ से उड़ गया। वह अपना पत्र लेने आती है। दोनों की निगाहें मिलती हैं और एक-दूसरे की हो जाती हैं....इसके बाद उस फ़िल्म में क्या हुआ था, चेतन को याद नहीं। कोई खलनायक था, जो जहाज़ ही में सुलोचना के पीछे लगा था, वह उसको उड़ा कर ले जाता है। डी० बिलीमोरिया पीछा करता है....मोटरों की दौड़....लड़ाई....और अन्त में नायक-नायिका का सुखद मिलन....

और उसी दिन से चेतन सुलोचना का शैदाई हो गया था। उसने पहले उसे केवल फ़िल्मी पत्र-पत्रिकाओं में देखा था, लेकिन फ़िल्म के पर्दे पर उसे देख कर तो उसके दिल की धड़कन कहीं ज़्यादा बढ़ गयी थी। फ़िल्म देख कर जब वे बाहर आये थे तो हमीद ने कहा था, "चलो ज़रा मोहनलाल जी से कहें कि कुछ अच्छी फ़िल्में मँगाया करें, यह क्या मार-धाड़, लड़ाई-भिड़ाई की फ़िल्में मँगाते हैं?"

यद्यपि चेतन को फ़िल्म बहुत भायी थी और उसे लगा था कि हमीद केवल स्नॉबरी झाड़ रहा है, लेकिन उसने प्रतिवाद नहीं किया। "मोहन-लाल कौन हैं?" उसने केवल इतना ही पूछा।

"मालिक हैं।"

"तुम जानते हो उन्हें?"

"हाँ! मैं जब आता हूँ, उनसे फ़िल्म की अच्छाई-बुराई पर हमेशा बात करता हूँ।"

हमीद अंग्रेज़ी बहुत अच्छी बोलता था। कॉलेज के वाद-विवाद में हमेशा फ़र्स्ट रहता था और उसे बात-चीत करने में ज़रा-भी संकोच न था। फ़िल्म ख़त्म होने पर मोहनलाल जी कुर्सी से उठ कर टहलने लगे थे। उनका क़ायदा था कि फ़िल्म शुरू होने के कुछ पहले आते थे। फ़िल्म शुरू होने पर अन्दर फ़र्स्ट-क्लास के किसी ख़ाली कौच पर जा बैठते थे

अथवा घर या बाज़ार चले जाते थे। फिर पहले शो के ख़त्म होने और दूसरे के शुरू होने पर आ जाते थे।

"बाइ द वे, ह्वाई डोण्ट यू गेट फ़िल्म्ज़ लाइक कण्ठाहार ?"[१] हमीद ने उनके पास रुक कर पूछा था।

"कण्ठाहार ! हमने तो नाम भी नहीं सुना।" मोहनलाल जी ने सादगी से मुस्कराते हुए कहा था।

वास्तव में 'फ़िल्म लैण्ड' कलकत्ता के ताज़ा अंक में (चेतन 'फ़िल्म लैण्ड' मँगाया करता था) कण्ठाहार की बड़ी तारीफ़ छपी थी। उसमें मौन चित्रपटों का प्रसिद्ध बंगाली नायक दुर्गादास काम करता था। चेतन और हमीद को वह इतना सुन्दर लगता था कि उनके मन में उसे फ़िल्म के पर्दे पर देखने की बड़ी इच्छा थी। उन्हें यह समझ न थी कि 'फ़िल्म लैण्ड' में जिन फ़िल्मों की प्रशंसा अथवा आलोचना होती थी, वे बंगाली फ़िल्में थीं और शब्द 'कण्ठाहार' नहीं 'कण्ठहार' था, पर जिस प्रकार उनको कुमुद की समझ न थी और वे उसे 'कुमुद' के बदले 'कुमद' लिखते थे, उसी प्रकार कण्ठहार को भी कण्ठाहार कहते थे। लेकिन यदि उन्हें समझ न थी तो मोहनलाल जी को भी नहीं थी। उन्होंने हमीद से कहा कि आप हमें अच्छी फ़िल्मों का पता दीजिए, हम मँगायेंगे।

तब हमीद ने चेतन का परिचय दिया कि इनको फ़िल्मों का काफ़ी ज्ञान है, इनकी पत्नी श्रीमती चन्दा देवी 'कुमुद' बी० ए०, फ़िल्मी पत्रिकाओं में लिखती हैं।

"अच्छा !" श्री मोहनलाल ने चेतन की ओर हाथ बढ़ाया और पूछा "किस कॉलेज से उन्होंने बी० ए० किया है ?" (क्योंकि जालन्धर में तो लड़कों का डिग्री-कॉलेज भी उसी वर्ष शुरू हुआ था।)

चेतन निश्चित रूप से कोई उत्तर न दे पाता। उसका रंग एकदम उड़ गया। लेकिन हमीद क्षण भर को भी नहीं रुका, उसने कहा, "विमेंज़ कॉलेज, लाहौर से।" और फिर उसी साँस में उसने कहा, "चेतन उर्दू के

---

१. मैं कहता हूँ कि आप कण्ठाहार जैसी फ़िल्में क्यों नहीं मँगाते ?

शायर हैं और इनकी कहानियाँ लाहौर के सभी अख़बारों में छपती हैं, आप इनसे अपने हैण्ड-बिल लिखाया कीजिए।"

"हाँ-हाँ, ज़रूर....ज़रूर !" मोहनलाल जी ने सोल्लास कहा।

और दोनों मित्र हाथ मिला कर चले आये।

०

"यार तुमने मेरा चार आने में आना भी बन्द कर दिया।" चेतन ने बाहर सड़क पर आ कर कहा।

"क्यों ?" हमीद ने पूछा।

"अब जिसकी बीवी बी० ए० हो और विमेंज़ कॉलेज, लाहौर की ग्रेज्युएट हो, वह चवन्नी में पिक्चर देखेगा !"

"अरे तुम इसके लिए बढ़िया विज्ञापन लिखो। यह ख़ुद तुम्हें पिक्चर दिखायेगा।" और वह ज़ोर से ठहाका मार कर हँसा।

स्टेशन रोड के ख़त्म होने पर हमीद चारबाग़ की ओर मुड़ा।

"क्यों....क्यों....?" चेतन ने सहसा पूछा।

"मुझे इधर से निकट पड़ेगा।"

"चलो सैयदाँ गेट तक मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

सैयदाँ गेट पर जब चेतन हमीद से अलग हुआ तो उसका दिमाग़ तेज़ी से काम करने लगा। महज़ विज्ञापन लिखने से एक-आध बार तो पिक्चर देखी जा सकती थी, लेकिन उससे क्या फ़र्क पड़ता है। एक-आध बार वह स्वयं भी (चवन्नी ही में सही) पिक्चर देख सकता था। कोई ऐसी तरकीब भिड़ायी जाय कि जब चाहे, उसे पिक्चर देखने की सुविधा मिल जाय। सोच-सोच कर वह इस नतीजे पर पहुँचा कि लाला मोहन-लाल से पहले श्याम बाबू से मैत्री की जाय। लाला श्याम किशोर उस मँडुए के मालिक थे, जिसे लाला मोहनलाल ने ठेके पर ले कर सिनेमा-हॉल में परिणत कर दिया था। 'श्याम-प्रेस' के नाम से स्टेशन रोड पर ही उनका प्रसिद्ध लिथो प्रेस था। श्याम किशोर तो शायद अब नहीं रहे थे, उनके दो लड़के थे—मँझले कद के; मोटे; गोल-गुलगोथने—दोनों का रंग गोरा था और दोनों ऐनक लगाते थे। बड़े भाई बड़े श्याम बाबू और

छोटे भाई छोटे श्याम बाबू कहलाते थे। चेतन छोटे भाई से मिला भी था। फ़र्स्ट ईयर में उसने हुनर साहब और अपने एक अन्य मित्र के साथ मिल कर ग़ज़लों का एक संग्रह 'शामे-ग़रीबाँ' के नाम से छपवाया था। उसी की छपाई के दाम पूछने वे उनके प्रेस में गये थे। इतने-से परिचय को कैसे बढ़ाया जाय? इसी बात पर सोचता हुआ चेतन घर पहुँचा था।

०

और महीने भर में चेतन ने मुफ़्त फ़िल्में देखने की व्यवस्था कर ली थी।

०

उस ज़माने में चेतन चन्दा देवी 'कुमुद' के नाम से फ़िल्मी पत्रिकाओं के सम्पादकों से लगातार पत्र-व्यवहार करता था। लाहौर की एक पत्रिका के सम्पादक जी० आर० ओब्राय उसे न केवल मुफ़्त पत्रिका भेजते थे, बल्कि उन्होंने उसे फ़िल्मी सिनारियो पर एक पुस्तक भी भेंट की थी और कई बार मिलने की इच्छा भी प्रकट की थी (जिसे वह बड़ी सफ़ाई से टाल जाता था) बम्बई से भी 'मूवी मिरर' नाम की पत्रिका उसे आने लगी थी और एक फ़िल्मी लेखक से उसका गहरा पत्र-व्यवहार चल रहा था, जिसने स्वयं चन्दा देवी 'कुमुद' के नाम से एक छोटी कहानी का सिनारियो 'मूवी मिरर' में छपवाया था।....चेतन यह सब पत्र-व्यवहार करता रहता था, पर चौबीसों घण्टे उसका ध्यान इसी समस्या में लगा रहता था—कैसे बिना टिकट के दाम ख़र्च किये, मुफ़्त सिनेमा देखने की सबील की जाय! उसी ज़माने में होशियारपुर के गवर्नमेन्ट कॉलेज में एक इण्टर-कॉलेज मुशायरा हुआ। चेतन के कॉलेज के एक प्रोफ़ेसर वहाँ चले गये थे, उन्होंने चेतन को भी उसमें भाग लेने का निमन्त्रण भिजवाया। हुनर साहब उसके अध्यक्ष हो कर गये। यद्यपि फ़र्स्ट तो गवर्नमेण्ट कॉलेज ही का एक मुसलमान छात्र आया, पर चेतन 'द्वितीय' आया और उसे ५ रु० इनाम मिला। वहीं बातों-बातों में हुनर साहब ने उसे इस बात के लिए उकसाया कि उसे अपनी कहानियों का एक संग्रह छपवाना चाहिए और वे नज़्म में उसकी भूमिका लिख देंगे। जब चेतन ने कहा कि पैसे कहाँ से आयेंगे, तो उन्होंने कहा कि काग़ज़ का प्रबन्ध करना है, छपाई तो श्याम-प्रेस में हो जायगी।

यद्यपि हुनर साहब होशियारपुर ही के निकटवर्ती गाँव के निवासी थे, पर जालन्धर में चेतन के मुहल्ले ही में उनके मामा रहते थे। वे चेतन के साथ ही वापस आये। उन्होंने चेतन को काग़ज़ दिलाने और श्याम-प्रेस के मालिकों से छपाई का प्रबन्ध करा देने का वचन दिया और फिर बातों-बातों में यह भी बताया कि लाहौर से उनको पत्र-पर-पत्र आ रहे हैं कि कहानी भेजो, पर वे उन दिनों 'गोरा बादल' और राजपूताने के इतिहास की दूसरी 'सुनहरी दास्तानों' को नज़्म कर रहे हैं....''

चेतन उनका संकेत समझ गया था। उसने उनसे कहा कि वह उन्हें एक नहीं, दो कहानियाँ लिख देगा। जब वे उसके लिए इतना कर रहे हैं तो क्या वह इतना भी नहीं कर सकता।

तब जालन्धर पहुँच कर पहला काम उसने यह किया कि उन पाँच रुपयों का एक सूट सिलवाया। फिर हुनर साहब के लिए एक कहानी लिखी। हुनर साहब ने सिटी कांग्रेस कमेटी के मन्त्री लाला गोविन्दराम से कह कर २५ रु० का काग़ज दिला दिया और वे स्वयं उसे श्याम-प्रेस ले गये। श्याम-प्रेस के दोनों मालिक उर्दू में छपाई करने के कारण शे'र-ो-शायरी का बड़ा शौक रखते थे। हुनर साहब ने घण्टों उनको नज़्में सुनायीं, चेतन का परिचय दिया और कहा कि—उदीयमान लेखक है, जालन्धर का नाम रोशन करेगा। उसकी एक छोटी पुस्तक छपने को तैयार है। मैं नज़्म में उसकी भूमिका लिख रहा हूँ। वह आपको छापनी है।

''आप कोई हुक्म दें और हम न मानें।'' छोटे श्याम बाबू ने कहा था और उन्हे शाम को पिक्चर देखने की दावत दी थी। चेतन ने फ़िल्म में अपनी दिलचस्पी का ज़िक्र किया था और कहा था कि उसकी पत्नी बाकायदा लेख लिखती है (हुनर साहब को उसने सारी बात बता दी थी) अपने मित्र हमीद का ज़िक्र किया था कि फ़िल्मों के बारे में उसका ज्ञान अपरम्पार है और पूछा था कि क्या वह उसे भी साथ ला सकता है। ''शौक से ले आइए !'' श्याम बाबू ने कहा था, ''बल्कि आप चन्दा देवी जी को भी ले आइए।''

''वे तो आजकल लाहौर में हैं,'' चेतन टाल गया था, ''पर मेरे ये

मित्र फ़िल्म में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। खैरपुर के दीवान के लड़के हैं। बी० ए० पास करते ही फ़िल्मों में जाने का उनका इरादा है। निश्चय ही एक दिन हीरो बन कर चमकेंगे।"

और शाम को वह नया सूट पहने, एक पतली-सी छड़ी हाथ में लिये, हमीद और हुनर साहब के साथ श्याम-प्रेस पहुँचा था। वहाँ से वे सिनेमा-हॉल में आये थे और बड़ी शान से गैलरी में सिनेमा देखने गये थे। चेतन ने यह देख लिया कि लाला मोहनलाल ने उन्हें श्याम-प्रेस के छोटे मालिक के साथ गैलरी में जाते हुए देख लिया है।

सिनेमा के बाद हुनर साहब और श्याम बाबू, दोनों ने लाला मोहनलाल से चेतन की कहानियों की बड़ी प्रशंसा की थी। हुनर साहब ने भी (चेतन ने उनसे पहले कह दिया था) यह बात कही कि इनकी पत्नी और ये फ़िल्मों का बड़ा ज्ञान रखते हैं। आप फ़िल्मों के हैंगड-बिल और इश्तिहारों के डिज़ाइन बनवाने में इनकी मदद लीजिएगा।

"हमने तो इनसे कहा था।" लाला मोहनलाल ने कहा, "पर महीनों बाद इन्हें आज देखा है।"

"अब तो मैं इधर आता ही रहूँगा। मेरी पुस्तक छप रही है। आपके भी दर्शन करूँगा।" चेतन ने बड़ी बेनियाज़ी से कहा था।

और दूसरी ही शाम वह छड़ी घुमाता हुआ वहाँ जा पहुँचा था। इस बीच में उसने लाला मोहनलाल के यहाँ से वितरित होने वाले कई हैंगड-बिल इकट्ठे कर लिये थे। उनमें ग्रामर, ज़बान और मुहावरे की जितनी ग़लतियाँ थी, सब पर निशान लगा दिये थे। लाला मोहनलाल ने उसे पिक्चर देखने के लिए कहा, पर उस दिन कोई स्टण्ट पिक्चर लगी हुई थी। चेतन ने बड़ी उपेक्षा से कहा कि यह कोई बहुत अच्छी पिक्चर नहीं और पत्रिकाओं में उसने उसकी जो आलोचनाएँ पढ़ी थीं, उनके बल पर उसके गुण-दोषों का विवेचन किया। फिर बातों-बातों में उसने हैंगड-बिलों में हिज्जे, ग्रामर और मुहावरों की ग़लतियाँ गिनायीं और कहा कि वह तो रोज़ इधर आता ही है। वे रफ़ हैंगड-बिल उसे दिखा लिया करें, वह उनको एक नज़र देख दिया करेगा।

और यों वह रोज़ शाम को वहाँ जाने लगा। लेकिन मन में इच्छा होते हुए भी वह पिक्चर न देखता। हैण्ड-बिल ठीक कर देता, कुछ फ़िल्मों की तारीफ़ करता, कुछ की आलोचना और चला जाता। इस बीच में वह एक बार फिर श्याम बाबू के साथ गैलरी में पिक्चर देखने गया। तभी इम्पीरियल कम्पनी की एक फ़िल्म आयी, जिसकी बड़ी प्रशंसा उसने बम्बई से निकलने वाले 'मूवी मिरर' में पढ़ी थी। तब उसने उसका बहुत बढ़िया हैण्ड-बिल बनाया और उस शाम वह लाला मोहनलाल के साथ फ़र्स्ट-क्लास में बैठा।

इसके बाद उसका रोज़ शाम का क्रम हो गया कि वह कॉलेज से आ कर, खाना खा कर सूट पहनता, हाथ में छड़ी लेता और सिनेमा-घर को चल देता। गेट वाले उससे इतने अभ्यस्त हो गये थे कि लाला मोहन-लाल न होते तो भी उसे कोई न पूछता और वह अन्दर जा बैठता। कभी गेट वाले को कहीं जाना होता तो मालिक की तरह वह स्वयं गेट पर जा खड़ा होता।

गलियारे में दाख़िल होते ही चेतन के सामने फ़ोर्थ ईयर की वह घटना घूम गयी, जब पहली टॉकी जालन्धर आयी थी—आलम आरा!—महीनों पहले से उसका विज्ञापन हो रहा था और ख़ाना-बदोशों के वस्त्रों में सुस्ताने की मुद्रा में एक चट्टान पर पैर पसारे बैठी हुई आलम-आरा (ज़ुबैदा) का चित्र शहर के हर गली-बाज़ार में लगा था—हवा में उसके लम्बे-लम्बे बाल पीछे को उड़ रहे थे और जम्पर-नुमा कमीज़ में उसकी पतली-पतली गोरी बाँहें और जाँघों तक टाँगें निरावरण थीं।

इतने बड़े रश की सम्भावना थी कि इस गलियारे में तीन जगह मज़बूत बल्लियों से रोक लगा दिये गये थे और मोहनलाल जी ने कुछ दिन पहले ही चेतन से कह दिया था कि उस दिन फ़्री पास एकदम बन्द होंगे।

लेकिन चेतन के मन में उस फ़िल्म को देखने की लालसा इतनी प्रबल थी कि वह रह न सका था और उसने पहले ही दिन वह फ़िल्म देखी

थी ।....उस घटना की याद आते ही उसके होंटों पर एक मुस्कान फैल गयी ।

०

बात यह थी कि ज़ुबैदा को एक-दो फ़िल्मों में देखने के बाद उसके दिल में सुलोचना के साथ ज़ुबैदा ने भी अपनी जगह बना ली थी । सुन्दरता में शायद ज़ुबैदा सुलोचना का मुकाबिला न कर सकती थी । सुलोचना एंग्लो-इण्डियन थी—सरो-सा लम्बा कद, रेखाओं को उभारता बेहद सुडौल शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, तीखी नाक, नुकीली ठोढ़ी ! चित्रपट की एक दूसरी नायिका, सविता देवी भी सुन्दर थी, पर सुलोचना से उसका कोई मुकाबिला न था । उसकी तुलना में ज़ुबैदा, पतली-छरहरी, गोल-मटोल मुखड़े वाली, नाज़ुक, चुलबली युवती थी । वह इतना अच्छा नाचती थी कि चेतन देखता रह जाता था । वही ज़ुबैदा 'आलम आरा' में बोलेगी, नाचेगी, गायगी.... जैसे भी हो, चेतन उस फ़िल्म को देखना चाहता था....और मोहनलाल जी ने संकेत कर दिया था कि पहले दिन वह फ़िल्म नहीं देख सकता ।

चेतन जानता था कि वह शाम को जायगा तो शायद उसे अन्दर भी जाना नहीं मिलेगा । इसलिए उस दिन वह दोपहर ही को सिनेमा-हाउस चला गया । गलियारे में कोई नहीं था । वह पीछे दफ़्तर में चला गया । लाला मोहनलाल बैठे थे । उसे देख कर उनके माथे पर हल्के-से तेवर बन गये, "कुछ दिन पिक्चर चल जाय, फिर आप देखिएगा ।"

"हाँ-हाँ," चेतन ने बेपरवाही से कहा, "मैं तो इसलिए चला आया कि आज रश होगा, कहीं कोई झगड़ा-झाँझा न हो; कहीं कोई ज़रूरत ही पड़ जाती है ।" और वह मैटनी के वक्त बराबर गेट वालों की सहायता करता रहा । साढ़े पाँच के शो में भी उसने उसी निष्ठा से काम किया । रात के साढ़े नौ के शो में यद्यपि चवन्नी, अठन्नी और बारह आने वाले दर्जों में तिल धरने की जगह न थी, पर रुपये वाले दर्जे में कुछ सीटें ख़ाली थीं । जब गेट बन्द हो गये, तो वह चुपचाप फ़र्स्ट-क्लास की एक ख़ाली सीट पर जा बैठा । जब इण्टरवल में लाइट हुई तो उसने देखा—मोहनलाल जी उसके साथ वाली सीट पर ही बैठे हैं । उन्होंने उसकी ओर देखा और

उनके होंटों पर एक बारीक-सी मुस्कान खेल गयी।

०

मोहनलाल जी नहीं थे। एक गेट वाला उसका पुराना परिचित था। चेतन ने उससे हाथ मिलाया; उसका हाल-चाल पूछा; अपना बताया और उसके हाथ को झटका दे कर वह पलटा।

"आइए, पिक्चर नहीं देखेंगे?" गेट-मैन ने कहा।

"नहीं, मन नहीं है!"

और सचमुच उस एक वर्ष में उसने इतनी फ़िल्में देखी थीं कि उसकी आँखों पर ज़ोर पड़ गया था। परीक्षा के दिन जब निकट आ गये थे तो उसने एकदम फ़िल्म देखना बन्द कर दिया था। फिर जाने क्यों, उसे फ़िल्मों से अरुचि हो गयी। हालाँकि समाचार-पत्र में उसे पासों की सुविधा थी, पर वह कभी ही पिक्चर देखने जाता था। वह भी उस वक्त, जब उसकी पत्नी ज़ोर दे।

बाहर आ कर वह उन्हीं यादों में खोया, बायीं ओर को चल पड़ा। तभी किसी ने पीछे से आ कर दोनों बाँहें उसकी कमर में डाल कर उसे उठा लिया और एक चक्कर दे दिया।

पाँव धरती पर लगते ही उसने पलट कर चक्कर देने वाले को देखा तो उसके मुँह से सोल्लास निकल गया।

"ओए लालू!"

और दोनों फिर बगलगीर हो गये।

"सुनाओ यार, कैसे हाल-चाल है?" चेतन ने कहा, "पिछली बार आया था तो सुना था, कहीं सिगरेट की एजेंसी लिये जम्मू घूम रहे हो।"

"जम्मू-कश्मीर क्या, मैं तो सारा हिन्दुस्तान घूम आया हूँ और अब यहाँ आ कर बैठ गया हूँ। वो देखो, सामने मेरी दुकान है, कम्पनी ने मुझे जालन्धर, होशियारपुर और कपूर्थला की एजेंसी दे दी है।'

और वह चेतन के गले में बाँह डाले, सड़क पार, उसे अपनी दुकान में ले चला।

●०●

तीस

मँझला क़द, काला रंग, मोटे नैन-नक्श, अस्त-व्यस्त भूषा—लालू बनिये को देख कर कभी सपने में भी खयाल न आ सकता था कि यह आदमी सारे हिन्दुस्तान की सैर कर आया है। चेतन का वह सहपाठी था। माँ-बाप का इकलौता लड़का; लाड में पला और इसीलिए पढ़ने-लिखने में फिसड्डी ! पर चूंकि माँ-बाप के पास पैसा पर्याप्त था, इसलिए मुहल्ले के सब साथियों को वह पटफेरा बाज़ार के उस चौबारे में ले जाता था (जहाँ उसके पिता आढ़तिए का काम करते थे) और ख़ूब खिलाता-पिलाता था। हालाँकि कपडे उसके बड़े कीमती होते, पर उसकी दायीं आँख में सदा कीचड़ लगा रहता और नाक उसकी सदा बहती रहती। एक को कमीज़ के दामन और दूसरी को आस्तीन से वह सदा पोंछता रहता।

चेतन ने आँखें उठा कर देखा—लालू की दायीं आँख में अब भी कीचड़ जमा था और बातें करते-करते वह अब भी स्वभावानुसार दायीं आस्तीन नाक पर फेर लेता था। चेतन ने सुना था कि लालू ने सिगरेटों की एजेंसी ले ली है और काफ़ी पैसा पैदा किया है—लेकिन शक्ल-सूरत और आचार-व्यवहार से वह अब भी वही पुराना 'कद्दू' लगता था।

'कद्दू' की उपाधि से साथियों ने उसे तब विभूषित किया था, जब वह

बीवी का गौना लेने गया था और गहने-कपड़े तो दूर, लगभग बीवी गँवा आया था।

उसकी शक्ल देख कर, उस घटना की याद न आना असम्भव था। चेतन को तो उसका नाम सुनते ही सारी घटना स्मरण हो आती थी। बात यह थी कि जब वह आठवीं जमात में फ़ेल होने पर, पिता की डाँट सुन कर घर से भाग गया तो बनियों की गली में ही नहीं, कल्लोवानी मुहल्ले तक में कोहराम मच गया था। उसके पिता हरनारायण गुप्त तब चढ़ती में थे। श्राद्धों में उनके यहाँ बड़े ज़ोर का भोज होता था। यों भी एकादशी-द्वादशी, तीज-त्योहार पर गली-मुहल्ले के ब्राह्मणों को कुछ-न-कुछ उनके यहाँ से पहुँचता ही रहता, इसलिए मुहल्ले के ब्राह्मण अपने-अपने ढंग से लालू को वापस लाने की सबील करने लगे थे। पण्डित दौलतराम ने उसकी पत्री देखी और लालू के पिता को बताया कि घबराने की बात नहीं, केतु की दृष्टि किंचित टेढ़ी है, मंगल पंचम अर्थात मस्तिष्क स्थान में शत्रु की राशि का हो कर बैठा है, जिसने उसकी मानसिक गति को विशृंखलित कर दिया है। लेकिन लालू निश्चित रूप से ही तीन दिन, तीन सप्ताह, तीन महीने अथवा तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर आ जायगा। जब लाला जी ने कहा कि वह परीक्षा में फ़ेल हो गया है, कहीं आत्म-हत्या न कर ले तो पण्डित जी ने उन्हें आश्वासन दिया कि डर की कोई बात नहीं। आत्म-हत्या के लिए अष्टम में केतु और चन्द्रमा का होना आवश्यक है, जो नहीं है। इसलिए लालू आ अवश्य जायगा। उसकी मति भ्रान्त है और नीच व्यक्ति का साथ है। मैं मंगल और केतु का जप आज ही से शुरू करता हूँ।

पण्डित शिवनारायण ने ग्रहों की शान्ति के लिए पूजा का अनुष्ठान कर दिया। सबल ग्रहों को और सबल बनाने के लिए उन्होंने लग्नेश की पूजा का आयोजन किया। "लग्नेश लाभ स्थान में बैठा है," उन्होंने कहा था, "उस पर दो-दो शुभ-ग्रहों की दृष्टि पड़ रही है, फिर लग्नेश की दशा चल रही है। अतः किसी हानि की सम्भावना नहीं प्रतीत होती। मैं लग्नेश के हाथ और सुदृढ़ करता हूँ, जिसके कारण मंगल और केतु की एक न चले।"

पण्डित गुरदयाल झमान यह सब ज्योतिष-ओतिष न जानते थे। चौरस्ती अटारी में उनकी पान की दुकान थी। उन्होंने लालू को ढूंढ़ लाने के लिए अपने चेलों की सेवाएँ पेश कर दीं और हर रोज़ आ कर उसकी ख़बर लेने लगे।

मुहल्ले के खत्रियों से लालू के पिता का लेन-देन का सम्बन्ध था, इसलिए उन्होंने इर्द-गिर्द के व्यापारिक केन्द्रों और मण्डियों में अपने जान-पहचान वालों को ख़बर दी। लालू लुधियाना के एक हलवाई की दुकान पर बर्तन मलता हुआ पकड़ा गया। तब पण्डित दौलतराम के शुभ परामर्श से उसी महीने उसकी सगाई कर दी गयी और अभी उसने मैट्रिक की परीक्षा भी न दी थी, जब उसका विवाह हो गया।

मैट्रिक तक पहुँचते-पहुँचते वह तीन बार फ़ेल हुआ और तीन बार घर से भागा। जब वह तीसरी बार वापस आया तो पिता ने उसे पत्नी का गौना करा लाने का आदेश दिया। तब हुआ यह कि ससुराल से वापसी पर गाड़ी बड़े सिगनल के बाहर अड्डा होशियारपुर वाले फाटक पर रुक गयी। जाने लालू के मन में क्या आया—चिर-परिचित फाटक देख कर उसका मन वहाँ उतरने को हुआ, या उसे लगा कि इधर से जल्दी घर पहुँच जायँगे, या वह सिगनल डाउन होने की प्रतीक्षा करते-करते उकता गया, जो भी हो, उसने कुछ क्षण गाड़ी चलने का इन्तजार किया, फिर झट अपनी दुल्हन को उतरने का आदेश दिया। दुल्हन को उतार, उसने गहनों का बक्सा उसे पकड़ाया। वह दूसरा सामान उतारने ही जा रहा था कि इंजन ने ज़ोर की एक सीटी दी और गाड़ी चल दी।

लालू की दुल्हन पन्द्रह-सोलह बरस की होगी। पहले कभी वह जालन्धर आयी न थी। घूँघट काढ़े और बक्सा थामे, वह वहीं-की-वहीं खड़ी रह गयी। उस बेचारी को अपने ससुराल के गली-मुहल्ले का भी पता मालूम न था। फाटक के साथ लगा एक बदमाश यह सब देख रहा था। शाम का वक्त था और खेमचन्द हंसराज के टीन के कारखानों के कारीगर उधर से लाइन-लाइन आ रहे थे। उन्हीं में से वह था। उसने बढ़ कर पूछा, "बीबी तुम्हें किस मुहल्ले जाना है ?"

जब बीबी ने और भी घूंघट निकाल लिया और सकुचा गयी तो उसने कहा, "चलो, तुम्हें स्टेशन पहुँचा दें !" और बक्सा उठा कर वह लाइन-लाइन बढ़ा।

फाटक से जालन्धर का स्टेशन कोई मील-सवा मील होगा। आज तो वहाँ से स्टेशन तक गज़ भर भी जगह ख़ाली नहीं, पर तब बीच में लाइन एकदम वीराने से गुज़रती थी। एक जगह लाइन के पास पानी जमा था और ख़ूब सरकण्डे उगे थे, वहीं उसने दुल्हन को चाकू दिखा कर उसे गहने उतार देने को कहा और फिर उसे चुपचाप वहाँ बैठे रहने और चूं तक भी न करने का आदेश दे कर गहने और बक्सा ले कर नौ-दो ग्यारह हो गया।

इधर लालू महाशय, जो विवाह के बाद सहसा श्री लाल नारायण गुप्त कहाने पर ज़ोर देने लगे थे और अपना पूरा नाम लिखते थे, स्टेशन से उतर कर फाटक पहुँचने के बदले बड़े इत्मीनान से सीधे अपने घर पहुँचे और जा कर पूछा "चिन्तो पहुँची कि नहीं ?"

"चिन्तो !—दुल्हन ?" माँ ने हैरत से पूछा।

"हाँ, वह पहुँची नहीं ?"

"क्या वह किसी और के साथ आ रही थी ?" माँ ने पूछा।

तब लालू ने उस घटना का उल्लेख किया। सुनते ही माँ सिर पीटती बाहर निकल गयी और बनियों की गली से कल्लोवानी मुहल्ले तक कोहराम मच गया। चौक चड्ढियाँ, गली खोसलियाँ और चौक आनन्दाँ के लोग भागम-भाग अड्डा होशियारपुर के फाटक पर पहुँचे। दुल्हन का वहाँ नाम-निशान तक न था। तब टोलियों में बँट कर लोग चारो तरफ़ भाग उठे। जो टोली लाइन-लाइन गयी, उसने सरकण्डों के निकट दुल्हन को घुटनों में सिर दिये, वहीं रोते पाया, जहाँ वह बदमाश उसे छोड़ गया था। लोगों का तो यह भी कहना है कि गहनों के साथ-साथ बदमाश उसकी इज़्ज़त भी उतार ले गया था, पर शायद वह बात पड़ोसियों के विद्वेष ने गढ़ ली थी। लेकिन इस बात के बावजूद कि लालू ने अपने साथियों को विश्वास दिलाया कि चोर ने (वह उसे बदमाश न कहता था) उसकी दुल्हन के अंग को हाथ नहीं लगाया, दुल्हन ने सभी गहने उतार कर उसे दे दिये और उसने

सरगोशियों में बताया कि पहली रात ही उसका सबूत मिल गया और बिस्तर से लाख धोने पर भी लोहू के दाग़ नहीं छूटे, पर मुहल्ले के लड़कों ने न सिर्फ़ उसे 'कद्दू' की उपाधि से विभूषित कर दिया, बल्कि उस बदमाश और उसकी दुल्हन को ले कर उसे इतना परेशान किया कि वह फिर घर से भाग गया।

बी० ए० पास करके जब चेतन लाहौर गया तो उसने एक दिन रेलवे रोड पर लालू को देखा—आगे-आगे घण्टी बजाता और लाल बादशाह के सिगरेटों के हैण्ड-बिल बाँटता लालू और पीछे-पीछे सिर पर लम्बे-लम्बे टोप लगाये—हाथों में लाल बादशाह सिगरेट के बड़े-बड़े पोस्टर उठाये और :

लाल बादशाह पिया करो
जीवन का रस लिया करो

के नारे लगाते कि राये के छोकरे !

और उस दिन लालू और कद्दू के साथ उसे एक तीसरा नाम मिला—लाल बादशाह !

इकतीस

चेतन दुकान के अन्दर जा कर बैठ गया तो उसके लाख मना करने पर भी लालू भाग कर एक गिलास नींबू का शर्बत बनवा लाया।

शर्बत की चुस्की लेते-लेते चेतन ने एक नज़र नख-से-शिख तक अपने इस पुराने सहपाठी पर डाली। फिर उसकी दृष्टि पिछले कमरे में फ़र्श से छत तक लगे, सिगरेटों के गुरुसों पर चली गयी और माँ द्वारा सुनी हुई कहावत उसके कानों में गूँज गयी—'ख' खेह उडावे फ़ेर वी 'ख' खट्ट के लियावे !'—याने ख (खत्री) लाख ख़ाक छाने, पर घर वह कमा कर ही लायगा। खत्री बनिये को चाहे अपने से नीचा समझें, पर ब्राह्मणों की दृष्टि में तो व्यापारी होने के नाते दोनों एक-जैसे थे।—'यह वज्र-मूर्ख, सोलहों आने निर्बुद्धि लालू—जो छै बार घर से भागा और न जाने कहाँ-कहाँ की धूल फाँकता फिरा, अब बड़े इत्मीनान से सेठ बना बैठा है,' चेतन ने सोचा और क्षण भर के लिए उस ढुलमुल, अस्त-व्यस्त, बहती नाक और कीचड़-भरी आँखों वाले अपने मित्र के प्रति उसे ईर्ष्या हो आयी, पर दूसरे क्षण उसने ईर्ष्या के उस भाव को अपने मन से निकाल फेंका। कहाँ वह—एक बुद्धिजीवी कथाकार, शक्ति-सम्पन्न पत्रकार और कहाँ यह ठस्स दिमाग़ का बनिया....।

"सुना है यार कि अमीचन्द डिप्टी कलक्टर हो गया है।"

चेतन के दूसरा कचोका लगा। सुबह से यह तीसरी बार था कि उसने अमीचन्द के डिप्टी-कलक्टर होने की बात सुनी थी। उसे अपने मुहल्ले वालों के दिमाग़ी घेरे की संकीर्णता पर दया हो आयी। वह कहना चाहता था, 'तो क्या गवर्नर हो गया है वह ?' पर यह न कह कर उसने अनमने भाव मे कहा :

"हाँ, अनन्त से पता चला। अभी ट्रेनिंग लेने जायगा, तब कहीं छोटा-मोटा अफ़सर होगा। डिप्टी-कलक्टर क्या आज ही हो जायगा ?"

"चाचा सोहनलाल तो अभी से उसे डिप्टी-डिप्टी कहने लगे हैं," लालू ने कहा, "और सुना है कि अमीरचन्द (अमीचन्द का बड़ा भाई) तो मुहल्ले में ऐसे अकड़ कर चलता है, जैसे अमीचन्द नहीं, वह ख़ुद डिप्टी-कलक्टर हो गया है।"

यह कहते हुए लालू हँसा और उसने नाक पर आस्तीन फेरी, फिर उसने सरगोशी में कहा, "आज सुबह अमीरचन्द मिला था। कहता था कि अगर तेलू भागो को मुहल्ले में लाया, तो वह उसे क़त्ल कर देगा.... अब तो भई, उसका भाई डिप्टी हो गया, जो चाहे करे !"

"डिप्टी तो जाने कब होगा, अभी तो कम-से-कम छै महीने ट्रेनिंग लेगा।" चेतन ने फिर वही बात दोहरायी।

पर लालू ने उसकी बात नहीं सुनी। अपनी रौ में बोला, "और तेलू भागो को मुहल्ले में लाने पर तुला हुआ है।"

चेतन का ध्यान अमीचन्द की ओर ही लगा था। उसके सामने बार-बार शिमला के स्कैण्डल-प्वाइण्ट का वह दृश्य आ जाता था, जब वह स्वयं उससे मिलने के लिए बड़े तपाक से आगे बढ़ा था, पर अमीचन्द की रूखी भंगिमा और स्वर की दूरी ने उसे परे ही रोक दिया था। तेलू और भागो की बात जैसे चेतन के श्रवणों से ऊपर-ऊपर निकल गयी। अपने विचारों की रौ में उसने कहा :

"अच्छा हुआ अमीचन्द आ गया इस बार कम्पीटीशन में। यह उसका आख़िरी चांस था। इस बार भी रह जाता तो किसी दफ़्तर में कुछ बेहतर

किस्म का क्लर्क होने के सिवा और क्या करता ?"

"किस्मत है भाई अपनी-अपनी," लालू ने कहा, "बाबू मनीराम सारी उम्र पोस्टआफ़िस में कुर्सियाँ तोड़ते रहे, बेटा जाने किसी दिन लाट हो जाय।"

"लाट नहीं, लाट का बाप हो जाय!" चेतन ने जल कर कहा, "माल-अफ़सर हो कर ही रिटायर हो तो बड़ी बात है। रट्टू है। लग गया तुक्का। तीन बार पहले कम्पीटीशन में बैठा—पास तक न हुआ। लाट बनेगा....।"

"अमीरचन्द कहता था—अगर आज स्वराज मिल जाय तो दस वर्ष में अमीचन्द लाट की कौंसिल का मेम्बर हो सकता है, ख़ुद लाट बन सकता है।"

"अमीचन्द हो-न-हो, पर अमीरचन्द जरूर एक दिन लाट हो जायगा।"

और चेतन ने ज़ोर से ठहाका लगा कर इस विषय को न केवल दिमाग़ से हटा दिया, बल्कि लालू के साथ अपनी बात-चीत के दायरे से भी बाहर कर दिया।

लेकिन लालू ने उसे नही छोड़ा।

"अमीरचन्द ने तो अभी से बद्दे और देबू को विश्वास दिला दिया है कि ज्यों ही डिप्टी साहब अपनी कुर्सी पर बैठेंगे, उन दोनों को अपनी अर्दल में ले लेंगे। देबू ही ने मुझे यह खबर दी है कि तेलू उसे मण्डी में मिला था और वह भागो को मुहल्ले में लाने की सोचता है।"

अब जैसे पहली बार चेतन ने लालू की बात ध्यान से सुनी—"भागो, भागो कौन ?"

"अरे उसी 'खई'[1] रोग वाले धर्मचन्द की बीवी ?"

"उसका तेलू से क्या सम्बन्ध ?"

"वह तेलू के साथ भाग गयी थी न !"

"तेलू के साथ ! कब ? कहाँ ? वो ब्राह्मण, यह खत्री।"

१. क्षय

"तुम्हें नहीं मालूम ?"

"मैं तो लगभग साल बाद जालन्धर आया हूँ," चेतन ने कहा, "धर्म-चन्द के मरने के बाद तो सुना था कि लाला मुकन्दीलाल ने उसे और उसके बच्चों को अपनी छत्र-छाया में ले लिया है।"

"हाँ हाँ, भाई के क्रिया-कर्म से छुट्टी पा कर लाला मुकन्दीलाल ने नये कुर्ते, धोती और बण्डियाँ सिलवायीं। बढ़िया मलमल के साफ़े ख़रीदे, चिराग़ रँगरेज़ से उन्हें मोतिया रंग दिलवाया और एक दिन छैला बने भुवाड़े पहुँचे और जा अपनी भाभी को प्रणाम किया।"

लाल बादशाह हँसा और उसने नाक पर आस्तीन फेरी, फिर उसने बड़े जोश से, लेकिन ख़ूब सरगोशी-भरे स्वर में जो बताया, उसका सारांश यह था कि लाला मुकन्दीलाल ने अपनी विधवा भाभी, भगवती उर्फ़ भागवन्ती उर्फ़ भागो से कहा, 'यह न समझना कि भाई धर्मचन्द नहीं रहे तो तुम्हारा कोई नहीं रहा। अन्दों (आनन्दों) के परिवार में अभी लाला मुकन्दीलाल है और उसके लिए जैसे उसका अपना बेटा मंगल, वैसे भाई के बच्चे।'—और उस दिन से प्रातः उठ कर मुकन्दीलाल पहले कुछ कसरत करते, फिर कुएँ से अपनी भाभी के घर का पानी भरते, फिर स्वयं उसके लिए सब्ज़ी-तरकारी और सौदा-सुलुफ़ लाते। तभी एक दिन उन्होंने मुहल्ले वालों को सूचना दी कि वे अपना बाज़ार वाला चौबारा छोड़ रहे हैं। उनकी भाभी कहती है कि घर भाँय-भाँय करता है और उसको डर लगता है—बिन घरनी घर भूत का डेरा है ही, लेकिन मर्द के बिना भी घर भूत ही का डेरा लगता है।

"स्साला !" चेतन ने दबी ज़बान से कहा था, "पहले अपनी मँझली भाभी को ख़राब किया, अब बड़ी पर डोरे डालने लगा।"

"पर वह मँझली भाभी क्या वैसे ही मानने वाली है।" लालू हँसा, "मंगल और उसकी बहू के सो जाने पर शन्नो उसी रात चौबारे पहुँची और उसने वो फ़िसाद खड़ा किया कि रहे राम का नाम। ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी कि मेरा धर्म बिगाड़ के अब बुढ़ापे में तुम मुझे अलग करना चाहते हो। मेरा शरीर स्वाहा कर दिया। यह रोग मुझे लगा दिया। मैं

मर जाऊँगी, पर तुम्हें न छोड़ूँगी आदि आदि... और चौरस्ती अटारी में गुरदयाल पान वाले के यहाँ बैठे और मौज उड़ाते कुछ लोग नीचे बाज़ार में आ इकट्ठे हुए। उनके आने की भनक पा कर वह और भी चिल्लाने लगी। आख़िर लाला मुकन्दीलाल ने अपनी पगड़ी उसके पैरों पर रखी कि हे भागवान, यों बाज़ार में मेरी पत न उतार! मैंने तो तुम लोगों के फ़ायदे का यह स्वाँग रचा था। वरना मेरी अब उमर रह गयी है, यह सब करने की। चाहता था, घर का माल घर ही में रहे, पर तुझे नहीं मंज़ूर तो न सही।"

चेतन को रस आने लगा था। वह ठहाका मार कर हँस दिया।

लालू ने बताया कि माल घर में आ जाय, इसमें तो शन्नो चाची को कोई आपत्ति न थी और (इस मरहले पर उसने कमीज़ के दामन से आँख पोंछी) पर सौत सिर पर सवार हो जाय, यह वह कैसे सहन करती। सो दूसरे दिन से लाला मुकन्दीलाल का स्थान उसने ले लिया। प्रातः उठ कर 'सतगुर' की स्तुति गाने के उपरान्त वह कुएँ की जगत धोती, फिर अपनी जेठानी के घर का पानी भरती। सब्ज़ी-तरकारी और चीज़-वस्त के लिए वह मंगल को भेज देती। दिन में वह दो-चार बार भुवाड़े जाती कि उसकी जेठानी का दिल बहला रहे। उसे और उसके दोनों बच्चों को वह अपने यहाँ भी ले आती। लेकिन कुछ दिन बाद शन्नो ने देखा कि मंगल अपनी फूल-ऐसी बहू को छोड़, उस लम्बी ठोड़ी वाली, ककड़ी-सी अपनी चाची के यहाँ ही बैठा रहता है और उसी के बच्चों को खिलाता-पिलाता है। इसी बात को ले कर उसकी बहू और उसकी जेठानी में एक दिन ज़ोरों का झगड़ा हो गया और दोनों पक्षों की ओर से ऐसी-ऐसी कहनी-अनकहनी बातें कही गयीं कि मुहल्ले वालों ने कानों पर हाथ रख लिये और विवश हो, शन्नों को अपनी जेठानी के विरुद्ध अपनी बहू का पक्ष लेना पड़ा। तब देवरानी-जेठानी ने एक-दूसरे के पुरखे गिन डाले और नये-नये 'मधुर वचनों' की झड़ी लगा दी और जब इससे भी तृप्ति न हुई तो एक-दूसरी के बाल नोच डाले....तेलू की छत और भागवन्ती की छत के बीच एक छोटा-सा पर्दा ही तो था। तेलू अपनी काली भुजंग, लेकिन स्वस्थ देह पर तेल की

मालिश कर, रोज वहाँ कसरत करता और वहीं सोता। तब दोनों के बीच कब वह पर्दा न रहा, इसका किसी को पता नहीं चला। मुहल्ले वालों को तब मालूम हुआ, जब भागो अपने गहने-कपड़ों का बक्स ले कर एक रात बच्चों समेत उसके साथ भाग गयी और मुहल्ले वालों ने सुना कि तेलू ने मराडी ही में घर ले लिया है और अब वह भागो के साथ वहीं रहेगा।

इस बार लालू और चेतन दोनों हँसे और लालू ने चेतन के हाथ पर जोर से हाथ मारा और बताया कि सारा दिन शन्नो मुहल्ले के ब्राह्मणों को गालियाँ देती रही, खत्री दाँत पीसते रहे, लेकिन जब मौसी पूरन देई ने भुवाड़े से बाहर निकल कर हाथ मटका कर खत्रियों के गुण गाने शुरू किये और कहा कि तेलू को जा कर पकड़ें, पुलिस में उसकी रिपोर्ट करें, उन सब को क्यों गालियाँ देते हैं, तब खत्रियों ने (और उनमें अमीरचन्द सबसे आगे था) घोषणा की कि तेलू या भागो दोनों में अगर किसी ने मुहल्ले में कदम रखा तो उसकी हड्डी-पसली एक कर देंगे।

बत्तीस

लालू से छुट्टी ले कर चेतन पंजपीर के ऊपर से अड्डा होशियारपुर को चला जा रहा था। वह नीला के बारे में सोचना चाहता था, जिसके विछोह का दर्द उसके अन्तर में कहीं गहरे पैठ गया था; कुन्ती के बारे में सोचना चाहता था, जिसकी खिड़की के नीचे से गुज़रने और जिसे एक नज़र देखने की साध आज उसके मन में और भी प्रबल थी; चन्दा के बारे में सोचना चाहता था, जिसके नैकट्य से बचने के लिए वह सुबह ही घर से भाग आया था और यों मारा-मारा घूम रहा था, पर लालू से मिलने के बाद वह भागो उन सब को पीछे हटा कर उसके दिमाग़ पर छा गयी।....

वह आठवीं कक्षा में पढ़ता था, जब वह दुल्हन बन कर, अथवा यों कहा जाय कि क्रीत-दासी बन कर, मुहल्ले के उस खत्री-परिवार में आयी थी। चेतन ने उसके बचपन की कल्पना की—शिवालक की हरी-भरी घाटी में बसा छोटा-सा गाँव—पहाड़ी की ढलान पर बसे चन्द-एक घर। स्लेट की ढालुवीं छतें, जो धूप में शीशों-सी चमक उठतीं। नीचे घाटी में बहती नदी। उसमें पनचक्की। घाटी में फैले हरे-पीले धान के खेत। चीड़ के पेड़। जब उनकी सूखी सुइयाँ ढलानों पर बिछ जातीं तो वह और उसकी सहेलियाँ उन पर फिसलती-लुढ़कती चली जातीं। गाँव के निकट एक

जगह नदी का रुका हुआ पानी....उसमें वे जी भर नहातीं, तैरतीं, कपड़े धोतीं, सुखातीं, गेंद उछालतीं, गातीं :

शावा मेरे छल्लिया
दाना पानी रल्लिया
छल्ला पिया वनेरे
वस्स नेई मेरे
वस्स मेरी माँ दे
घल्लेगी ते जाँगे

या किक्कली डालती :

किक्कली कलीर दी
पग्ग मेरे वीर दी
दुपट्टा मेरे भाई दा
फिट्टे मुँह जँवाई दा

उसके बचपन ही में उसके माता-पिता परलोक सिधार गये। तभी उसके खेल और गीत अचानक चुक गये। चाचा ने उसे अपनी छत्र-छाया में ले लिया। इस छाया की कीमत उसे जी-तोड़ मेहनत करके चुकानी पड़ी। वह अपने अभिभावक के ढोर-डंगर चराती, खेत गोड़ती, रोपती, डंगरों के लिए घास छीलती, समय पड़ने पर खाना पकाती, बरतन मलती, नदी से पानी लाती। इस सब घोर श्रम में उसे मालूम भी नहीं कि कब उसके शरीर ने चोला बदल लिया और गाँव में उसके श्रम के नहीं, उसकी जवानी के भी चर्चे होने लगे। इर्द-गिर्द के गाँवों से उसके लिए सँदेसे आने लगे, जिसके घर वह जायगी, उसकी किस्मत तर जायगी, ऐसा गाँव वालों का खयाल था, पर उसके चाचा ऐसी श्रमशील लड़की तैयार करके दूसरे को सौंपने के बदले नकद रुपया चाहते थे। ऐसी जवान और मेहनती लड़की के लिए उनके खयाल में उन्हें कम-से-कम एक हज़ार नक़द मिलना चाहिए था, पर जब एक हज़ार छोड़, पाँच सौ भी कोई देने को तैयार न हुआ और भागवन्ती बीस वर्ष की होने को आ गयी और चाचा को लगा कि यदि उन्होंने उसे किसी खूंटे से न बाँधा तो वह नाथ-पगहा तुड़ा कर भाग जायगी

तब उसे ले कर वो मुकेरियाँ पहुँचे कि वहाँ अथवा जालन्धर, होशियारपुर या लुधियाना में उसे किसी ज़रूरतमन्द के हाथों सौंप कर भार हल्का करें। चेतन के पिता उन दिनों मुकेरियाँ स्टेशन पर नियुक्त थे। मुकेरियाँ तब टर्मिनस था। बड़ी भारी मण्डी। दूर-दूर के किसान और व्यापारी उनको जानते थे। थानेदार, डॉक्टर और तहसीलदार से उनकी मैत्री! मण्डी में सुई भी गिरे तो उन्हें पता चल जाय। कोई पहाड़ी अपनी लड़की बेचने आया है, भला इस बात का उन्हे कैसे पता न चलता? उन्होंने लड़की को देखा तो उन्हें धर्मचन्द की याद आयी। मुकन्दीलाल उनके बचपन का मित्र था और कई बार कह चुका था—"बाऊ भई, किसी तरह मेरे बड़े भाई का घर बसा दे, मैं ज़िन्दगी भर तेरा एहसान न भूलूँगा।"

"एहसान तो साले तू उसी दिन भूल जायगा, पर चिन्ता न कर, कहीं-न-कहीं मैं काँटा पिरो दूँगा," चेतन के पिता हँस कर कहते।

भागवन्ती का बाप अपने जिस आढ़ती के यहाँ ठहरा था, उसे उन्होंने कहलवाया कि वे जालन्धर से अपने मित्र को बुलाते हैं और वह दो दिन वहीं ठहरे। और जब तक वे ख़बर न दें, किसी दूसरे से बात न करे और उन्होंने चिट्ठी लिख कर पानी वाले के हाथ जालन्धर भेज दी और कहा कि मुकन्दीलाल को साथ ही लेता आये।

दूसरी गाड़ी से मुकन्दीलाल मुकेरियाँ आ गये। लड़की उन्होंने देखी। वैसी सुन्दर नहीं थी, पर लम्बी, तगड़ी और जवान थी और उसकी आँखों मे ऐसी कुछ अध-सोई-सी तृष्णा थी कि मुकन्दीलाल के हृदय में अनजाने हीं कुछ झनझना गया। भाभी के रूप में उन्हें वह बुरी नहीं लगी। भागवन्ती का चचा तो हजार रुपये माँगता था, पर पण्डित शादीराम ने समझा-बुझा कर, आढ़ती से जोर डलवा कर और यह डर दिखा कर कि बरदा-फ़रोशी[1] में उसे जेल भिजवा देंगे, उसे चार सौ लेने पर विवश कर दिया। यह तय हुआ कि शादी वह बाकायदा करे। दोनों ओर का ख़र्च लाला मुकन्दीलाल करेंगे। और वे बात पक्की करके शादी की व्यवस्था

---

१. औरतें बेचना।

करने वापस चले गये।

चेतन की कल्पना के आगे भागवन्ती के पति लाला धर्मचन्द का चित्र आ गया। पतले-छरहरे, चालीस-बयालिस के आदमी; मुकुन्दीलाल की अपेक्षा रंग किंचित काला; स्वभाव के क्रूर, गम्भीर और चुपीते। परिवार में कलंक लग जाने से अभी तक कुँवारे बने हुए थे। मुकन्दीलाल को छोड़ कर अलग हो जाते तो शायद शादी करने में उन्हें कठिनाई न होती, पर मुकन्दी से अलग होने को वे तैयार नहीं थे।

और चेतन के दिमाग़ में माँ से सुनी अन्दों (आनन्दों) के परिवार की वह कलंक-कहानी घूम गयी—

०

लाला मुकन्दीलाल चार भाई थे—जीवनलाल, हरजसराय, धर्मचन्द और मुकन्दीलाल। चेतन के घर के पीछे उनका छोटा-सा पुश्तैनी मकान था, जो उस वक्त, जब चारों ओर दोमंज़िले-तिमंज़िले घर बन गये थे, अभी तक एक ही मंज़िल का बना हुआ था और चेतन के तिमंज़िले मकान की छत से कुएँ-ऐसा दिखायी देता था। लाला मुकन्दीलाल के परदादा अथवा नकरदादा राणा रणजीत सिंह के दरबार में आला अफ़सर थे, ऐसा वे कहा करते थे, पर उनके पिता की तो पंसारी की दुकान थी और 'पिदरम सुलतान बूद' के अनुसार लाला मुकन्दीलाल के बड़े भाई अपने पुरखे का नाम ले कर अपने वंश को मुहल्ले के लोगों पर लादा करते थे। पिता अभी चालीस वर्ष के भी न हुए थे कि उनका देहान्त हो गया। तब दुकान पर मुकन्दीलाल के दोनों बड़े भाई जीवनलाल और हरजसराय बैठने लगे। उन दिनों धर्मचन्द एक निवाड़ की दुकान पर काम सीखते थे और मुकन्दी अखाड़े जाते थे। जीवनलाल की बीवी दम्मो बड़ी लड़ाकी थी, इसलिए जब हरजसराय का विवाह शन्नो से हुआ तो छै महीने ही में चूल्हे अलग हो गये। मुकन्दीलाल की माँ अपने बड़े लड़के के साथ पुराने मकान में रह गयी और हरजसराय शन्नो और अपने दोनों छोटे भाइयों को ले कर गली के बाहर चौक में, चेतन की बैठक के ऐन सामने वाले, किराये के मकान में आ गये।

"माँ, बहुत सुन्दर रहे होंगे चाचा मुकन्दीलाल !" चेतन ने एक बार माँ से पूछा था, "अब भी इतने सुन्दर लगते हैं ।"

"हाँ बेटे, अपने तीनों बड़े भाइयों के मुकाबिले में सुन्दर थे । फिर अखाड़े जाते थे और अपने दोनों बड़े भाइयों के सिर पर मौज उड़ाते थे।"

"शन्नो चाची की उमर उनके बराबर ही रही होगी ?" चेतन ने पूछा था ।

"एक-दो बरस बड़ी," माँ ने कहा था ।

"माँ, लोग कहते हैं, शन्नो चाची जब व्याही आयी थी तो बड़ी सुन्दर थी ।"

"हाँ बेटे, गोरी-चिट्टी, दग-दग करती थी तब । हरजसराय तो उसके सामने 'चऊँ'-से लगते थे ।"

छै महीने में चूल्हे अलग हुए और छै महीने में दुकानें अलग हो गयी। लेकिन शादी के बाद हरजसराय अधिक दिन जीवित नहीं रहे । दो साल बाद उनका देहान्त हो गया। तब धर्मचन्द ने निवाड़ वाली दुकान छोड़ कर भाई की दुकान सम्हाली और यद्यपि मुकन्दीलाल अब भी अखाड़े जाते, पर वे घर का काम-काज करने लगे । घर का पानी भरना चीज़-बस्त लाना और भाभी के सब काम करना उन्होंने अपने ज़िम्मे ले लिया । अभी हरजसराय को मरे साल भी न हुआ था कि सुना शन्नो बीमार है । फिर सुना कि उसके लड़का हुआ है । मोहल्ले मे कोहराम मच गया । जीवनलाल और दम्मो अन्दों के वंश को कलंक लगाने वाली उस कुलच्छिनी को चोटी पकड़, बाहर निकालने के पक्ष मे थे । पर धर्मचन्द इस पर तैयार न हुए । उन्होंने मुकन्दी को समझाया । मुहल्ले के चौधरियों के सामने उन्होंने स्वीकार कर लिया कि लड़का उनका है और चौधरियों ने उन दोनों पर चादर डाल दी और शन्नो अपने देवर की बीवी बन गयी ।

लोगों ने तरह-तरह की कलंक-कहानियाँ फैलायीं । कुछ का ख़याल था कि हरजसराय की ज़िन्दगी मे ही देवर-भाभी में अनुचित सम्बन्ध था । दम्मो सरे-आम कहती थी कि पाप धर्मचन्द का है और उसने भोले मुकन्दी के मत्थे मढ़ दिया है । पर यह बात सच्ची नहीं । धर्मचन्द तो दिन भर

दुकान पर रहते थे, खाना तक उनका वहीं जाता था, जब कि मुकन्दो आठों पहर भाभी के गिर्द घूमते थे और उनमें कोई अनुचित सम्बन्ध हो या नहीं, पर यह बात ठीक है कि हरजसराय की ज़िन्दगी में ही शन्नो मुकन्दी पर जान देती थी। "अब तो जब भी दोनों में झगड़ा होता है, शन्नो मुकन्दी पर यह अभियोग लगाती है," माँ ने कहा था, "कि देवर ने उसका धर्म बिगाड़ दिया, लेकिन सच्ची बात यह है कि उसी ने मुकन्दी का धर्म बिगाड़ा।"

"पर माँ, शन्नो तो अब बड़ी कुरूप लगती है।"

"मुकन्दी से ही उसे रोग लगा है। ब्याहता तो उसकी थी नहीं शन्नो, दोस्तों-यारों के साथ बाहर खाक उड़ाने लगा; खुद तो बच गया पर शन्नो की तो नाक ही उड़ गयी।"

चेतन इस बात से परिचित था, क्योंकि उन दिनों भी शन्नो जाँघ पर घाव का निशान लिये फिरती थी और जैसा कि माँ कलियुग के बारे में कहा करती थीं कि 'चोर उचक्का चौधरी, गुण्डी रण्ण परधान'—वह उन दिनों मुहल्ले की चौधराइन थी। तड़के सुबह उठ कर कुएँ की जगत को धोने का काम अब उसने सम्हाल लिया था, साधु-सन्तों के सत्संगों का भी प्रबन्ध अब वही करती थी और जैसा कि लालू ने अभी बताया था, अमीरचन्द को अपनी देवरानी-जेठानी के विरुद्ध भी उसी ने भड़काया था कि तेलू के साथ भाग कर उसने अन्दों की नाक कटा दी है।

चेतन मन-ही-मन हँसा। उसके दिमाग़ में बचपन से ले कर कुछ ही वर्ष पहले तक शन्नो के सम्बन्ध में समय-समय पर होने वाली बातें कौंध गयीं। उसकी आँखों में उस मकान की अँधेरी कोठरी, उसे अपने दगदगाते रूप की आभा से जगमगाती, गोरी-चिट्टी, सरो-सी लम्बी, साँचे में ढली शन्नो और पतला-छरहरा, गठे हुए शरीर, पतली कमर, चौड़े सीने, दूध-से गोरे रंग और लाल सुनहरे बालों वाला अठारह वर्ष का उसका देवर घूम गया। देवर तो अब भी सुन्दर था, पर शन्नो के खँडहरों को देख कर तो इमारत का अन्दाज़ लगाना भी कठिन था।

धर्मचन्द में कोई दोष न था। गम्भीर और मेहनती; उन्होंने अपने

छोटे भाई का साथ छोड़ना अस्वीकार कर दिया और कलंक उनके नाम के साथ लगा रहा और वे कुँवारे बने रहे।

०

चेतन उन दिनों शायद आठवीं-नवीं में पढ़ता था और छुट्टियों में मुकेरियाँ गया हुआ था। वह स्वयं ताया धर्मचन्द की बारात में शामिल हुआ था और बारात के साथ ही जालन्धर आ गया था। उसकी माँ ने दुल्हन (भागो) को देखा था तो घर आ कर बोली थी, "न जाने इसकी आँखों में क्या है ? शायद ही यह लड़की टिके अन्दों के यहाँ।"

लेकिन जब तक धर्मचन्द जीवित रहे, भागो घर में बनी रही। लाला धर्मचन्द को उसने पूरी तरह अपने कब्ज़े में कर लिया। वही धर्मचन्द, जो दुनिया भर के कहने पर भी भाई-भाभी को न छोड़ सके थे, शादी के बाद छै महीने भी उनके साथ न रह सके। फिर घर अलग हुए। फिर दुकानें बँटीं। धर्मचन्द भुवाड़े में एक मकान की दूसरी मंज़िल में उठ गये। वह दुकान मुकन्दी को दे कर उन्होंने चौरस्ती अटारी में फिर निवाड़ की दुकान खोल ली। शादी के बाद आठ बरस वे जीवित रहे। वे चालिस-बयालिस के थे और भागो बीस-बाईस की, जब उनकी शादी हुई थी। इस आठ वर्ष के अर्से में उनके दो बच्चे भी हुए, जिनमें लड़की की उम्र सात वर्ष की और लड़के की पाँच वर्ष की थी। दमे का रोग उन्हें शादी से पहले ही था। भूखे थे। कुछ ज़्यादा खा गये। दमे का रोग बढ़ता गया। कई बार गर्मियों की रातों के सन्नाटे उनकी लगातार खाँसी से टूट जाते, छतों पर सोये हुए लोग जग उठते और नींद के मारे बच्चे नींद के टूट जाने से रोने लगते। उनके विरोधी उन्हें दमे के बदले क्षय रोग से ग्रस्त बताते और यथासम्भव उनके वहाँ जाने से कतराते। ज्यों-ज्यों साल गुज़रते गये, उनका दमा बढ़ता गया और एक रात दमे के दौरे ही में उनके प्राण निकल गये।

०

जाने क्यों भागो के अतीत की बात सोचते-सोचते चेतन के हृदय में उसके प्रति अपार करुणा भर आयी। उसका बचपन कितने अभाव में बीता;

जवानी कैसे अभाव में बीती; पति मिला तो अधेड़; उस पर दमे का मरीज; सगे-सम्बन्धी टुच्चे और कमीने; फिर वह तेलू के साथ भाग गयी तो क्या बुरा किया ? धर्मचन्द कोई लाखों की जायदाद तो छोड़ न गये थे। वह शन्नो के जूते सहती, अधेड़ देवर की वासना का शिकार बनती तो दो रोटी खाती। अपने समवयस्क, मनचीते आदमी के साथ (वह ब्राह्मण ही सही) भाग गयी तो क्या बुरा किया उसने ? यदि वह किसी खत्री के घर बैठ जाती तो शायद शरीके को उतनी तकलीफ़ न होती। लेकिन क्या नारी की भी कोई जाति होती है, नदी या धरती की कोई जाति होती है....कुन्ती और चन्दा मे वह कितनी भिन्न थी—कितनी साहसी और कितनी दबंग... लेकिन आधारभूत रूप से उसके जीवन की ट्रैजिडी क्या और भी गहरी न थी—पहाड़ों के स्वतन्त्र वातावरण में उड़ी फिरने वाली वह चिड़िया कहाँ कल्लोवानी मुहल्ले के उस पिंजरे में आ फँसी थी। उड़ कर वह जायगी कहाँ ? एक पिंजरे से निकल कर एक दूसरे पिंजरे में न जा फँसेगी ? अन्दों के उस घर के वातावरण से भमानों के घर का वातावरण क्या अच्छा था ? वही उमस, घुटन, संकीर्णता क्या वहाँ न थी ? ....लेकिन वह तेलू, वह काला भुजंग, हृष्ट-पुष्ट जवान—वह पिंजरा उसकी पसन्द का पिंजरा था—उसके लिए नन्दन-कानन था। तेलू के संग वह उस वातावरण की सारी घुटन के ज़हर को अमृत जान कर पी जायगी। उसके स्वभाव में शहरों के निम्न-मध्यवर्ग की दासता तो न थी, ज़िन्दगी अपनी इच्छा से जी लेने की ललक तो थी, फिर वह कितनी भी बेबाक क्यों न हो....चेतन ने बेज़ारी से सिर हिलाया। तभी किसी ने पीछे से, बड़े हल्के उसके कन्धे पर हाथ रखा :

"बन्दे मातरम !" और किंचित हँसी।

चेतन मुड़ा।....लम्बा कद, जो झुके हुए कन्धों के फलस्वरूप पीठ पर बन जाने वाले कूबड़ के कारण मँझला-सा लगता था; साँवला, तीखा चेहरा (जिसे लम्बी नाक और पिचके कल्लों ने और भी तीखा बना दिया था) शरीर पर बटन-खुला अचकन, खादी का चूड़ीदार पायजामा और सिर पर गान्धी टोपी...."अरे गोविन्दराम जी। बन्दे मातरम....बन्दे मातरम।"

"मुझे हुनर साहब से पता चला था कि तुम आये हुए हो," उन्होंने चेतन के साथ कदम बढ़ाते हुए कहा, "मेरा ख़याल था, तुम मेरी तरफ़ आओगे पर दो दिन राह देखते हो गये, तुम्हारी शक्ल दिखायी नहीं दी।...कहो, अच्छे तो हो ? सुना शिमले के मज़े लूट कर आ रहे हो।"

"मज़े क्या, सज़ा भुगत आया हूँ, लेकिन सज़ा भुगतने में भी तो एक नया अनुभव होता है, वैसा ही अनुभव मैं भी सँजो आया हूँ।....आप इधर पंजपीर किधर आये थे ?"

"एक पार्टी की तरफ़ ब्लॉक के पैसे थे, इधर हाथ तंग था, मैंने सोचा, ख़ुद ही ले आऊँ। अपने-आप पैसे चुकाने तो दुकान पर कोई ही भलामानस आता है।....तुम किधर से आ रहे हो और किधर जा रहे हो ?

"हुनर साहब श्री रुद्र सेन आर्य की दुकान पर मिल गये थे। वहाँ से ख़ालसा होटल, कम्पनी बाग़, विधवा-सहायक-सभा और लाला जालन्धरीमल जी योगी के यहाँ उन्हीं की अर्दल में घूमता हुआ लौटा हूँ। कल-परसों शायद फिर लाहौर चला जाऊँ। सोचा, ज़रा पुराने ठिकानों के दर्शन करता चलूँ।"

"हमारी तरफ़ नहीं आये ?"

"कोट किशनचन्द से वापसी पर पुरियाँ मुहल्ले और किला बाज़ार से हो कर आपकी ओर ही आने की सोचता था। जालन्धर आऊँ और भैरो बाज़ार का चक्कर न लगाऊँ ?....मैं और जाऊँ तेरे दर से बिन सदा दिये ?"....और चेतन हँसा।

"हुनर साहब को आज शाम आना था। उन्होंने भगवद्गीता का आमफ़हम ज़बान में तरजुमा किया है। सोचते थे कि उसी सिलसिले में एक मीटिंग की जाय और उसमें वे उसे पढ़ें।"

"मुझसे उन्होंने आपको यह पैग़ाम देने को कहा था कि वे शाम को आपके चौबारे आयेंगे।" मन-ही-मन उसने कहा—इसलिए जालन्धर के तूल-अर्ज़ की ज़रीबकशी कर रहे हैं कि मीटिंग में सभी लोग आ जायँ।

"मुझे जब मालूम हुआ कि तुम आ रहे हो तो मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मीटिंग का इन्तज़ाम तो हम कर देंगे, पर अगर तुम उनकी इस नयी नज़्म

के बारे में दो शब्द कह दो तो बड़ा अच्छा हो।"

"मैं तो शायद कल चला जाऊँ।"

"चलो अभी चल कर बात करते हैं।"

"मैं कोट किशनचन्द से वापसी पर आपके चौबारे आऊँगा।"

"तो चलो खिगराँ दरवाज़ा तक तो चलो।"

और उन्होंने चेतन के कन्धे पर लीडरों के अन्दाज़ में अपना हाथ रख दिया।

तैंतीस

लाल बाज़ार के बंसी सब्ज़ी-फ़रोश और बाज़ार बोहड़ वाला के स्टैम्प-मेकर एण्ड एंग्रेवर, लाला गोविन्दराम में एक गुण समान था। स्वदेशी आन्दोलन के बाद लोगों ने उन्हें बहुत कम बाज़ार में घूमते देखा था। आन्दोलन का ज़ोर रहता तो दोनों दिन-रात उसमें जुटे रहते, नहीं बंसी सब्ज़ी बेचता या रहमत के मुक़ाबिले में अपनी दुकान पर स्वदेशी बैंतबाज़ी कराता और लाला गोविन्दराम दीनानाथ बुकसेलर की दुकान के ऊपर अपने चौबारे की खुली खिड़की के सामने दिन भर बैठे ब्लॉकों की एंग्रेविंग करते। तब आधुनिक तर्ज़ के ब्लॉक जालन्धर में अभी नहीं बनते थे और लाला गोविन्दराम एंग्रेविंग करके ब्लॉक तैयार करते थे और इस काम में सारे शहर में वही अकेले कारीगर थे। उनका चौबारा, जो मकान की दूसरी मंज़िल में था, बाज़ार की ओर को किंचित बढ़ा हुआ था और उस पर 'ब्लॉक मेकर एण्ड ऐंग्रेवर' का बोर्ड बड़ी दूर से दिखायी दे जाता था।.... लेकिन उधर कहीं गुजरात, महाराष्ट्र अथवा मध्य भारत में राजनीतिक आन्दोलन का बिगुल बजता, इधर अपने औज़ार-वौज़ार छोड़ कर लाला गोविन्दराम उठ खड़े होते और फिर ग्राहकों और ब्लॉकों को भूल, गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले जलसों और जुलूसों का प्रबन्ध करते घूमते। बंसी

घण्टी बजा कर मुनादी किया करता और वे वक्ताओं और स्वयं-सेवकों के घरों में जा कर उन्हें एकत्र किया करते। यद्यपि इक्कीस से इकतीस तक (जब तक कि चेतन जालन्धर रहा) उन्होंने हज़ारों सभाओं का आयोजन किया था, पर बंसी की तरह वे भी किसी सभा में भाषण न दे पाये थे। अपनी सभाओं के लिए प्रधान वे ऐसा चुनते थे, जो समय पड़ने पर वक्ताओं की कमज़ोरी को भी अपने ओजपूर्ण भाषण से ढक ले।

लेकिन सभाओं को सफलता से आयोजित करने की क्षमता से कहीं ज़्यादा बड़ा एक दूसरा गुण उनके यहाँ था। उनका स्वदेश-प्रेम असन्दिग्ध और उनकी कर्मठता और कर्तव्य-निष्ठा अद्वितीय थी। वे कोई बात मन में तय कर लेते तो उसे पूरा किये बिना पीछे न हटते। आन्दोलन के दिनों में बीसियों बार उन्होंने धरने दिये, पिकेटिंग की और दस साल में ग्यारह बार जेल गये।

चेतन छठी जमात में पढ़ता था, जब इक्कीस के आन्दोलन में उसने शहर में बच्चे-बच्चे की ज़बान पर उनका नाम सुना था। महात्मा गान्धी का जुलूस निकलने वाला था और 'बक' नाम का एक बड़ा ही क्रूर अंग्रेज़ जिलाधीश था। उसने सिविल लाइन्स में कचहरी के आगे से जुलूस ले जाने पर रोक लगा दी थी। लेकिन जुलूस उधर ही से गुज़रा। अपार जनसमूह। इतने बड़े जुलूस के लिए अधिकारी तैयार न थे। महात्मा जी की कार तो निकल गयी, पर बाकियों पर बक ने डण्डे बरसवा दिये। लाला गोविन्दराम ने पहली बार ऐन कचहरी के आगे धरना दे दिया। उन्हें बड़ी बेदर्दी से पीटा और घसीट कर पुलिस की गाड़ी में लाद कर ले जाया गया। रात को महात्मा गान्धी ने भरी सभा में गोविन्दराम की वीरता और कर्तव्य-निष्ठा की प्रशंसा की। और कहा कि जिस देश की मिट्टी से लाला गोविन्दराम जैसे लाल पैदा हुए हैं, उसे कोई ग़ुलाम नहीं रख सकता। महात्मा जी तो भाषण दे कर लुधियाना चले गये। उनके जाते ही बक ने सभा ग़ैरकानूनी करार दे दी। और जब लोगों ने विसर्जित होने से इनकार कर दिया तो उसने लाठी चलाने का आदेश दिया और लोगों ने 'महात्मा गान्धी की जय' के साथ 'लाला गोविन्दराम की जय' के घोष से आसमान

गुँजा दिया । वे लाठियों से घायल हो गये, लेकिन जलसे से नहीं हटे। बक ने बड़ी बेदर्दी से आन्दोलन को दबाने का प्रयास किया, लेकिन उसकी हिंसा आन्दोलन की आग के लिए घी साबित हुई। गली-मुहल्ले के लोगों ने अपने मन का आक्रोश मिटाने के लिए अपने मुहल्ले के कुत्तों के नाम 'बक' के हम-नाम रख दिये । उन्हीं दिनों एक काला, डरावना डग कुत्ता न जाने कहाँ से कल्लोवानी मुहल्ले में आ गया । तुरन्त मुहल्ले वालों ने उसे 'बक' के नाम से विभूषित कर दिया । (साल बाद वह कुत्ता पागल हो गया तो लोग लाठियाँ ले कर उसके पीछे हो लिये । उस दिन खुले दिल से जो लाठियां उस पर बरसायी गयीं, उनमें निश्चय ही कुछ डिप्टी कमिश्नर बक के लिए भी थीं । अचेतन रूप से एक पागल कुत्ते को नहीं, पागल डिप्टी कमिश्नर को ही लोग उसके माध्यम से पीट रहे थे ।)

•

विदेशी कपड़े के बाइकाट के दिनों में चेतन ने लाला गोविन्दराम का जो रूप देखा, वह उसके मन पर सदा के लिए अंकित हो गया था । सात दिन गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले विदेशी कपड़ा इकट्ठा किया जाता रहा था और आठवें दिन नदीराम के तालाब पर उसकी होली जलायी गयी थी और पुलिस की लाठी चली थी । शहर के जिन घरों से विदेशी कपड़ा न मिला था, उनकी सूची तैयार हुई थी । सरकारी अफ़सरों को तो छोड़ दिया गया था, शेष से कपड़ा लेना स्वयं-सेवकों ने अपना धर्म बना लिया था । लेकिन कुछ ऐसे भी खुदा के बन्दे थे, जिन पर उनके समझाने-बुझाने, अनुनय-विनय, जयकारों और लानतों का कोई असर न पड़ा था । स्वयं-सेवकों ने उनकी 'मुर्दाबाद' भी बुलायी थी, लेकिन वे ऐसे निश्चल रहे थे, जैसे ये बद-दुआएँ उनको नहीं, किसी और को दी जा रही थीं । इन्हीं में एक खाता-पीता, लेकिन बेहद कंजूस सुनार—'भवानिया राम' था । उसने एक पुराना विदेशी चीर भी न दिया था और यह बात स्वयं-सेवकों को खल गयी थी और उनका ख़याल था कि यदि अपने ही एक आदमी पर ज़ोर नहीं डाल सकते तो विदेशी सरकार पर खाक ज़ोर डालेंगे । छै दिन तक लगातार स्वयं-सेवक उसके यहाँ जाते थे, बदल-बदल कर टोलियाँ उसके

यहाँ गयी थीं, पर उस पर कोई असर न हुआ था। सितम यह है कि उन्हें विदेशी कपड़े देने के बदले, वह उनको और कांग्रेस को बीस-बीस गालियाँ देता था। साधारण आन्दोलन होता तो लोग उसकी तुक्का-बोटी एक कर देते, अहिंसात्मक आन्दोलन था और सुनार कंजूस भी था और सनकी भी। जब सब स्वयं-सेवक अपनी-सी कर के हार गये तो अन्तिम दिन स्वयं लाला गोविन्दराम ने अपने दो साथियों को ले कर वहाँ जाने का निश्चय किया।

उन दिनों स्कूलों का डिसिप्लिन काफ़ी ढीला हो गया था। बच्चों के लिए यह एक विराट तमाशा था। दिन-दिन भर वे गली-मुहल्ले में 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते घूमते थे। चेतन सुबह घर से निकलता तो कभी इस टोली के साथ हो लेता, कभी उस टोली के साथ। सुनार की जीत होती है अथवा स्वयं-सेवकों की—यह जानने के लिए उसका मन बड़ा आतुर था। जितनी टोलियाँ उसके यहाँ गयी थीं, चेतन उन सबके साथ गया था। कभी-कभी उसे सख़्त गुस्सा आता कि वे लोग सुनार की पगड़ी छीन क्यों नहीं लेते और कभी उस सुनार के प्रति, जो इतने ज़ोर पड़ने के बावजूद अडिग था, उसे किंचित श्रद्धा भी होती और यह जानने के लिए उसका मन उत्सुक हो उठता कि देखें—आख़िर इस रस्साकसी में कौन जीतता है! लाला गोविन्दराम जी ने स्वयं जाने का फ़ैसला किया तो वह उनके साथ हो लिया।

लाल बाज़ार में दस-बीस दुकानें छोड़ कर सुनार की दुकान थी। एक बड़ी-सी रेशमी, निरन्तर प्रयोग के कारण अत्यन्त मैली, पगड़ी सिर पर लपेटे 'भवानिया' कोई गहना गढ़ रहा था। लाला गोविन्दराम उसकी दुकान के सामने जा कर खड़े हो गये और बड़े विनम्र, लेकिन ऐसे स्वर में, जो सारी विनम्रता के बावजूद आदेशपूर्ण था, उन्होंने कहा—"लाला भवानीराम, देश की स्वतन्त्रता के यज्ञ में तुम्हारी आहुति नहीं पड़ी। यह अपनी सिल्क की पगड़ी उतार कर हमें दे दो।"

"पगड़ी उतार के दे दो, जैसे यहाँ पगड़ियों की दुकान खोल रखी है?" भवानिया बिना उनकी ओर देखे बड़बड़ाया और पूर्ववत अपना

काम करता रहा ।

"अच्छा," लाला जी ने कहा, "हम प्रण करके आये हैं कि तुम्हें हम पाप का भागी नहीं बनने देंगे । हम यहीं जान दे देंगे, लेकिन पगड़ी लिये बिना नहीं हिलेंगे ।"

और लाला गोविन्दराम एक टाँग के बल खड़े हो गये और मुँह उन्होंने सूरज की ओर कर लिया । जाने वे कितनी देर तक खड़े रहे, क्या मन्त्र पढ़ते रहे, चेतन को कुछ याद नहीं, केवल इतना याद है कि क्षण-प्रति-क्षण उनके चेहरे पर कुछ अजीब-सा तेज आता गया, उनकी नसें तनती गयीं, आँखें चढ़ती गयीं, और उसे लगा कि यदि वे इसी तरह सूरज पर दृष्टि जमाये रहे तो सूरज नेजे पर उतर आयगा और यह भवानिया और उसकी दुकान एकदम जल उठेगी । तभी भवानिया ने हथियार डाल दिये और पगड़ी उतार कर उनके चरणों पर रख दी ।

चेतन लाला गोविन्दराम जी की बड़ी इज़्ज़त करता था । लड़कपन मे उसने उन्हें कांग्रेस के आन्दोलन में खटते देखा था और चेतन की स्थिति उस बच्चे की-सी रही थी, जो अपने प्रिय नेता के साथ-साथ घूमना पसन्द करता है, पर संकोच और श्रद्धा के मारे उससे बात नहीं कर पाता । पहली बार वह उनके सम्पर्क में तब आया, जब वह कॉलेज में पढ़ रहा था और उसके बड़े भाई लॉण्ड्री का जंजाल छोड़ कर, अपने सहयोगी, एक्स्पर्ट डायर एण्ड ड्राई क्लीनर, राष्ट्रीय कवि श्री राजाराम के परामर्श से राष्ट्रीय आन्दोलन में कूदे थे । उसके भाई तो डेण्टिस्ट हो गये और अनारकली, लाहौर की अपनी दुकान में मरीजों के दाँत उखाड़ने या लगाने में मस्त थे और श्री राजाराम ने फ़ीरोज़पुर में लॉण्ड्री खोल ली थी या जाने उसे भी छोड़ कर कहीं और चले गये थे, पर लाला गोविन्दराम वहीं थे । उनके प्रति चेतन की श्रद्धा कम न हुई थी और वह जब कभी आता था, उनके चौबारे पर दस-बीस मिनट के लिए ज़रूर जाता था ।

लाला गोविन्दराम साहित्यानुरागी थे । फिर उनका यह प्रयास रहता था कि उनकी सभाओं के लिए कवियों की कमी न पड़े और वे नये कवियों

को सदा प्रोत्साहन देते थे। सभा जमाने के लिए कवियों की बड़ी ज़रूरत पड़ती थी। पहले जब दो-तीन कवि अपनी ओज-भरी कविताओं से सभा का रंग जमा देते तो प्रमुख वक्ता अपना भाषण आरम्भ करता। हुनर साहब जब जालन्धर आते तो दो-तीन सभाओं में ज़रूर कविता पढ़ते। कांग्रेस-आन्दोलन से प्रभावित हो, उन्होंने सूट-बूट छोड़, खादी की धोती-कुर्ता और टोपी अपना ली थी और बड़े तमतराक से राष्ट्रीय कविता करने लगे थे। चेतन को लाला गोविन्दराम पर श्रद्धा थी, पर हुनर साहब की हकीकत उस पर अच्छी तरह खुल गयी थी। उनकी राष्ट्रीय कविता में भी उनके व्यक्तित्व के ढोल की तरह खासी पोल थी। वे कभी ऐसी कविता न लिखते थे, जिससे वे कानून की गिरफ़्त में आ जायँ अथवा राजद्रोह के अभियोग में उन्हें हथकड़ी लग जाय। हर्र लगे न फिटकरी, रंग चोखा आये; बुतों का विसाल भी हो जाय और हाथ से जन्नत भी न जाय—ऐसी ही थी उनकी राष्ट्रीय कविता....

पत्ते-पत्ते में नज़र आता है जल्वा कौम का
ज़र्रे-ज़र्रे में नज़र आती है सूरत कौम की
उनकी आँखों में कोई मूरत समा सकती नहीं
बस गयी हो जिनके दिल में एक सूरत कौम की

एक बार एक सभा में, (जहाँ वे चेतन को अपनी कविता सुनवाने ले गये थे) बड़े ही ओज-भरे स्वर में उन्होंने यही कविता पढ़ी थी। लेकिन लाहौर की एक धार्मिक सभा में रामनवमी के अवसर पर, जब वे कविता पढ़ने खड़े हुए, तो उन्होंने केवल एक शब्द बदल कर इसी कविता से काम चला लिया—'क़ौम' की जगह उन्होंने 'राम' कर दिया!

पत्ते-पत्ते में नज़र आता है जल्वा राम का
ज़र्रे-ज़र्रे में नज़र आती है सूरत राम की।

सस्ते ढंग से सस्ती प्रशंसा—चेतन को हुनर साहब के जीवन का एक-मात्र ध्येय लगता था। सच्चा साहित्य, जो श्रम चाहता है, वह शायद उनके बस का रोग न था। वे जोड़-तोड़ कर एक नज़्म लिख लेते, फिर सारे शहर का चक्कर लगा कर उसे मित्र-परिचितों को सुनाते, उसे सुनाने के

लिए मीटिंगों का आयोजन करते और जितने भी अधिक-से-अधिक पत्रों में सम्भव हो सकता, उसे छपवाते। 'जितना वक्त ये इस सब जोड़-तोड़ में लगाते हैं, उससे आधा भी यदि ये सच्चा साहित्य रचने में लगायें तो शायद इन्हें इस जोड़-तोड़ की जरूरत न पड़े'—चेतन कभी-कभी सोचा करता; पर वह सब अब उनकी आदत का अंग बन चुका था। हुनर साहब के साथ इतने वर्ष गुज़ारने, उनके जोड़-तोड़ में योग देने और उसका अध्ययन करने पर चेतन वह सब कब का छोड़ चुका था, पर हुनर साहब अब तक उसी दलदल में फंसे थे। सुबह से उनके साथ घूमते हुए चेतन भली-भाँति समझ गया था। उनके लिए उसके मन मे रंचमात्र भी श्रद्धा न थी....और लाला गोविन्दराम उससे कह रहे थे कि उनकी कविता का परिचय दे....वह तो उनकी कविता का ऐसा परिचय दे सकता है, उसने सोचा, कि वे फिर जालन्धर का रुख न करें, पर एक तो वे उसके बड़े भाई के मित्र थे, दूसरे उसने कभी उन्हें 'गुरु' कहा था और यद्यपि वह तो उनका 'शिष्य' नहीं रहा था, पर वे अभी तक स्वयं को उसका 'गुरु' मानते थे और चेतन को उसी की लाज थी।

०

खिगराँ दरवाज़ा को चलते-चलते चेतन ने लाला गोविन्दराम से फिर कहा कि वह कोशिश करेगा शाम को आने की, पर वादा नहीं करता। वे न मिलते तो ज़रूर आता, पर अब सौभाग्य से उनके दर्शन हो गये, अब शायद न आये, क्योंकि उसके पिता आज आने वाले हैं। वे आ गये तो फिर शायद ही उसका कहीं निकलना हो सके....और उसने उनसे जालन्धर की राजनीतिक गतिविधि का हाल-चाल पूछा था।

लाला गोविन्दराम ने उसे बताया था कि शायद महात्मा गान्धी और सरकार में समझौता हो जाय और कांग्रेस असेम्बलियों मे जाय। यदि कांग्रेस ने धारा-सभाओं के लिए जाना निश्चित किया, तो उनके मित्र कहते हैं कि उन्हें धारा-सभा के लिए जालन्धर से खड़ा होना चाहिए।....''हुनर साहब ज़ोर दे रहे हैं,'' उन्होंने कहा, ''कि मैंने अपनी ज़िन्दगी का बेहतरीन हिस्सा जब जेलों में काट दिया तो मुझे असेम्बली के लिए भी खड़ा होना चाहिए।

यह भी तो एक तरह की लड़ाई है। जब तक देश पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तब तक जेलों में हो या असेम्बलियों में, लड़ाई जारी रहेगी।"

"लेकिन असेम्बली में आप क्या बोलेंगे?" चेतन ने सहसा पूछा।

"अभी बोलने की जरूरत ही नहीं है," लाला गोविन्दराम जी ने कहा, "अभी तो नेता की आवाज़ पर 'हाँ' या 'ना' में हाथ उठाने की ज़रूरत है। कल यदि महात्मा गान्धी कहें कि असेम्बलियाँ छोड़ कर जेलों को भर दो, तो हमें उन आदमियों की ज़रूरत है, जो असेम्बलियों की सीटों को बे-झिझक छोड़ कर जेलों को जा बसायें। यही सब सोच कर मैंने तय कर लिया है कि मैं असेम्बली के लिए खड़ा हूँगा। मेरे मुकाबिले में कोई दूसरा आदमी जालन्धर से नहीं जीत सकता।" और वे किंचित हँसे, "हुनर साहब ने विश्वास दिलाया है कि वे चुनाव के दिनों में गाँव से आ कर जालन्धर रहेंगे और चुनाव-सम्बन्धी मेरी हर नयी मीटिंग में एक-दम नयी कविता सुनायेंगे।"

०

खिगराँ दरवाज़ा आ गया था और यद्यपि लाला गोविन्दराम ने ज़ोर दिया कि चेतन उनके साथ साईदास हाई स्कूल की प्राइमरी शाखा तक चले और किला मुहल्ले से पुरियाँ मुहल्ला होता हुआ कोट किशनचन्द जाय, पर चेतन ने सोचा था कि वह इतना चक्कर नहीं लगायेगा, कोट किशनचन्द से वापसी पर पुरियाँ मुहल्ला होता हुआ बाज़ार बोहड़ वाला का चक्कर लगाता, घर लौटेगा। इसलिए उसने लाला जी से हाथ मिलाया और वादा किया कि अगर उसे ज्यादा देर न हो गयी तो वह चाहे चन्द मिनट ही को क्यों न सही, उनके चौबारे आयेगा। और उसने हाथ बढ़ा दिया।

हाथ मिला कर प्यार से उसके कन्धे को थपथपाते हुए लाला गोविन्दराम खिगराँ दरवाज़ा को हो लिये और चेतन सीधे अड्डा होशियारपुर को चल दिया।

चौंतीस

दरवाज़ा खिगराँ से अड्डा होशियारपुर बहुत दूर नहीं था और अड्डा होशियारपुर से ज़रा इधर पुरियाँ मुहल्ले से ढालुवाँ रास्ता उस सड़क पर आ निकला था। चेतन लाला गोविन्दराम से हाथ मिला कर चला तो उसे उस ढलान का खयाल आ गया—उस ढलान के साथ उसकी कितनी सुखद-दुखद स्मृतियाँ जुड़ी थीं। कितनी बार वह उस पर उतरा-चढ़ा था—केवल कुन्ती की खिड़की के नीचे से गुज़रने के लिए—मीलों का चक्कर मार कर वह आता था—केवल उसकी एक झलक पाने के लिए।....और यह अजीब बात थी कि इतने वर्ष बीत जाने पर कॉलेज के ज़माने की वही बलवती इच्छा, जो उसे साइकिल पर मीलों दौड़ाये लाती थी, उसी तरह विद्यमान थी और उस खिड़की के नीचे से गुज़र जाना उसे आज भी उतना ही प्रिय था।

पर कुन्ती विधवा हो चुकी थी....चेतन फिर क्यों देखना चाहता था उसे....पर शायद उसे नहीं, उसके माध्यम से अपने उन्हीं उल्लास-भरे दिनों का स्पर्श वह पाना चाहता था, जो सपनों-से बीत गये थे, पर अपनी मीठी याद उसी तरह छोड़ गये थे....कुन्ती....उसके लजीले-शरमीले प्यार की वह अछूती प्रतिमा—वैधव्य के बाद भी—उसके मानस-पट पर अपनी निर्दोष छवि के साथ अंकित थी....उसका प्यार परवान न चढ़ा सही,

पर कुन्ती का सुहाग तो बना रहता—चेतन ने सोचा—उसका जीवन तो सफल होता—उसे सुखी देख कर वह भी सुख मनाता।—चेतन की आँखों के सामने वह दृश्य घूम गया, जब कुन्ती की शादी के बाद वह अनन्त के साथ पुरियाँ मुहल्ले गया था और ब्याह के झमझमाते गहनों-कपड़ों में लदी कुन्ती अपनी सहेली के साथ कुएँ पर पानी भर रही थी। भागते हुए, अनन्त का पीछा करते हुए, चेतन ने कुन्ती को सुना कर ज़ोर से कहा था, 'तुम में नयी शादी का जोश है भाई, अब मैं तुम्हें काहे को पकड़ सकूँगा।' और उसे देखते ही वह चौंक उठी थी, चर्खी उसके हाथ से छूट गयी थी और घर्र-घर्र करती हुई बाल्टी धड़ाम से पानी में जा डूबी थी....

यह अजीब बात है कि कुन्ती का ख़याल आते ही भरे बाज़ार में चेतन निनान्त अकेला हो गया था। बाज़ार की रौनक के लिए उसकी आँखें और शोर के लिए उसके कान एकदम अजनबी हो गये थे। कुन्ती के साथ अपने पहले प्यार के उन पंख-लगे उड़ते-से दिनों की एक-एक स्मृति उसकी आँखों के सामने फड़फड़ा उठी थी। उन सुख-स्मृतियों को एकान्त रूप से मन के पर्दे पर देखने के लिए वह सड़क के किनारे-किनारे चला जा रहा था। पानी शायद कम्पनी बाग़ और मण्डी की ओर ही ज़्यादा बरसा था, क्योंकि खिगराँ दरवाज़ा के उधर कीचड़ नहीं था और सड़क साफ़ थी।

... भरी बाल्टी इतने ज़ोर से पानी में डूबी थी कि झटके से उसकी रस्सी टूट गयी थी और बाल्टी के टूट जाने से ख़ाली रस्सी उतने ही ज़ोर से ऊपर को घूमी थी और चर्खी पर उल्टी लिपट चली थी। टूटे हुए सिरे की मार से बचने के लिए कुन्ती कुएँ की जगत से कूद कर हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी थी और जब सहेली उसके पीछे कूदी थी और उसे पकड़ कर उस शरारत के लिए उसने उसे पीटना चाहा था तो चेतन से आँखें मिला कर हँसती हुई कुन्ती सहेली के आगे-आगे हरिणी-सी कुलाचें भरती और पीछे मुड़-मुड़ कर देखती हुई भाग निकली थी....

'क्या जाता था विधाता का, यदि हँसी के उन गुंचों को वह कुछ और दिन खिलने देता,' चेतन ने सोचा, 'बाग़ में कितनी भी हरियाली क्यों न हो, पर यदि कहीं पत्तों में से झाँकते हुए, हँसते, ठहाके मारते, गुंचे नहीं

तो कुछ भी नहीं'....लेकिन कुन्ती की हँसी के सोते तो विधाता ने एकदम सुखा दिये....और चेतन के हृदय की गहराई से एक लम्बी साँस निकल गयी और उसके सामने गर्मियों की दोपहर का वह तपता हुआ दिन आ गया, जब कुन्ती की माँग से सिन्दूर पोंछ दिया गया था, उसकी चूड़ियाँ तोड़ डाली गयी थीं और उसकी हँसी और ठहाकों पर ताले लगा दिये गये थे....और तपती धूप में नंगे पाँव, सफ़ेद धोती पहने, श्मशान में उस शव के अन्तिम दर्शनों को (जो कल तक उसका पति था, उसके नन्हें बच्चे का बाप था) आती हुई, मूक, मर्माहत-सी उसकी वह मूरत....वह कितनी दुबली हो गयी थी। उसके हिम-ऐसे श्वेत मुख पर केवल लम्बी-सी नाक ही दिखायी देती थी और आँखें बेकिनार शून्य में भटक रही थीं....चेतन के सामने वह मूरत ऐसे आ गयी, जैसे उसने अभी-अभी उसे देखा हो—उसकी सूनी आँखें, लम्बी पतली नाक, उसका विवर्ण मुख, उसके पतले-पतले होंटों का वह जमाव और उसकी दृष्टि की वह हैरान वीरानगी—उसका सब कुछ अपने नन्हें-से-नन्हे ब्योरे के साथ उसके सामने था—एक भंगिमा भी तो अपने स्थान से इधर-उधर न हुई थी। शव के अन्तिम दर्शन कर, चन्द कदम हट कर, वह शव के चरणों पर झुकी थी और फिर जैसे आयी थी, वैसे निस्पन्द और निष्प्राण चली गयी थी....और चेतन का जी चाहा था, उन सुकोमल तलवों के नीचे, उस जलती-तपती धरती पर लेट जाय और उस तपिश की ज़रा-सी आँच भी उन फूल-से पैरों को न लगने दे....'क्या वे पैर अब कभी उसी तरह कुएँ की जगत से कूद सकेंगे ?' चेतन ने सोचा, 'क्या वे होंट उस तरह ठहाका मार सकेंगे और वह देह-यष्टि हँसते-हँसते दोहरी हो सकेगी—शायद कभी नहीं'....और एक लम्बी, गहरी साँस उसके हृदय की गहराई से निकल कर उसके होंटों पर आ गयी....तभी उसके कानों में हल्की-सी हँसी की आवाज़ आयी—चौंक कर उसने सिर उठाया—उसका हृदय धक् से रह गया—कुन्ती....

०

अपनी सुखद-दुखद स्मृतियों में खोया चेतन पुरियाँ मुहल्ले से आने वाले रास्ते के निकट उसी टाल पर पहुँच गया था, जिसके सामने कुन्ती के पति

का प्रेस था और जिसके तख्त पर अपने मित्र गच्चो के साथ बैठे-बैठे उसने कुन्ती के पति की अर्थी का इन्तजार किया था। कुन्ती सड़क पर खड़ी, टाल के सामने वाले मकान से उतरने वाली सीढ़ियों पर चढ़ने को तैयार किसी स्त्री से हँस-हँस कर बातें कर रही थी।....उसका मुँह चेतन की ओर नहीं था। पर वह उस आवाज़ और उस हँसी को हज़ारों में पहचान सकता था।

इससे पहले कि चेतन उसके बराबर पहुँचता, कुन्ती उस स्त्री से छुट्टी ले कर चल दी। चेतन का खयाल था कि वह सड़क पार करके वापस अपने घर की ओर जायगी। अपने पति की मृत्यु के बाद वह अपने मायके वाले मकान ही में रहने लगी थी। पर वह मुड़ी नहीं, सड़क के उसी किनारे अड्डा होशियारपुर की ओर चल दी।

धड़कते हुए दिल के साथ चेतन ने पाँव बढ़ाये। उसने उसका मुख न देखा था। उसने सीधी-सादी सफ़ेद धोती पहन रखी थी। वह पहले से किंचित मोटी हो गयी थी। लेकिन वह कुन्ती ही थी, चेतन को इसका पूरा विश्वास था। वह चाहता था, बढ़ कर उसके आगे निकल जाय और मुड़ कर उसे एक नज़र देख ले। पहला ज़माना होता तो चेतन यही करता। पर कुन्ती विधवा थी। उसे साहस नहीं हुआ। वह सड़क के अपने किनारे उसके कुछ फ़ासले पर, चलता गया। अड्डा होशियारपुर का चौरास्ता पार कर, कुन्ती सीधी बढ़ती गयी। गुरुकुल आर्यसमाज मन्दिर आ गया। चेतन का मन हुआ, वह उसके अन्दर जाय, लायब्रेरी में कुछ क्षण बैठे। उस अहाते में उसने जाने कितनी बार स्वामी सत्यदेव की कथा सुनी थी, उस पुस्तकालय में बैठ कर जाने कितनी शामें पत्रिकाएँ पढ़ने में गुज़ारी थीं .. लेकिन कुन्ती बढ़े जा रही थी। चेतन का खयाल था, शायद वह फाटक के पार बायीं ओर को मुड़ कर देवी तालाब की ओर जायगी। लेकिन फाटक पार कर, वह सीधी कोट किशनचन्द की ओर बढ़ चली। कई बार चेतन के मन में इच्छा हुई, वह कदम बढ़ा कर आगे हो जाय और कुछ तिरछा हो कर उसे देख ले, उसके मन में यह भी आया कि वह सड़क के उस किनारे हो जाय, जिस पर कि वह जा रही थी....

पर जाने किस संकोच ने उसके पाँवों में बेड़ियाँ डाल दीं, न वह चन्द कदम बढ़ा कर उसके आगे बढ़ सका, न सड़क पार कर उस किनारे हो सका। उसी गति से उतने ही फ़ासिले पर चलता गया। उसके दिमाग़ ने एकदम सोचना बन्द कर दिया। उसकी दृष्टि उस सीधी-सादी सफ़ेद धोती पर लगी रही और इस उत्कण्ठा से उसके शरीर और दिमाग़ की सारी नसें तनी रहीं कि शायद वह भूले से पीछे मुड़ कर देखे और वह उसकी पूरी झलक पा ले। लेकिन भीड़ नहीं थी, सड़क सूनी थी और कुन्ती अपने ध्यान में मगन बढ़े जा रही थी।

कोट किशनचन्द के बाहर चौक में वह सहसा सामने से आने वाली एक स्त्री से मिलने के लिए रुकी और फिर वही हँसी चेतन के कानों में गूँज गयी।

दोनों हँस-हँस कर बातें कर रही थीं कि चेतन उसी चाल से आगे निकल गया। पर वह मुड़ कर कैसे देखे, उसे साहस न हुआ। ज़रा-सा चक्कर दे कर वह भी कोट के अहाते की ओर मुड़ा और उसने ऐसे ही नज़र उठा कर देखा। कुन्ती ही थी....उसका चेहरा किंचित भर गया था, पर उसके माथे पर वही दूज के चाँद-ऐसा दाग़ था, वही बड़ी-बड़ी आँखें और सुलोचना-ऐसी वही नुकीली ठोडी। उसके मुख पर न पाउडर था, न ग़ाज़ा, पर वह हँसी के कारण खिला पड़ता था। सीधी-सरल, आवेगहीन हँसी।....तभी कुन्ती ने निगाहें उठा कर उसकी ओर देखा। पर चेतन ने तत्काल निगाहें हटा लीं। वह मुड़ा। उसका मन हुआ वह रजत के घर की सीढ़ी चढ़ जाय, पर उसका दरवाज़ा बन्द था। वह सेठ हरदर्शन की कोठी की ओर बढ़ गया।

पंतीस

सेठ हरदर्शन के बँगले में जाने से पहले चेतन ने एक बार फिर मुड़ कर देखा—कुन्ती चली गयी थी। शायद वह कोट किशनचन्द में किसी रिश्तेदार अथवा सहेली से मिलने के लिए आयी थी....'वह ख़ुश थी, वह हँस रही थी....शायद उसने अपने ग़म को अपने बेटे की देख-भाल में भुला दिया है'....चेतन ने सोचा....और उसके अपने मन पर कुन्ती का वही रूप अंकित था, जो उसने श्मशान में देखा था....और अपनी अतिरिक्त भावुकता और मूर्खता के कारण वह सोचता था कि वह अब हमेशा-हमेशा के लिए दुखी और ग़मगीन रहेगी....लेकिन समय तो सबसे बड़ा मरहम है। उसके सहारे आदमी बड़े-से-बड़े दुख भूल जाता है....तो चेतन अपना दुख क्यों नहीं भूल सका? उसका वह घाव क्यों नहीं भरा? ज़रा-सा छेड़ने पर वह क्यों वैसे-का-वैसा हरा हो जाता है?....लेकिन चेतन अपने इस प्रश्न का उत्तर नहीं पा सका। बँगले के अहाते में वीरसेन घूम रहे थे, सहसा उसके पास आ कर वे चुपचाप खड़े हो गये। चेतन ने पलट कर उन्हें 'नमस्कार' किया। फिर वह उनके साथ अहाते में टहलने लगा।

वीरसेन सेठ हरदर्शन के छोटे भाई थे। लम्बे, पतले, सींकिया। जाने जन्म के समय पिता ने क्या सोच कर उनका नाम वीरसेन रखा होगा। देखने में लगता कि यदि जोर की हवा चले तो उड़ जायँ। कुछ ही वर्ष

पहले विलायत से लौटे थे, लेकिन कोई काम न करते थे। चेतन जब जालन्धर में था और कोट किशनचन्द की ओर आता था तो कभी-कभार सेठ हरदर्शन के बँगले में भी चला जाता था। वीरसेन चुपचाप बँगले में टहल रहे होते, अथवा बेंत की गोल कुर्सी पर बैठे छत की ओर तका करते। कभी सड़क पर भी मिलते—तो इस या उस किनारे चलते हुए—गहरे ध्यान में मग्न। वे बहुत बढ़िया कपड़े पहनते। हमेशा कमीज़-पतलून पहने रहते, पर उनकी कमीज़ कालर-विहीन होती और दूर से वे चेतन को किसी देशी पादरी-से लगते। रंग उनका दक्षिण भारतीयों-सा काला नहीं था, पर पंजाबियों के मुश्की रंग से एक परत ज्यादा काला था। नक्श उनके तीखे थे। होंट पतले। अगर उनका शरीर कुछ भर जाता तो वे सेठ हरदर्शन की तरह सुन्दर लगते। चेतन सोचा करता था कि इंग्लिस्तान में उन्होंने पढ़ाई में कम समय दिया है और ऐश करने में ज़्यादा और उनका स्वास्थ्य इसीलिए चौपट हो गया है। एक दिन उसने बातों-बातों में उनसे पूछा था कि क्या वे इंग्लिस्तान में पढ़ते ही रहे या वहाँ की कुछ दूसरी जिन्दगी भी उन्होंने देखी ? तब उन्होंने केवल एक वाक्य अंग्रेज़ी में कहा था—'मुझे समुद्र में फेंक दो और मैं किसी तख्ते को न पकड़ूँ यह कैसे सम्भव है ?'—कोट किशनचन्द के लोग उन्हें सनकी समझते थे और उसने कभी रजत के अथवा सामने के सोंधी परिवार के किसी आदमी को उनसे बातें करते न देखा था। लेकिन जब घर में उनके मँझले भाई शशि अथवा बड़े भाई हरदर्शन न होते तो चेतन उन्हीं के पास बैठ जाता था। वे बात जल्दी न करते थे, पर जब करने लगते थे तो बड़े जोश से करते थे। उनके मँझले भाई से एक बार चेतन ने पूछा था कि वीरसेन कोई काम क्यों नहीं करते ? तब उन्होंने कहा था कि उनकी सेहत सदा से ऐसी ही रही है। इंग्लिस्तान में उन्हें ज्वर रहने लगा था। डॉक्टरों ने उनके फेफड़ों की कमज़ोरी का सन्देह प्रकट किया था। इसलिए उन्हें बुला लिया गया। कारबार में उनका मन नहीं था और डिग्री वे कोई ले न पाये थे। सेठ हरदर्शन का काम चल रहा था, इसलिए उन्होंने वीरसेन से कह रखा था कि वे खायें-पियें, मौज उड़ायें और सेहत बनायें। शादी उनकी हो

चुकी थी। एक बच्चा भी था। पर उनको देख कर ज़रा भी न लगता था कि यह आदमी बीवी रख सकता है अथवा बच्चा पैदा कर सकता है।

वीरसेन उस वक्त बड़े आवेग में थे।—चेतन से मिलते ही उन्होंने अंग्रेज़ी में कहना शुरू किया—"क्रान्ति....क्रान्ति....क्रान्ति, हिन्दुस्तान की सभी बीमारियों का एक-मात्र यही इलाज है। कांग्रेस 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' चिल्लाती है, पर ये लोग इन्कलाब नहीं चाहते। इन्कलाब का मतलब है—'नीचे' का 'ऊपर'। सत्ता उन लोगों के हाथ में आ जाय, जो सदियों से ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, अशिक्षा और गुलामी के पाटों में पिसे जा रहे हैं। क्रान्ति वह, जैसे रूस में हुई, जिसमें सत्ता सचमुच ग़रीबों और मज़दूरों के हाथ में आयी। यह क्रान्ति नहीं होगी, समझौता होगा। ये लोग सरकार से समझौता कर रहे हैं। असेम्बलियों में जाने की सोच रहे हैं। इससे इन्कलाब होगा?—हरगिज़ नहीं! एक देश के व्यापारियों का दूसरे देश के व्यापारियों से समझौता होगा। देखने के लिए चाहे जनता के नेता असेम्बलियों में जायेंगे, लेकिन असली सत्ता पूंजीपतियों के हाथ ही में होगी। तुम देख लेना।....,"

जोश में एक-दो चक्कर लगा कर वीरसेन ने फिर कहना शुरू किया, "ये लोग मुझे सनकी कहते हैं, इन्होंने मुझे बीमार बना रखा है, ये लोग मुझे कोई काम नहीं करने देते। ये वास्तव में मुझसे डरते हैं, मेरे विचारों से डरते हैं। इनका ख़याल है कि इंग्लिस्तान में मेरी सोसाइटी ठीक नहीं थी, मैं कम्युनिस्टों से मिलता-जुलता था, मैंने रूस की एजेण्टी कर ली है, ये डरते हैं कि मैं आज़ाद रहूँगा तो हिन्दुस्तान में क्रान्ति कर दूँगा।...."

चेतन ने ज़रा परे हो कर नख-से-शिख तक उस 'क्रान्तिकारी' पर दृष्टि डाली और वह मन-ही-मन हँस दिया। लेकिन वीरसेन ने चेतन की उस आलोचनात्मक दृष्टि को नहीं देखा। वे अपने जोश में घूमते गये। एक चक्कर लगा कर उन्होंने फिर कहा—"लेकिन मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ, कम्युनिस्ट यहाँ कोई है भी! लेकिन जो बात मैं कहता हूँ, उसे तो कोई भी आँखों वाला देख सकता है।....कांग्रेस असेम्बलियों में जायगी और वहाँ जा कर लड़ाई लड़ेगी। लेकिन वहाँ हुकूमत का खून जो नेताओं के

मुँह को लग जायगा ! क्या उसके बाद वैसा इन्कलाब वे लोग ला सकेंगे ? अंग्रेज़ अपनी इच्छा से इतना बड़ा साम्राज्य छोड़ कर क्यों जायगा ? उसको हिंस्र क्रान्ति ही उखाड़ कर समुद्र में फेंक सकती है। वह अपनी इच्छा से जाता है तो अपना लाभ देख कर ही जायगा। अंग्रेज़ बनिया है, वह इस देश के बनियों से समझौता करके ही जायगा....और आप कांग्रेस को क्या जनता की संस्था समझते हैं, जनता इसका मुखौटा है—इसके अन्दर वही बनिया बैठा है। यह कांग्रेस के अधिवेशनों के लिए लाखों रुपया कहाँ से आता है ? इस देश का बनिया ही देता है—यह आज़ादी की लड़ाई, इस देश के बनियों से उस देश के बनियों की लड़ाई है....ये बनिये क्रान्ति करेंगे....इन्कलाब ज़िन्दाबाद....'' और बेज़ारी से सिर हिला कर वीरसेन हँसे।

''लेकिन आप भी तो बनिये हैं, व्यापारी हैं....'' चेतन ने कहना चाहा।

''बनिये अन्दर बैठे हैं !'' सहसा रुक कर उँगली के इशारे से ड्राइंग-रूम की ओर संकेत करके वीरसेन ने कहा, ''मैं स्वतन्त्र चेता हूँ, आज़ाद थिंकर हूँ !''

और बिना चेतन की ओर देखे, वीरसेन घूमने लगे। चेतन कुछ क्षण वहाँ रुका रहा, फिर मुस्कराता हुआ अन्दर ड्राइंग-रूम में गया। शशि सामने गद्दे पर बैठे थे। ऊपर पंखा चल रहा था और बायीं ओर दरवाज़े के बराबर लगे कौचों पर बैठे हुए कुछ लोग आगे तिपाइयाँ रखे, जाने कैसी लिस्टें बना रहे थे।

शशि तीनों भाइयों में मँझले थे, कद में अपने बड़े और छोटे भाई से कुछ कम थे, होंट भी उनके मोटे थे और रंग दोनों भाइयों की अपेक्षा कहीं गोरा था। चेहरा उनका गोल-मटोल था। शैशव में सचमुच ही चाँद-से लगते होंगे, तभी माता-पिता ने उनका वह नाम रखा। वे हँसमुख प्रकृति के व्यापारी थे। उनको सामाजिक कार्यों से कोई वैसी दिलचस्पी न थी। अपने बड़े भाई को उन्होंने सामाजिक कार्यों में भाग लेने और छोटे भाई को स्वतन्त्र चेता बने रहने के लिए छोड़ दिया था और स्वयं सारे

व्यवसाय को देखते थे।

"कब आये लाहौर से ?" शशि ने पूछा।

"लाहौर से नही। मै शिमले से लौटा हूँ।"

"शिमले से ?"

और चेतन ने संक्षेप मे अपने शिमले के प्रवास की बात कही और बोला, "बहुत दिनों पर आया था, जल्दी ही चला जाऊँगा। सोचा, आप लोगो के दर्शन करता चलूँ।"

"बड़ा अच्छा किया। भाई साहब तो कई बार आपका जिक्र कर चुके है। आपके बडे प्रशंसक है।" शशि हँसे।

"क्या घर ही मे है, या कही बाहर गये हुए है ?" चेतन ने पूछा।

"घर ही पर है, आराम कर रहे थे, अभी नीचे आयेंगे।"

इस बीच मे चेतन निरन्तर उन लिस्टों की ओर देख रहा था, जो कमरे मे बैठे तीन-चार आदमी बडी तल्लीनता मे तैयार कर रहे थे और जिनके बारे मे वे बीच-बीच मे शशि से पूछ-ताछ भी करते थे। कुछ देर बाद चेतन ने पूछा, "क्या यह म्यूनिसिपल इलेक्शन की तैयारी हो रही है ?"

"नही, भाई साहब इस बार म्यूनिसिपैलिटी के लिए नही खडे हो रहे।" शशि कहा।

"तो फिर यह किन वोटरों की सूचियाँ तैयार हो रही है ?"

"ये असेम्बली के वोटरों की लिस्टे है ! वायसराय से महात्मा गान्धी की बात-चीत हो रही है, एक-दो साल मे चुनाव होगा। उसी के सिलसिले मे लिस्टे बन रही है।"

"क्या सेठ साहब असेम्बली के लिए खडे होगे ?"

"लोग उन पर जोर दे रहे है कि वे असेम्बली मे जायँ।" शशि ने कहा, "कमेटी का क्षेत्र अपनी प्रतिभा के लिए उन्हे बहुत छोटा लगता है।"

"तो क्या यूनियनिस्ट पार्टी की ओर से खडे होंगे अथवा इण्डिपेण्डेण्ट ?" चेतन ने पूछा।

"नहीं, लोग उन्हें कांग्रेस की ओर से खड़ा होने को कह रहे हैं ?"

"लेकिन सेठ जी तो कभी कांग्रेस के मेम्बर नहीं रहे; न कभी जेल ही गये हैं।"

"असेम्बली में जाना और जेल जाना, दो अलग-अलग बातें हैं।" शशि ने नेताओं के-से अन्दाज़ में कहा, "जेल जाने की प्रतिभा जिसमें है, उसमें ज़रूरी नहीं कि असेम्बली में बोलने की भी प्रतिभा हो। रही कांग्रेस की मेम्बरी, तो उसमें सिर्फ़ चार आने लगते हैं। टिकट मिलने की सम्भावना हुई तो हो जायेंगे।"

चेतन चुप रहा। उसकी आँखों के सामने लाला गोविन्दराम की सूरत और स्वतन्त्रता-संग्राम में उनकी लम्बी सेवाएँ घूम गयीं।

"भाई साहब कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की मीटिंग में जा रहे हैं। वहीं तय हो जायगा। लेकिन एक तरफ़ हिन्दू महासभा है, दूसरी ओर यूनियनिस्ट पार्टी है, जिसे सरकार का सहयोग प्राप्त है। उनका मुकाबिला करना आसान नहीं। भाई साहब पर कई तरफ़ से ज़ोर पड़ रहा है, लेकिन यदि उन्हें कांग्रेस का टिकट मिल गया तो वे कांग्रेस की ओर से खड़े होंगे। उनका खयाल है कि कांग्रेस असेम्बलियों में गयी तो सरकार से बेहतर काम करके दिखायगी। बाहर भी आना पड़ा तो जब फिर समझौता होगा, जब स्वराज्य मिलेगा, फिर जायगी। अभी से यदि भाई साहब कांग्रेस में जाते हैं तो वक्त आने पर उन्हें मिनिस्टर बनने से कोई नहीं रोक सकता।"

"लेकिन इतना पहले लिस्टें तैयार करने की क्या ज़रूरत है ?"

"भाई साहब का काम करने का यही ढंग है।" शशि ने कहा, "अभी से वोटरों का पता चल जायगा, तो किस मुहल्ले में कौन महत्व रखता है, किसका कितनों पर ज़ोर है, इस सब का पता चलाने में आसानी होगी। जिन वोटरों के नाम लिस्ट में कानून के अनुसार होने चाहिएँ, पर हैं नहीं, वे दर्ज कराये जायेंगे, और भाई साहब कांग्रेस की ओर से खड़े हों, महासभा की ओर से या इण्डिपेण्डेण्ट, इन लिस्टों की तो ज़रूरत पड़ेगी ही और महत्वपूर्ण लोगों को अभी से मिलाना पड़ेगा।"

"युनियनिस्टों की ओर से वे क्यों नहीं खड़े होते ?"

"कोशिश तो उनकी यही है कि उन्हें कांग्रेस का टिकट मिल जाय और पंजाब कांग्रेस कमेटी के कुछ दोस्तों ने उनसे कहा भी है। मुकाबिला सख्त होगा और हज़ारों रुपये उठ जायेंगे, कांग्रेस का मेम्बर जीते, इसमें कांग्रेस का भी लाभ है। भाई साहब दूर की सोचते हैं। कांग्रेस का टिकट न मिला, फिर देखेंगे।"

'तो इसीलिए वीरसेन कांग्रेस को बनियों की कांग्रेस कह रहे थे,' चेतन ने मन-ही-मन सोचा। वह लाला गोविन्दराम की बात करने जा रहा था कि अन्दर के दरवाजे का पर्दा उठा कर सेठ हरदर्शन ने प्रवेश किया—दूध-सी सफ़ेद, बारीक खादी का कुर्त्ता और चूड़ीदार पायजामा, खादी ही का अचकन और सिर पर गान्धी टोपी—चेतन ने उन्हें जब भी पहले देखा था—सिल्क की कमीज़, लट्ठे के चूड़ीदार पायजामे, सिल्क के अचकन और टोपी में देखा था—'तो सेठ जी ने कांग्रेस-सदस्य होने का फ़ैसला कर लिया है'—उसने मन-ही-मन कहा।

खादी की भूषा में सेठ हरदर्शन सुन्दर लग रहे थे—पतले-छरहरे, तीखी नाक, पतले-पतले होंट। देखने में वे कारोबारी नहीं, किसी कॉलेज के प्रोफ़ेसर लगते थे। उनके होंटों के कोने बात करने में कुछ ऐसी मासूमियत लिये रहते थे कि मन को अनायास आकर्षित कर लेते थे। उनका नाम सार्थक था। उनको देख कर उनके माता-पिता को ज़रूर ही कृष्ण की याद आती होगी।....

•

और तभी सेठ हरदर्शन को देखते-देखते चेतन की आँखों के सामने उस कोठी के पहले मालिक पण्डित राधारमण एडवोकेट की सूरत घूम गयी। पण्डित राधारमण के पिता काफ़ी सम्पत्ति छोड़ गये थे और स्वयं भी वे बड़े प्रसिद्ध एडवोकेट थे। शहर के धनी-मानियों में उनकी गिनती थी। चेतन ने पाँचवीं कक्षा में उन्हें पहले-पहल देखा था। तब वे नगरपालिका की सदस्यता के लिए खड़े हुए थे और उन्होंने चुनाव में इतना रुपया ख़र्च किया था; उनका इतना प्रचार हुआ था; गली-गली और बाज़ार-बाज़ार

इतने पोस्टर लगे थे कि शहर का बच्चा-बच्चा उनके नाम से परिचित हो गया था। वे चुनाव जीत गये थे तो उनका इतना शानदार जुलूस निकला था कि उसके बाद महात्मा गान्धी का जुलूस ही इतना बड़ा चेतन ने देखा था। बैंएड-बाजे थे, स्कूलों के लड़के थे, सेवा-समिति के स्वयं-सेवक थे—चेतन ने कम्पनी बाग़ के पास वह जुलूस देखा था और तभी पहली बार उसने पण्डित राधारमण के दर्शन किये थे। तब उनकी उमर चालीस-एक वर्ष की थी, गोरा-चिट्टा रंग; तनिक अन्दर को धँसे कल्ले, बड़ी-बड़ी किंचित नीचे को झुकी मूँछें, अचकन, चूड़ीदार पायजामा और सिर पर बड़ी-सी पगड़ी।

वही कमेटी के प्रधान भी चुने गये थे और उस चुनाव के बाद नगर की सामाजिक सरगर्मियों में बाकायदा योग देने लगे थे। लेकिन आठ-एक वर्ष पहले एक सुबह सारे शहर में यह ख़बर आग की तरह फैल गयी थी कि पण्डित राधारमण दीवालिया हो कर रात-ही-रात घर से भाग गये हैं। पूछने पर चेतन को मालूम हुआ था कि कुछ वर्षों से वे शेयर बाज़ार में दख़ल देने लगे थे और उन्होंने रुई के शेयर ख़रीदे थे और उन्हें लाख रुपये का घाटा आ गया था। शहर में तो यह भी अफ़वाह गर्म हो गयी थी कि उन्होंने आत्महत्या कर ली है।

लेकिन कुछ दिनों बाद पता चला कि वे एक मित्र के पास लाहौर चले गये थे, अब वापस आ गये हैं। कुछ दिनों के बाद सुना कि अपनी सारी जायदाद ऋणदाताओं की भेंट कर, वे लाहौर चले गये हैं, वहीं प्रैक्टिस करेंगे।...और एक दिन चेतन कोट किशनचन्द की ओर गया तो उनकी कोठी पर रंग हो रहा था। चारदीवारी के ऊपर की गोलाई पर लाल और बीच के चौकोर टुकड़ों पर पीला। वहीं एक मित्र से उसे मालूम हुआ था कि कोठी को सेठ हरदर्शन ने ख़रीदा है, टाटा के एजेण्ट हैं और उन्हें 'टाटा स्टील कम्पनी' की जालन्धर, होशियारपुर, लुधियाना और कपूर्थला की एजेंसी मिली है। और जैसे कुछ वर्ष बाद पंजाब के प्रमुख पूँजीपति लाला हरकिशनलाल के दीवालिया होने पर, भारत इन्श्योरेंस कम्पनी में उनके शेयर और उनकी जायदाद ख़रीदने पर एकदम सारे प्रान्त

में सेठ डालमिया का नाम रोशन हो गया था, इसी तरह पण्डित राधा-रमण की जायदाद ख़रीदने पर सेठ हरदर्शन का नाम जालन्धर वालों की ज़बान पर चढ़ गया।

सेठ हरदर्शन यद्यपि पंजाबी थे, पर उनके पिता यू० पी० में कारबार करते थे। उनकी मृत्यु पर सेठ हरदर्शन के कन्धों पर उनके कारबार का बोझ आ पड़ा था। उन्हीं ने टाटा की एजेंसी ली थी और उन्हीं ने पण्डित राधारमण की सारी जायदाद ख़रीद कर उनकी कोठी का नाम 'हरदर्शन विला' रख दिया था।

०

सेठ हरदर्शन पढ़े तो केवल बी० ए० तक थे, लेकिन उनकी बात-चीत, चाल-ढाल, स्वर और लहजा उनके अत्यधिक शिक्षित और सुसंस्कृत होने की चुगली खाता था। जब वे शुरू-शुरू में आये थे, तो बन्द गले का कोट, धोती और सेठों की-सी काली टोपी पहनते थे, जिसके बॉर्डर पर रेशम से बेल कढ़ी रहती, पर इधर उन्होंने चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहनना शुरू कर दिया था।

नगरपालिका के पिछले चुनाव में वे स्वतन्त्र रूप से खड़े हुए थे और चुन लिये गये थे। इस वर्ष शहर में उनका काफ़ी विरोध होने लगा था। लोगों का ख़याल था कि उनकी संगति अच्छी नहीं रही, खाने-पीने लगे हैं और उनके चरित्र के सम्बन्ध में भी कुछ बातें फैल रही थीं और एक पक्ष इस बात पर तुला हुआ था कि उन्हें म्युनिसिपल कमेटी का सदस्य नहीं बनने देगा....पर वे कमेटी के लिए खड़े ही नहीं हो रहे थे। उनकी दृष्टि कहीं ऊपर थी....

कमरे में दाखिल होते ही उन्होंने शशि से कहा, "मैं ज़रा रायज़ादा हंसराज से मिलने जा रहा हूँ, अभी लाहौर से फ़ोन पर मैंने बात की है, अगर वे नाम प्रपोज़ करते हैं तो मेरा नॉमीनेशन निश्चित है।"

तब उनकी नज़र चेतन पर पड़ी। चेतन ने उठ कर 'नमस्कार' किया। उन्होंने बढ़ कर उसके कन्धे को थपथपाया और उसका हाल-चाल पूछा। चेतन ने संक्षेप में अपनी गति-विधि का पता दिया।

"तुमने तो भाई लाहौर जा कर हमारी साहित्यिक महफ़िलें ही सूनी कर दीं।" और सेठ हरदर्शन हँसे—मीठी दिलकश हँसी। "तुम थे तो कभी-कभार कुछ सुनने को मिल जाता था। अब तो वर्षों से किसी साहित्यिक की सूरत भी दिखायी नहीं देती।"

"साहित्य-वाहित्य के लिए अब आपके पास कहाँ वक्त है सेठ जी ?" चेतन ने निहोरे के स्वर में हँस कर कहा।

"नहीं यह बात नहीं !" वैसे ही खड़े-खड़े उन्होंने मन्द मुस्कान के साथ उत्तर दिया, "तुम कब तक हो यहाँ ? एक सभा की जाय।"

"मैं तो जा रहा हूँ।" चेतन ने कहा, "तीन महीने से छुट्टी पर हूँ। जा कर काम सम्हालना है। आज-कल हुनर साहब शहर आये हुए हैं। शायद काफ़ी दिन रहेंगे, क्योंकि उन्होंने लाला गोविन्दराम से वादा किया है कि वे असेम्बली के लिए खड़े होंगे तो उनकी हर मीटिंग के लिए नयी नज़्म सुनायेंगे।"

चेतन ने जान-बूझ कर उनकी प्रतिक्रिया का रस लेने के लिए यह बात कही थी। उसका ख़याल था कि सेठ जी की भृकुटि किंचित तन जायगी और उनके चेहरे पर हल्का-सा बादल छा जायगा, पर भ्रू-भंग के बदले वही मीठी मुस्कान उनके होंटों पर खेल गयी। "लाला गोविन्दराम की बड़ी सेवाएँ हैं," उन्होंने कहा, "उनको कांग्रेस की ओर से जाना ही चाहिए।" फिर वे क्षण-भर रुक कर बेपरवाही से बोले, "लोग मुझसे भी कह रहे हैं, पर मैंने तो कांग्रेस की कोई सेवा नहीं की। लाला गोविन्दराम ही को मैं इसके उपयुक्त मानता हूँ।"

चेतन मन-ही-मन हँसा...."हुनर साहब ने इधर श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय का अनुवाद किया है," उसने कहा, "उपनिषदों को भी वे सरल उर्दू नज़्म का जामा पहना रहे हैं। वे उसे छपवाना भी चाहते हैं, पर लेखकों की स्थिति से तो आप परिचित ही हैं, इसी कोशिश में वे लगे हुए हैं ...."

"आप उनसे कहिएगा मुझसे मिलें। यह तो धर्म का काम है, यह तो होना ही चाहिए। आप यदि रहें तो लाइएगा उन्हें एक शाम और हमें भी

सुनवाइएगा।"

"रहा, तो मैं ज़रूर ले आऊँगा।"

"अच्छा तो मुझे इजाज़त दीजिए। मुझे ज़रा काम से जाना है।"

"आप यदि कार से जा रहे हो तो मुझे अड्डा होशियारपुर पर छोड़ दीजिए।"

"हाँ हाँ, ज़रूर-ज़रूर।"

और चेतन ने शशि सेठ को नमस्कार किया।

"ये हुनर साहब रहते कहाँ हैं ?" सहसा सेठ हरदर्शन ने पूछा। फिर चेतन का उत्तर सुने बिना उन्होंने शशि से कहा, "शशि तुम आदमी भेज कर उन्हें बुलाना।"

"उनके दसियों ठिकाने हैं," चेतन ने कहा, "पर आप निशा-खातिर रहिए, मैं उन्हें भिजवा दूँगा।"

०

बाहर वीरसेन अब भी घूम रहे थे। एक नमस्कार चेतन ने 'वीर भाई' की ओर भी फेंका, पर वीर भाई ने उसकी सनद नहीं दी।

छत्तीस

यद्यपि अड्डा होशियारपुर पर सेठ हरदर्शन से छुट्टी लेते हुए उसने वादा किया था कि वह सीधा हुनर साहब की तरफ़ जायगा और उन्हें सेठ साहब की ओर भेजेगा, पर जब वह पुरियाँ मुहल्ले और किले मुहल्ले से होता हुआ लाला गोविन्दराम के चौबारे के नीचे पहुँचा तो ऊपर जाने को उसका मन नहीं हुआ। सेठ जी से बातें करने पर उसे पक्का विश्वास हो गया था कि कांग्रेस का टिकट लाला गोविन्दराम को नहीं, सेठ हरदर्शन ही को मिलेगा। इस बात से चेतन को उतना दुख न हुआ था; लेकिन जब सेठ जी ने प्रकारान्तर से इस बात की पुष्टि की कि यह स्वतन्त्रता संग्राम, जिसे जनता अपना संग्राम समझती है और जिसकी ख़ातिर जलियाँ वाला बाग़ में हज़ारों निहत्थे लोगों ने सीने पर गोलियाँ खायीं, हज़ारों-लाखों जेलों में गये और हँसते-हँसते सूली पर चढ़े, वास्तव में देश के पूँजीपति अपना संग्राम समझते हैं। 'यही कारण है,' ऐसा सेठ हरदर्शन ने उसे समझाया था, 'कि जब महात्मा गान्धी अफ्रीका से आये तो बिरला ने उनका स्वागत किया। अपने भवन, अपनी ज़मीनें और अपनी थैलियाँ उनकी सेवा में प्रस्तुत कर दीं।'....'तो क्या जनता की स्थिति इस संग्राम में महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों अथवा सम्राटों की लड़ाई में काम आने वाले सिपाहियों की-

सी है ?' चेतन ने सोचा, 'क्या जब देश आज़ाद होगा, जनता की दशा ऐसे ही रहेगी ? आज जब अंग्रेज़ देश से नहीं गये, तब सेठ हरदर्शन कांग्रेस में, बिना देश की लड़ाई मे तनिक भी योग दिये, शामिल हो सकते हैं तो क्या जब देश आज़ाद होगा, उनके भाई-बन्धु उस पर अधिकार न जमा लेंगे....तब बंसी सब्ज़ी-फ़रोश और लाला गोविन्दराम जैसे हज़ारों-लाखों स्वयं-सेवकों और उनके बच्चे-पोतों का क्या होगा ?'....और चेतन का मन बेहद उदास हो आया था। पुरियाँ मुहल्ले में कुन्ती की खिड़की के नीचे से वह गुज़रा था, उसने पीछे मुड़ कर झाँक भी लिया था कि खिड़की बन्द है—पर कुन्ती की बात सोचने के बदले, वह इसी समस्या पर सोचता चला आया था। लाला गोविन्दराम के चौबारे के नीचे क्षण-भर को वह रुका था। एक बार उसके मन में विचार आया कि वह ऊपर जा कर लाला गोविन्दराम को ख़बरदार कर दे कि सेठ हरदर्शन उनका अधिकार छीनने की पूरी तैयारी कर रहे हैं, लेकिन फिर वह आगे बढ़ गया। उसने सोचा, वह रात को हुनर साहब से बात करेगा और उनको बता देगा।

०

वह तेज़-तेज़ बोहड़ वाला बाज़ार से निकला जा रहा था कि सहसा एक दुकान पर बैठा-बैठा एक आदमी उठ कर उछला और बाज़ार में आ कर उसने चेतन का बाज़ू थाम लिया।

चेतन चौंक कर मुड़ा।

"ओए सरचश्मे !" अपने पुराने सहपाठी को देख कर चेतन ने कहा।

"कहो पूएट लॉरिएट।"

और दोनों ठहाका मार कर हँस दिये।

उसकी बाँह-में-बाँह डाल कर 'सरचश्मा'[1] उसे पीछे की ओर ले चला।

१. स्रोत, झरना।

"कब आये लाहौर से ?"

"तीन महीने से शिमला गया हुआ था, वहीं से तीन-चार दिन हुए आया हूँ।"

"कुछ दिन रहोगे ना ?"

"नहीं, आज-कल में चला जाऊँगा। तुम कहो, कैसी चल रही है तुम्हारी दुकान, फिर कुछ लिखा-लिखाया, या अभी सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी[1] ही बने हुए हो ?"

"दुकान खूब चल रही है, यह देखो नया बोर्ड लगा है।"

चेतन ने निगाह उठायी—ऊपर बाज़ार के बीचों-बीच बोर्ड लगा हुआ था :

भतीजे दी हट्टी

"लाला अमरनाथ सेकेण्ड हैण्ड बुकसेलर के बोर्ड की जगह यह 'भतीजे दी हट्टी' का बोर्ड कैसे लग गया ?" चेतन ने बाहर ही दुकान के तख्ते पर बैठते हुए पूछा, "क्या अपने भतीजे को साथ मिला लिया है।"

लाला अमरनाथ ने चेतन के हाथ-पर-हाथ मारते हुए ज़ोर का ठहाका लगाया और ऊपर से घूम कर गद्दी तक जाने के बदले, उसके हाथ को थामे हुए ही डेढ़ फ़ुट ऊँचे काउण्टर को लाँघ कर गद्दी पर जा बैठे।

"नहीं भतीजा कोई नहीं, मैं ही भतीजा बन गया हूँ और जिन लड़कों का मैं ताया-चाचा हूं, वो भी मुझे भतीजा ही कहते है और मुझे बड़ा मज़ा आता है।"

"लेकिन क्यों ?"

"अभी बताता हूँ, पर पहले यह बताओ कि लस्सी पिओगे कि शिकंजी।"

"नहीं मैं कुछ नहीं पिऊंगा।"

"तो फिर लेमन-सोडा पिओ।"

"अरे नहीं यार, तुम बात सुनाओ !"

लेकिन लाला अमरनाथ ने साथ के सोडा-वाटर वाले से एक लेमोनेड

१. ज़िन्दगी का स्रोत।

खोलने के लिए कहा और बोले—"तुम्हें याद है न, जब मैंने आज से पाँच बरस पहले पंजपीर के प्राइमरी स्कूल की बग़ल में दुकान खोली थी...."

"....और दुकान में चारों तरफ़ रस्सियाँ टाँग कर 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' को लटका दिया था।"

चेतन ने बात काट कर कहा और जोर से ठहाका लगाते हुए हाथ बढ़ाया, जिस पर, उतना ही ज़ोरदार ठहाका लगाते हुए, लाला अमरनाथ ने अपना चौड़ा-चकला हाथ जमा दिया।

०

अमरनाथ चेतन का सहपाठी था, मँझला कद, चौड़ा माथा, चौड़ा मुख, चौड़ा-चकला शरीर और चौड़े-चौड़े हाथ-पाँव। पढ़ने में वह न बहुत तेज़ था, न फिसड्डी। चेतन ने आठवीं कक्षा में एक उपन्यास लिखने की कोशिश की थी। उन दिनों चन्द्रकान्ता और भूतनाथ पढ़ने के बाद आरमीन लोपन और शरलाक होम्ज़ (जिसे उर्दू अनुवादक ने होलम्ज़ लिखा था और उसी उच्चारण मे वे लोग पढ़ते थे) के कुछ उपन्यास पढ़ने के बाद चेतन ने उनकी नकल में एक जासूसी उपन्यास लिखना आरम्भ किया था और उसके एक-दो परिच्छेद अमरनाथ को सुनाये थे। तब दोनों ने मिल कर उसकी किताबत कराने और छपवाने की स्कीमें बनायी थीं। स्टेशन रोड पर श्याम-प्रेस में उर्दू की छपाई होती थी और प्रेस के निकट ही एक जगह 'दारुल किताबत' 'याने कातिबों का अड्डा' था। सो दोनों मित्र वहाँ उपन्यास की किताबत कराने और छपवाने के सिलसिले में रेट पूछते फिरे थे।

लेकिन चेतन नवीं में पहुँचते-पहुँचते उर्दू में शायरी करने लगा और उसका उपन्यास धरा-का-धरा रह गया, बल्कि वह उसके बारे में एकदम भूल गया। एक दिन स्कूल से वापसी पर अमरनाथ उसे अपने साथ घर पर ले गया। उसका घर मुहल्ला मेंहन्द्रुआँ में था। और रास्ते ही में पड़ता था। बैठक में जाते ही चेतन चकित रह गया। बैठक की एक दीवार से दूसरी दीवार तक रस्सी बँधी थी और उस पर एक किताब की कितनी ही प्रतियाँ पक्षियों की तरह दोनों ओर पंख-ऐसे पृष्ठ फैलाये, लटकी थीं। दायीं ओर चौकी पर भी उसी पुस्तक की ढेरी लगी थी। उस पर से एक

प्रति उठा कर लाला अमरनाथ ने चेतन के हाथ में दी। डबल डिमाई साइज़ की पाँच फ़ार्म की पेपर-बाउण्ड पुस्तक! दफ़्ती का काग़ज़ गहरा गुलाबी था, जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा था :

सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी

कलमे-ज़रीं-रकम लाला अमरनाथ महेन्द्र[1]

चेतन ने एक-दो पृष्ठ पलटे। ख़ासी मुश्किल उर्दू में (कि अमरनाथ ने फ़ारसी ले रखी थी) ज़िन्दगी जीने के बारे में कुछ लेख थे। पहला क़ुव्वते-इरादी (इच्छा-शक्ति) पर था—जाने कहाँ से मसाला ले कर उसने किताब तैयार कर डाली थी। चेतन की समझ में ख़ाक-धूल न आया। न उसे भाषा अच्छी लगी, न शैली। यद्यपि उसे अमरनाथ से बड़ी ईर्ष्या हुई, पर उसके कृतित्व को नकारते हुए मन-ही-मन उसने कहा—'ठस्स आदमी है, ठस्स ही किताब लिखी है।' उसने किताब की लिखाई-छपाई की बड़ी तारीफ़ की। फिर उसने पूछा—"कुछ बिकी भी?"

"कल छप कर आयी थी," अमरनाथ ने कहा था, "रात भर में इतनी प्रतियाँ तैयार की हैं, सुबह स्कूल जाने के पहले भैरो बाज़ार के तेजराम जिल्दसाज़ से इतनी कटवा लाया हूँ। अब इनके बेचने की फ़िक्र करूँगा।"

"तो क्या तुमने जिल्दें स्वयं बां ी हैं?"

"और क्या। यह तो सादा काग़ज़ की जिल्द है। मैं तो गत्ते की जिल्द भी स्वयं बाँध लेता हूँ।"

चेतन ने जिल्द की बड़ी प्रशंसा की। उसका ख़याल था, अमरनाथ उसे 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' की एक प्रति भेंट देगा। लेकिन जब अमरनाथ ने अपने उल्लास में लगातार बातें करते हुए, उसके हाथ से किताब ले कर फिर ढेरी पर सजा दी तो चेतन मन-ही-मन कट गया और उसने चलने के लिए हाथ बढ़ाया। अमरनाथ उसे दरवाज़े तक छोड़ने आया। जब चेतन हाथ मिला कर बाहर निकला, ईर्ष्या से उसके मन-प्राण जल रहे

१. जीवन का स्रोत : लाला अमरनाथ महेन्द्र के सुनहरी कलम से।

थे—'अमरनाथ, जिसे स्कूल में लेखक के नाते कोई जानता ही न था, साहिवे-किताब हो गया, और वह, जो अपने-आप को कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार और न जाने क्या-क्या समझता था, यों ही लँडूरा घूमता है।'

"चेतन... चेतन !"

पीछे से आवाज़ सुन कर चेतन मुड़ा। अमरनाथ हाथ में किताब लिये भागा आ रहा रहा था।

"यार मैं तुम्हें किताब देना ही भूल गया।" और उसने दोनों हाथों में पुस्तक ले कर बाकायदा उसे भेंट की।

यद्यपि उसने अपनी भूल सुधार ली थी और चेतन का अहं कद्रे सन्तुष्ट हो गया था, पर चेतन कोशिश करने पर भी वह पुस्तक न पढ़ सका था। कविता, कहानी या उपन्यास होता तो घर जाते-जाते वह रास्ते ही में उसे खत्म कर देता, पर क़ुव्वते-इरादी,[1] खुद ए'तमादी,[2] अना,[3] वहदते-वजूद[4]—फ़हरिस्ते-मज़ामीन[5] में एक भी शीर्षक का अर्थ उसकी समझ में न आया। यद्यपि वह पंजाब के दूसरे बीसियों युवकों की तरह उर्दू में शायरी करता था, उर्दू उसने बाकायदा न पढ़ी थी। कक्षा में तो वह हिन्दी-संस्कृत पढ़ता था।—'जाने कहाँ से यह सब उड़ा कर लिखा है साले ने ?'—उसने मन-ही-मन कहा था और किताब को अलमारी में रख दिया था।

दूसरे दिन जब स्कूल में अमरनाथ ने पूछा था कि उसे किताब कैसी लगी ? तो चेतन ने कहा था, "अरे यार किताब की क्या बात है, तुम तो खुद 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' हो !" तो अमरनाथ प्रसन्न हो गया था, लेकिन उसी दिन से स्कूल में उसका नाम 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' पड़ गया था।

०

तख्ते पर बैठे और लेमोनेड की चुस्की लेते हुए चेतन के सामने स्कूल के दिनों की वह घटना घूम गयी और साथ ही एक क्षीण-सी मुस्कान उसके

---

१. इच्छाशक्ति ; २. आत्मविश्वास ; ३. अहं ; ४. सूफ़ियों की भाषा में सृष्टि के प्रत्येक कण को स्रष्टा का अंग समझना ; ५. लेख-सूची।

होटों पर खेल गयी

उस दिन से ले कर हफ़्ता भर तक अमरनाथ—बाज़ार शेखाँ तथा भैरो बाज़ार के सभी पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ हो आया था, पर कोई उसकी एक भी पुस्तक लेने को तैयार न हुआ था। आख़िर उसने महन्तराम की दुकान पर यह कह कर प्रतियाँ रख दीं कि बिक जाने पर अपना कमीशन काट कर महन्तराम उसे पैसे दे दे। महन्तराम ने ५० प्रतिशत कमीशन माँगा। अमरनाथ २५ प्रतिशत से अधिक देना न चाहता था, पर सात दिन के अनुभव ने उसे विवश कर दिया था और वह ५० प्रतिशत पर (वह भी उधार), वहाँ पुस्तकें रख आया था।

इसके बाद वह अपने सभी सहपाठियों को किसी-न-किसी बहाने एक-एक कर महन्तराम की दुकान पर ले गया था; उसने उन्हें 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' दिखायी भी थी, पर यद्यपि सब ने उसे बधाई दी थी, लेकिन एक ने भी पुस्तक ख़रीदने की सुबुद्धि प्रदर्शित न की थी।

तब एक दिन जब चेतन, स्कूल में छुट्टियाँ हो जाने से, अपने पिता के पास मुकेरियाँ जा रहा था, उसने अमरनाथ को 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' का बण्डल हाथ में लिये, गाड़ी पर पुस्तकें बेचते पाया। अपनी पुस्तक के साथ वह कुछ दूसरी सस्ती किताबें भी बेच रहा था। "भाई, अकेली किताब नहीं बिकती। साथ में दूसरी किताबें हों, तो इसे बेचने में आसानी होती है," उसने निःसंकोच कहा था और बताया था कि वह महीने भर से रोज़ गाड़ियों पर आता है और अपनी किताब बेचता है और उसने एक महीने में बीस प्रतियाँ बेच भी ली हैं।...."महन्तराम को ५० प्रतिशत पर उधार देने के बदले मुसाफ़िरों को २५ प्रतिशत दे कर नकद बेच लेना कहीं अच्छा है।" उसने हँस कर कहा था और दाद के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया था।

"तुम्हारा जवाब नहीं!" चेतन ने उसके हाथ-पर-हाथ मारा था, लेकिन मन-ही-मन उसने कहा था, 'यह कवि-कहानीकार हो-न-हो, कारोबारी पक्का होगा।' उसे अमरनाथ की इच्छा-शक्ति और निष्ठा के प्रति श्रद्धा भी

हुई थी और जब मैट्रिक पास करके अमरनाथ ने पंजपीर के रास्ते में एक प्राइमरी स्कूल के निकट दुकान खोल ली, तो चेतन को आश्चर्य न हुआ था। वह उधर से गुज़रा जा रहा था कि अमरनाथ को बैठे देख कर रुक गया था। दुकान के बाहर तख़्तों पर कीलों से धागे बाँध कर उसने किस्से लटका रखे थे। शीशे का वह छोटा-सा कलमदान, जिसे वह तब तक काम में लाता रहा था, धो-धा कर उसने वहाँ सजा दिया था। लेड-पेन्सिलों, स्लेट-पेन्सिलों; होल्डरों, निबों और चाक के दो-दो डिब्बे भी उसने सजा रखे थे और अन्दर रस्सी पर अपने घर ही की तरह उसने 'सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी' की प्रतियाँ लटका रखी थीं। बड़े गर्व से उसने बताया था कि उसने केवल पाँच रुपये से दुकान शुरू की है। किस्से वह क्रेडिट पर ले आया है और बेच कर, ५० प्रतिशत कमीशन काट कर, पैसे चुका आयगा और नये किस्से ले आयगा।

●

चेतन ने एक नज़र इस 'भतीजे दी हट्टी' पर डाली—बाहर-अन्दर, हर कोना-अँतरा तस्वीरों और पुस्तकों से अटा पड़ा था। काउण्टर के बायीं ओर गद्दी के सामने और दायीं ओर छोटे-बड़े फ़्रेम, शीशे और तस्वीरें पड़ी थीं। अन्दर छत तक किताबें रखी थीं। अमरनाथ ने उसे बताया, उसी पाँच रुपये से उसने यह सब बनाया है और पंजपीर से उठ कर स्थानीय पुस्तक व्यवसाय के केन्द्र, भैरो बाज़ार—में आ बैठा है। पहले उसने किताबों की जिल्दें बाँधीं। दीवाली के दिनों में तस्वीरों के फ़्रेम बनाये, साथ में किस्से और सेकेण्ड हैण्ड किताबों का क्रय-विक्रय शुरू किया और इस वर्ष से वह नयी पुस्तकें भी रखने लगा है। चूँकि दीनानाथ बुकसेलर ने अपनी दुकान अपने लड़कों को दे कर, सामने स्वयं दुकान खोल कर उसका नाम 'चाचे दी हट्टी' रखा था, इसलिए अमरनाथ ने भी 'भतीजे दी हट्टी' का बोर्ड लगा दिया। 'चाचे दी हट्टी' तो प्रसिद्ध न हुई, पर 'भतीजे दी हट्टी' शैतान की आँत की तरह प्रसिद्ध हो गयी। कैसे ?—इसके लिए लाला अमरनाथ, उर्फ़ सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी, उर्फ़ भतीजे साहब ने दायीं ओर के रैक से कुछ हैण्ड बिल और पोस्टर निकाल कर चेतन को दिखाये।

....पहले पर मोटे अक्षरों में 'भतीजे दी हट्टी' लिखा था और नीचे उसका ब्योरा दर्ज था कि लाला अमरनाथ जिल्दसाज़ एण्ड फ्रेम मेकर ने अब साथ-साथ सेकण्ड हैंण्ड किताबों का काम भी शुरू कर दिया है और अब दुकान का नाम 'भतीजे दी हट्टी' हो गया है और भतीजा सब की सेवा करने को प्रति-क्षण प्रस्तुत है।

....दूसरे पोस्टर का शीर्षक था—मुझे न पढ़ना—और चूंकि शीर्षक देख कर ही आदमी जाता-जाता रुक कर विज्ञापन पढ़ने लगता, इसलिए नीचे ही इस बात की घोषणा की गयी थी कि भैरों बाज़ार में भतीजे की दुकान खुल गयी है और भतीजे साहब न केवल स्टेशनरी का सामान बेचते है, जिल्द बाँधते हैं, फ्रेम बनाते हैं, वरन् सेकेण्ड हैण्ड किताबें दूसरों की अपेक्षा महँगे मोल पर ख़रीदते हैं और सस्ते पर बेचते हैं !

....तीसरे में एक साथ मोटी सुर्ख़ियों में लिखा था—

हुण काहदी सानूँ चट्टी
खुल गयी भतीजे दी हट्टी
खुल गयी भतीजे दी हट्टी
खुल गयी भतीजे दी हट्टी[1]

....चौथे में भतीजे साहब का अपना लिखा शे'र सुर्ख़ी के रूप में दर्ज था :—

ज़रा रुक कर चचा देखो, ये क्या है ?
य' हट्टी है भतीजे की, भतीजा
किताबें खूब सस्ती बेचता है !

पोस्टरों और हैण्डबिलों में एक ही मज़मून था। लाला अमरनाथ ने स्वयं अपने हाथों से ये पोस्टर सारे शहर के गली-मुहल्लों में चिपकाये और हैण्डबिल बाँटे और अब लाला अमरनाथ महेन्द्र सारे शहर के भतीजे थे।

पोस्टर देख कर और लाला अमरनाथ के संघर्ष की कहानी सुन कर

---

१. अब हमें तकलीफ़ करने की क्या जरूरत है, भतीजे की दुकान खुल गयी है।

चेतन ने कहा, "तेरी किताब सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी हो-न-हो, पर तू सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी ज़रूर है।" और उसने ठहाका लगाते हुए हाथ बढ़ाया तो लाला अमरनाथ ने उसी तरह हँसते हुए उस पर अपना चौड़ा हाथ जमा दिया।

"लेकिन उस तेरी किताब का हुआ क्या? सब बिक गयी?" सहसा चेतन ने पूछा।

"दस-बीस कापियाँ रह गयी हैं। सीधे ढंग से नहीं बिकीं, पर टेढ़े ढंग से मैंने बेच ही लीं," और उसने अन्दर से ढूँढ़ कर एक बड़ा-सा पोस्टर चेतन के हाथ में दिया। ऊपर बड़ी मोटी सुर्ख़ी थी—

ज़िन्दगी के कीमती राज़ों से भरपूर किताब

सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी

मुफ़्त....मुफ़्त....मुफ़्त....मुफ़्त

और इसके आगे इस बहुमूल्य किताब को मुफ़्त हासिल करने की शर्तें थीं कि जो आदमी एक साथ दस पुस्तकों की जिल्द बँधाये, या पाँच तस्वीरें इकट्ठी जुड़वाये या पाँच रुपये की किताबें ख़रीदे, उसे इतनी बेशकीमत किताब मुफ़्त मिलेगी।

"मान गये भई तुम्हें!" चेतन उसे पोस्टर वापस देते हुए उठा, "ज़िन्दगी से जूझना कोई तुमसे सीखे।"

और बड़े तपाक से हाथ मिला कर और जैसे पहली बार अपने इस ठस्स सहपाठी को श्रद्धा से देख, चेतन ने छुट्टी ली।

सैंतीस

चेतन पापड़ियाँ बाज़ार में जा रहा था कि सामने से उसे झमानों का श्यामा बेतहाशा भागता हुआ आता दिखायी दिया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

"क्या बात है ?" बराबर आने पर चेतन ने पूछा।

"हन्से को बुलाने जा रहा हूँ।" बिना रुके हुए उसने उत्तर दिया।

"हुआ क्या ?" चेतन मुड़ कर चिल्लाया।

लेकिन श्यामे ने भागते हुए जो कहा, उसमें सिर्फ़ 'चाची' और 'अमीरचन्द' दो ही शब्द चेतन के कान में पड़े।

चेतन ने कदम बढ़ाया। आगे हकीम दीनानाथ जल्दी-जल्दी दुकान बन्द कर रहे थे।

"क्या बात है हकीम साहब ?" चेतन ने हँस कर कहा, "किधर चल दिये ?

"मुहल्ले में लड़ाई हो गयी है," उन्होंने जल्दी-जल्दी ताला लगा कर चाबी जेब में रखते, ज़रूरी औषधियों का बैग उठाते और चौरस्ती अटारी की ओर कदम बढ़ाते हुए कहा।

"किस मुहल्ले में ? हमारे या आपके ?" चेतन का मतलब था कि

मुहल्ले के किस चौक में, अन्दों के चौक में या चौक चड्ढियाँ में ? क्योंकि हकीम दीनानाथ चौक चड्ढियाँ के पास गली बढ़इयाँ में रहते थे ।

"तुम्हारे !" हकीम जी ने बिना रुके कहा, "अमीरचन्द ने भागो को मार दिया है ।"

"मार दिया है !"

"अभी श्यामे ने बताया । जा कर देखता हूँ, क्या बात है ।"

चेतन के दिमाग़ में लालू की बातें घूम गयीं, "पर वह तो मण्डी में थी, क्या वह आ गयी ।" उसने पूछा ।

"सुनते हैं, अभी आयी है ।"

हकीम साहब कुछ ऐसे चल रहे थे कि भागते दिखायी देते थे । उनका बायाँ पाँव सीधा पड़ रहा था, पर दायें को ज़मीन पर रखते ही घुटने को ज़रा-सा झुकाये हुए वे ऐसे जल्दी से उठा लेते थे कि उनके एक कदम में दो कदमों की-सी गति आ गयी थी । चेतन ने लगभग भागते हुए पूछा, "तो क्या जान ही से मार दिया ?"

"कह नहीं सकता । अभी श्यामे ने बताया है, वह घायल हो गयी है, मर रही है ।....यह अमीरचन्द कैसा बेवकूफ़ है । उसका भाई डिप्टी हो गया तो क्या सारे मुहल्ले को मार डालेगा !"

चौरस्ती अटारी में चेतन को अपना छोटा भाई शंकर भागता हुआ आता मिला ।

"क्या हुआ ?"

"मुहल्ले में जल्दी जाइए । चाची भागवन्ती को मार दिया अमीरचन्द ने । उसके सिर से ख़ून बह रहा है ।" और फिर दीनानाथ से उसने कहा, "हकीम साहब आप जाइए भाग कर । मैं परसराम को अखाड़े देखने जा रहा हूँ ।"

बाजियाँ वाला बाज़ार में जो था, मुहल्ले की ओर भागा जा रहा था ।

हकीम दीनानाथ के साथ जब चेतन मुहल्ले के चौक में पहुँचा तो वहाँ कोहराम मचा हुआ था । चौक भर में भीड़ इकट्ठी थी—गली खोसलियाँ, गली बढ़इयाँ, चौक चड्ढियाँ, गली बनियाँ से तमाशाई उमड़े पड़ रहे थे ।

औरतें ज़्यादा और मर्द कम। मासी पूरनदेई कुएँ की जगत पर खड़ी, खत्रियों की सात पुश्तों के नाम गिन-गिन कर गालियाँ दे रही थी। अपने कोठे पर खड़ी शन्नो मुँह बिचका रही थी कि मुँह काला करके मण्डी चली गयी थी तो उसे मुहल्ले में आने की क्या ज़रूरत थी, धीआँ-भैणाँ[1] वाला मुहल्ला है, ऐसी फिरनिकलियाँ यहाँ कैसे रह सकती हैं ?

और मासी पूरनदेई कह रही थी कि जब वह (शन्नो) अपने देवर से पेंगें बढ़ाती थी और हराम का बेटा उसने जना था तो मुहल्ले की 'धीओं-भैणों' की उसे क्यों याद न आयी थी ?

और पण्डित दौलतराम अपनी चुटिया को गाँठ दिये; नंगे तन पर रामनामी दुपट्टा लपेटे; खड़ाऊँ फटफटाते, कभी मासी पूरनदेई को चुप करा रहे थे और कभी शन्नो के आगे हाथ जोड़ रहे थे।

और सुनारों के दरवाजे के आगे चौक में भागवन्ती चित पड़ी थी। उसके मुँह पर पानी के छींटें मार कर औरतें उसे होश में ले आयी थीं। उसके सिर से खून बह रहा था। उसकी हाय-हाय की आवाज बाज़ार तक सुनायी दे रही थी और वह ऐसे छटपटा रही थी, जैसे अभी उसका दम निकल जायगा।

हकीम दीनानाथ जब अपना बैग थामे आगे बढ़े तो मासी पूरनदेई ने वहीं कुएँ की जगत पर से उन्हें रोक दिया कि हन्से को आ लेने दो। पुलिस में पहले रपट लिखानी है।

चेतन की माँ और चन्दा घूँघट काढ़े बैठक में खड़ी थीं। चेतन वहीं जा कर खड़ा हो गया। माँ ने पूछा कि कहाँ चला गया था, खाने पर बड़ी देर तक उसकी राह देखते रहे। और उसने बताया कि चेतन के पिता आ गये हैं; उसे पूछ रहे थे; चाचा फ़क़ीरचन्द के साथ गये हैं और रात को आयेंगे।

चेतन ने बहाना बना दिया कि उसके लाहौर के दोस्त मिल गये थे और उसने माँ से पूछा कि कैसे हुआ वह सब ?

१. बेटियों-बहनों वाला।

तब चेतन की माँ ने बताया कि वह तो ऊपर थी। सुनते हैं कि भागवन्ती आधा घण्टा पहले आयी थी। सामान वगैरह घर रख कर और बच्चों को मासी पूरनदेई के पास छोड़ कर वह चौक में आयी और सुनारों की दहलीज़ पर बैठी, 'गल्लाँ मढ़ाक' रही थी[1] कि जाने शन्नो ने, या राजो ने, या प्यारे की माँ ने (कि ब्राह्मण होते हुए उनकी और भमानों की लगती थी) जा कर अमीरचन्द से कह दिया कि भागो आ गयी है। वह भुवाड़े से बंकारता हुआ निकला और चुटिया पकड़ कर उसने पीढ़े से भागो को घसीट लिया और पाँव से जूता उतार कर दे एक, दे दो, दे तीन—मार-मार कर उसे अधमरा कर दिया। उसके सिर से बेतहाशा ख़ून बह रहा है। जाने कैसे पटका है मुहल्ले के पक्के फ़र्श पर उसे उस निर्दयी ने !

"तेलू कहाँ है ?" चेतन ने पूछा, "वह नहीं आया क्या ?"

"तेलू का तो सुना नहीं कि आया है।" माँ बोली।

चेतन कुछ क्षण चुपचाप खड़ा, नीचे मुहल्ले में होने वाले तमाशे को देखता रहा। बाज़ार की ओर से लोग लगातार चले आ रहे थे। भीड़ बढ़ती जा रही थी। बेपनाह चिल्ल-पों मची हुई थी।

चेतन ने ध्यान से देखा, भीड़ के उस सागर में तीन-चार धाराएँ उसे साफ़ दिखायी दे रही थीं। कुछ ब्राह्मण स्त्रियाँ भागवन्ती के पक्ष में थीं। उनका विचार था कि जब उसने घर वाला कर लिया तो क्यों न वह घर में रहे ?....भागवन्ती को घेरे हुए, वे सारे मुहल्ले को सुना कर इसकी चरचा कर रही थीं।

चाची दयावन्ती कुछ स्त्रियों के घेरे में बाँह उलार कर कह रही थी कि राज अँगरेज का है, अमीरचन्द का नहीं; जब उसका राज होगा तो उससे कहना (वह संकेत उन खत्रानियों की ओर कर रही थी, जो मुहल्ले में भागवन्ती के आने के विरुद्ध थीं) वह कानून पास करा दे कि खत्री की लड़की ब्राह्मण के घर न जाय।

---

१. बतिया रही थी।

"नी अज्ज दी की गल्ल ऐ," एक दूसरी औरत कह रही थी, "पुराने जमाने विच खत्री राजे अपनी लड़कियाँ ऋषियाँ नू की नेहीं दिन्दे सन ?"[१]

'राजे' और 'ऋषि'—चेतन को लाला मुकन्दीलाल और तेलूराम दोनों का ख़याल आ गया और वह मुस्करा दिया। पण्डित दौलतराम ने वहीं कुएँ की जगत पर उनकी बात सुन कर कहा—"जात-पात पूछे न को, हर को भजे सो हर का हो !"

और मासी पूरनदेई कह रही थी—"भैणा,[२] महात्मा गान्धी कहते हैं कि इस जात-पात के कारण ही हमें स्वराज नहीं मिलता।"

"ते दे दे न अपनी धी किसे चूढ़े-चमार नूँ, स्वराज जल्दी मिल जाय।"[३] शन्नो चिल्लायी और मासी पूरनदेई ने 'मधुर वचनों' की झड़ी लगा दी....

इन ब्राह्मण स्त्रियों के साथ दो-एक खत्री औरतें भी थीं, जिनका शन्नो से शरीका था। उन्ही में से चौधरियों की राजो असमय ही झुर्रियों से भर जाने वाले चेहरे में टँकी, बहती हुई चुँधी आँखों को झपकाती कह रही थी :

"नीं भैणा, आदमी कर लिया ना, घर विच गन्दगी ताँ नेई फैलायी, देराँ-जेठाँ नाल खेह ताँ नेहीं उड़ायी।"[४]

इसे सुन कर पण्डित दौलतराम ने ज़ोर से 'हरि हरि,' 'राधे शाम,' 'राधे शाम' की पुकार लगायी।

१. री, क्या यह आज ही की बात है ? पुराने ज़माने में खत्री राजे क्या अपनी बेटियाँ ब्राह्मण ऋषियों के साथ नहीं कर देते थे ? २. बहन; ३. तो दे दे न अपनी लड़की किसी भंगी-चमार को, स्वराज्य जल्दी मिल जाय !

४. री बहन, आदमी ही कर लिया न, घर में गन्दगी तो नहीं फैलायी (उसका संकेत प्रकट ही शन्नो की ओर था) देवरों-जेठों के साथ खाक तो नहीं उड़ायी !

दूसरा गुट चौधरियों की चौखट के पास खत्री स्त्रियों का था, जो भागो के मुहल्ले में आने के पक्ष में न थीं। अनन्त की माँ, चाची लालदेई इनमें प्रमुख थी। अपनी आवाज़ से सभी आवाज़ों को दबाते हुए, वह कह रही थी :

"नीं, खेह उड़ानी सी ताँ पई उड़ांदी मंडी विच," वह कह रही थी "कोई पुच्छन जांदा सी, पर मुहल्ले विच अपने देवर दी छाती उत्ते मूँग दलना ते चंगा नेईं।"[१]

"तेरा साईं जीवे !" खतरानी धन्नो ने कहा, "आखिर आदमी दी इज्ज़त भी कोई चीज़ है। मंगल दा बाप (लाला मुकन्दीलाल) एथे नेही, ओह होंदा ते खून हो जांदा।"

इन्हीं में भमानों की विरोधी दो-तीन ब्राह्मण स्त्रियाँ भी शामिल थीं। प्यारे की माँ कह रही थी, "नीं एस तेलू नूँ घट आखिर आयी होई ए। छत्त दे उत्ते तेल मलके डंड पेलना।....पड़ोसियाँ दी मामाँ-धीआँ आपनियाँ मामाँ धीआं होंदिया ऐं कि...."[२]

बात काट कर धन्नो ने कहा, "नीं चाची, मर्द दी भली चलायी जे। ओरन ई कोठे टप्प के जाये ते मर्द की करे।"[३]

"नी, असीं ता कदीं नहीं सुनियाँ कि रण्डी रगण सिर मुँडान दे बदले किसे दे घर जा बैठे। महल्ले विच दस औरताँ हैंगण, जिन्हां कत्त-

१. अरी, यदि खाक ही उड़ानी थी तो पड़ी मण्डी में उड़ाती, कोई पूछने जाता था, पर मुहल्ले में अपने देवर की छाती पर मूँग दलना तो अच्छा नहीं।

२. अरी इस तेलू ने भी तो अति कर रखी है। छत पर चढ़ कर शरीर में तेल मल कर डण्ड पेलना....पड़ोसियों की माँ-बेटियाँ, अपनी माँ-बेटियाँ होती हैं।

३. री चाची, मर्दों की भली चलायी है। औरत ही कोठे फाँद कर जाय तो मर्द क्या करे ?

तुम्म के रंडापा कट छड्डिया ऐ। ऐस ने ते ताँ अत्त ई चुक लई।"[1]

"नी जाने कौन जात-कुजात ऐ। खत्री औरताँ अजेहा कम्म नेई कर-दीयाँ।"[2]

इस पर पण्डित दौलत राम ने कानों पर हाथ रखते-रखते हुए दो बार 'शिव' 'शिव' का जाप किया।

o

मर्दों में एक टोली, जिनमें पण्डित शिवनारायण और गुरदयाल थे, इस बात पर खेद प्रकट कर रही थी कि अमीरचन्द को मर्द हो कर औरत पर हाथ नहीं उठाना चाहिए था। और फिर मुकन्दीलाल हाथ चला देते तो कोई बात भी थी, कि उन्हें चोट पहुँची थी, लेकिन इस अमीरचन्द को क्या सूझी कि उसे पीटने लगा।

"जी तीमी दा की मारना, जिवें धरत कुट्ट लेई, ऐंवें जनानी नूं कुट्ट लेया। मर्द सी ताँ तेलू नाल दो-दो हत्थ कर दा।"[3]

"ओ माईया होर कुछ नहीं, भरा दे कलक्टर होण दा हंकार है, माईया माड़े जट्ट कटोरा लब्भा, पानी पी-पी आफ़रिया।"[4]

"वो शास्त्रों में कहा है ना—विनाश काले विपरीत बुद्धि।" पण्डित शिवनारायण बोले।

१. अरी, हमने तो कभी नहीं सुना कि विधवा स्त्री सिर मुँड़ाने के बदले किसी के घर जा बैठे। मुहल्ले में दस विधवा स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने कात-तूम कर वैधव्य काट लिया है। इसने तो अति ही कर दी।

२. अरी, कौन जानता है किस जाति की है? खत्री स्त्रियाँ ऐसा दुष्कर्म नहीं करतीं।

३. अजी नारी का क्या पीटना, जैसे धरती को पीट लिया, वैसे स्त्री को पीट लिया। मर्द था तो तेलू से दो-दो हाथ करता। ४. अजी, और कोई बात नहीं, भाई के कलक्टर होने का दम्भ है। कँगले जाट कटोरा पाया, पानी पी-पी अफरा गया।

परे एक गुट में चेमेगोइयाँ हो रही थीं—"बई अमीरचन्द नूँ किस साले दा डर है; अमीचन्द ख़ुद 'कलट्टर' (कलक्टर) हो गया। किसे पुलिस वाले दी मौत आयी हुई है, जो उसके भरा को कुछ कहे ? आखिर बसना ते ओहदे ई राज विच है।"

"कलट्टर हो चाहे कमिश्नर, हाले राज अँगरेज दा है, पराये दी औरत नूँ मार के घर नहीं बैठा रह सकता। भरा कलट्टर होएगा ते मुहल्ले नूँ कुट्ट कड्ढेगा ?"[1]

और यों जिसके जी में जो आ रहा था, कह रहा था। तभी बाज़ार की ओर से हन्सा, श्यामा, गेंदा—झमानों के लड़के आये। हाथ में उनके लाठियाँ थीं। बाज़ार ही से उन्होंने गाली देते हुए कहा, "कित्थे है ओ कलट्टर दा पुत्त, देख लइए अज्ज ओहदी कलट्टरी।"[2]

लेकिन जब उन्हें पता चला कि अमीरचन्द तो भागो को पीट कर जाने किधर चला गया है और उसकी बीवी ने अन्दर से दरवाज़ा लगा लिया है और उसे जैसे साँप सूंघ गया है, कोई सुन-गुन ही नहीं देती, तब वे सब भागवन्ती की ओर पलटे।

मासी पूरनदेई ने कहा कि पहले जा कर पुलिस में रपट लिखा कर आओ। और पलक झपकते लड़के कहीं से जा कर चारपाई ले आये। हाय-तौबा मचाती, तड़पती भागवन्ती को उस पर लिटाया गया। तब चेतन ने आगे बढ़ कर कहा कि इनके सिर से ख़ून बह रहा है, पहले किसी डॉक्टर से सर्टिफ़िकेट ले लो, फिर जा कर रिपोर्ट कराओ।"

"ओ जी 'सार्टीफीकेट' की करना है। पुलिस की अन्हीं है, ख़ून बगदा

१. कलक्टर हो चाहे कमिश्नर, अभी तो राज अंग्रेज़ों का है। पराई स्त्री को पीट कर घर नहीं बैठा रह सकता। भाई कलक्टर होगा तो क्या मुहल्ले को पीट छोड़ेगा ?

२. कहाँ है वह कलक्टर का बेटा, देख लें हम आज उसकी कलक्टरी।

न देखेगी ?"[1] पण्डित गुरदयाल ने कहा।

"फ़ेर जी, साडे सार्टिफिटिक हकीम साब ताँ नाल ई ने।"[2] किसी ने हकीम दीनानाथ की पीठ पर थपकी देते हुए कहा।

तब हकीम दीनानाथ को अपनी व्यस्तता का ख़याल आया। "मुझे श्यामे ने कहा था कि चाची का सिर फट गया है। मैं फ़र्स्ट ऐड का सामान लाया हूँ। आपको रिपोर्ट लिखानी है तो जा कर लिखा आइए। मैं दुकान पर हूँ।"

और वे मुड़े। पर तभी पण्डित गुरदयाल ने जैसे उनके पाँव पकड़ लिये और कहा कि आप डरिए नहीं। बस, आप साथ चले चलिए। पुलिस सिर फटा देख ले, तब आप वहीं पट्टी कर देना।

चेतन कहना चाहता था कि इसका कोई लाभ नहीं। थाने में रिपोर्ट लिखायी जायगी तो भी काफ़ी है, पर उसने उन मूर्खों से बहस करना बेकार समझा। चार आदमियों ने चारपाई को उठाया और वनियों की गली की ओर से चारबाग़ पुलिस स्टेशन की ओर चल दिये। उनके पीछे जुलूस की सूरत में सारी भीड़ चल दी।

यद्यपि चेतन सुबह से थका हुआ था और यद्यपि उसकी माँ ने रोका भी, पर महज़ तमाशा देखने के लिए वह भी भीड़ में शामिल हो गया।

१. अरे भाई सर्टिफ़िकेट क्या करना है। पुलिस क्या अन्धी है। ख़ून बहता न देखेगी?

२. फिर जी, हमारे सर्टिफ़िकेट तो हकीम साहब हैं, जो हमारे साथ ही हैं।

अड़तीस

यह छोटी तंग गली, जो चौक अन्दाँ (आनन्दा) से ग़ली बनियाँ और रस्ता बाज़ार से होती हुई चारबाग़ को गयी है, कोट पश्का तक इतनी तंग चली गयी है कि इक्का-ताँगा उसमें से नहीं गुज़र सकता। आज तो रिक्शे सीधे कल्लोवानी मुहल्ले तक पहुँच जाते हैं, पर उस ज़माने में किसी ने रिक्शा का नाम न सुना था। ताँगे, चौकों में खड़े होते थे और वहाँ से दूर-दूर तक सवारियाँ अपने ही सिरों या कन्धों पर सामान उठाये अपने-अपने घरों को जाती थीं।

इन्हीं गलियों, चौकों और ताँगों के सम्बन्ध में चेतन के साथ एक छोटी-सी घटना घटी थी, जो उसके मन पर कहीं गहरे अंकित थी और जब वह इन गलियों से गुज़रता, एक-न-एक बार उसकी याद हो आती। वह अपनी पत्नी का गौना करा के आया था। बस्ती के अड्डे पर उसने ताँगे वाले से कहा था कि उसे मुहल्ला कल्लोवानी जाना है, जो कादेशाह के चौक के पास है। ताँगे वाला बेहद अक्खड़ था। उसने कादेशाह के चौक के ऐन बीच ताँगा रोक दिया। जब चेतन ने अनुरोध किया कि वह दस कदम आगे ख़रादियाँ के चौक तक ले जाय तो उसने इनकार कर दिया कि आगे ताँगा नहीं मुड़ता।

"मुड़ता है।" चेतन ने कुछ झुँझला कर कहा था।

पर ताँगे वाला टस-से-मस न हुआ। उसने कहा कि उसे कादेशाह के चौक तक के लिए किया गया था और वह आगे नहीं जायगा।

"तुम आगे नहीं जाओगे तो मैं पैसे नहीं दूँगा।"

"तुम पैसे अपने पास रखो!" ताँगे वाले ने सहसा कहा था और मिठाई की टोकरी और गठरी, सब सामान नीचे उतार दिया था और इससे पहले कि चेतन कुछ कहता, वह ताँगा मोड़ कर, उसे मल्लाहियाँ सुनाता, बड़बड़ाता चल दिया था।

चेतन ने लाख उसे आवाज़ें दी थीं, पर उसने पलट कर भी नहीं देखा था।

और चेतन अपनी नव-परिणीता पत्नी के साथ चौक कादेशाह की चिलचिलाती धूप में बेबस खड़ा रह गया था। उसकी पत्नी घर का रास्ता न जानती थी कि वह उसे भेज देता और स्वयं सामान के पास खड़ा रहता। मुसलमानों का मुहल्ला—वह भी गुण्डों और लफ़ंगों का—वह उसे सामान के पास छोड़ कर स्वयं भी न जा सकता था—लालू की पत्नी के साथ जो घटना घटी थी, वह उसे याद थी। बड़ी देर तक वह इस बात की प्रतीक्षा करता रहा था कि उसके मुहल्ले का कोई आदमी आये तो वह उसके द्वारा अपने भाई को बुलवाए। कड़कती धूप, जब खड़े-खड़े चन्दा थक गयी तो आख़िर चेतन ने उसे मिठाई की गठरी उठाने को कहा और टोकरी और दूसरा सामान किसी तरह स्वय उठा कर वह चल दिया। शादी के तीसरे दिन ही यों सामान उठाये अपने घर आना उसे बेहद खल रहा था और वह यह मनाता था कि मुहल्ले का कोई आदमी उधर न आये। खरादियाँ के चौक के ज़रा आगे गली के सिरे पर पहुँच कर उसने चन्दा को सामान रख देने को कहा। फिर वह एक-एक कर, सारा सामान हरलाल पंसारी की दुकान पर रख आया। तब अपनी बीवी को ले गया।

भागवन्ती की चारपाई के पीछे (जिसे लोग जनाज़े की तरह कन्धा देते तेज-तेज चले जा रहे थे) उन तंग गलियों में तमाशाइयों की भीड़ का अंग बने, चलते-चलते चेतन के सामने सहसा वह घटना फिर घूम गयी

और एक नये क्रोध और ग्लानि से उसके भ्रू कुंचित हो गये। पर इस बार वह क्रोध उसे ताँगे वाले पर नहीं आया, अपनी मूर्खता पर आया। यदि वह ताँगे वाले से कहता, 'भाई चार कदम चलो, एक आना और ले लेना' या कहता, 'पहलवान ज़रा बढ़ा लो, वहाँ से हमारा घर नज़दीक है, मेरे साथ मेरी नयी ब्याही बीवी है, तुम्हारी बड़ी मेहरबानी होगी !' तो क्या ताँगे वाला न जाता। ज़रूर जाता। पर उसने पैसे न देने की धमकी दी और वह पैसे छोड़, एक ज़बरदस्त तमाचा उसके मुँह पर मार कर चला गया।

०

"अरे भाई क्या हुआ, यह जुलूस किधर जा रहा है ?" सहसा रस्ता बाज़ार की एक दुकान से वेदव्रत कालिया ने उठ कर उसके गले में बाँह डाल, उसके साथ चलते हुए पूछा।

चेतन को कालिया का यों गले चिमटना अच्छा नहीं लगा। लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। कालिया यद्यपि चेतन से दो बरस छोटा था, पर कभी वह उसे अपना गुरु मानता था, क्योंकि उसने उससे माउथ-आर्गन बजाना सीखा था। अमीरचन्द द्वारा भागो के पीटे जाने की बात चेतन ने उसे बता दी। सहसा कालिया ने पूछा, "चाचा मनीराम (मणिराम) कहाँ हैं ? उन्होंने कैसे यह सब होने दिया ?"

"यह तुम अपने ताया जुलियाराम से पूछो।" चेतन ने सव्यंग्य कहा, "चाचा मणिराम कहीं उनके साथ साधना में रत होंगे।"

और उसने बड़े नामालूम ढंग से अपनी गर्दन को कालिया की बाँह से आज़ाद कर लिया।

०

कालिया का पिता, गण्डाराम मूँगी के खट्टे वाले लड्डू और पापड़ बेचा करता था और ताया, पण्डित जुलियाराम पोस्ट-मास्टर था। दोनों अलग-अलग रहते थे। पण्डित जी की बीवी बहुत पहले दो लड़के छोड़, परलोक सिधार गयी थी और चूँकि गण्डाराम घर में कुछ ला कर न देता था और जो कमाता था, वह शराब और जुए में उड़ा देता था, इसलिए पण्डित

जी यथाशक्ति अपनी भाभी की सहायता करते थे। लोगों ने पण्डित जी पर लांछन लगाया था—वे इसलिए विवाह नहीं करते कि भाभी के साथ रहते है। लेकिन बात यह थी कि पण्डित जी का बड़ा लड़का पागल था और उनको डर था कि वे शादी कर लेंगे, तो सौतेली माँ उसकी देख-भाल न करेगी। लेकिन मुहल्ले के लोगों को यह कब गवारा था कि कोई आदमी आराम मे रहे। तब उन्होंने गण्डाराम को बहकाया कि तेरी बीवी तेरे बड़े भाई के साथ रहती है। कई बार लड़ाई-झगड़ा हुआ और आखिर एक दिन लोगों ने सुना कि गण्डाराम अपने बीवी-बच्चे को छोड़ कर संन्यासी हो गया है। लोगों की बातों की परवाह न कर, पण्डित जी अपनी भाभी को घर ले आये और वह अपने बच्चे के साथ उनके लड़कों की भी देख-रेख करने लगी।

पण्डित जी का बड़ा लड़का १८-२० वर्ष का हृष्ट-पुष्ट जवान था, लेकिन वह पागल ही न था, गूँगा भी था। वह कई बार घर से भागा और कई बार पण्डित जी उसे ढूँढ़ लाये। फिर जब वह भागा तो उसका पता नहीं चला। तीन वर्ष तक पण्डित जी उसे खोजते रहे, लेकिन जाने वह कहाँ चला गया। उसके गुम होने का उन्हें इतना क्षोभ हुआ कि (छोटा लड़का और भतीजा तो दोनों पढ़ गये थे और काम पर लग गये थे) पण्डित जी ने रिटायर होते ही दाढ़ी बढ़ा ली और वेदान्ती हो गये। इस काम में उन्हें साथी भी मिल गए अपने ही अधीन काम करने वाले असिस्टेण्ट पोस्टमास्टर, अमीचन्द और अमीरचन्द के पिता, लाला मणिराम। वे काफ़ी लम्बे, छरहरे, गोरे आदमी थे। प्रायः चुप रहते थे। लेकिन उनका स्वभाव बड़ा क्रोधी था। उनका बड़ा लड़का अमीरचन्द उन्हीं पर गया था—वैसा ही लम्बा, गोरा, और उनकी अपेक्षा कहीं ज्यादा हृष्ट-पुष्ट। चेतन को याद था, एक बार कुएँ पर पानी भरते हुए उसने मुहल्ले की किसी लड़की पर फब्ती कस दी थी, जो कहीं ऊपर मकान पर बैठे उन्होंने सुन ली थी। वे ऊपर से उतरे थे और मारे जूतों के उन्होंने अमीरचन्द का भुरकस निकाल दिया था। चेतन ने दो-तीन बार उन्हें अमीरचन्द को इसी तरह बेदर्दी से पीटते देखा था। लेकिन पण्डित जुलियाराम की संगति

में—जो अपने मुँड़े हुए सिर, गोरे रंग और नाभि तक बढ़ी हुई दाढ़ी के कारण सचमुच ऋषि-ऐसे लगते थे, लाला मणिराम में अपूर्व परिवर्तन आ गया था। वे जैसे दुनिया में रहते हुए दुनिया से ऊपर उठ गये थे। अमीचन्द कम्पीटीशन में बैठ सके, इस उद्देश्य से उन्होंने अपनी आधी पेंशन के बदले नकद रुपया ले लिया था। अमीरचन्द मैट्रिक करके नौकर हो गया था। उसकी शादी हो गयी थी और वह अपने चाचा सोहन लाल के साथ भुवाड़े में रहने लगा था। अमीरचन्द तो मैट्रिक से आगे नहीं बढ़ा, लेकिन अमीचन्द हमेशा फ़र्स्ट आया, उसने हमेशा छात्र-वृत्ति पायी। एफ़० ए० में उसने रिकार्ड तोड़ा और पिता ने किसी-न-किसी तरह उसे लाहौर के गवर्नमेण्ट कॉलेज में दाख़िल करा दिया था। तीसरा लड़का फिर बेकार निकल गया। आवारा और निकम्मा। मैट्रिक से आगे वह नहीं बढ़ा। जाने अपने मँझले लड़के के विद्वान निकलने अथवा पण्डित जुलियाराम के उपदेशों के कारण लाला मणिराम ने कभी उसे झिड़का तक न था। अमीचन्द के पी० सी० एस० में आने पर उन्होंने कोई विशेष प्रसन्नता प्रकट नहीं की। लोगों की बधाइयों को विनम्रता से उन्होंने स्वीकार कर लिया था और अपने नियम के अनुसार साधना के हेतु चुपराने चले गये थे। दोनों समय दोनों रिटायर्ड पोस्टमास्टर शहर से तीन-चार मील दूर चुपराने के रहट पर जाते थे। दो घण्टे तक प्राणायाम करते और परमात्मा में मन लगाते थे।

०

"सुना हुनर साहब आये हुए हैं।" वेदव्रत ने मुस्कान को और भी फैला कर, उस किस्से को बात-चीत के घेरे से हटा दिया। चाहता तो वह यही था कि फिर चेतन के गले में बाँह डाल दे, लेकिन जाने चेतन के व्यवहार में क्या था कि उसे साहस नहीं हुआ। उसने सिर्फ़ इतना कहा "एक मजलिस तो हो जानी चाहिए भापा जी।"

कालिया ने माउथ-आर्गन बजाना कब का छोड़ दिया था और इधर शे'र-ो-शायरी से शौक फ़रमाने लगा था। चेतन तब नवीं में पढ़ता था, जब उसने पहली बार कालिया को माऊथ-आर्गन बजाते हुए गली से

गुज़रते देखा था। इसके बाद दो-तीन बरस तक वह बाजा हर वक्त उसके मुँह से लगा रहा था। कोई नयी ट्यून (थियेटर की, सिनेमा की या जालन्धर के प्रसिद्ध किस्सा गाने वालों की) शहर में प्रचलित होती कि कालिया उसे माऊथ-आर्गन में निकाल लेता। चेतन ने भी एक बाजा ख़रीद कर दो-तीन हफ़्ते उसके साथ मिल कर रियाज़ किया था, लेकिन उससे नहीं चला। इस बाजे के मुकाबिले में उसे बाँसुरी अच्छी लगी थी। लेकिन कालिया पूर्ववत बाजा मुँह से लगाये रहा था। वह घण्टों निरन्तर बाजा बजा सकता था। साँस भी उसे बजाते-बजाते ले लेता था। चेतन घर में बैठा होता, तो बाजे की आवाज़ सुन कर ही उसे पता चल जाता, कालिया गली से जा रहा है।....वह कभी-कभी सोचता कि इस बाजे को कला में स्थान क्यों नहीं मिला? किसी बैण्ड या आर्केस्ट्रा में उसने माऊथ-आर्गन बजाने वाला कलाकार नहीं देखा। इसकी हैसियत लौण्डों की पिकनिकों से आगे नहीं बढ़ी और शायद इसीलिए जब कालिया ने मैट्रिक कर लिया तो आप-से-आप उसका बाजा छूट गया। उसे पोस्ट-आफ़िस में क्लर्की मिल गयी थी और क्लर्कों को उसका माऊथ-आर्गन बजाना एकदम बचकाना लगता था। वे उससे कटे-कटे रहने लगे थे। तब कालिया ने बाजा बजाना छोड़ दिया और चेतन ने देखा कि उसे अचानक शे'र-ो-शायरी से शौक हो गया है। वह चेतन के पास आ जाता। उसके शे'र सुनता। कभी-कभी खुद भी किसी शायर का शे'र सुनाता। लेकिन उसका दिमाग़ ठस्स था। वह हमेशा ग़लत मौके पर शे'र चस्पाँ करता।....कुछ अजीब-से अतिरिक्त जोश से बात करता और उसके होंट सदा मुस्कान में फैले रहते।

"हुनर साहब इस वक्त लाला गोविन्दराम के चौबारे पर होंगे। वहीं महफ़िल जमी है," चेतन ने कहा। "उन्होंने गीता के दूसरे अध्याय को उर्दू नज़्म का लिबास पहनाया है।"

"अच्छा!" कालिया की आँखें और होंट, दोनों फैल गये। और वह बिना कुछ कहे, पीछे को पलट गया।।

०

२५

कोट पश्का के पास पहुँच कर सड़क चौड़ी हो गयी। जुलूस के कदमों में तेज़ी आ गयी। एक ही मोड़ पार कर, जुलूस चारबाग़ की सड़क पर लाला अच्छरूराम एडवोकेट की कोठी के सामने आ गया और फिर बायीं ओर को स्टेशन की ओर हो लिया, जहाँ आख़िरी कोने पर पुलिस चौकी थी। चेतन बचपन से ले कर अब तक पचासों बार इस सड़क से गुज़रा था, लेकिन उसने कभी पुलिस चौकी की ओर न देखा था और न उसे यही मालूम था कि कल्लोवानी मुहल्ला इसी थाने के अधीन है।

थाने का अहाता पार कर, वे एक दालान में रुके, जहां दो मेज़ें और दो कुर्सियाँ सजी थीं। इस दालान के बायीं ओर एक कमरा था, जिसमें एक मेज़-कुर्सी लगी थी। बिना वर्दी का एक सिपाही दालान में खड़ा था। जुलूस ने चारपाई दालान के बाहर रख दी।

"क्या बात है ?" सिपाही ने पूछा।

"अमीरचन्द ने इसे मारा है।"

"उसका भाई डिप्टी कलक्टर क्या हो गया है, उसने मुहल्ले वालों का जीना मुश्किल कर दिया है।"

"यह अँगरेज का राज है या अमीरचन्द और उसके भाई का कि चाहे जिसकी पत उतार दे।"

"आप फ़ौरन चल कर उसे पकड़ हवालात में दीजिए। दो दिन में उसे पता चल जायगा कि सूत का क्या भाव है।"

[यह पण्डित बनारसीदास थे—आख़िर सूत बेचने वाला है न, चेतन ने मन-ही-मन कहा।]

लोग एक-दूसरे से आगे बढ़ कर एक साथ बोल रहे थे।

लेकिन सिपाही ने जैसे किसी की बात नहीं सुनी। "थानेदार साहब यहाँ नहीं हैं। घण्टे भर बाद आयेंगे।" उसने बेपरवाही से कहा।

"लेकिन घण्टे में तो इसकी जान निकल जायगी। देख नहीं रहे, कैसे ख़ून से लथपथ हो रही है।" पण्डित शिवनारायण झमान ने फ़रियाद की।

चेतन जानता था, बिना कुछ दान-दच्छिणा लिये या डर दिखाये, ये रिपोर्ट नहीं लिखेंगे और दान-दच्छिणा के नाम पर यहाँ कानी कौड़ी कोई

नहीं देगा। तो भी ज़रा आगे बढ़ कर उसने अंग्रेजी में कहा, "चलो, इसे सीधे डिप्टी कमिश्नर के बँगले पर ले चलो। मैं उनसे बात कर लूँगा।"

और उसकी धमकी काम कर गयी। वे लोग असमंजस-भरे चारपाई उठा रहे थे कि अन्दर की ओर आवाज़ देने पर एक दूसरा सिख सिपाही आया। पहले ने दूसरे से कुछ कहा और वह आ कर कुर्सी पर बैठ गया।

"हवलदार साहब आ गये हैं! आप इन्हीं को रपट लिखा दीजिए।"

फिर पहले की तरह कई स्वर एक साथ गूंज उठे।

"एक आदमी बताओ। पूरी वारदात की रिपोर्ट लिखाओ। मुसम्मात का क्या नाम है?"

"भागवन्ती।" हन्सा बोला।

"शौहर का नाम?"

"पण्डित तेलू राम!"

"इसका शौहर आगे आये!"

"जी.वो तो मण्डी में है।"

"तुम मुसम्मात के क्या लगते हो?"

"जी मैं इनका भतीजा हूँ।"

"अब बोलो क्या हुआ?"

और हन्से ने बताया कि डेढ़-एक घण्टा पहले उसकी चाची मण्डी से अपने घर आयी थी और सुनारों की दहलीज़ में बैठी बातें कर रही थी कि लाला मणिराम का बड़ा लड़का अमीरचन्द आया और उसने बालों से उसे घसीट कर इसे डण्डे से पीटा और अधमरा कर दिया।

"नहीं जूतों से पीटा!" श्यामे ने कहा।

"तुम चुप रहो जी, यह खून कैसे बह रहा है?" हन्से ने भाई को दुत्कारा।

"इसने उसका क्या बिगाड़ा था?"

"जी कुछ नहीं।"

"तो क्या वो पागल है?"

"जी नहीं, बात यह है कि चाची खत्री है, उनकी बिरादरी की है।

पहला पति मरने पर इसने मेरे चाचा से शादी कर ली और वहीं मण्डी में रहने लगी। यह बात खत्रियों को पसन्द नहीं आयी। आज यह घर आयी तो अचानक उसने इसे पीट दिया।"

"क्या वह इसका देवर-जेठ है ?"

"जी नहीं, कुछ नहीं। बस जात एक है।"

"जी हवलदार साहब, उसका छोटा भाई डिप्टी क्या हो गया है, वह मुहल्ले के सभी ब्राह्मणों को मुहल्ले से निकल जाने की धमकी दे रहा है।"

"हवलदार साहब, यह राज अँगरेज का है या अमीरचन्द के भाई का, या कल्लोवानी के खत्रियों का, कि दूसरे की बहू-बेटियों की दिन-दहाड़े पत उतार दें।"

"नहीं-नहीं, आप फ़िक्र न करें। हम उन्हें ठीक कर देंगे।" हवलदार ने कहा और वह हन्से की ओर मुड़ा।

"तुम वहाँ मौजूद थे ?"

"जी नहीं, मुझे तो मेरा छोटा भाई बुला कर लाया। सारा मुहल्ला मौजूद था।"

"तो इस वारदात का कौन-कौन गवाह है ? मामला कचहरी जायगा तो गवाही तो कोई देगा। अगर फ़रीके-मुख़ालिफ़[1] ने कहा कि अदावत[2] में झूठ-मूठ उनका नाम लिखा दिया गया है, मुसम्मात ने सिर ज़मीन पर दे मारा है तो....?"

"जी गवाहों की कमी नहीं। आप चल कर पूछ लीजिए।"

"इतने आदमी खड़े हैं। इनमें से कुछ क्यों नहीं गवाही लिखा देते ?"

लेकिन गवाही के नाम पर सभी पीछे हट गये। हन्से ने पण्डित गुरदयाल, शिवनारायण, पण्डित बनारसीदास सभी से गवाही लिखाने को कहा, पर कोई तैयार न हुआ।

तब चेतन ने आगे बढ़ कर अंग्रेज़ी में समझाया कि आप जा कर अमीरचन्द को समझा दें कि ऐसी ज़्यादती न करे। उस वक्त मुहल्ले में

१. प्रतिवादी २. दुश्मनी।

मर्द नहीं थे, औरतें ही थीं। वही आपको सब कुछ बता देंगी। ये सब लोग तो तमाशाई हैं। कोई गड़बड़ हो जाय, यह औरत मर जाय तो आप ही पर बात आयगी। आप रिपोर्ट पर हन्से के दस्तख़त करा लीजिए और ख़ुद तफ़तीश कर लीजिए।"

"आप कौन हैं ?" सिपाही ने पूछा।

"मैं 'बन्दे मातरम' लाहौर में असिस्टेण्ट एडीटर हूँ।"

तब हवलदार ने रिपोर्ट पर (जो उसने रजिस्टर पर दर्ज नहीं की थी, बल्कि एक अलग काग़ज़ पर लिखी थी) हन्से के दस्तख़त कराये और कहा कि थानेदार आ जायें तो चौकी से सिपाही जायगा।

"जी इस वक्त अमीरचन्द घर नहीं मिलेगा। आप सुबह-सुबह उसे पकड़ियेगा।"

हवलदार ने तसल्ली दी कि वह सुबह-सुबह आयगा।

तब हकीम साहब ने भागवन्ती की मरहम-पट्टी की, जिसके दौरान वह ख़ूब चिल्लायी और कराही और यद्यपि वह पैदल चलना चाहती थी, पर सब ने उसे उसी तरह चारपाई पर लादा और जुलूस कल्लोवानी की ओर पलटा।

"अब देखो डिप्टी के बेटे को कैसा मज़ा मिलता है।" पण्डित विश्वम्भर दयाल ने प्रसन्नता से कहा, "दो दिन बेटा हवालात में रहेंगे तो सारी डिप्टी कमिश्नरी भूल जायगी।"

और चेतन उन बेवकूफ़ों पर हँसता रहा।

०

थाने से वापसी पर भागवन्ती का यह जुलूस कोट पश्का की ओर से जाने के बदले गली-दर-गली रस्ता बाज़ार को चला। बात यह थी कि उधर से रास्ता कुछ निकट पड़ता था और उन लोगों को मुहल्ले में पहुँच कर यह ख़बर देने की जल्दी थी कि पुलिस सुबह ही आयेगी और अमीरचन्द को पकड़ कर हवालात में ले जायगी। वे लोग अभी खोसलों की गली तक ही पहुँचे थे कि चेतन के कानों में अपने पिता की पाटदार आवाज़ सुनायी दी। वे शायद परसराम को उसके कर्तव्य के सम्बन्ध में उपदेश दे रहे थे।

उनतालीस

जालन्धर के इस कल्लोवानी मुहल्ले में न जाने कब से क्षत्री-ब्राह्मणों में ठनी आ रही थी। इस संघर्ष का सूत्रपात न जाने राज-सत्ता के लिए आपसी कशमकश से हुआ अथवा ब्राह्मणों की चातुरी के चंगुल में फँसे क्षत्रियों ने विद्रोह कर दिया (जिन्हें गर्भाधान संस्कार से ले कर नवजात-शिशु के जन्म, छठी, ग्यारहवीं, मुण्डन, यज्ञोपवीत, सगाई, विवाह, मरण, चौथे, तेरहवीं और उसके बाद हर वर्ष श्राद्धों पर ब्राह्मणों का घर भरना पड़ता था।) जो भी हो, इसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण शायद विश्वामित्र को, क्षत्री होते हुए भी, ब्रह्मर्षि कहलाने की सूझी अथवा महामन्त्री पुष्य-मित्र को ब्राह्मणों का राजवंश चलाने की। यह प्रतिद्वन्द्विता जालन्धर के इस कल्लोवानी मुहल्ले में इस परिभ्रष्टावस्था को पहुँच गयी थी कि क्षत्री (जो अब खत्री कहलाते और रण-क्षेत्र के बदले व्यापार-क्षेत्र में तीर चलाते थे) ब्राह्मणों को (जो 'बाह्मन' रह गये थे और ज्ञान-दान देने के बदले केवल दान-दक्षिणा लेते थे) 'बाह्मन कुत्ते' कहते थे और ब्राह्मण क्षत्रियों को चोर और बेईमान। दोनों ने एक-दूसरे के बारे में बड़ी टुच्ची लोकोक्तियाँ बना रखी थीं। जो ब्राह्मण पढ़-लिख गये थे, उन्होंने दान-दक्षिणा लेना छोड़ दिया था और खत्रियों ने जन्माष्टमी आदि त्योहारों

पर ब्राह्मण कन्याओं और कुमारों को भोजन पर बुलाने के बदले खत्री कन्याओं और कुमारों को भोजन पर बुलाना शुरू कर दिया था।

मुहल्ले में खत्रियों का ज़ोर था—अधिकांश घर भी उन्हीं के थे और खाते-पीते लोग भी वे ही थे। ब्राह्मणों के तीन घर थे और तीनों पुरोहितों के, जिनका काम न्योते खाना और यजमानों की चिरौरी करना रहा था, इसलिए ब्राह्मण दब कर रहते थे और खत्री उन्हें दबा कर रखते थे।

लेकिन चेतन के पिता, उस ज़माने में, जब हज़ारों में कोई विरला ही मिडल तक जाता, मैट्रिक तक पढ़ गये थे और रेलवे में मुलाज़िम हो गये थे। फिर वे मुहल्ले ही के नहीं, शहर भर के प्रसिद्ध लड़ाके थे और उनके आगे खत्रियों की एक न चलती थी....लेकिन वे तो सिगनेलर हो कर नॉर्थ-वेस्टर्न रेलवे के दूरस्थ स्टेशनों पर चले गये। पीछे रह गयी उनकी दादी गंगादेई और नव-परिणीता पत्नी लाजवन्ती—चेतन की माँ।

चेतन ने जब से होश सम्हाला था, वह अपनी माँ के मुँह से उस जुल्म के किस्से सुनता आया था, जो धन के दर्प में चूर उन खत्रियों के हाथों उन्हें निरन्तर सहना पड़ा था। एक किस्सा तो उसने इतनी बार सुना था कि कमज़ोर होने पर भी उसका खून उबल उठा करता था।

बात उस वक्त की है, जब चेतन के पिता रिलीविंग में थे और हिसार स्टेशन पर स्थानापन्न सिगनेलर के रूप में काम कर रहे थे और चेतन की माँ, परदादी गंगादेई के साथ, उसी खंडहर-से मकान में रहती थी। तभी एक दोपहर मुहल्ले में अचानक शोर मच गया। हुआ यह कि पण्डित शादीराम का पागल चाचा चूनी, जो शहर भर में नंग-धड़ंग घूमता रहता था, कहीं मुहल्ले में आ गया। उनके पड़ोसी लाला जीवनलाल की बीवी दम्मो को (जिसे ब्याह कर आये हुए ज़्यादा वर्ष नहीं हुए थे) जाने क्या शरारत सूझी कि सूत अटेर कर गुच्छी बनाते हुए खाली अटेरन उसने उसके चूतड़ों में दे दी। वह ठहरा पागल पलट कर उसने एक थप्पड़ दम्मो के जड़ दिया। तब दम्मो सिर और छाती पीटती अपने पति और तीनों देवरों को बुला लायी और उन्होंने उस पागल को इतना पीटा कि उसका सारा बदन नीला हो गया। पिटता-पिटता वह किसी तरह घर के

अन्दर आ गया और चेतन की माँ ने किवाड़ बन्द कर लिये। खत्रियों ने इसी पर बस नहीं की। वे किवाड़ तोड़ने लगे कि जिस तरह दम्मो के थप्पड़ लगाया है, उसी तरह चेतन की माँ के थप्पड़ मारेंगे। तीन दिन तक (ऐसा चेतन की माँ ने बताया) वे दोनों मकान में बन्द रहीं और खत्री आते-जाते गालियाँ बकते रहे और परदादी अपने पागल बेटे को सेंक देती रही। तीसरे दिन चेतन की माँ ने झरोखे से ब्राह्मणों के एक लड़के के हाथ चेतन के पिता के मित्र चौधरी गुज्जरमल और तेजपाल को बुलाया। उन्होंने खत्रियों को (कि वे उनके यार-दोस्त ही थे) समझाया और मकान का दरवाज़ा खुलवाया।

चेतन की माँ इस अपमान से जलती रही। जब कुछ महीने बाद चेतन के पिता एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन को जाते हुए, जालन्धर आये और उनके मित्र (लाला जीवनलाल के दोनों छोटे भाई) धर्मचन्द और मुकन्दीलाल उनकी महफ़िल में दो घूँट पीने को आ शामिल हुए, तो जब रात के एकान्त में चेतन के पिता ऊपर आये, चेतन की माँ ने बड़े ही क्षोभ में उन्हें अपने और दादी के अपमान की कथा सुनायी। शराब के नशे में चूर पण्डित शादीराम ने जीवनलाल और उसके सभी भाइयों और मुहल्ले के दूसरे खत्रियों को माँ-बहन की बीस-बीस गालियाँ सुनायीं और कहा कि ये रामानन्द और चेतन साले चूहे पैदा हुए हैं, अबके जो लड़का वे पैदा करेंगे, उसका नाम वे परशुराम रखेंगे, जो इन साले क्षत्रियों का बीजनास कर देगा।

जिन खत्रियों का बीजनास करने की गहर-गम्भीर घोषणा पण्डित शादीराम ने की थी, वे सब उनके हम-निवाला, हम-प्याला थे। पण्डित जी अपने साथ बैठा कर उन्हें पिलाते थे, ज़रूरत के वक्त रुपये-पैसे से उनकी मदद करते थे और आते-जाते उनके बीवी-बच्चों को उपहार देते थे।

पण्डित शादीराम शराब के नशे में यह घोषणा कर के भूल गये, लेकिन जिन पड़ोसियों ने उनकी यह घोषणा सुनी थी, वे नहीं भूले और चेतन की माँ जब बच्चे से हुई तो लोग परदादी गंगादेई से पूछने लगे, "क्यों दादी, परसराम कब आ रहा है ?"

चेतन की परदादी उनके सात-सात पुरखों को गालियाँ सुनाती। आँखों से उसे अब दीखता न था और उमर भी उसकी अस्सी को पार कर गयी थी। पुराने खँडहर-घर की डेवढ़ी में अब वह बैठी रहती थी। लेकिन मुहल्ले के बच्चों और जवानों को (उनमें लड़के-लड़कियाँ दोनों शामिल थे) परदादी की गालियाँ सुनने में कुछ ऐसा मज़ा आता था कि वे बार-बार पूछते—"क्यों दादी परसराम कब आ रहा है ?"

और चेतन की माँ आँगन में, या रसोई-घर में, या दालान में बैठी यह सोचा करती कि उसने किस बुरी सायत में पण्डित जी से खत्रियों के उस अत्याचार की बात कह दी; वे तो शराब के नशे में सारे मुहल्ले को सुना कर घोषणा कर गये और उसकी जान पर आ बनी। अगर लड़के की जगह लड़की हुई तो ?....और माँ भगवान से प्रार्थना करती कि इस बार उसके पति की बात रह जाय, इसके बाद चाहे उसके सात लड़कियाँ हों, पर इस बार तो लड़का ही हो....और वह मन में कहती कि वह परशुराम ही हो और अपनी माँ के अपमान का बदला ले।

और शायद भगवान ने उसकी सुन ली। परशुराम ने एक दिन दोपहर के एक बजे जन्म लिया और उस दिन जो शान्ति और सन्तोष चेतन की माँ को उस दुख और कष्ट-भरे जीवन में मिला, वह बयान के बाहर है। सौभाग्य से पण्डित जी भी उन दिनों वहीं आ गये। (रात के समय बाज़ार शेख़ाँ के शराबख़ाने से हो कर, झूमते-झामते घर पहुँचे।) उन्हें जब मालूम हुआ कि उनकी घोषणा के अनुसार उनके यहाँ लड़का ही पैदा हुआ है और माँ ने उनकी इच्छा के अनुसार, आनन्द-वानन्द छोड़, उसका नाम परशुराम ही रखा है तो उन्होंने नयी घोषणा की कि उनके अगले पुत्र का नाम मेघनाद होगा—मेघनाद—देवताओं के राजा इन्द्र को जीतने वाला; चारों वेदों के वक्ता रावण का बेटा; जिसने लक्ष्मण को अपनी शक्ति से घायल कर, अचेत कर दिया था और उनका पाँचवाँ पुत्र शिव शंकर होगा —शिव शंकर—जो क्रोध से तीसरा नेत्र खोलेगा तो यह सारी सृष्टि भस्म हो जायगी।

वे अपने उस जोश में अपने आने वाले सभी बेटों का नाम-करण कर

देते (क्योंकि पण्डित जी का दृढ़ विश्वास था कि मर्द के कम-से-कम एक दर्जन लड़के होने चाहिएँ) लेकिन उसी वक्त उनका यह तीसरा सुपुत्र, जो इक्कीस बार खत्रियों का नाश करने वाला था, उनकी इस भयंकर घोषणा को सुन कर रो पड़ा। पण्डित शादीराम ने अपनी आदत के अनुसार उसे एक टाँग से पकड़ कर हवा में एक चक्कर दे दिया। वे तो उसे पवनसुत की तरह सिर के बल धरती पर पटक कर उसी वक्त उसकी शक्ति की परीक्षा कर देखना चाहते थे, पर बच्चा सहम कर चुप हो गया और इसी परीक्षा से प्रसन्न हो कर पिता ने उसके शक्तिशाली होने की घोषणा कर दी और वचन दिया कि वे उसे एक तेज़ फरसा बनवा कर देंगे, जिससे वह सब खत्रियों का नाश करेगा।

यद्यपि पण्डित जी शराब के नशे में की गयी घोषणा भूल गये और दूसरी रात उन्हीं खत्रियों के साथ बैठ कर उन्होंने खूब पी, पर माँ उस घोषणा को नहीं भूली। उसने न केवल अपने चौथे बेटे का नाम मेघनाद रखा, बल्कि पांचवें का शंकर और अपने तीसरे बेटे को परशुराम-सा शक्ति-सम्पन्न बनाया....

....छुटपन ही से माँ ने परशुराम को—जो साधारणतः परसराम कहलाता था—उस ऋषि-बालक की कहानी सुनानी शुरू की, जिसने अपने पिता के अपमान का बदला लेने के लिए राजा सहस्रबाहु की हज़ार भुजाएँ अपने फरसे से काट दी थीं!

....कभी जब बचपन में बालक परसराम रोता तो माँ कहती, "तू रोता है! तू तो परसराम है। परसराम हो कर तू रोता है! तुझे शर्म नहीं आती।" और बालक चुप हो जाता।

....एक बार उसके सारे शरीर पर फोड़े निकल आये। चेतन के पिता उन दिनों हिसार के निकट ऊजड़ स्टेशन, 'बुगाना' पर असिस्टेण्ट स्टेशन-मास्टर थे। पैरों के तलवों को छोड़ कर उसका सारा शरीर फोड़े-फुंसियों से भर गया। वह पीड़ा से कराहा भी तो माँ ने उसके नाम की याद दिलायी और वह चुप हो गया....चेतन उससे केवल ढाई वर्ष ही बड़ा था। वह तब भी अपने इस छोटे भाई की सहन-शक्ति और संयम को देख कर

चकित रह जाता था। लेकिन वे दिन उसके मानस-पट पर अमिट प्रभाव छोड़ गये थे और उसे अजाने ही अपार शक्ति भी दे गये थे। चेतन (तब वह केवल पाँच-छै वर्ष का था) सोचा करता था कि उसका यह छोटा भाई सचमुच बड़ा हो कर ज़ालिम खत्रियों का नाश कर देगा। यह वह रोज़ देखता था कि परसराम लेटता था तो पीड़ा से तड़फड़ाता था, पर उसके होंटों से चीख़ न निकलती थी, चाहे उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे। न जाने उसके पिता कहाँ से दवा लाये थे। उसकी माँ मक्खन को सौ बार पानी में धो कर, उसमें वह दवा मिला कर, उसके शरीर पर लगाती थी। इसी से उसे आराम आ गया था।

....बुगाना ही में एक बार बालक परसराम के पैर पर भैंस का खुर पड़ गया और उसका पैर कट गया। वह भागा-भागा घर आया और लँगड़ाता और तड़पता हुआ कमरे में घूमने लगा। लहू-सने पैर के निशान धरती पर बनते गये और उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहती गयीं, लेकिन वह लगातार कहे जाता था—'मैं परसराम हूँ, मैं रोता नहीं !'.... 'मैं परसराम हूँ, मैं रोता नही।'

चेतन के सामने जब वह दृश्य आता तो उसके गले में गोला-सा अटक जाता....पर उसे याद था कि उसकी माँ रसोई-घर से भागी आयी थी, अपने बच्चे के कटे हुए पैर को देख कर न वह रोयी थी, न चिल्लायी थी। जल्दी में धोती का किनारा फाड़ कर, उसे पानी में भिगो, उसने पैर बाँध दिया था और बच्चे की पीठ ठोंकते हुए कहा था—"हाँ, मेरा बेटा परसराम है, बहादुर है, वह कभी नही रोता !....और उसे छाती से लगा लिया था।"

०

"तुम लोगों के होते उस साले की यह मजाल कैसे हुई कि वह तुम्हारी चाची को पकड़ कर घसीटे और उसके जूते लगाये। तुम सालो, अखाड़े काहे के लिए जाते हो, यह हज़ार-हज़ार डण्ड किसलिए पेलते हो। ये पट्ठे, यह जवानी, साली किस दिन काम आयेगी। ये नामर्द खत्री ब्राह्मणों की बहू-बेटियों पर हाथ उठायें, इससे पहले तुम डूब कर क्यों नही मर गये...."

चेतन के पिता की पाटदार आवाज़ गली खोसलियाँ तक आ रही थी।

मुहल्ले में पहुँच कर चेतन ने देखा कि उसके पिता कुएँ की जगत पर टाँगें नीचे लटकाये बैठे हैं, उनके सामने अपराधियों-ऐसे परसराम और देबू खड़े हैं, लाला फ़कीरचन्द उनके पास चुपचाप कुएँ की जगत पर बैठे हैं। कुएँ की चर्खियाँ (जिन पर इस वक्त बेपनाह भीड़ होती है) एकदम खाली हैं। मुहल्ले में सन्नाटा है। खत्री औरत-मर्द अपने किवाड़ लगा कर कोठों पर जा चढ़े हैं। परे सुनारों के दरवाज़े में कुछ औरतें अवश्य खड़ी यह तमाशा देख रही हैं; कुछ औरतें-बच्चे भुआड़े में भी खड़े हैं और पण्डित जी दोनों बेटों को (वे अपने मित्र पण्डित दौलतराम ज्योतिषी के बेटे देबू को भी अपना बेटा कहते थे) धाराप्रवाह मल्लाहियाँ सुना रहे हैं।

परसराम अखाड़े से सीधा भागा आया था और उसके शरीर पर अभी मिट्टी लगी थी। उसने और देबू ने एक साथ कहा कि वे लोग उस वक्त वहाँ नहीं थे। देबू ने कहा कि वह कचहरी से लौटा तो उसने माँ से यह किस्सा सुना। परसराम ने कहा कि शंकर मुझे बुला कर लाया, मैं होता तो किसी की मजाल थी कि चाची को हाथ भी लगा जाता।

"तुम्हारे होते नहीं लगाता, मैं मानता हूँ," पण्डित शादीराम ने कहा, "पर तुम लोगों की ग़ैर-हाज़िरी में भी उसे यह जुर्रत कैसे हुई? इसका मतलव है, उसे तुम लोगों के ज़ोरे-बाज़ू का कोई डर नहीं, या वह अपने आपको बड़ा शहज़ोर समझता है।"

पण्डित जी को देखते ही भागवन्ती की चारपाई लोगों ने वहीं कुएँ के पास रख दी और उन्हें घेर कर खड़े हो गये। भागवन्ती कराहते हुए उठ कर बैठ गयी और उसने घूँघट कुछ और खींच लिया। उनकी अन्तिम बात सुन कर भीड़ में से किसी ने कहा, "अमीचन्द डिप्टी हो गया है, इसलिए अमीरचन्द को यह साहस हुआ।"

"उसके डिप्टी की माँ की—" पण्डित जी ने अपनी गरजदार आवाज़ में बड़ी-सी वज़नी गाली भुवाड़े की ओर फेंकते हुए कहा, "मैं देखता हूँ, उसका साला वह डिप्टी भाई क्या कर लेता है, अगर वह आ कर अपनी इस माँ के (उन्होंने भागवन्ती की चारपाई की ओर संकेत किया) पैरों में

पड़ कर माफ़ी नहीं माँगता तो मैं उस साले को मुहल्ले में नहीं रहने दूँगा। मैं उस साले अमीचन्द को डिप्टी नहीं बनने दूँगा। मैं ख़ुद जा कर अफ़सरों से मिलूँगा और उन्हें समझाऊँगा कि जो साला महज़ कम्पीटीशन में पास हो कर मुहल्ले की माँ-बहनों पर यह ज़ुल्म ढा सकता है, वह अफ़सर बनने पर क्या इन्साफ़ करेगा?"....और पण्डित जी ब्राह्मणों की उस भीड़ की ओर पलटे, "सालो, पुलिस में जाने की क्या ज़रूरत थी? पुलिस में नामर्द जाते हैं। पुलिस साली पैसे की है। तुम जिसे कहो, मैं पचास-सौ ख़र्च कर के दो दिन हवालात की हवा खिलवा दूँ। तुम लोगों में जान नहीं, जो पुलिस में भागे? अमीरचन्द को मार कर बिछा देते और पुलिस में वह या उसका वह डिप्टी भाई या उस डिप्टी भाई का बाप जाता।"

और पण्डित जी उठे और उन ब्राह्मण जवानों का ज़ोर आज़माने के लिए, उन्होंने बारी-बारी देबू, परसराम और हन्से की गर्दन पर एक-एक ज़ोरदार धौल जमा दी। हालाँकि पण्डित जी की धौल से अच्छे-नगड़े लड़खड़ा जाते थे, देबू और हन्मा गिरते-गिरते बचे, लेकिन परसराम सीना ताने खड़ा रहा और टस-से-मस न हुआ।

पण्डित जी ने प्रसन्न हो कर अपने बेटे की पीठ ठोंकी तो देबू तन कर खड़ा हो गया और बोला कि अचानक धौल पड़ने से वह लड़खड़ा गया था, नहीं वह परसराम से कम ताकतवर नहीं और 'बाऊजी' अब उसके धौल जमा देखें।

पण्डित जी ने मुट्ठी बाँध कर हाथ उठाया, देबू सीना ताने परसराम ही की तरह तन कर खड़ा हो गया, दूसरे क्षण पण्डित जी की कसी बाँह का, कलाई और कोहनी के बीच का हिस्सा, देबू के दायें कन्धे के ऊपर गर्दन पर पड़ा। उसका बायाँ पैर ज़रा-सा अपनी जगह से हटा, पर दूसरे ही क्षण फिर अपनी जगह आ गया।

पण्डित जी ने खुश हो कर उसकी पीठ ठोंकी।

"मैं बे-ध्यान खड़ा था, इसलिए लड़खड़ा गया था," देबू ने सीना फुला कर डींग हाँकी, "नहीं, इसे तो मैं कई बार चित कर चुका हूँ।"

उसका इशारा परसराम की ओर था, जिसने उसकी बात सुनते ही

ख़म ठोंका और कहा, "आ बच्चू, देख कौन चित करता है ?"

और दूसरे क्षण, दोनों आमने-सामने आ गये और बाहें ताने, पंजों में पंजे उलझाये, ज़ोर-आज़माई करने लगे।

पण्डित जी ने सिर से पगड़ी उतार कर बग़ल में रख ली और एक पाँव ऊपर कर के कुएँ की जगत पर आधा फसकड़ा मार कर बैठ गये। भागवन्ती उनके दिमाग़ से निकल गयी और वे एकाग्र हो कर उन दोनों की कुश्ती देखने लगे।

०

देबू चूँकि छुटपन ही से गुण्डा था और परसराम को माँ ने शक्तिशाली, पर सच्चरित्र बनाया था, इसलिए कई बार शत्रुओं से लड़ने में देबू की सहायता करने के बावजूद, देबू की-सी अकड़, गुण्डई और शेख़ी उसके यहाँ न थी। परसराम के शरीर के सभी अंग तने हुए थे और सभी वृत्तियाँ इस इच्छा पर केन्द्रित थीं कि वह देबू का दाँव न चलने दे। देबू को इस बात का पता था कि यदि वह जीत गया तो पण्डित जी न केवल आध सेर गर्म-गर्म दूध पिलायेंगे, बल्कि पुरस्कार-स्वरूप एक-दो रुपये भी देंगे, और वह इस कोशिश में था कि जैसे पहले कभी वह उसे उठा कर पटक देता था, एक ही बार उसे उठा कर पटक दे। लेकिन एक तो परसराम उसके सब दाँव जान गया था, दूसरे देबू ने अखाड़े जाना छोड़ दिया था और वह केवल गुण्डई में शक्ति नष्ट करता था, जबकि परसराम बाकायदा अखाड़े जाता और हजार-हज़ार डण्ड-बैठकें निकालता और पहले से कहीं अधिक बलवान हो गया था।

देबू ने एक बार उसे धोबी पटरा देने की कोशिश की, फिर उसकी दोनों बाँहों को कन्धे पर रख, अपनी दोनों बाँहों का हठात झटका दे कर उसे गिराने का प्रयास किया; कमर को बाँध, उठा कर पटकने की कोशिश की और एक बार कुछ परे हट कर अपना प्रसिद्ध दाँव चलाने और डुबकी-सी लगा कर दोनों टख़नों से पकड़, उसे चारों ख़ाने चित गिराने का भी प्रयास किया, लेकिन परसराम उस पर निरन्तर उकाब की-सी तेज़ दृष्टि लगाये रहा और उसने उसका हर वार ख़ाली कर दिया और इसके बाद

जब देवू ज़रा-से असमंजस में पड़ा कि अब क्या करे, परसराम ने उसके हाथ को ज़ोरदार झटका दे कर, उसके पीछे हो कर उसे बाँध लिया और बिजली की-सी गति से उठा कर पटक दिया।

अब पण्डित जी बैठे न रह सके। वे उठ कर उनके पास आ गये और देवू को दांव बताने लगे। देवू उनके बताये दाँव से ऊपर आ गया तो परसराम ने नीचे से उसकी गर्दन बाँध कर उसे फिर नीचे रख लिया। पण्डित जी ने फिर दाँव बताया। वह फिर ऊपर आ गया। लेकिन परसराम ने फिर नीचे कर लिया और अब उसने अपनी दोनों टाँगें अकड़ा कर उन्हें उसकी गिरफ़्त से बाहर रख, उसे कुछ ऐसे रगड़ना शुरू किया कि पण्डित जी के लाख दाँव बताने पर भी वह ऊपर न आ सका।

पण्डित जी कुछ देर इस बात की प्रतीक्षा करते रहे कि परसराम ही उसे चित कर दे। पर देवू रगड़ा जाता रहा, चित नहीं हुआ। तब पण्डित जी ने दोनों की कुश्ती बराबर छुड़ा दी। उनकी पीठ ठोंकी, उन्हें कभी आपस में न लड़ने और शत्रुओं का मिल कर मुकाबिला करने का सदुपदेश दिया और उन्हें रामदित्ते हलवाई की दुकान पर गर्मागर्म दूध पिलाने ले चले।....

तभी उनकी दृष्टि अपने पीछे खड़े ब्राह्मणों की भीड़ और भागवन्ती की चारपाई पर पड़ी, जिनके अस्तित्व तक को वे एकदम भूल गये थे। भागवन्ती ने उन्हें देख कर घूंघट को कुछ और खींच लिया।

"देख भागवान," पण्डित जी ने बाज़ार को जाते-जाते उसकी चारपाई के पास रुक कर उसी पाटदार आवाज में कहा, "तू धर्मचन्द की बीवी थी तो मेरी छोटी भाभी थी। मैंने ही तेरी शादी धर्मचन्द के साथ करायी थी। अब तू नेलू के घर बैठ गयी है तो भी मेरी छोटी भाभी है और छोटी भाभी हमारे धर्म में बेटी के समान होती है। तू मेरी बेटी ही के बराबर है। मेरे रहते कोई तेरी बेइज़्ज़ती नहीं कर सकता। तू जा, अपने घर बैठ। वह साला अमीरचन्द और उसका वह ढोंगी बाप अगर तेरे पाँवों पर गिर कर माफ़ी न माँगे तो मैं अपनी मूँछें मुँड़ा डालूँगा।"

और उन्होंने हन्से और श्यामे को आदेश दिया कि उसे सहारा दे कर

उठायें और घर ले जायें।

भागवन्ती उनके सहारे उठी और उसने पण्डित जी के चरण छुए और कराहती हुई भुवाड़े की ओर चल दी।

भागवन्ती अभी भुवाड़े तक पहुँची भी न थी कि बाज़ार की ओर से अपने काले-भुजंग, मोटे, पर गठे शरीर को लिये, तेलू लुढ़कता हुआ-सा आता दिखायी दिया।

पण्डित जी ने उसे कमेटी के लैम्प के नीचे ही पकड़ लिया और लगातार गालियाँ देते हुए पूछा कि उसने अपनी बीवी को अकेले मुहल्ले में क्यों भेजा और स्वयं क्यों वहीं दुबका रहा और वे डण्ड-बैठकें और वह मुगदर-सा शरीर किस दिन काम आयगा? "यह तेल मल-मल कर और डण्ड-बैठकें पेल-पेल कर शरीर को तू ने इसीलिए पाला है कि तेरी बीवी को तेरा पड़ोसी जूतों से मारे और तू मण्डी में मज़े से बैठा रहे।"

तेलू ने हकलाते हुए अस्फुट स्वर में सफ़ाई दी कि उसकी बीवी उसे बताये बिना चली आयी। उसे पता होता तो वह उसे कभी न आने देता। उसे तो अभी श्यामे ने बताया कि मुहल्ले में यह काण्ड हो गया है और वह भागा-भागा आ रहा है।

"साले, उसे मुहल्ले में आने से रोक रखने के बदले तू पहले ही उसके साथ क्यों नहीं आया? यह मुहल्ला क्या अमीरचन्द के बाप का है, या तू उसकी जागीर में बसता है, या उसकी दी रोटी खाता है। अमीरचन्द ने जिस दिन कहा था कि भागवन्ती या तेलू कोई भी मुहल्ले में आयेगा तो वह कत्ल कर देगा, तू उसी दिन उसे ले कर क्यों उससे यह पूछने नहीं आया कि दिखा तो ज़रा मर्दुमी, कैसे कत्ल करता है....नामर्दों की तरह तू मण्डी में क्यों बैठा रहा?"

तेलू ने कुछ हकलाहट-भरा उत्तर देने की कोशिश की, लेकिन पण्डित जी ने अपनी गरज में उसकी मिन-मिन बन्द कर दी।

"असल में तुम लोगों के ख़ून में पुरोहिताई घुसी हुई है सालो! अपना कमाते हो, अपना खाते हो और ये मुहल्ले के खत्री तुम्हें भंगी-चमार समझते हैं।" और पण्डित जी ने पाँव बढ़ा कर तेलू की मोटी गर्दन थाम

कर उसे आगे धकेलते हुए कहा, "चल मेरे साथ और चल कर ढूंढ़ उस अमीरचन्द को और पूछ उससे कि क्यों उसने अपनी माँ पर हाथ उठाया और यह कल्लोवानी मुहल्ला कब से उसके बाप की जागीर बन गया ?"

चालीस

चेतन के पिता का ख़याल था (ऐसा ही मुहल्ले के लोगों ने उसे बताया था) कि अमीरचन्द अपने मामा सोहनलाल की दुकान पर होगा, जो जौड़ा दरवाज़ा से तनिक आगे बाज़ार में मनिहारी की दुकान करते थे। जब से उनकी बीवी का देहान्त हो गया था, वे दुकान पर चले गये थे और मकान अमीरचन्द को दे गये थे। उसकी शादी हो गयी थी, बच्चा हो गया था और चौधराइन के मकान में, जहाँ लाला मणिराम रहते थे, अब गुंजाइश न थी।

लेकिन जब मुहल्ले के खत्रियों को मल्लाहियाँ सुनाते, ब्राह्मण युवकों को साथ लिये, पण्डित जी सोहनलाल की दुकान पहुँचे तो उसने कहा कि अमीरचन्द नहीं आया। पण्डित जी ने उस पर विशेष 'मधुर वचनों' की वर्षा करते हुए कहा कि ऊपर चौबारे में छिपा होगा और इससे पहले कि सोहनलाल उन्हें रोकता, वे छत से लटके, गाँठ बँधे रस्से को पकड़, दुकान के तख्ते पर पैर रख, मनिहारी के सामान से सजे शीशे के बक्सों को पार कर, दुकान के अन्दर पहुँच गये और ऊपर चौबारे को जाने वाली सीढ़ी की ओर बढ़े, जो दुकान के अन्दर ही से ऊपर चढ़ती थी।

"बाऊ, कहाँ जा रहा है ? ऊपर कोई नहीं है," कहते हुए लाला

सोहनलाल भी उनके पीछे लपके ।

वे मँझले कद के गोरे-चिट्टे आदमी थे । चालीस-पैंतालीस की आयु होगी, पर उनके चेहरे पर अभी से झुर्रियाँ आ गयी थीं और बाल खिचड़ी हो गये थे । उनकी दुकान पर कोई-न-कोई सुन्दर लड़का अवश्य रहता । वह थोड़े दिन उनके काम में हाथ बटाता, फिर चला जाता । मुहल्ले की औरतें अपने छोटे लड़कों को उनकी दुकान पर भेजते संकोच करती थीं । सोहनलाल ने पण्डित जी के कोट का दामन थामने की भी कोशिश की, लेकिन पण्डित जी झटके से दामन छुड़ा कर एक के बदले दो-दो सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर पहुँचे ।

अमीरचन्द ऊपर नहीं था । चौबारे में लाला सोहनलाल के पलँग पर एक बारह-तेरह बरस का लड़का सोया था, जिसने एक मैली-सी नेकर-कमीज़ पहन रखी थी ।

पण्डित जी ने कान पकड़ उसे उठा दिया—"यहाँ अमीरचन्द आया था ?"

लड़का गहरी नींद सोया हुआ था । पण्डित जी ने उसे उठा कर बैठा तो दिया, पर कुछ क्षण तक वह बैठा-बैठा जैसे सोया रहा । पण्डित जी ने फिर कड़क कर उससे वही सवाल पूछा ।

तभी लाला सोहनलाल दाँत निकोसते हुए सीढ़ियों में नमूदार हुए ।

"इसको क्या पता है बाऊ, अमीरचन्द का ?"

"यह कौन है ?"

"मेरे साथ दुकान में काम करता है...."

"और तेरे बिस्तर पर सोता है," पण्डित जी ने अत्यन्त उपेक्षा से कहा, "साले, इतनी तेरी उमर हो गयी, सिर के बाल पक गये, पर तेरी यह आदत न गयी । अपना पिचका हुआ चेहरा ज़रा शीशे में देख ।".. और ऊँची आवाज में—'मन्दे कम्मी नानका, जद-कद मन्दा हो'[1] गाते हुए पण्डित जी सीढ़ियाँ उतर गये और उसी तरह सामान के ऊपर से कूद

१. ऐ नानक, बुरे कामों का अंजाम, जब भी हो, बुरा होता है।

कर बाज़ार में आ खड़े हुए।

"मिला बाऊ जी ?" देबू ने पूछा।

"नहीं !"

"वह अपनी फूफी के होगा, या अपने पिता के पास चुपराने चला गया होगा।" देबू ने कहा।

चूँकि उसकी फूफी का घर भी चुपराने ही की ओर था, इसलिए पण्डित जी ने तय किया कि वहीं जा कर वे उसके योगाभ्यासी बाप को पकड़ेंगे और उसे साथ ले कर अमीरचन्द को ढूँढ़ेंगे।

चेतन बेहद थक गया था, इसलिए जब वे सब वापस चौरस्ती अटारी पहुँचे तो वह बाजियाँ वाला बाज़ार की ओर मुड़ा, लेकिन उसके पिता ने गरज कर उसे साथ ही चलने के लिए कहा। दबी ज़बान से उसने थक जाने की बात कही, पर जब उसके पिता ने दोबारा कहा कि 'नहीं, मैं जो कहता हूँ साथ चल !' तो वह चुपचाप चल पड़ा। जानता था कि ज़रा-सा प्रतिवाद अमीरचन्द के विरुद्ध इकट्ठे होने वाले गुस्से की धारा उसकी ओर मोड़ सकता है। लेकिन उसके सौभाग्य से अभी वे अगले चौरस्ते तक ही पहुँचे थे कि आगे से पण्डित जुलियाराम और लाला मणिराम आते दिखायी दिये।

"सुना भाई शादीराम, क्या हाल-चाल है तेरा ?" पण्डित जुलियाराम ने अपनी नाभि तक लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

"हम रिन्दों की बात छोड़," पण्डित जी बोले, "तू सुना, तेरे योगाभ्यास का क्या हाल है, भगवान ऊपर से उतर कर आया कि नहीं तेरी आत्मा में निवास करने।"

पण्डित जुलियाराम ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। दाढ़ी पर बराबर हाथ फेरते हुए हँसने लगे, "तुझमें बाऊ, मरते दम तक कोई फ़र्क नही आयगा।"

"आये क्यों, मैं तुम लोगों की तरह फ़रेबी नहीं, गुनहगार हूँ, पर रयाकार[1] नहीं।"

---

१. झूठा;

पण्डित जुलियाराम ने इसका भी उत्तर नहीं दिया। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें चमकने लगीं, होंट मुस्कान में कुछ और फैल गये और वे दोनों हाथ बारी-बारी दाढ़ी पर फेरने लगे। क्षण भर बाद बात बदल कर उन्होंने कहा, "यह फ़ौज ले कर किधर जा रहे हो?"

"तुम लोगों की तरफ़ जा रहा था। तुम्हारे ये नये चेले तो घर-बार की चिन्ता छोड़, आत्मा को परमात्मा में लीन करने के पीछे पड़े हैं और इनका वह 'राणा प्रताप दा पुत्त'[1] अमीरचन्द मुहल्ले वालों की ज़िन्दगी हराम किये हुए है।"

अब लाला मणिराम चौंके, लेकिन उनके चेहरे पर किसी प्रकार की व्यग्रता अथवा चिन्ता नहीं दिखायी दी। सहज रूप से उन्होंने कहा, "क्या हुआ बाऊ शादीराम?"

"हुआ क्या," पण्डित जी ने अपने मित्र पण्डित जुलियाराम की लम्बी दाढ़ी की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह कमबख्त खुद तो डूबा ही था, साथ में आपको भी ले डूबा। यह तो अपने पुराने पापों को धोने के लिए दाढ़ी बढ़ाये, चन्दन का टीका लगाये, योग-साधना कर रहा है। बीवी इसके है नहीं और नौ सौ चूहे खाके यह बिल्ला हज को चल दिया है, पर आपने कौन-से पाप किये हैं? इसने दाढ़ी बढ़ा ली है। क्या दाढ़ी बढ़ाये बिना ब्रह्म के दर्शन नहीं होते?"....

पण्डित जुलियाराम के मन में आयी कि कुछ कहें, उनके होंट हिले भी, पर पण्डित शादीराम नशे में थे, इसलिए उन्होंने चुप ही रहना उचित समझा।

चेतन के पिता फिर बोले, "मैं पूछता हूँ, आपकी यह साधना किस काम आयगी, यदि आप अपने लड़के को काबू में नहीं रख सकते। जो माला अपने खून से बने लड़के को नहीं साध सकता, वह ब्रह्म को क्या साधेगा। जो इस जिन्दगी को नहीं बना सकता, वह अगली जिन्दगी क्या बनायेगा?"

१. राणा प्रताप का बेटा।

पण्डित जी नशे में न जाने और क्या-क्या कहते, पर लाला मणिराम ने, जो क़द में उनसे काफ़ी लम्बे थे, बड़ी प्यारी मुस्कान होंटों पर ला कर अपने दोनों हाथ उनके कन्धों पर रख दिये, "वाऊ भाई, तुम किस बात पर ख़फ़ा हो, हुआ क्या है ?"

पण्डित जी ने उन्हें सारा किस्सा बताया और अपनी घोषणा की बात कही कि तेलू की बीवी को जूते मार कर उनके लड़के ने तेलू का नहीं, उनका अपमान किया है, कि भागवन्ती उनकी छोटी भाभी है और उनकी बेटी के समान है, कि अगर उनका बेटा उसके पाँव पड़ कर अपने कुकृत्य के लिए क्षमा नहीं मांगेगा तो एक-न-एक का खून होके रहेगा और वे देखेंगे कि कैसे उनका अपमान करके कोई मुहल्ले में रहता है।

"तुम्हारा बेटा डिप्टी हो गया है तो क्या मुहल्ले को तुम लोग खा जाओगे ?" पण्डित जी गरजे, "मैं किसी डिप्टी से नहीं डरता, मैंने इन सब से कह दिया है कि अगर वह आज ही जा कर उससे माफ़ी नहीं मांगता और आगे के लिए कसम नहीं खाता कि फिर ऐसा नहीं करेगा तो मारे जूतों के हम उसका सिर गंजा कर देंगे। मैं जानता हूँ, उसे अपनी ताकत का और अपने भाई के डिप्टी होने का गुमान है, पर हम उसकी सारी ताकत और उसके भाई की डिप्टी कमिश्नरी जहाँ से आयी है, वहीं घुसेड़ देंगे।"

लाला मणिराम ने पण्डित जी की बात का बुरा नहीं माना। धीरे-धीरे अपने दोनों हाथों से उनके कन्धे थपथपाते हुए, उन्होंने पण्डित जी को शान्त किया। वे उनके साथ वापस महल्ले में आये। सीधे तेलू के घर गये। वहाँ जा कर उन्होंने अपनी टोपी भागवन्ती के कदमों पर रख दी और कहा कि वह पण्डित जी की ही नहीं, उनकी भी बेटी के बराबर है और उनके नालायक लड़के ने जो हरकत की है, उसके लिए वे बड़े शर्मसार हैं। वे अभी उसे ढूँढ़ कर लायेंगे और जब तक वह अपने किये के लिए क्षमा न माँगेगा, खाने को मुँह न लगायेंगे।

और झमानों के घर से निकल कर उन्होंने पण्डित जी से कहा कि वे आराम करें, वे अपने लड़के को समझायेंगे और यदि उनकी बात उसने नहीं मानी तो फिर जो पण्डित जी के मन में आये, करें।

पण्डित जी ने कहा कि वे अपनी बैठक में बैठे हैं। उन्होंने जो शपथ ली है, उसे पूरा किये बिना वे चैन न लेंगे और यदि उनका लड़का समझ जाय और अपने किये पर पश्चात्ताप कर माफ़ी माँग ले तो लाला मणिराम उन्हें सूचित कर दें।

उधर से छुट्टी पा, पण्डित शादीराम ने दो-दो रुपये परसराम, हन्सराज और देबू को दिये कि वे दूध पियें और चेतन को आदेश दिया कि बैठक खोले, कटोरियाँ, पानी और अचार रखे। और वहीं बैठक के बाहर खड़े हो कर उन्होंने मुकन्दी को माँ-बहन की गालियाँ देते हुए आवाज़ दी।

लाला मुकन्दीलाल अभी-अभी दुकान से आये थे। वहीं से उन्होंने उत्तर दिया कि अभी आता हूँ। चेतन ने बैठक का दरवाज़ा खोला, मेज़ पर गिलास-कटोरियाँ रख दीं और बड़ा लैम्प जला दिया। तभी लाला मुकन्दीलाल आ गये। तब लाला फ़कीरचन्द ने कमीज़ के अन्दर से शराब की बोतल निकाली, जो आधी से कुछ ज़्यादा ही बची हुई थी। कटोरियों में शराब उँडेलते और लाला मुकन्दीलाल को 'मधुर वचन' सुनाते हुए पण्डित जी ने उनसे कहा कि चाहे उनकी भाभी तेलू के घर बैठ गयी, पर है तो उनके बड़े भाई की बीवी, उन्होंने कैसे सहन कर लिया अमीरचन्द का उसे जूते से पीटना।

कटोरी का पेय एकदम गले से नीचे उतारते, कड़ुवाहट से मुँह बनाते और पानी का कुल्ला करते हुए, लाला मुकन्दीलाल ने बताया कि वे तो दुकान पर थे और उन्हें तो अभी मंगल की माँ ने बताया है।

"साले, अच्छा हुआ कि वह तेलू के घर जा बैठी।" पण्डित जी ने पेग कण्ठ में उँडेल कर उल्टे हाथ से होंट पोंछते हुए कहा, "मुहल्ले में तो है. अगर वह किसी मुसलमान या क्रिस्तान के साथ निकल जाती तो तुम क्या कर लेते? तेलू फिर भी ब्राह्मण है, और ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए हैं, साले!"

यह कहते हुए पण्डित जी ने कुल्ला करने के लिए मुँह में पानी भर लिया। तभी लाला मणिराम अमीरचन्द को ले कर आ गये। वह कहीं नहीं गया था। घर ही में था। पहले तो वह माफ़ी माँगने को तैयार न

हुआ, पर जब बाप ने ऊँच-नीच समझायी तो अनिच्छा-पूर्वक जा कर भागवन्ती से माफ़ी माँग आया। बैठक में आ कर उसने झुक कर पण्डित जी के चरण छुए, और कहा कि जोश में उससे ग़लती हो गयी, वे बड़े हैं, उसे क्षमा कर दें।

पण्डित जी सरूर में आ गये थे। उन्होंने उसकी पीठ ठोंकते हुए पूरी उदारता से उसे क्षमा कर दिया और सदुपदेश दिया कि मुहल्ले में लड़ने के बदले उन्हें इकट्ठे रहना चाहिए और मुहल्ले के शत्रुओं से लड़ना चाहिए।

वे लोग चले गये तो पण्डित जी ने दूसरा पेग गले के नीचे उतारा और सरूर में आ कर गाने लगे :

'सोने की नाहिं राधे, रूपे की नाहिं'

इकतालीस

रात के बारह बज चुके थे, जब पण्डित जी की कनपटियों में तेल लगा कर, बड़ी मुश्किल से उन्हें सुला कर, चेतन ऊपर बरसाती में पहुँचा। इधर की झिलमिली में लालटेन रखी थी। बत्ती उसकी इतनी नीचे कर दी गयी थी कि मद्धिम लौ 'अब बुझी कि अब बुझी के-से अन्दाज़ में' जल रही थी। चेतन का जी चाहा, उसे बुझा दे। उसे रोशनी में नींद न आती थी। लेकिन चन्दा अँधेरे में डरता थी। चेतन ने बत्ती को ज़रा-सा ऊँचा कर दिया। एक नज़र उसने अपनी पत्नी पर डाली। वह चित लेटी थी। दिन भर की थकी, गहरी नींद सो गयी थी। उसे हमेशा अपनी पत्नी की नींद से ईर्ष्या होती थी। उसकी अपनी नींद यदि उचट जाय तो फिर सोना उसके लिए असम्भव हो जाता था। लेकिन चन्दा पड़ते ही सो जाती थी, फिर उसे जगाना मुश्किल हो जाता था। चेतन को चंगड़ मुहल्ले के सरदार जगदीशसिंह (लैण्ड लॉर्ड एण्ड हाऊस प्रोप्राइटर) के मकान की याद आ गयी। शिमला जाने से पहले वे लोग वहीं रहते थे। रात को दो के करीब जब वह समाचार-पत्र के दफ़्तर से आता था तो कई बार जब सीढ़ियों का दरवाज़ा खटखटाने पर चन्दा कोई उत्तर न देती थी तो वह पिछली ओर गली में जा कर आवाज़ देता था। सारा मुहल्ला जग

जाता था, पर वह न जागती थी ।

चेतन बड़े धीरे से, चुपचाप जा कर बिस्तर पर लेट गया । उसकी कमर अकड़ गयी थी । दिन भर की आवारगी के कारण उसकी पिंडलियाँ, उसके तलुवे, पैरों की उँगलियाँ, उनके नाखून—उसके शरीर का अंग-अंग दर्द कर रहा था । उसकी आँखें करकरा रही थीं । पर जब उसने उन्हें बन्द करके सोने की कोशिश की तो उसे नींद न आयी...दिन भर की घटनाएँ, मित्रों-परिचितों के सम्वाद, महल्ले का हिंस्र काण्ड—सब उसके दिमाग में जैसे चक्राकार घूमने लगे । बराबर वही दृश्य, वही घटनाएँ, वही बातें । उसका मुहल्ला, उसका शहर, उनके लोग, उनकी सोच-समझ और भाग-दौड़ का सीमित क्षेत्र....अनन्त, बद्दा, देवू, प्यारू, रामदित्ता, हकीम दीनानाथ, निश्तर, रणवीर, हुनर, महात्मा और योगी, स्वयं-सेवक और गेट, लाल्लू और अमरनाथ, पण्डित जुलियाराम और लाला शागराम—फिर सब से ऊपर उसके पिता....इस वातावरण में और अधिक रहना उसके लिए असह्य है ।....वह इस सीमित घेरे से निकल कर तत्काल चला जायगा और इससे ऊपर उठ जायगा । उसने अपने ध्यान को मस्तक में जमा कर, उन समस्त चित्रों को दिमाग से निकाल कर सोने का प्रयास किया, लेकिन तभी अमीचन्द की वह घूर देखती हुई उपेक्षा-भरी दृष्टि और हमीद का वह उसके हाथ को गले से हटा देना उसके सामने आ गया (वह भूल गया कि उसने स्वयं कान्तिया के प्रति यही हरकत की थी) और एक अदृश्य ज्वाला उसके मन में लपलपा उठी....अपनी हीन दशा पर उसे अव्यक्त क्षोभ हुआ । उसके मित्र उससे कहीं आगे बढ़ गये हैं । उसकी अपनी आर्थिक स्थिति क्या है ? वह अपने-आपको लाख तोप साहित्यिक समझता हो, पर उसकी मासिक आय तो पचास रुपये से ज़्यादा नहीं (पचास भी उसे शिमला जाने के सिलसिले में मिले हैं, वरना समाचार-पत्र के दफ़्तर में तो वह चालीस ही पाता है) और अमीचन्द डिप्टी कलक्टर होने जा रहा है और हमीद रेडियो में अफ़सर हो गया है और वह क्या है ?—आर्थिक रूप से निरन्तर घाटे पर चलने वाले एक समाचार-पत्र का जूनियर सम्पादक !—जिसके चार

सम्पादकों में दो हमेशा बीमार रहते हैं; जिन्हें बारह-बारह, चौदह-चौदह घण्टे तक काम करना पड़ता है। वह सीनियर सम्पादक या प्रमुख सम्पादक हो जायगा तो भी क्या होगा! सीनियर सम्पादक सौ रुपया और प्रमुख सम्पादक सवा सौ रुपया पाते थे। अव्वल तो उस पत्र में उन्नति की सम्भावना ही न थी, फिर वह कहीं दूसरे पत्र में चला जाय तो साठ-सत्तर से ज्यादा क्या पायगा...वह इस दुश्चक्र को तोड़ देगा! अखबार की उस चक्की ने उसके कलाकार को पीस दिया है। जब वह अपने दिन और रात का अधिकांश समाचार-पत्र को दे देगा तो अच्छी कविता या कहानी लिख ही कैसे सकेगा? साल भर में वह एक भी नयी पुस्तक नहीं पढ़ सका। वह डिप्टी कलक्टर न बने, अफसर न बने, पर उच्चकोटि का साहित्यिक तो बने....वह तो कुछ नहीं बन पाया—दैनिक पत्रों में उसकी कहानियां पहले भी छपती थीं, अब भी छपती हैं—पर जब वह स्वयं ही उनसे सन्तुष्ट नहीं तो दूसरे क्या होंगे....वह लाहौर जा कर सब से पहला काम यह करेगा कि अपने उस समाचार-पत्र की नौकरी से छुट्टी पायगा....वह चन्दा को नहीं ले जायगा। जब कहीं कुछ काम पा जायगा तो उसे ले जायगा। वह क्या करेगा?—उसके दिमाग में साफ नहीं था। लेकिन वह उस स्थिति से उठ जायगा। अपने मित्रों की उस उपेक्षा को ईर्ष्या में बदल देगा। अमीचन्द और हमीद और उस जैसे अफ़सरों की उपेक्षा को उनके होंठों पर जमा देगा, उनकी आंखों को चौंधिया देगा।....

....चेतन का जी चाहा, वह उठ कर छत पर घूमे। पर वह बेहद थक गया था। उसने धीरे से करवट बदल ली। चन्दा गहरी नींद सोई थी। एकदम निश्चल। उसके सांस की आवाज तक न आती थी।....चेतन के सामने अमरनाथ का चित्र आ गया....'सरचश्मा-ए-जिन्दगी'—क्या नाम दिया था उन लोगों ने उसे, लेकिन अमरनाथ ने उस नाम को सच कर दिखाया। यदि अमरनाथ जैसा ठस्स आदमी एक-निष्ठ हो कर लगन से काम करने पर सफल हो सकता है, तो वह क्यों नहीं हो सकता। यह प्रबल इच्छा-शक्ति, यह अपने उद्देश्य के प्रति दुर्दमनीय, लगभग अन्धी,

एकांगी लगन—यही तो ज़िन्दगी में सफलता का स्रोत है। यही तो सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी है। उसका दिन बेकार नहीं गया....उसे ज़िन्दगी के स्रोत का पता चल गया....वह अपने में यह लगन पैदा करेगा, कर्मठता पैदा करेगा। तूफ़ानी नदी की तरह परिस्थितियों के पत्थरों को बहाता, चट्टानों को तोड़ता अपने उद्देश्य की ओर बढ़ा चला जायगा....

सहसा उसके कानों में योगी जालन्धरीमल के शब्द गूँजने लगे....इस विशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य की हस्ती तो कण के हज़ारवें हिस्से के बराबर भी नहीं और आदमी न जाने अपने-आपको क्या समझता है....मिथ्या सुख-समृद्धि के पीछे भागने के बदले, मनुष्य क्यों न सत्य को खोजे और जन्म-मरण के बन्धन को काट, अपूर्व सन्तोष और परम-शक्ति और मोक्ष को प्राप्त करे....चेतन ने फिर बेचैनी से करवट बदली....क्या उसका यह संकल्प मिथ्या के पीछे भागने के ही बराबर है?....अमीचन्द डिप्टी कलक्टर के बदले कलक्टर और कमिश्नर और हर्मीद प्रोग्राम असिस्टेंट के बदले स्टेशन डायरेक्टर या कण्ट्रोलर हो जाय और वह स्वयं देश का सब से बड़ा कवि और कथाकार, तो भी क्या होगा? मौत तो अवश्यम्भावी, अनिवार्य, अपरिहार्य है ....तब यह महत्वाकांक्षा, प्रगति की यह प्रबल इच्छा—यह सब मिथ्या नहीं तो क्या है?....यह दुनिया न जाने कितनी बार बनी, कितनी बार इसमें स्वर्ण-युग और लौह-युग आये....चेतन के कानों में योगी जी की आवाज़ गूंज गयी। उसे दिल डूबता-सा लगा। बरसाती में उसे बड़ी घुटन महसूस हुई। बेपनाह थकावट के बावजूद वह उठा और बाहर छत पर चला आया। जब मुहल्ले में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ले कर द्वन्द्व हो रहा था, आकाश पर न जाने कब बादल घिर आये थे। चेतन जा कर ठण्डी शहनशीन पर लेट गया।....कुछ क्षण चुपचाप लेटा रहा....धीरे-धीरे उसके दिमाग ने फिर सोचना शुरू किया....मौत का दिन तो शायद जन्म के साथ ही तय हो जाता है, फिर आदमी उससे पहले क्यों मरे और दुनिया ग़र्क़ हो जायगी या भक्क-से उड़ जायगी तो सभी ग़र्क़ होंगे या भस्म हो जायेंगे, और फ़ारसी कवि ने कहा है—'मर्गे-अम्बोह जश्ने दारद'—बेपनाह भीड़ की मौत जश्न के बराबर है—सब मरेंगे तो वह भी मर जायगा....लेकिन

उससे पहले वह मौत-ऐसी शान्ति की वांछा क्यों करे?....जिस परम-शान्ति की वांछा आत्मा को पाने में आदमी करता है—मन की ऐसी स्थिति, जो स्वप्न-रहित नींद की-सी है, वह मृत्यु का दूसरा रूप नहीं तो और क्या है? जीते-जी मरना नहीं तो और क्या है? अरस्तू ने मौत को स्वप्न-रहित नींद ही तो कहा है। और फिर वर्षों की योग-साधना के बाद यदि आदमी स्वयं वैसी शान्ति पा भी ले तो क्या....यदि कोई भगवान है और वह चाहता है कि आदमी जिये नहीं, जीते जी मृत्यु की-सी शान्ति पाये तो वह आदमी को ये सब इन्द्रियाँ क्यों देता है, ऐसा दिमाग क्यों देता है....चेतन उठ कर छत पर घूमने लगा....ज्ञानयोग की अपेक्षा कर्मयोग की बात कुछ-कुछ उसकी समझ में आती थी। वह कामना-रहित हो कर नहीं, कामना-युक्त हो कर काम करेगा। उसे मोक्ष नहीं चाहिए....वह ज़िन्दगी को जीना चाहता है....जिन्दगी को जीने की प्रेरणा तो कामना ही से है, उसे छोड़ कर वह जूझेगा कैसे? वह प्रबल हठ, लगन, निष्ठा लायगा कहाँ से?....लेकिन वह फलाफल की चिन्ता नहीं करेगा। असफल होने पर दुख नहीं मनायगा, बल्कि दुगने जोश से सफल होने का प्रयास करेगा और सफल होने पर सुख से पागल भी नहीं होगा।....और उसके सामने लाला मणिराम का चेहरा घूम गया। ज़रूर ही उन्होंने इस सिद्धान्त पर अमल किया है। मुहल्ले में किसी दूसरे का लड़का डिप्टी हो जाता तो सारे मुहल्ले में लड्डू बाँटता फिरता। बाजे बजवा देता। लेकिन जिस खबर ने उनके बड़े लड़के को बौरा दिया, उसे पिता ने बड़े ही सहज भाव से लिया। भागवन्ती के सम्बन्ध में अपने लड़के की ज़्यादती की बातें सुन कर भी वे विचलित नहीं हुए।....और चेतन जानता था कि उन्हें बेपनाह गुस्सा आता था। अमीरचन्द को उन्होंने कई बार बेतरह पीटा था....हो सकता है जालन्धरीमल जी जेल के कष्टों से भाग कर, सरफ़रोशी की तमन्ना छोड़ कर, योगी हो गये हों—चाहते हों, समाज में प्रतिष्ठा भी बनी रहे और राजनीतिक आन्दोलन के रास्ते में आने वाले कष्ट भी न उठाने पड़ें। हो सकता है, पण्डित जुलियाराम का योग-साधन कुण्ठाओं से पलायन ही का दूसरा नाम हो। उन्होंने सत्य

का कोई अंश छुआ है, कुछ पाया है, यह वह नहीं जानता, पर लाला मणिराम के चेहरे पर जो शान्ति और धैर्य झलकता है, उनकी आँखों में जो करुणा और अनुकम्पा है, वह ज़रूर उनके अन्तर के सामंजस्य की द्योतक है। सुख और दुख को समान-रूप से लेना शायद वे सीखे हैं। आत्मा को परमात्मा में उन्होंने मिला दिया है, यह वह नहीं जानता, पर सत्य का कुछ स्पर्श उन्होंने ज़रूर पाया है।....और चेतन ने सोचा कि कभी वह उनके पास बैठ कर कुछ सीखेगा....उसने जितना कुछ पढ़ा या सुना था, उससे उसे न भगवान पर आस्था हुई थी, न यह संसार माया-मय लगता था, न परम-सुख, परम-शान्ति वांछनीय लगती थी और न मोक्ष ! कर्म करना और फलाफल की चिन्ता न करना—बस यही एक सिद्धान्त उसे अच्छा लगता है, वह इसी को अपनायगा। मौत की बात नहीं, ज़िन्दगी की बात सोचेगा। जिन्दगी को बेहतर बनाने, बेहतर तौर पर जीने की बात सोचेगा। इस सब कल्मष, इस सब संकुचितता से ऊपर उठने की बात सोचेगा कि जब मौत आये तो उसे यह अफ़सोस न रहे कि उसने यह जीवन व्यर्थ गँवा दिया, कुएँ के मेंढक की तरह वह अपने छोटे-से दायरे में घूमता रहा।....वह कलाकार है, अपनी कला के द्वारा वह मानव के ज्ञान को रंच मात्र भी आगे बढ़ा सके, इसका प्रयास वह करेगा।....

और चेतन की तमाम घुटन जैसे हवा हो गयी, उसका जी हल्का हो गया, वह जा कर फिर अपने बिस्तर पर लेट गया। बत्ती फिर नीचे जा रही थी, उसने उसे फिर ऊँचा कर दिया....क्षण भर वह उसे देखता रहा, केवल इस रोशनी के लिए न जाने कितने वैज्ञानिकों ने अपनी ज़िन्दगियाँ लगा दी। इन्सान यदि इस संसार से विमुख हो कर, इसे केवल माया समझ कर मोक्ष-प्राप्ति ही को अपना ध्येय बनाये रखता तो शायद वह अभी तक जंगलों ही में बसता; नंगा घूमता ! लेकिन जिन्दगी को बेहतर बनाने का प्रयास करने वालों ने, इस छोटी-सी ज़िन्दगी में मौत पर विजय पाने की वांछा रखने वालों ने, प्रकृति की न जाने किन-किन शक्तियों को खोज निकाला; रेल गाड़ियाँ, पानी के नल, बिजली, रेडियो और न जाने कितने आविष्कार किये। जिन सुविधाओं के बारे में आज

का आदमी सोचता भी नहीं, जिनका वह सहज रूप से उपभोग करता है, उनके पीछे न जाने वैज्ञानिकों की कितनी नसलें खट गयीं....उन्होंने मौत की नहीं, ज़िन्दगी की बात सोची....वह भी ज़िन्दगी की बात सोचेगा।

चेतन ने करवट बदली। उसे सो जाना चाहिए। वह कई रातों से नहीं सो रहा है। नीला की शादी में वह तीन रात नहीं सोया, पिछली रात जागता रहा है, दिन भर घूमता रहा है। वह बीमार हो जायगा।.... उसने फिर मस्तक में ध्यान जमाने की कोशिश की, उसका ख़याल था, उसने बड़ा महत्वपूर्ण निश्चय कर लिया है। उसे नींद आ जानी चाहिए।

पर नीद उससे कोसों दूर थी। उसकी आँखों की करकराहट न जाने कब की खत्म हो गयी थी। उसने आँखें खोल दीं। लगता था जैसे वह अभी गहरी नींद सो कर उठा है। आँखों में ज़रा-सी थकान न थी, दिमाग़ ज़रा भी भारी न था....वह व्यर्थ ही जालन्धर आया, उसने सोचा। अगर वह नीला की शादी में न आता तो क्या अच्छा न होता। वह शिमले मे था और शिमला जालन्धर से काफ़ी दूर है। वह नौकरी पर गया हुआ था, नीला उसकी सगी साली न थी, फिर उसकी बीवी तो वहाँ थी ही, उसका आना कोई ज़रूरी नहीं था। वह न आता तो नीला रंगून चली जाती और समय तथा स्थान का व्यवधान उसके दुख को कहीं गहरे में दबाये रहता। यों उभार कर ऊपर न ले आता। चन्दा पढ़ने लगी थी। वह सन्तुष्ट था। उसने आ कर क्या पाया?—दुख, पीड़ा, वितृष्णा, कुण्ठा—अपने आपसे भी—अपने वातावरण से भी!....वह नीला की बात नहीं सोचेगा। उसकी शादी हो गयी। वह क्या कर सकता है....उसकी आँखों के सामने नीला से अन्तिम भेंट का दृश्य आ गया और जैसे कोई तेज़ भाला उसके सीने में उतरता चला गया—उस अधेड़ के साथ नीला कैसे निर्वाह करेगी?....यह उसने क्या कर दिया?....क्यों उसके पिता से उसकी शादी करने को कह दिया?....वह कितनी उदास होगी?... उसकी उदासी को दूर करने के लिए वह कुछ भी तो नहीं कर सकता. ..चेतन ने करवट बदल ली।....सहसा उसके सामने कुन्ती की शादी के बाद हँसती-नाचती सूरत आ गयी....क्या नीला भी उसकी तरह न हँस सकेगी?....पर कुन्ती

तो वैधव्य में भी हँस सकती है....उसके कानों में उसकी हल्की-सी हँसी गूँज गयी, जो उसने शाम ही को कोट किशनचन्द में दो बार सुनी थी.... और वह समझता था कि कुन्ती अब भी ग़मगीन होगी....कितना बड़ा चुग़द है वह....और तभी उसे जैसे अमरनाथ के माध्यम से पाये गये सत्य से भी किसी बड़े सत्य को पाने का आभास मिला....जिन्दगी रुकती नहीं, बड़े-से-बड़े दुख को झेल जाती है....और वह नीला के प्रेम में अपनी असफलता को लिये बैठा है। जो पास है, उसे भूल कर, जो नहीं है, उसके फ़िराक में परेशान है, खिन्न और म्लान है। नीला से उसकी शादी नहीं हुई। नीला से उसकी शादी नहीं हो सकती। यह अपरिहार्य है। किसी भी तरह वह स्थिति वापस नहीं लायी जा सकती। तब वह उस स्थिति के आगे नत-मस्तक हो, अपनी ज़िन्दगी को बेहतर क्यों न बनाये ? कुन्ती ने अपनी ज़िन्दगी को अपने बच्चे में केन्द्रित कर हँसना सीखा होगा। वह अपनी कला में क्यों न अपना ध्यान केन्द्रित करे, क्यों न पूरी इच्छा-शक्ति से अपने दुख, उदासी, मलिनता, खिन्नता को कला की साधना में लगा दे ....कुछ अजीब-से हल्केपन के अहसास से उसके मन-प्राण भर उठे। वह उठ कर बैठ गया। उसका मन हुआ बाहर जाय....पर बाहर टीन की चादरें मिनमिना रही थीं, जाने कब से बूँदियाँ बरस रही थीं। अजीब बात है कि उसे पहले उनकी आवाज़ तक नहीं सुनायी दी।....वह फिर लेट गया। जैसे पिछली रात टीन की चादरों पर होने वाली वर्षा की आवाज़ ने उसे सुला दिया था, आज भी वह सो जायगा।....ठण्डी हवा का झोंका आया। उसने शरीर को ढीला छोड़ दिया और आँगन के जंगले पर रखी टीन की चादरों पर बूँदियों की जलतरंग सुनने लगा।

बयालीस

यही महीना था, ऐसी ही मीठी मद-भरी बरसाती रात थी, ऐसे ही हवा के ठण्डे झकोरे बह रहे थे और नन्हीं-नन्हीं बूंदनियाँ बरस रही थीं। वह गौने के बाद चन्दा को बस्ती ग़ज़ाँ से लाया था। नीचे कोने वाले छोटे-से कमरे में माँ ने पलँग बिछा दिया था। खिड़की में पानी का बड़ा मुरादाबादी लोटा, बादाम और छुहारे-मिले दूध का गिलास और लालटेन रख दी थी।....नींद के बदले वह रात और उसकी मिठास चेतन के दिमाग़ में छा गयी। बरसात की मिन-मिन न जाने कब पीछे हट गयी और उन मीठी स्मृतियों ने उसके मन को बाँध लिया।

....इक्कीस वर्ष का होने के बावजूद चेतन तब एकदम बच्चा था। आज तो छोटी-छोटी बच्चियाँ और बच्चे सेक्स की सस्ती किताबें पढ़ कर ग़लत ही सही, पर बहुत कुछ सेक्स के बारे में जान जाते हैं, लेकिन चेतन को कुछ भी मालूम नहीं था। केसर वाली घटना बार-बार उसके दिमाग़ में कौंध जाती थी, उसका दिल डर-डर जाता था। चन्दा को घर छोड़ कर वह अनन्त के पास चला गया था। अनन्त उसे स्टेशन के रेस्तराँ में ले गया था। मुर्ग़-मुसल्लम उसने चेतन के लिए मँगाया था और कहा था कि यह बेहद पौष्टिक होता है और उसने उसे सुहागरात के बारे में सभी बातें

बता दी थीं कि कैसे मर्द को इस रात अपनी मर्दुमी दिखानी चाहिए और प्यारू की मिसाल दी थी कि कैसे उसने पहली रात आठ बार अपनी पत्नी को अपने पुंसत्व का प्रमाण दिया था और जब चेतन ने कहा था कि उसे तो शायद नारी के अंगों का भी ज्ञान नहीं तो अनन्त ने उसकी चुग़दियत पर उसे बड़ी प्यारी गाली देते हुए कहा था कि टार्च साथ रख लेना।.... लेकिन चेतन को इस सारे व्यापार ही से वितृष्णा हो रही थी....'क्या यह ज़रूरी है कि पहली रात ही वह सब किया जाय ?' उसने पूछा था, 'क्या दो-तीन रात बाद जब पति-पत्नी आपस में खुल जायँ, यह नहीं हो सकता।' अनन्त ने उसे समझाया था कि कहीं ऐसी मूर्खता न कर बैठना। हुनर साहब के भाई की ऐसी ही मूर्खता ने उन पर जो विपत्ति ढायी, उसका हवाला देते हुए; उसने चेतन को समझाया कि सुहागरात का आयोजन ही इसलिए किया जाता है, और इससे भागना कायरता है और उसे सब तरह पक्का करके वह उसे उस कमरे के द्वार पर छोड़ गया था और उसकी पीठ पर थपकी देते हुए उसने हँस कर कहा था कि घबराना नहीं और मर्द के नाम को बट्टा न लगाना।

•

अन्दर कमरे में जा कर दरवाज़ा बन्द करके, जब चेतन मुड़ा था तो उसने देखा कि चन्दा पलँग पर नहीं, दीवार के साथ पीढ़े पर बैठी थी। गुलाबी रंग का तिलाई[1] बनारसी सूट उसने पहन रखा था, लाल रंग का तिलाई गोटे से झलमल करता दुपट्टा उसके सिर था।

"वहाँ क्यों बैठी हो ?" चेतन ने बेपरवाही से कहा था और उँगली थाम कर उसे उठाया था।

चन्दा ने न हाथ खींचा, न संकोच किया, न नख़रा किया। वह चुपचाप उठ कर पलँग पर आ बैठी थी। चेतन ने दायें हाथ से उसका घूँघट ज़रा-सा पीछे सरका दिया था, "इस चाँद को पूरा चमकने दो मेरी जान !" उसने हँस कर कहा था।

१. सोने की तारों के कामवाला

लेकिन यह कहते हुए उसे अपने स्वर के अजनबीपन पर हैरत हुई थी। उसे लगा था, जैसे उसने एक औपचारिकता निभायी है, उसके स्वर में भावना का सर्वथा अभाव था। लेकिन जब उसकी इस बात पर संकुचित हो कर लजाने और घूंघट फिर खींच लेने के वदले चन्दा हल्के से हँस दी थी तो मोतियों-सी उस हँसी से वह छोटा-सा नीम-अँधेरा कमरा उद्भासित हो गया था।

चेतन ने पेशावरी चप्पल पहन रखे थे। पलँग की पट्टी पर बैठ कर उसने उन्हें उतारा तो पैर कीचड़ से लथपथ थे। कीचड़ धोते हुए जब उसने उँगलियाँ साफ़ करना शुरू किया तो सहसा चन्दा ने बड़े ही मीठे स्वर में पूछा, "आपके पैरों को कुछ तकलीफ़ है ?"

"नंगे पैर या चप्पल पहने दिन भर घूमता हूँ," चेतन ने बेपरवाही से कहा था, "बरसात के दिन हैं, उँगलियों में बिवाइयाँ फट गयी हैं।"

चन्दा उठी थी। फ़र्श पर घुटने टेक कर उसने दोनों पैरों की उँगलियों के बीच का हिस्सा बड़े धीरे-से अपने रेशमी दुपट्टे से साफ़ किया था और फिर उनमें वैज़लीन लगा दी थी। चेतन को वह सब बड़ा अच्छा लगा था। उसने उसके दोनों हाथों को चूम लिया था और उसे खींच कर अपने सीने से लगा लिया था।

बाहर हल्की-हल्की बूंदियाँ रिमझिमा रही थीं, कमरे की दोनों खिड़कियों से बरसाती हवा के झकोरे आ रहे थे। चन्दा उसके साथ लेटी थी। कोई बात चेतन को न सूझ पा रही थी। सहसा उसने पूछा :

"चन्दो, तुम गाना जानती हो ?"

"कहीं सीखा तो नहीं।" उसने बड़े धीरे से कहा।

"जानती हो ? न सीखा सही।"

"योंही घरेलू गीत गुनगुना लेती हूँ !"

"गुनगुनाओ !"

"माता जी...."

"धीरे-धीरे सुना दो।" चेतन ने अनुनय से कहा और मचल कर उसका माथा चूम लिया।

चन्दा गाने लगी :

सावियाँ पीलियाँ वंगाँ—नीं मेरियाँ
सावियाँ पीलियाँ वंगाँ।
इह वंगाँ मेरी सासू चढ़ाइयाँ
सासू चढ़ाइयाँ।
विच्च दहलीज़ दे भन्नाँ
नीं मेरियाँ
सावियाँ पीलियाँ वंगाँ।[1]

"सास की दी हुई चूड़ियाँ बीच दहलीज़ क्यों न तोड़ेगी ?" चेतन ने कहा और ज़ोर से हँसा। फिर वह गम्भीर हो गया, "देखो मेरी माँ की दी हुई चूड़ियाँ न तोड़ देना।"

चन्दा ने अपने मोती बिखेर दिये। फिर उसने दूसरा बन्द गुनगुनाना शुरू किया—सुर, ताल और अभ्यास से अपरिचित, पर अजीब-से लोच, सोज़ और मिठास से भरा हुआ मोहक स्वर। चेतन मुग्ध सुनने लगा :

इह वंगाँ मेरी मायें चढ़ाइयाँ
मायें चढ़ाइयाँ
बाँह लमका के लंघाँ
नीं मेरियाँ
सावियाँ पीलियाँ वंगाँ[1]
इह वंगाँ मेरे माही चढ़ाइयाँ
माही चढ़ाइयाँ

१. हरी-पीली मेरी चूड़ियाँ हैं। ये मेरी सास ने चढ़ायी हैं, मैं इन्हें बीच दहलीज के तोड़ती हूँ।

२. ये चूड़ियाँ मेरी माँ ने चढ़ायी हैं, मैं बाँह को दिखाती हुई गुजरती हूँ।

लंघदी मूल न संगाँ
नों मेरियाँ
साबियाँ पोलियाँ वंगाँ[1]

"वाह मेरी जान !" उसने अपनी पत्नी के मुख को दोनों हाथों में ले कर उसे चूम लिया। चन्दा ने उत्तर में वही मोती बिखेर दिये। चेतन का सारा संकोच मिट गया। चन्दा उसे बेहद भोली लगी—हरे-भरे खेतों-सी विशाल और बरसाती हवा-सी मोहक। अनन्त के गुरों की उसे याद भी नहीं रही। चन्दा के यहाँ न नाज़ था, न नखरा; न चालाकी, न चतुराई; न हठ, न ज़िद। गहरी विशाल झील-सी वह आवेग-हीन थी, जिसके किनारे चाहे लेटो, पानी पिओ या उतर कर गोता लगा लो। झील तेज़ नदी की तरह उठा कर नहीं पटकेगी, सहज भाव से सब कुछ ले लेगी।....और सुखानुभूति से चेतन का अणु-अणु पुलकित हो गया था।

फिर कुछ देर बाद चेतन के अनुरोध पर चन्दा ने एक दूसरा गीत सुनाया था। पत्नी रूठ गयी है। पति उसे मनाता है, कहता है—अरी मैं तेरे लिए स्वयं बुन्दे ला दूँगा, तू इतना गुमान न कर, उन्हें स्वयं तेरे कानों में पहना दूँगा। पर नख़रेलो पत्नी सिर हिलाती है कि हमें बुन्दे नहीं लेने, तू भी इतना गुमान न कर, हम बुन्दे नहीं लेंगे। पति कहता है— मैं दूसरी ब्याह लाऊँगा और उसके कानों में बुन्दे डाल दूँगा। पत्नी शाप देती है कि वह भी नहीं रहेगी। पति कहता, मैं वेश्या रख लूँगा और उसके कानों में बुन्दे डालूँगा। पत्नी तड़ाक से उत्तर देती है कि वह वेश्या भी राजे की रखैल है, कैद करवा देगी। हार कर पति कहता है कि मैं तेरे ही कानों में बुन्दे डालूँगा :

बुन्दे लियादियाँगा नीं
बुन्दे लियादियाँगा नीं
नीं अड़िए ना कर ऐडा गुमान
नीं सड़िए ना कर ऐडा गुमान

१. ये चूड़ियाँ मेरे पति ने चढ़ायी हैं, मैं (गली मुहल्ले में) गुज़रते हुए ज़रा भी नहीं शरमाती।

तेरे कन्नीं पा दियांगा नीं
असां ना लैणे वे
असां ना लैणे वे
वे अड़िया ना कर ऐडा गुमान
वे सड़िया ना कर ऐडा गुमान
असां ना लैणे वे

होर ब्याह लियाँगा नीं
होर ब्याह लियाँगा नीं
नीं अड़िए न कर ऐडा गुमान
नीं सड़िए ना कर ऐडा गुमान
ओहदे कन्नीं पा दियाँगा नीं।

ओह वी ना रहणी वे
ओह वी ना रहणी वे
वे अड़िया ना कर ऐडा गुमान
वे सड़िया ना कर ऐडा गुमान
ओह वी ना रहणी वे

कंजरी रख लऊँगा नीं
कंजरी रख लऊँगा नीं
नीं अड़िए ना कर ऐडा गुमान
नीं सड़िए ना कर ऐडा गुमान
ओहदे कन्नीं पा दियाँगा नी

ओह वी राजे दी वे
ओह वी राजे दी वे
वे अड़िया ना कर ऐडा गुमान
वे सड़िया ना ऐडा गुमान
कैद करा दऊगी वे

गीत सीधा-सादा था। भाव भी सीधे-सादे थे। लेकिन चन्दा 'अड़िए,'

'सड़िए' और 'अड़िया,' 'सड़िया' कुछ ऐसे प्यारे ढंग से, लटका दे कर कहती थी कि चेतन मुग्ध हो कर चंचल हो उठता था।....तब उस पहली रात उसने मन-ही-मन तय किया था कि वह कैसे जोड़-तोड़ कर बाजा ख़रीदेगा और पत्नी को 'संगीत विशारद' बनायेगा।....

०

चेतन ने करवट बदली। चन्दा उसी तरह निश्चल पड़ी थी। एक बार भी उसने करवट न ली थी। ज़रा भी हिली-डुली न थी। सहसा उसके जी में आयी, एक नज़र उसे देखे। वैसे ही लेटे-लेटे अब-करवट हो, उसने बायें हाथ से लालटेन को ज़रा और ऊँचा किया और फिर उसे उठा लिया। दायें हाथ की कोहनी के बल उठ कर बायें हाथ के लैम्प की रोशनी में अपनी उनींदी निगाहें सोयी हुई पत्नी के मुख पर टिका दीं। उसका दिल धक् से रह गया। चन्दा ने हल्का-सा शृंगार कर रखा था—उसके गेहुँए रंग को हल्के-से पाउडर की तह ने गोरा बना दिया था। उसके चौड़े माथे पर बड़ी-सी बिन्दी थी। बाल कानों के ऊपर से वैसे ही बने थे, जैसे कि चेतन को पसन्द थे। (चेतन को उसका बालों के चिड़ियाँ-तोते बनाना बड़ा फूहड़ और गँवारू लगता था और वह उससे कहा करता था कि वह सीधी माँग निकाला करे और अपने कम लम्बे, पर घने बालों से कानों को ढकते हुए पीछे ले जा कर बाँध लिया करे) बड़ी-बड़ी पलकें मुँदी थीं, होंट दंदासे में रँगे हुए थे। चेतन को उसका गोल-मटोल मुख बड़ा ही सुन्दर, बड़ा ही भोला लगा। करुणा की टीस उसके हृदय की गहराई में उतर गयी—शायद वह उसकी प्रतीक्षा करती सो गयी है। वह बोलती नहीं, लड़ती-झगड़ती नहीं, ताना-तिशना नहीं देती, सरला और स्नेहशीला है, तो क्या वह केवल मिट्टी का लौंदा है? उसके यहाँ भावना नाम की चीज़ नहीं है क्या? वह सिर्फ़ अपनी ही भावना, अपने ही स्वार्थ, अपने ही पक्ष की बात सोचता है। उसके पास जो है, उसे ठुकरा कर—जो नहीं है, जो नहीं मिल सकता, उसके पीछे परेशान है। ग्लानि-मिश्रित करुणा का एक ज्वार-सा उसके हृदय में उमड़ आया। उसका जी हुआ उसकी वे बड़ी-बड़ी मुँदी पलकें चूम ले। वह झुका। तभी चन्दा ने आँखें खोल दीं।

"सो जाइए। दो बजने को हो गये हैं।"

"तुम सोयीं नहीं ?"

चेतन ने लालटेन फिर अपनी जगह रख दी।

"सो गयी थी।"

"झूठ!"

चन्दा ने बाँह उसकी गर्दन में डाल कर उसके सिर को अपने सीने से लगा लिया, "क्यों, नींद नहीं आ रही ?"

और वह धीरे-धीरे उसके बाल सहलाने लगी।

"मैंने तय किया है मैं अख़बार की नौकरी छोड़ दूँगा। भाई साहब की प्रैक्टिस कुछ चल ही गयी है। यह दिन-रात की नौकरी मुझे लिखने-पढ़ने का समय नहीं देती।"

"छोड़ दीजिए।" चन्दा ने उसकी कनपटी को धीरे-धीरे थपकते हुए कहा, "मैं तो आपसे पहले ही कहने वाली थी।"

चेतन के दिल से बड़ा बोझ उतर गया। उसका ख़याल था चन्दा शायद नौकरी छोडने का विरोध करे, पर क्षण भर रुक कर उसने कहा, "इसी नौकरी ने आपकी सेहत ख़राब कर दी है। इसीलिए आपको नींद नहीं आती।"

'दिन भर आवारा घूमता रहा हूँ। बेहद थक गया हूँ, पर जाने दिमाग़ को क्या हो गया है।"

"नींद का वक्त जो टल गया है। सोचना छोड़ दीजिए और सो जाइए।" और उसके सिर को सीने से दबाते हुए चन्दा ने बड़े हल्के-से अपने होंट उसकी बन्द पलकों से छुला दिये।

जाने कैसे चेतन का गला भर-सा आया। अपनी पत्नी के वक्ष से लगे-लगे उसने नीला से सम्बन्धित अपने सारे सन्ताप को उसके सामने रख दिया और उससे अपनी अन्तिम भेंट की बात भी नहीं छिपायी।

चन्दा ने उसे कोई ताना नहीं दिया, न खीझी, न चिढ़ी, न गुस्से हुई। अपार ममता से उसकी कनपटी को धीरे-धीरे थपकती रही, "आप बेकार यह सोचते हैं कि आप ही के कारण नीला की शादी वहाँ हुई। आप

ताया जी से न कहते तो भी शायद नीला वहीं ब्याही जाती। मीला बहन जो वैसा चाहती थीं। फिर आप नीला को नहीं जानते। वह बहुत दुख मनाने वाली नहीं। वह जीजा जी के साथ चला ले जायगी।

....नीला ज़रूर चला ले जायगी....चेतन ने सोचा....जब कुन्ती अपने वैधव्य से समझौता करके हँस सकती है तो नीला कैसे न हँसेगी ? वह बेकार इतना सोचता है...वह कल लाहौर चला जायगा और अपने आपको लाहौर की ज़िन्दगी में डुबो देगा। उसके पास जो है, उसे बेहतर बनाने का प्रयास करेगा, जो नहीं है, उसकी चिन्ता नहीं करेगा....।

"चन्दा, तुम मुझसे बहुत समझदार हो।" उसने वैसे ही अपनी पत्नी के सीने से लगे-लगे कहा।

चन्दा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। बच्चे की तरह उसने अपने पति को सीने से दबा लिया। चेतन को लगा, गर्मी और तपिश से जला-झुलसा, थका-हारा वह उसी विशाल झील के किनारे आ गया है—उसके ठहरे, निथरे, गहरे निर्मल जल के किनारे ही उसकी नियति है, वह क्यों उससे दूर भागता है, उसे कहीं त्राण नहीं मिलेगा, कहीं शान्ति नहीं मिलेगी।

॥ एक अनोखी किताब ॥

कुछ...दूसरों के लिए

कुछ....दूसरों के लिए—में अश्क जी ने विस्तार से लेखकों की समस्याओं पर विचार किया है और ज़िन्दगी के अपने भरपूर अनुभवों के आधार पर उन ख़तरों की ओर संकेत किया है, जिनसे जीवन्त लेखकों को हमेशा सावधान रहना चाहिए। अपनी सीधी, सरल और रोचक भाषा-शैली में अश्क जी ने बहुत गहरी और गम्भीर बातें कही है, जो लेखकों पर ही नहीं, सभी कलाकारों पर लागू होती है और सामान्य पाठक भी जिनसे बहुत कुछ सीख सकता है।

कुछ प्रतिक्रियाएँ

नयी कहानियाँ में धारावाहिक प्रकाशन के दौरान।

लेख मिला। एक साँस में पढ़ गया। खूब है। दो-टूक है, साफ़ हैं और गम्भीरता से सोचने पर बाध्य करता है। किस्तों के बारे में मुझे अनेक पत्र प्राप्त हुए हैं। सभी ने इनका स्वागत किया है।

—भीष्म साहनी

'नयी कहानियाँ' वाले सभी लेख मैंने पढ़ लिये हैं। पहले कुछ लेखों के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया आप को बता ही चुका हूँ। अन्तिम दो लेखों में यदि हिदायत का स्वर न रहता तो अच्छा था। वैसे लेख पुस्तक रूप में आ जायँ तो सब एक-साथ पढ़ कर विस्तार से लिखूँगा।

—मोहन राकेश

इधर फिर आपको 'आज के लेखक की समस्याएँ' में पढ़ा। इतनी सा (निष्पक्ष) पैनी और पूर्वाग्रह-मुक्त दृष्टि रखने के लिए बहुत बधाई।

—कुन्तलकुमार जै